बी.ए. तृतीय वर्ष

संस्कृत, प्रथम प्रश्नपत्र

# गीता दर्शन, व्याकरण और भाषा विज्ञान

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

**MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL**

***Reviewer Committee***

1. Dr. Hariram Raidas
   Professor
   Govt. Hamidia College, Bhopal
2. Dr. H.P. Dixit
   Professor
   Govt. Ramanand Sanskrit College, Lalghati, Bhopal
3. Dr. O.S. Jamra
   Asst. Professor
   Govt. Ramanand Sanskrit College,
   Lalghati, Bhopal

***Advisory Committee***

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Anjali Singh
   Director
   Department of Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
4. Dr. Hariram Raidas
   Professor
   Govt. Hamidia College, Bhopal
5. Dr. H.P. Dixit
   Professor
   Govt. Ramanand Sanskrit College, Lalghati,
   Bhopal
6. Dr. O.S. Jamra
   Asst. Professor
   Govt. Ramanand Sanskrit College,
   Lalghati, Bhopal

**COURSE WRITERS**

**Dr. Kamini Taneja,** Assistant Professor (Sanskrit), Delhi University, Delhi
Units (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

# SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

## गीता दर्शन, व्याकरण और भाषा विज्ञान

| Syllabi | Mapping in Book |
|---|---|
| **इकाई–1**<br>श्रीमद्भगवद्गीता–(द्वितीय अध्याय)<br>(व्याख्या एवं प्रश्न) | **इकाई 1** : श्रीमद्भगवद्गीता<br>(द्वितीयोऽध्यायः)<br>**(पृष्ठ 3–31)** |
| **इकाई–2**<br>मनुस्मृति– नवनीतम्<br>(व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्न) | **इकाई 2** : मनुस्मृतिनवनीतम्<br>**(पृष्ठ 33–126)** |
| **इकाई–3**<br>कठोपनिषद्– सामान्य परिचय | **इकाई 3** : कठोपनिषद् (सामान्य परिचय)<br>**(पृष्ठ 127–172)** |
| **इकाई–4**<br>व्याकरण– (लघुसिद्धान्तकौमुदी से)<br>कृदन्त– अनीयर, यत्, ण्यत्, क्त्वा, ल्यप्, क्त, क्तवतु, शतृ, शानच्।<br>तद्धित– अण्, मतुप्, इनि, त्व, तल्, ढक्।<br>स्त्रीप्रत्यय– टाप्, ङीप्। | **इकाई 4** : व्याकरण<br>(लघुसिद्धान्तकौमुदी)<br>**(पृष्ठ 173–205)** |
| **इकाई–5**<br>भाषा विज्ञान– भाषा का स्वरूप, भाषा का महत्व तथा उपभाषा<br>भाषा विज्ञान की शाखाओं का परिचय– (ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, अर्थ विज्ञान और वाक्य विज्ञान)। | **इकाई 5** : भाषा विज्ञान<br>**(पृष्ठ 207–366)** |

# विषय–सूची


**परिचय** **1**

**इकाई 1 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीयोऽध्यायः)** **3–31**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 गीता का स्वरूप
1.3 गीता का सामान्य परिचय
1.4 श्रीमद्भगवद्गीता–द्वितीयोऽध्यायः सान्वयः सार्थश्च
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 2 मनुस्मृतिनवनीतम्** **33–126**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मनुस्मृति–विवेचनम्
2.3 मनुस्मृतिनवनीतम्
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 3 कठोपनिषद् (सामान्य परिचय)** **127–172**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 कठोपनिषद् का सामान्य परिचय
3.3 प्रथम अध्याय की तीन वल्लियों का सार–अंश
  3.3.1 प्रथम वल्ली का सार
  3.3.2 द्वितीय वल्ली का सार
  3.3.3 तृतीय वल्ली का सार
3.4 द्वितीय अध्याय की तीन वल्लियों का सार–अंश
  3.4.1 प्रथम वल्ली का सार
  3.4.2 द्वितीय वल्ली का सार
  3.4.2 तृतीय वल्ली का सार
3.5 प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों की तीन–तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या
  3.5.1 प्रथम अध्याय की तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या
  3.5.2 द्वितीय अध्याय की तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या

3.6 कठोपनिषद् का दार्शनिक एवं सामाजिक महत्व
3.7 कठोपनिषद् में निहित संदेश
3.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.9 सारांश
3.10 मुख्य शब्दावली
3.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.12 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 4 व्याकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)** **173–205**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 व्याकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)
4.2.1 कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया
4.2.2 अनीयर् प्रत्यय
4.2.3 यत् प्रत्यय
4.2.4 ण्यत् प्रत्यय
4.2.5 अथ पूर्वकृदन्तप्रकरण
4.2.6 क्त, क्तवतु, कत्वा, ल्यप्, शतृ–शानच्–प्रत्ययाः
4.3 तद्धित प्रत्यय (अण्, मतुप्, इनि, त्व, तल्, ढक्)
4.4 स्त्रीप्रत्ययौ (टाप् ङीप् च)
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 5 भाषा विज्ञान** **207–366**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 भाषा का स्वरूप
5.3 भाषा का महत्व तथा उपभाषा आदि अवांतर रूप
5.3.1 उपभाषा का स्वरूप एवं भारत की प्रमुख उपभाषाएं
5.3.2 उपभाषा और विभाषा (Dialect) में अंतर
5.3.3 भाषा के उद्भव के विभिन्न सिद्धांत
5.4 भाषा विज्ञान व उसकी शाखाएं
5.4.1 भाषा विज्ञान की परिभाषा
5.4.2 भाषा विज्ञान का स्वरूप
5.4.3 ध्वनि विज्ञान
5.4.4 रूप विज्ञान
5.4.5 अर्थ विज्ञान
5.4.6 वाक्य विज्ञान
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

# परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'गीता दर्शन, व्याकरण और भाषा विज्ञान' विश्वविद्यालय द्वारा बी.ए. (संस्कृत) तृतीय वर्ष के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप तैयार की गई है।

सभी धार्मिक ग्रंथों में श्रीमद्भगवद्गीता का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का सार निहित है। इसी प्रकार से मनुस्मृति ग्रंथ में भी उचित धार्मिक कार्यों को करके जीवन को समृद्ध बनाने का मार्गदर्शन किया गया है। कठोपनिषद् में यम–नचिकेता के संवाद–रूप में आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। आत्मतत्व का ज्ञान कराने में इस उपनिषद् का विशेष महत्व है।

व्याकरण भाषा के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण साधन है, इसके द्वारा भाषा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता है। भाषा विज्ञान से अभिप्राय है– भाषा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन और विश्लेषण करना। इसके अंतर्गत भाषा की उत्पत्ति विकास और स्वरूप आदि का अध्ययन किया जाता है।

अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है तथा इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता का द्वितीय अध्याय अध्यात्म ज्ञान की आधारशिला है। पुस्तक की प्रथम इकाई में इसका समालोचनात्मक विवेचन किया गया है। इसी इकाई में गीता के स्वरूप का भी अध्ययन किया गया है तथा उसका सामान्य परिचय भी प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय इकाई के अन्तर्गत मनुस्मृति के सारभूत 'मनुस्मृतिनवनीतम्' के श्लोकों की सान्वय व सार्थ–व्याख्या समाहित है। आवश्यक स्थलों पर स्पष्टीकरणार्थ इसमें 'कुल्लूक भट्ट' और 'मेधातिथि' की टिप्पणियों का भी आश्रय लिया गया है।

पाठ्यक्रमानुसार कठोपनिषद् के सामान्य परिचयार्थ कठोपनिषद् की परिचयात्मक पृष्ठभूमि, उपादेयता तथा महत्ता स्पष्ट करते हुए इसकी कतिपय वल्लियों का सरल हिन्दी अनुवाद पुस्तक की तृतीय इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक की चतुर्थ इकाई में कृदन्त, तद्धित व स्त्री प्रत्यय के अन्तर्गत विशेष प्रत्ययों के उपस्थापन 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' में दिए गए सूत्रों तथा उनकी वृत्तियों सहित समझाए गए हैं।

पुस्तक की अन्तिम तथा पांचवीं इकाई में 'भाषा विज्ञान' के विशद विवेचन को प्रस्तुत किया गया है। इसमें भाषा के स्वरूप तथा महत्व से लेकर भाषा विज्ञान की शाखाओं का सोदाहरण विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों को श्रीमद्भगवद्गीता, मनुस्मृति, कठोपनिषद्, लघुसिद्धांतकौमुदी तथा भाषा विज्ञान के विविध तथ्यों को भलीभांति समझाने में पूरी तरह सहायक सिद्ध होगी।

# इकाई 1 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीयोऽध्यायः)

टिप्पणी

## संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 गीता का स्वरूप
1.3 गीता का सामान्य परिचय
1.4 श्रीमद्भगवद्गीता–द्वितीयोऽध्यायः सान्वयः सार्थश्च
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

## 1.0 परिचय

'श्रीमद्भगवद्गीता' ग्रन्थ के सूत्रधार की भूमिका में उपस्थित संजय द्वारा कहे गए एक श्लोक तथा गीता के सर्वप्रथम श्रोता अर्जुन द्वारा कहे गए नौ श्लोकों के बाद भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से जो आध्यात्मिक ज्ञान गंगा निःसृत हुई है उसका प्रत्यक्षीकरण इस अध्याय में हुआ है।

जीवन और मरण से संबंधित जो प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति का मनोमन्थन करते हैं, उनके उत्तर इन्हीं श्लोकों में समाए हुए हैं। इनके विवेचन से धैर्य का अर्जन करने वाला प्रत्येक मनुष्य अर्जुन के समान मन की शांति पा सकता है।

साथ ही गीता का सामान्य परिचय आदि विवेच्य सामग्री भी उपनिबद्ध की गई है।

पाठ्य इकाई में भारतीय संस्कृति, दर्शन व आध्यात्मिक चिन्तन के प्राणभूत ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के समस्त श्लोकों का सान्वय अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भगवद्गीता से परिचित होते हुए इसकी विषय-वस्तु आदि को समझ पाएंगे;
- भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय/सांख्य योग के महत्त्व से अवगत हो पाएंगे;
- अर्जुन उवाच के अंतर्गत शरणागति के स्वरूप व अर्थ से परिचित हो पाएंगे;
- श्रीभगवान् उवाच के अंतर्गत श्रीकृष्ण द्वारा सत्पथ से विमुख अर्जुन के विवेकोद्बोधन से अवगत हो पाएंगे;

टिप्पणी

- श्लोक संख्या 31-39 तक क्षत्रिय के लिए युद्ध के महत्व व सम्बद्ध श्लोकों के अर्थ को समझ पाएंगे;
- श्लोक संख्या 40 से 53 तक समाधियोग में संलग्न योगी की त्रैगुण्य वेद में निर्लिप्तता के भाव के महत्व व सम्बद्ध श्लोकों के अर्थ को जान पाएंगे;
- श्लोक संख्या 54 में अर्जुन द्वारा उपस्थापित स्थितप्रज्ञता संबंधी प्रश्न की आवश्यकता व श्लोकार्थ को जान पाएंगे।

## 1.2 गीता का स्वरूप

महाभारत के भीष्मपर्व में से लिए गए 700 श्लोकों का लघुकाय ग्रंथ गीता अथवा श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से जाना जाता है। इसे गीतोपनिषद् नाम से भी अभीहित किया जाता है।

गीतोपनिषद् के 700 श्लोक अठारह अध्यायों में विभक्त हैं। 700 श्लोकों में से पहला और एकमात्र श्लोक धृतराष्ट्र के द्वारा उच्चरित है। संजय ने कुल 27 ½ श्लोक कहे हैं। शेष श्लोक अर्जुन और श्रीकृष्ण ने कहे हैं।

निम्न चार शीर्षकों में ये श्लोक निबद्ध हैं-

- धृतराष्ट्र उवाच
- संजय उवाच
- अर्जुन उवाच तथा
- श्रीभगवान् उवाच

महाभारत के रचनाकार महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने इसके अठारह अध्यायों में उपनिषदों के सार को प्रस्तुत कर दिया है। इसीलिए कहा जाता है-

**सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।**
**पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥**

(अर्थात सभी उपनिषदों को गाय बनाकर गोपालनंदन श्रीकृष्ण ने महान् गीता रूपी अमृत को दुहकर निकाला और उसे पीने वाला बछड़ा पार्थ अर्जुन बुद्धिमान् भोक्ता है।)

उपनिषदों को वेद का ज्ञानकांड कहा जाता है। उन्हीं उपनिषदों का सारभूत यह गीता नामक ग्रंथ है। लघु ग्रंथ होते हुए भी इसमें ज्ञान का जो भंडार है उसे प्रकट करने के लिए अनेक विद्वानों ने इस पर भाष्य लिखे हैं। जिनमें से प्रमुख हैं-

(i) गीता भाष्य - आदिशंकराचार्य

(ii) गीता भाष्य - रामानुजाचार्य

(iii) सुबोधिनी टीका - श्रीधर स्वामी

(iv) गूढार्थदीपिका - मधुसूदन सरस्वती

(v) ज्ञानेश्वरी (मराठी) - संत ज्ञानेश्वर

टिप्पणी

(vi) गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक

(vii) ईश्वरार्जुनसंवाद – परमहंस योगानंद

(viii) गीता तत्त्वविवेचनी – जयदयाल गोयन्दका

(ix) गीता साधक संजीवनी – स्वामी रामसुखदास

(x) गीता प्रवचन – विनोबा भावे

### अपनी प्रगति जांचिए

1. गीतोपनिषद् के 700 श्लोक कितने अध्यायों में विभक्त हैं?

   (क) 15 (ख) 16

   (ग) 17 (घ) 18

2. गीतोपनिषद् का पहला श्लोक किसके द्वारा उच्चारित है?

   (क) धृतराष्ट्र (ख) कर्ण

   (ग) अर्जुन (घ) दुर्योधन

## 1.3 गीता का सामान्य परिचय

कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों के मध्य महाभारत का युद्ध प्रारंभ होने वाला था। दोनों सेनाएं आमने सामने डट चुकी थीं। पाण्डवों के सेनानायक अर्जुन के मन में सहज यह विचार आया कि वह एक बार उन प्रमुख योद्धाओं की पहचान कर ले, जिनके साथ अन्तिम युद्ध के लिए वह रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ है। वस्तुतः दोनों पक्षों की ओर से शंखनाद हो चुकने के बाद उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था, यह कहकर उसके सखा, सारथी कृष्ण उसे संभवतः रोक भी सकते थे, परंतु श्रीकृष्ण ने उस समय ऐसा नहीं किया, तो इसके दो प्रमुख कारण समझ आते हैं- पहला, अर्जुन के समस्त संदेहों को निर्मूल करने के बाद ही उसे युद्ध में प्रवृत्त करना तथा दूसरा, आने वाली पीढ़ियों तक के लिए अपनी अमूल्य वाणी का उद्धारक उपदेश देना।

अस्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को अर्जुन की इच्छा के अनुसार दोनों सेनाओं के मध्य लाकर खड़ा कर दिया।

सामने की सेना में अपने पूज्य पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण तथा अनेक निकट संबंधियों को देखकर अर्जुन मोहग्रस्त व विषादपूर्ण हो गया। इन पितामह आदि को खोकर राज्य पा भी लिया, तो वह किस काम का? ऐसी विषादग्रस्त अवस्था में अर्जुन युद्धक्षेत्र में शोकग्रस्त होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। युद्धक्षेत्र में ऐसी कायरतापूर्ण स्थिति उसे नपुंसक सिद्ध कर देगी, ऐसा संकेत करते हुए श्रीकृष्ण ने जब अर्जुन को ललकारा तब अर्जुन की चेतना कुछ जागृत हुई। ऐसी अवस्था में वह श्रेष्ठ नीति पारंगत श्रीकृष्ण की शरण को प्राप्त हुआ।

टिप्पणी

## गीता की विषय–वस्तु

गीता की विषय-वस्तु के रूप में श्रीकृष्ण-अर्जुन का संवाद जीवन की समस्त गुत्थियों को सुलझा देने वाला गीता का उपदेश है। अठारह अध्यायों के अठारह योग (अर्जुन विषाद योग से लेकर मोक्ष-संन्यास योग तक) की जो ज्ञान की गंगा प्रवाहित हुई है, वह संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए कल्याणकारिणी है।

'गीत' शब्द से स्त्रीलिंग में 'टाप्' प्रत्यय जुड़ने से 'गीता' शब्द निष्पन्न होता है। 'गीत' स्वयं में मधुर होता है परन्तु उसकी मधुरतम अभिव्यक्ति होने से, यह स्त्रीलिंग में है। स्त्री-वाणी को मधुरतम कहा भी गया है। साथ ही स्त्री के श्रेष्ठ गुण 'कीर्ति, श्री, स्मृति, मेधा, धैर्य व क्षमा' भी इसमें समाए हैं-

**कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥ (गीता 10-34)**

'गीतम्' नपुंसकलिंग होने पर भी, मधुर होने पर भी 'हरिण' को वश में कर लेता है, उसे मोह में डालकर उसका वध करवा देता है। किंतु गीता में समाई परमात्मा की 'क्षमा' शक्ति न केवल मनुष्य को मोह से उबारती है अपितु उसके समस्त बंधनों को काटकर उसका संपूर्ण कल्याण करती है।

## गीता की संरचना

गीता की संरचना कुल अठारह अध्यायों में विभक्त है। गीता के पहले अध्याय का नाम 'अर्जुनविषादयोग' है। इस अध्याय में उभय पक्ष के प्रमुख सेनानायकों, दोनों पक्षों द्वारा शंख ध्वनि, अर्जुन द्वारा शत्रु सेना के निरीक्षण व युद्ध के संभावित दुष्परिणामों का वर्णन होने से अर्जुन को विषाद की प्राप्ति होने के कारण ही यह अर्जुन विषाद योग कहलाता है। आदि शंकराचार्य ने अपने गीताभाष्य में कहा भी है-

**अप्राप्तस्य प्राप्तं योगः** (अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना योग है।)

दूसरे अध्याय का नाम 'सांख्य योग' है। इसमें अर्जुन द्वारा युद्ध न करने के निश्चय को कृष्ण की ललकार, सांख्य शास्त्रानुसार आत्मा की निर्लिप्तता, अवध्यता, शरीर की दशाओं के परिवर्तन में भी आत्मा का विकाररहित रहना, क्षात्रधर्म व स्थितप्रज्ञता के लक्षण आदि विषयों का वर्णन हुआ है।

तीसरे अध्याय 'कर्मयोग' में, कर्म की आवश्यकता व उसका अनासक्त भाव से निर्वाह, काम-क्रोधादि से बचने के लिए उनके क्रम ज्ञान के विषय को स्पष्ट किया गया है।

'ज्ञानकर्मसंन्यासयोग' नामक चौथे अध्याय में ईश्वर के सगुण साकार रूप के उद्भव के कारण, योगस्थ पुरुषों के आचार-व्यवहार, विभिन्न प्रकार के सरल (द्रव्यरहित) किंतु महान फलदायक यज्ञों व ज्ञान के महत्व का वर्णन है।

पांचवां अध्याय है, 'कर्मसंन्यासयोग'। इसमें समस्त कर्मों से मुक्ति के लिए भक्तिसहित ध्यान योग को बताया गया है।

टिप्पणी

छठे अध्याय 'आत्मसंयम योग' में चंचल मन को वश में करने के उपाय तथा योगभ्रष्ट की नियति को स्पष्ट किया गया है।

सातवें अध्याय 'ज्ञान-विज्ञान योग' में भगवान के प्रभाव व स्वरूप को न जानने वालों को होने वाली हानि से परिचित कराया गया है तथा जानने वालों के परम लाभ का भी वर्णन हुआ है।

'अक्षरब्रह्मयोग' गीता का आठवां अध्याय है। भक्तियोग, सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन में योगी जनों की गति के वर्णन इसमें स्पष्ट हैं।

नवें अध्याय 'राजविद्या राजगुह्ययोग' में जगत की उत्पत्ति व उसमें ईश्वर की सर्वव्यापकता के स्वरूप का वर्णन करने के साथ-साथ, धर्मपथ से भटकनेवालों की दुर्गति का भी वर्णन हुआ है। अनन्य भक्ति पर आश्रितों के योगक्षेम का परमात्मा द्वारा निर्वाह भी इसमें बताया गया है।

दसवें अध्याय 'विभूति योग' है। इसमें भगवान के उपास्य विभूति स्वरूपों का वर्णन है।

ग्यारहवें अध्याय 'विश्वरूपदर्शनयोग' में परमात्मा के कालस्वरूप का अर्जुन को साक्षात्कार होने का वर्णन है।

'भक्ति योग' नामक बारहवें अध्याय में निराकार व साकार भक्ति के प्रभाव का वर्णन है।

तेरहवें अध्याय 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग' में शरीर की क्षेत्रता और उसके क्षेत्रज्ञ परमात्मा से अनुप्राणित होने के माध्यम से प्रकृति में चित् तत्व के महत्व का ज्ञान प्राप्त करना वर्णित है।

चौदहवें अध्याय 'गुणत्रयविभाग योग' में सम्पूर्ण सृष्टि में सत्व, रज व तम इन तीन गुणों की ओतप्रोतता का वर्णन हुआ है।

पन्द्रहवें अध्याय 'पुरुषोत्तम योग' में संसार रूपी वृक्ष व उसके उच्छेदन की आवश्यकता व विधि का वर्णन विशेष रूप से वर्णित हुआ है।

सोलहवें अध्याय 'दैवासुर-सम्पद्-विभाग योग' में- दैवी गुणों व आसुरी प्रवृत्तियों का निवास जिनमें रहता है, उनके प्रति परमात्मा के व्यवहार का उल्लेख है।

सत्रहवें अध्याय 'श्रद्धात्रय विभाग योग' में सात्विक, राजसी और तामसी श्रद्धा वालों के उपास्यों व उनके फल का वर्णन हुआ है।

अन्तिम अठारहवें अध्याय 'मोक्षसंन्यासयोग' में कार्य की सिद्धि के पांच कारणों को बताते हुए अकर्ताभाव को धारण करने की विधि व फलसहित वर्णाश्रम धर्म के वर्णन के बाद फलश्रुति का भी प्रसंग है।

## गीता का महत्व

अध्यात्म क्षेत्र हो अथवा सांसारिक व्यवहार का क्षेत्र, संसार के विभिन्न भागों से अनेक विशिष्ट व सामान्य जनों को गीता से विशेष लाभ मिला है। वस्तुतः इसका महत्व हर उस

टिप्पणी

व्यक्ति के लिए है जो इसके संपर्क में आकर इसके अर्थ से श्रद्धा सहित परिचित होने लगता है। 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति' के वचनानुसार गीता के माध्यम से मनुष्य हृदयस्थ परमात्मा से जुड़ जाता है। इसके बाद इसके महत्व से वह स्वयं ही परिचित हो जाता है।

## गीता के द्वितीय अध्याय का सार

गीता यद्यपि अष्टादश अध्यायों में विभक्त है, किन्तु इसका द्वितीय अध्याय अनेक दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

**( 1 ) आत्मा की नित्यता का प्रतिपादन** - आत्मा की नित्यता का प्रतिपादन करते हुए श्रीभगवान् ने कहा है कि -

**'न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।**
**न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥'**

अर्थात् ऐसा कोई भी अतीत काल नहीं था जब कि हम नहीं थे अथवा तुम नहीं थे अथवा ये सभी राजागण नहीं थे और न तो ऐसा कोई भी काल आने वाला है, जब कि हम सभी नहीं रहेंगे।

इस श्लोक के माध्यम से श्रीभगवान् ने समस्त जीवों को त्रिकालाबाधित बताया है। समस्त जीव नित्य हैं। जन्म एवं मरण के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही शरीर में विद्यमान आत्मा की बाल, यौवन तथा वृद्धा अवस्थाओं के आने तथा बीत जाने पर आत्मा निर्विकार बनी रहती है, शरीर के विकृत होने पर भी आत्मा में कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार दूसरी देह के धारण करने पर आत्मा निर्विकार ही बनी रहती है।

जो पुरुष यह जानता है कि आत्मा किसी को मारती है तथा जो आत्मा को मारने वाली जानते हैं, वे दोनों ही प्रकार के पुरुष आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते हैं, क्योंकि आत्मा में न तो हननादि क्रियाकर्तृत्व है और न उसमें हननादि क्रियाकर्मत्व है। आत्मा के इस प्रकार का होने का कारण यह है कि आत्मा नित्य एवं अविक्रिय है। लौकिक पदार्थों में पाए जाने वाले - अस्ति, जायते, वर्द्धते, परिणमति, अपक्षीयते तथा विनश्यति - ये षड्भाव विकार हैं, आत्मा उन समस्त विकारों से रहित है, इस बात को बताते हुए श्रीभगवान् कहते हैं -

**'न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।**
**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥'**

जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुराने तथा जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों का त्याग करके नवीन वस्त्रों को धारण करता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी प्राचीन शरीर को त्याग करके नवीन शरीर को ग्रहण करती है। युद्ध में मारे गये जीवों को नवीन तथा पूर्वापेक्षया अधिक कल्याणकारी शरीर मिलता है। यह शास्त्र ही बताता है। अतएव युद्ध में मारे गये भीष्मादि को नवीन तथा अधिक कल्याणकारी शरीर मिलेगा।

टिप्पणी

**'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥'**

संसार में पाये जाने वाले पांचों भूतों में चार भूतों की ही घातकता देखी जाती है। किन्तु ये घातक तत्त्व भी नित्य आत्मा का कुछ नहीं बिगाड़ पाते हैं। आत्मा न तो शस्त्रों द्वारा काटी जा सकती है, न तो अग्नि उसे जला पाती है, जल उसको गीला नहीं कर पाता है और न वायु उसको सुखा पाती है। फलतः आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य अक्लेद्य तथा अशोष्य है।

इस विवेचन से श्रीभगवान् ने स्पष्ट किया कि आत्मा अव्यक्त है, क्योंकि आत्मा को किसी भी इन्द्रिय के माध्यम से नहीं जाना जा सकता है। आत्मा के इस स्वभाव को जानकर तुम्हें भीष्मादि के विषय में किसी प्रकार का शोक नहीं करना चाहिए। तथाहि –

**अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।**
**तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥'**

**( 2 ) कर्मयोग का महत्व** – श्रीभगवान् ने युद्ध की अवश्यकर्तव्यता का अर्जुन के लिए प्रतिपादन करके अर्जुन को कर्म–योग का उपदेश देना प्रारम्भ किया। कर्मयोग की प्रशंसा करते हुए श्रीभगवान् ने बताया कि सांख्ययोग का ज्ञान प्रदान करके मैं अब तुम्हें कर्मयोग का उपदेश दे रहा हूँ। इस कर्मयोग के ज्ञान के द्वारा तुम कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाओगे।

**एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।**
**बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥**

यह कर्मयोग निष्काम कर्मों का अनुष्ठान स्वरूप है। फलाभिसंधि से रहित होकर परमात्मप्रीत्यर्थ स्ववर्णाश्रमानुसार किये जाने वाले कर्मों को ही कर्मयोग कहते हैं। फलाभिसंधि रहित होकर किये जाने वाले कर्मों की यह विशेषता है कि वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते हैं। अतएव –

**नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।**
**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥**

जो फल कर्मों के द्वारा प्राप्त हो उसे अभिक्रम कहते हैं। उसका इस लोक में नाश नहीं होता है। इन निष्काम कर्मों का फल अन्तःकरण की शुद्धि है तथा वह पापक्षयस्वरूप है।

**( 3 ) अर्जुन के द्वितीय प्रश्न का उत्तर** – अर्जुन ने श्रीभगवान् से स्थित–प्रज्ञ के भाषण के विषय में प्रश्न करते हुए पूछा है – 'स्थितधीः किं प्रभाषेत' अर्थात् व्युत्थित स्थितप्रज्ञ, अनात्मज्ञ पुरुष से विलक्षण रूप से कैसे बोलता है। इस प्रश्न का उत्तर श्रीभगवान् ने दो श्लोकों में दिया है।

**'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।**
**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते'॥**

टिप्पणी

अर्थात् दु:खों में जिसका मन व्याकुल नहीं होता है तथा सुखों में जिसकी इच्छा नहीं होती एवं जिसके राग, भय तथा क्रोध चले गये हैं, वह मुनि स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

दु:ख तीन प्रकार के होते हैं - आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। शोक, मोह, ज्वर तथा शिरोरोग आदि आध्यात्मिक दु:ख हैं। व्याघ्र, सर्प इत्यादि से प्राप्त होने वाले दु:ख आधिभौतिक दु:ख हैं तथा अत्यन्त वर्षा, अत्यन्त वायु इत्यादि के कारण प्राप्त होने वाले दु:ख आधिदैविक दु:ख हैं। ये सभी प्रकार के दु:ख पाप रूपी प्रारब्ध कर्मों के कारण प्राप्त होते हैं। उन दु:खों के प्राप्त होने पर भी जिसका चित्त सन्तप्त नहीं होता है, वह पुरुष अनुद्विग्नमना कहलाता है। अनात्मज्ञ पुरुष को ही दु:ख की प्राप्ति होने पर भ्रान्तिस्वरूप उद्वेग नाम की चित्त की तामसी वृत्ति होती है। विवेकी पुरुष स्थितप्रज्ञ में वह चित्त की तामसी वृत्ति नहीं होती है।

श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं -

**यः सर्वत्रानभिस्नेहः तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम्।**
**नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥**

अर्थात् जो मुनि सभी विषयों में हर प्रकार की इच्छा से रहित होकर शुभ की प्राप्ति होने से न तो उसकी स्तुति करता है और न ही अशुभ की प्राप्ति होने पर उससे द्वेष करता है, उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।

**अर्जुन के तृतीय प्रश्न का उत्तर** - अर्जुन ने श्रीभगवान् से स्थित-प्रज्ञ के विषय में तीसरा प्रश्न यह पूछा था कि - 'किमासीत' अर्थात् स्थितप्रज्ञ पुरुष कैसे बैठता है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीभगवान् ने कहा -

**यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥**

अर्थात् जिस प्रकार कछुआ सब ओर से अपने अङ्गों को समेट लेता है, उसी प्रकार जब यह मुनि अपनी समस्त इन्द्रियों को विषयों से खींच लेता है, तब समझना चाहिए कि उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो गयी है। यदि कोई कहे कि रोगी पुरुष की भी तो इन्द्रियाँ सम्पूर्ण विषयों से उपसंहृत हो जाती हैं, तो क्या उस रोगी पुरुष को भी स्थितप्रज्ञ माना जाना चाहिए? तो इस शंका का समाधान करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं -

**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**
**रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥**

अर्थात् इन्द्रियों से विषय को ग्रहण नहीं करने वाले अज्ञानी पुरुष के विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, किन्तु उनका राग नहीं जाता है। किन्तु परम पुरुष का साक्षात्कार करके तो स्थितप्रज्ञ का राग भी चला जाता है। यही स्थितप्रज्ञ तथा विषयों को इन्द्रियों से नहीं ग्रहण करने वाले आतुर पुरुष में महान् अन्तर है।

टिप्पणी

लोक में भी देखा जाता है कि लुटेरे धनी तथा धन के रक्षकों को वश में करके उनकी आँखों के सामने से ही धन लूट लेते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी विवेक के रहने पर भी बलपूर्वक मन को विषय के पास पहुँचा देती हैं। इसीलिए श्रीभगवान् कहते हैं-

**तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।**
**वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥**

अर्थात् विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके मन को समाहित करके तथा परमात्मा का अनन्य भक्त बनकर समाधि में बैठे, क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में रहती हैं उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।

**( 4 ) अर्जुन के चतुर्थ प्रश्न का उत्तर :** अर्जुन का स्थितप्रज्ञ के विषय में चौथा प्रश्न यह था कि स्थितप्रज्ञ पुरुष कहाँ जाता है अर्थात् किस स्थिति को प्राप्त करता है? इस प्रश्न का उत्तर श्रीभगवान् यह कहते हुए देते हैं कि-

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।**
**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥**

अर्थात् जिसने अपने चित्त को वश में कर लिया है, वह पुरुष अपने अधीन की गयी रागद्वेष रहित इन्द्रियों के द्वारा अनिषिद्ध विषयों का ग्रहण करता हुआ मनःप्रसाद को प्राप्त करता है।

चित्त प्रसन्नता की प्राप्ति के पश्चात् होने वाली क्रिया को बताते हुए श्रीभगवान् कहते हैं -

**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**
**प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥**

अर्थात् चित्त को प्रसन्नता की प्राप्ति हो जाने पर विवेकी पुरुष के समस्त दुःखों का नाश हो जाता है क्योंकि प्रसन्नचित्त मुनि की बुद्धि तुरंत ही ब्रह्माकार होकर सब ओर से स्थिर हो जाती है।

जिस प्रकार सर्वदा मर्यादित रहने वाले समुद्र में सम्पूर्ण नदियों का जल प्रवेश कर जाता है, उसी तरह जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में सारी कामनाएँ लीन हो जाती हैं, वही आत्मसाक्षात्कार रूपी शान्ति को प्राप्त करता है।

स्थितप्रज्ञ-विषयक प्रश्न के उत्तर का उपसंहार करते हुए श्रीभगवान् ने कहा -

**विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।**
**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥**

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके निःस्पृह, ममता रहित तथा अहंकार रहित होकर विचरण करता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है।

टिप्पणी

**अपनी प्रगति जांचिए**

3. किसने अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के मध्य लाकर खड़ा कर दिया?
   (क) श्रीराम (ख) भीम
   (ग) श्रीकृष्ण (घ) युधिष्ठिर
4. किसका संवाद जीवन की समस्त गुत्थियों को सुलझा देने वाला गीता का उपदेश है?
   (क) श्रीकृष्ण–अर्जुन का (ख) अर्जुन–भीम का
   (ग) भीष्म–संजय का (घ) राम–बलराम का

## 1.4 श्रीमद्भगवद्गीता–द्वितीयोऽध्यायः सान्वयः सार्थश्च

**संजय उवाच** –

**तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।**
**विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥1॥**

**अन्वयः**– तथा कृपया आविष्टम् अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् विषीदन्तम् तम् (अर्जुनम्) मधुसूदनः इदम् वाक्यम् उवाच।

**अनुवाद**– संजय बोले–

उस प्रकार करुणा से व्याप्त, आसुँओं से परिपूर्ण एवं व्याकुल नेत्रों वाले, शोकयुक्त उस अर्जुन से मधु नामक दैत्य का संहार करने वाले श्रीकृष्ण ये वचन बोले।

**श्रीभगवानुवाच** –

**कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।**
**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥2॥**

**अन्वयः**– अर्जुन! त्वा विषमे अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम् इदम् कश्मलम् कुतः समुपस्थितम्।।

**अनुवाद**– श्रीभगवान् बोले–

हे अर्जुन! तुम्हें इस विकट परिस्थिति में अनार्यों के द्वारा सेवित, स्वर्ग प्रदान न करने वाला, अपयश प्रदान करने वाला, यह मोह कहाँ से प्राप्त हो गया।

**क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।**
**क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्वक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥3॥**

**अन्वय** – पार्थ! क्लैब्यं मा स्म गमः, एतत् त्वयि न उपपद्यते। परंतप! क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यम् त्यक्त्वा उत्तिष्ठ।।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! नपुंसकता को प्राप्त मत होओ, यह तुममें उचित नहीं है। हे परंतप! हृदय की तुच्छ दुर्बलता का परित्याग करके (युद्ध के लिए) खड़े हो जाओ।

टिप्पणी

**अर्जुन उवाच -**

**कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।**
**इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।4।।**

**अन्वयः**- मधुसूदन अहम् संख्ये भीष्मम् च द्रोणम् प्रति इषुभिः कथम् योत्स्यामि? (हे) अरिसूदन! (तौ) पूजार्हौ (स्तः)।।

**अनुवाद**- अर्जुन बोले-

हे मधुसूदन! मैं भीष्म और द्रोण के प्रति बाणों से कैसे युद्ध करूँगा? हे अरिसूदन! वे दोनों (तो) पूजनीय हैं।

**गुरूनहत्वा हि महानुभावान्**
**श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।**
**हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव**
**भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।।5।।**

**अन्वयः**- इह लोके महानुभावान् गुरून् अहत्वा भैक्ष्यम् भोक्तुम् अपि श्रेयः। हि गुरून् हत्वा (अपि अहम्) इह रुधिरप्रदिग्धान्, अर्थकामान् भोगान् एव तु भुञ्जीय।।

**अनुवाद**- इस संसार में अत्यधिक प्रभावशाली, पूजनीय गुरुओं को न मारकर भिक्षा का अन्न खाना भी श्रेयस्कर है, क्योंकि गुरुओं को मारकर (भी मैं) यहाँ (उनके) रक्त से सने भोगों को ही तो भोगूँगा।

**न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो,**
**यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।**
**यानेव हत्वा न जिजीविषाम-**
**स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।6।।**

**अन्वय** - च (वयम्) एतत् न विद्मः, नः कतरत् गरीयः, यद् वा जयेम यदि वा नः जयेयुः, यान् हत्वा (वयम्) न जिजीविषामः ते एव धार्तराष्ट्राः प्रमुखे अवस्थिताः।।

**अनुवाद**- और (हम) यह (भी) नहीं जानते हैं कि हमारे लिए क्या करना श्रेष्ठ है? क्या हमारा जीतना? अथवा उनका हम पर विजय प्राप्त करना? जिन्हें मारकर (हम) जीने की इच्छा ही नहीं करते हैं, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र (हमारे) ठीक सामने खड़े हुए हैं।

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः,**
**पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।**
**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,**
**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।7।।**

टिप्पणी

**अन्वय** - कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः धर्मसम्मूढचेताः (अहम्) त्वाम् पृच्छामि, निश्चितम् यत् श्रेयः स्यात्, तत् मे ब्रूहि, त्वाम् प्रपन्नम् अहम् ते शिष्यः, माम् शाधि।।

**अनुवाद**- कायरता रूप दोष से उपहत स्वभाव वाला, धर्म के विषय में विमूढ चित्त वाला (मैं) आपसे पूछता हूँ। निश्चय किया हुआ जो भी कल्याणकारी मार्ग हो, वह (आप) मेरे लिये कहिये। आपकी शरण में आया हुआ मैं अपका शिष्य हूँ। (अतः) मुझे शिक्षा प्रदान कीजिये।

**न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्,**
**यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।**
**अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं,**
**राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥8॥**

**अन्वय** - हि भूमौ असपत्नम् ऋद्धम् राज्यं च सुराणाम् आधिपत्यम् अवाप्य अपि (तत्) न प्रपश्यामि, यत् मम इन्द्रियाणाम् उच्छोषणम् शोकम् अपनुद्यात्।।

**अनुवाद**- क्योंकि पृथ्वी पर शत्रुविहीन निष्कण्टक तथा धनधान्य सम्पन्न राज्य को एवं देवताओं के स्वामित्व को प्राप्त करके भी (मैं उस उपाय को) नहीं देख पा रहा हूँ, जो मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाले शोक को दूर कर सके।

**संजय उवाच**-

**एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः।**
**न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥9॥**

**अन्वयः**- परंतपः गुडाकेशः हृषीकेशम् एवम् उक्त्वा (पुनः) गोविन्दम् न योत्स्ये इति ह उक्त्वा तूष्णीं बभूव।

**अनुवाद**- संजय बोले-

शत्रुओं को संतप्त करने वाला परंतप, निद्रा पर विजय पाले वाला अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहकर (फिर) इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण से (मैं) 'युद्ध नहीं करूँगा' इस प्रकार दृढरूप से कथन करके चुप हो गया।

**तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।**
**सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥10॥**

**अन्वयः**- भारत हृषीकेशः उभयोः सेनयोः मध्ये विषीदन्तम् तम् प्रहसन् इव इदं वचः उवाच।।

**अनुवाद**- हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में शोकयुक्त होते हुए उस अर्जुन से हँसते हुए से इन वचनों को कहा।

**श्रीभगवान् उवाच**-

**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।**
**गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥11॥**

टिप्पणी

**अन्वयः**- त्वम् अशोच्यान् अन्वशोचः च प्रज्ञावादान् भाषसे, पण्डिताः गतासून् च अगतासून् न अनुशोचन्ति।।

**अनुवाद**- श्रीभगवान् बोले-

तुम शोक न करने योग्यों के लिए शोक कर रहे हो तथा बुद्धिमानों जैसी बातें करते हो। पण्डित लोग, जिनके प्राण चले गए हैं तथा जिनके प्राण नहीं गए उनके लिए शोक नहीं करते हैं।

**न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।**
**न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥12॥**

**अन्वयः**- न तु एव अहम् जातु न आसम्, न त्वम् (आसीः) न इमे जनाधिपाः आसन्, च अतः परम् वयम् सर्वे न भविष्यामः इति न।।

**अनुवाद**- न तो ऐसा ही है कि मैं कभी नहीं था, (या) तुम नहीं (थे), अथवा ये राजा लोग नहीं थे तथा इसके बाद हम सब नहीं होंगे, ऐसा भी नहीं है।

**देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।**
**तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥13॥**

**अन्वयः**- यथा देहिनः अस्मिन् देहे कौमारं यौवनं (च) जरा (आयान्ति) तथा (तस्य) देहान्तरप्राप्तिः (अपि आयाति)। (अतः) तत्र धीरः न मुह्यति।।

**अनुवाद**- जिस प्रकार देहधारी जीव की इस शरीर में कुमारावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था (आती हैं) वैसे ही (उसको) अन्य शरीर की प्राप्ति भी होती है। (इसलिए) उस विषय में धैर्यशाली व्यक्ति मोहित नहीं होता है।

**मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।**
**आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥14॥**

**अन्वयः**- कौन्तेय! शीत उष्ण-सुख-दुःखदा, मात्रास्पर्शाः तु आगमापायिनः। (अतः) अनित्याः (सन्ति) हे भारत तान् तितिक्षस्व

**अनुवाद**- हे कुन्तीपुत्र! शीतलता, गर्मी, सुख और दुःख देने वाले, इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो आने जाने वाले हैं, अतः अनित्य हैं। हे भरतवंशी! (तुम) उन्हें सहन करो।

**यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।**
**समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥15॥**

**अन्वयः**- पुरुषर्षभ! समदुःखसुखं यं धीरम् पुरुषम् एते न व्यथयन्ति, सः हि अमृतत्वाय कल्पते।

**अनुवाद**- हे पुरुषों में श्रेष्ठ! सुख और दुःख में समान रहने वाले जिस तत्त्वज्ञानी पुरुष को ये (सुख और दुःख) व्याकुल नहीं करते हैं, वही (व्यक्ति) मोक्ष के योग्य होता है।

**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**
**उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥16॥**

टिप्पणी

**अन्वयः**- असतः भावः न विद्यते तु सतः अभावः न विद्यते, तत्त्वदर्शिभिः अनयोः उभयोः अपि अन्तः दृष्टः।।

**अनुवाद**- असत् की सत्ता नहीं होती है और सत् का अभाव नहीं होता है। तत्त्वज्ञानियों के द्वारा इन दोनों के ही वास्तविक तत्त्व को देख लिया गया है।

**अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।**
**विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।17।।**

**अन्वयः**- तु येन इदं सर्वम् ततम्, तत् अविनाशि विद्धि। अव्ययस्य अस्य विनाशं कर्तुं कश्चित् न अर्हति।

**अनुवाद**- किन्तु (हे अर्जुन!) जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण (संसार) व्याप्त किया हुआ है, उसे (तुम) अविनाशी समझो। नष्ट न होने वाले इसका विनाश करने में कोई (भी) समर्थ नहीं है।

**अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।**
**अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।18।।**

**अन्वयः**- अनाशिनः, अप्रमेयस्य, नित्यस्य शरीरिणः इमे देहाः अन्तवन्तः उक्ताः। तस्मात् (हे) भारत! युध्यस्व।।

**अनुवाद**- अविनाशी, अप्रमेय, नित्य आत्मा के ये शरीर (ही) नाशवान कहे गए हैं। इसलिए (हे) अर्जुन! (तुम) युद्ध करो।

**य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।**
**उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।19।।**

**अन्वयः**- यः एनं हन्तारं वेत्ति च यः एनं हतं मन्यते, तौ उभौ न विजानीतः (यतः) अयं न हन्ति च न हन्यते।।

**अनुवाद**- जो इसे मारने वाला जानता है और जो इसे मरा हुआ मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते हैं (क्योंकि) यह (आत्मा) न तो मरती है और न ही मारी जाती है।

**न जायते म्रियते वा कदाचि -**
**न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।**
**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,**
**न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।20।।**

**अन्वयः**- अयम् (आत्मा) कदाचित् न जायते वा न म्रियते वा (अयम्) भूत्वा, भूयः भविता न। (वस्तुतः) अजः, नित्यः, शाश्वतः (च) पुराणः अयम् (आत्मा) शरीरे हन्यमाने (अपि) न हन्यते।।

**अनुवाद**- यह (आत्मा) कभी उत्पन्न नहीं होती है और न मरती है अथवा (यह एक बार) होकर फिर होने वाली (भी) नहीं है। जन्म न लेने वाली, हमेशा रहने वाली, नित्य (और) पुरातन यह (आत्मा) शरीर के मारे जाने पर (भी) नहीं मारी जाती है।

टिप्पणी

**वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।**
**कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥21॥**

**अन्वयः**- (हे) पार्थ! यः एनम् अविनाशिनं नित्यम् अजम् अव्ययम् वेद, सः पुरुषः कथं कम् हन्ति (वा कथम्) कम् घातयति।

**अनुवाद**- हे पृथापुत्र अर्जुन! जो इस आत्मा को अविनाशी, नित्य (एवं) अजन्मी, कभी व्यय न होने वाली जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मारता है? (अथवा कैसे) किसको मरवाता है?

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,**
**नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-**
**न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥22॥**

**अन्वयः**- यथा (कोऽपि) नरः जीर्णानि वासांसि विहाय अपराणि नवानि (वस्त्राणि) गृह्णाति, तथा (एव) देही जीर्णानि शरीराणि विहाय अन्यानि नवानि (शरीराणि) संयाति।

**अनुवाद**- जिस प्रकार (कोई भी) मनुष्य फटे पुराने वस्त्रों को छोड़कर दूसरे नये (वस्त्र) ग्रहण कर लेता है, वैसे (ही) आत्मा जीर्ण शरीरों को छोड़कर दूसरे नये (शरीरों) को प्राप्त कर लेती है।

**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
**न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥23॥**

**अन्वयः**- एनम् न शस्त्राणि छिन्दन्ति, पावकः एनम् न दहति न आपः एनम् क्लेदयन्ति (च) मारुतः एनम् न शोषयति॥

**अनुवाद**- इस (आत्मा) को शस्त्र काट नहीं सकते हैं, अग्नि इसे जला नहीं सकती, जल इसे गीला नहीं कर सकता तथा वायु इसको सुखा नहीं सकती है।

**अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।**
**नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥24॥**

**अन्वयः**- (अतः) अच्छेद्यः अयम् (आत्मा) अदाह्यः अयम्, अक्लेद्यः अयम् च अशोष्यः अयम् एव नित्यः, सर्वगतः, अचलः, स्थाणुः च सनातनः (वर्तते)॥

**अनुवाद**- (इसलिए) न काटी जाने वाली यह आत्मा, न जलाई जा सकने वाली यह, न भिगोई जा सकने वाली यह, और न सुखाई जा सकने वाली यह (आत्मा) वस्तुतः नित्य, सब ओर गति वाली, अचल, स्थित रहने वाली एवं सनातन ही है।

**अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।**
**तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥25॥**

**अन्वयः**- अयम् अव्यक्तः अयम् अचिन्त्यः, अयम् अविकार्यः उच्यते। तस्मात् एनम् एवम् विदित्वा (त्वम्) अनुशोचितुम् न अर्हसि।

टिप्पणी

**अनुवाद**- यह अव्यक्त, यह अचिन्त्य, यह अविकार्य कही जाती है। इसलिए इसे इस प्रकार जानकर (तुम) शोक करने के योग्य नहीं हो।

**अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।**
**तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि॥26॥**

**अन्वयः**- अथ च त्वम् एनम् नित्यजातम् वा नित्यम् मृतम् मन्यसे, तथापि (हे) महाबाहो! (त्वम्) शोचितुम् न अर्हसि॥

**अनुवाद**- इसके अतिरिक्त यदि तुम इसे हमेशा उत्पन्न हुई अथवा हमेशा मरने वाली मानते हो तो भी हे लम्बी भुजाओं वाले अर्जुन! तुम शोक करने योग्य नहीं हो।

**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**
**तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥27॥**

**अन्वयः**- हि जातस्य मृत्युः ध्रुवः च मृतस्य जन्म ध्रुवम्। तस्मात् (अस्मिन्) अपरिहार्ये अर्थे (त्वम्) शोचितुम् न अर्हसि॥

**अनुवाद**- चूँकि जन्म लेने वाले (शरीर) की मृत्यु निश्चित (होती है) और मरने वाले (जीवात्मा) का जन्म भी निश्चित (होता है), इसलिए (इस) अपरिहार्य विषय में (भी) तुम शोक करने योग्य नहीं हो।

**अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।**
**अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥28॥**

**अन्वय** - (हे) भारत! अव्यक्त-आदीनि (च) अव्यक्त-निधनानि भूतानि व्यक्त-मध्यानि एव। (तस्मात्) तत्र का परिदेवना?॥

**अनुवाद**- हे अर्जुन! जन्म से पूर्व अव्यक्त अवस्था वाले और मृत्यु के पश्चात् अमूर्त रहने वाले प्राणी (केवल) बीच में ही व्यक्त (मूर्त) रहते हैं। इसीलिए इस विषय में कैसा शोक?

**आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-**
**माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।**
**आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति,**
**श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥29॥**

**अन्वयः**- कश्चित् एनम् आश्चर्यवत् पश्यति च तथा एव अन्य आश्चर्यवत् वदति च अन्यः (कश्चित्) एनम् आश्चर्यवत् शृणोति च एव कश्चित् श्रुत्वा अपि एनम् न वेद।

**अनुवाद**- कोई इस (आत्मा) को आश्चर्य के समान देखता है एवं उसी प्रकार दूसरा (व्यक्ति) आश्चर्य के साथ कहता है तथा अन्य (कोई) इसको आश्चर्य युक्त होकर सुनता है, साथ ही कोई सुनकर भी इस आत्मतत्त्व को जान नहीं पाता है।

**देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।**
**तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥30॥**

टिप्पणी

**अन्वयः**- (हे) भारत! सर्वस्य देहे अयम् देही नित्यम्, अवध्यः, तस्मात् त्वम् सर्वाणि भूतानि शोचितुम् न अर्हसि।।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! सभी प्राणियों के शरीर में यह आत्मा हमेशा ही न मारी जा सकने योग्य है, इसलिए तुम सभी प्राणियों के विषय में शोक करने योग्य नहीं हो।

**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।**
**धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।।31।।**

**अन्वयः**- च स्वधर्मम् अपि अवेक्ष्य (त्वम्) विकम्पितुम् न अर्हसि। (यतः) क्षत्रियस्य (कृते) धर्म्यात् युद्धात् हि अन्यत् (किमपि) श्रेयः न विद्यते।

**अनुवाद**- और अपने (क्षत्रिय) धर्म को भी देखकर तुझे घबराने का अधिकार नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध से बढ़कर तो और कुछ भी नहीं है।

**यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।**
**सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।32।।**

**अन्वयः**- पार्थ! यदृच्छया उपपन्नम् च अपावृतं स्वर्गद्वारम् ईदृशं युद्धं सुखिनः क्षत्रियाः (एव) लभन्ते।

**अनुवाद**- हे पृथापुत्र (अर्जुन) अपने आप समीप आए हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार के समान ऐसे युद्ध को सौभाग्यशाली क्षत्रिय ही प्राप्त करते हैं।

**अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।**
**ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।33।।**

**अन्वयः**- अथ चेत् त्वम् इमम् धर्म्यम् संग्रामम् न करिष्यसि, ततः स्वधर्मम् च कीर्तिम् हित्वा पापम् अवाप्स्यसि।।

**अनुवाद**- इसके अतिरिक्त यदि तुम इस धर्म-युद्ध को नहीं करोगे, तो अपने धर्म एवं कीर्ति को नष्ट करके पाप को प्राप्त करोगे।

**अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।**
**सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।34।।**

**अन्वयः**- च भूतानि ते अव्ययाम् अकीर्तिम् अपि कथयिष्यन्ति च सम्भावितस्य (पुरुषस्य) अकीर्तिः मरणात् (अपि) अतिरिच्यते।।

**अनुवाद**- और सभी लोग तुम्हारे कभी समाप्त न होने वाले अपयश को भी कहेंगे एवं सम्मानित (व्यक्ति) का अपयश मृत्यु से (भी) बढ़कर कष्टकारी होता है।

**भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।**
**येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।35।।**

**अन्वयः**- च येषाम् त्वम् बहुमतः (आसीः) ते महारथाः त्वां भयात् रणात् उपरतम् मंस्यन्ते। (अतः एव बहुमतः) भूत्वा लाघवम् यास्यसि।

**अनुवाद**- और जिनके तुम (कभी समादरणीय रहे हो वे) महारथी तुम्हें भय के कारण युद्ध से विरत हुआ मानेंगे (इसलिए इस प्रकार) सम्माननीय होकर (भी तुम) क्षुद्रता को प्राप्त हो जाओगे।

टिप्पणी

**अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।**
**निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्॥36॥**

**अन्वयः**- च तव सामर्थ्यम् निन्दन्तः तव अहिताः बहून् अवाच्यवादान् वदिष्यन्ति, ततः दुःखतरम् नु किम्।

**अनुवाद**- इसके अतिरिक्त तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए, तुम्हारे शत्रु बहुत से न कहने योग्य वचनों को कहेंगे, तो भला इससे बढ़कर दुःखद बात क्या होगी?

**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।**
**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥37॥**

**अन्वयः**- वा हतः स्वर्गं प्राप्स्यसि, वा जित्वा महीम् भोक्ष्यसे। तस्मात् (हे) कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः (भूत्वा) उत्तिष्ठ॥

**अनुवाद**- या तो मारे जाने पर (तुम) स्वर्ग प्राप्त करोगे अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगोगे। इसलिए हे कौन्तेय! युद्ध के लिए निश्चय करके उठो।

**सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**
**ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥38॥**

**अन्वयः**- सुख-दुःखे, लाभ-अलाभौ, जय-अजयौ समे कृत्वा, ततः युद्धाय युज्यस्व, (एवम् त्वम्) पापम् न अवाप्स्यसि॥

**अनुवाद**- सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझने के बाद ही युद्ध के लिए संलग्न हो जाओ (इस प्रकार तुम) पाप को प्राप्त नहीं करोगे।

**एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।**
**बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥39॥**

**अन्वयः**- (हे) पार्थ। एषा बुद्धि ते सांङ्ख्ये अभिहिता, तु इमाम् योगे शृणु, यया बुद्ध्या युक्तः (त्वम्) कर्मबन्धम् प्रहास्यसि॥

**अनुवाद**- हे अर्जुन! यह बुद्धि तुम्हारे लिए सांख्य के विषय में कही गई, किन्तु अब इसी को तुम कर्मयोग के विषय में सुनो- जिस बुद्धि से युक्त हुए (तुम) कर्मबन्धन से मुक्त हो जाओगे।

**नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।**
**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥40॥**

**अन्वयः**- इह अभिक्रमनाशः न अस्ति, प्रत्यवायः न विद्यते। अस्य धर्मस्य स्वल्पम् अपि महतः भयात् त्रायते॥

**अनुवाद**- इस (निष्कामकर्मयोग) में आरम्भ का नाश नहीं होता है (तथा) विपरीत फलरूप दोष भी नहीं है। इस (निष्कामकर्मयोग रूप) धर्म का थोड़ा-सा भी (साधन) जन्म-मृत्यु रूपी महान् भय से रक्षा कर देता है।

टिप्पणी

**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।**
**बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।41।।**

**अन्वयः**- (हे) कुरुनन्दन! इह व्यवसायात्मिका बुद्धिः हि एका च अव्यवसायिनाम् बुद्धयः बहुशाखाः अनन्ताः (भवन्ति)।।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! इस (निष्कामकर्मयोग) में निश्चयात्मिका बुद्धि वस्तुतः एक ही होती है और अनिश्चयात्मक ज्ञान वालों (सकाम जनों)की बुद्धियाँ तो बहुत भेदों वाली होती हुई, अनन्त होती हैं।

**यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।**
**वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।42।।**

**अन्वयः**- (हे) पार्थ! वेदवादः, अन्यत् न अस्ति, इति वादिनः अविपश्चितः, याम् इमाम् पुष्पिताम् वाचम् प्रवदन्ति।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! (कर्मफल की प्रशंसा करने वाले) वेद के सिद्धान्तों में आसक्त, (जो कहते हैं कि वेदों से) इससे अलग कुछ भी नहीं है, इस प्रकार कहने वाले अज्ञानी लोग, जिस, इस बाह्य शोभा से युक्त वाणी का कथन करते हैं।

**कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।**
**क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।43।।**

**अन्वयः**- कामात्मानः, स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति क्रियाविशेषबहुलाम्-

**अनुवाद**- भोगों में अत्यधिक आसक्ति वाली, स्वर्गप्राप्ति की इच्छा वाली, जन्म रूप कर्मफलों को प्रदान करने वाली, भोग एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु क्रियाविशेष की बहुलता से सम्पन्न, (बाह्यशोभा सम्पन्न वाणी को कहते हैं)।

**भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।**
**व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।44।।**

**अन्वयः**- तया अपहृतचेतसाम् भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् (जनानाम्) समाधौ व्यवसायात्मिका बुद्धिः न विधीयते।

**अनुवादः** उस (वाणी) के द्वारा आकृष्ट हुए मन वाले, भोग तथा ऐश्वर्यों में अत्यधिक आसक्त (लोगों के) अन्तःकरण में तत्त्व के प्रति स्थिर निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती है।

**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।**
**निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।45।।**

**अन्वयः**- (हे) अर्जुन! वेदाः त्रैगुण्यविषयाः (सन्ति, किन्तु त्वम्) निस्त्रैगुण्यः, निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः च निर्योगक्षेमः आत्मवान् भव।।

टिप्पणी

**अनुवाद**- हे अर्जुन! वेद (सत्त्व-रजस् एवं तसम्) तीनों गुणों के कार्यरूप संसार का प्रतिपादन करने वाले हैं, (किन्तु तुम) इन त्रिगुणों के विषयों से रहित, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित, नित्य परमात्मतत्त्व में स्थित एवं योग (अप्राप्त की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) के प्रति उदासीन, आत्मपरायण बनो।

**यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।**
**तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।46।।**

**अन्वयः**- सर्वतः सम्प्लुतोदके उदपाने यावान् अर्थः विजानतः ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु तावान् (अर्थः)।।

**अनुवाद**- सब ओर से भली प्रकार भरे हुए जलाशय (के मिलने) पर छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रहता है, (उसी प्रकार) ब्रह्म को अच्छी प्रकार जानने वाले ब्रह्मज्ञाता का भी सब वेदों में उतना ही (प्रयोजन रह जाता है)।

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।47।।**

**अन्वयः**- ते कर्मणि एव अधिकारः, फलेषु कदाचन मा। (अतः) (त्वम्) कर्मफलहेतुः मा भूः, अकर्मणि (अपि) ते सङ्गः मा अस्तु।।

**अनुवाद**- (हे अर्जुन!) तुम्हारा कर्म में ही अधिकार है, फलों में कभी नहीं। (इसलिए तुम) कर्मफल के हेतु मत बनो, कर्म न करने में (भी) तुम्हारी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

**योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।**
**सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।48।।**

**अन्वयः**- (हे) धनञ्जय! (इत्यर्थम्) सङ्गम् त्यक्त्वा, सिद्धयसिद्धयोः समः भूत्वा, योगस्थः कर्माणि कुरु। (यतो हि) समत्वम् योगः उच्यते।।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! (इसलिए) आसक्ति का परित्याग करके, सफलता एवं असफलता में समान होकर, योग में स्थित होते हुए कर्मों को करो, (क्योंकि) समभाव ही योग कहा जाता है।

**दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।**
**बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।49।।**

**अन्वयः**- (हे) धनञ्जय! बुद्धियोगात् कर्म दूरेण अवरम्, (अतः त्वम्) बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ, हि फलहेतवः कृपणाः (भवन्ति)।।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! बुद्धियोग की अपेक्षा सकाम कर्म अत्यधिक तुच्छ होता है। (इसलिए तुम) बुद्धियोग की शरण की इच्छा करो, क्योंकि फल की इच्छा करने वाले मनुष्य अत्यन्त दीन होते हैं।

टिप्पणी

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।**
**तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।50।।**

**अन्वयः**- बुद्धियुक्तः सुकृतदुष्कृते उभे (एव) इह जहाति, तस्मात् योगाय युज्यस्व। कर्मसु कौशलम् योगः।।

**अनुवाद**- निष्कामकर्म की बुद्धि से युक्त (व्यक्ति) पुण्य और पाप दोनों को (ही) इस संसार में छोड़ देता है। इसलिए (तुम); (समत्व बुद्धि वाले) योग में लग जाओ (क्योंकि) कर्मों में कुशलता ही योग है।

**कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।**
**जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।51।।**

**अन्वयः**- हि बुद्धियुक्ताः मनीषिणः कर्मजम् फलम् त्यक्त्वा, जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, अनामयम् पदम् गच्छन्ति।।

**अनुवाद**- क्योंकि समत्व बुद्धि से युक्त ज्ञानी लोग कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर, जन्म के बन्धन से मुक्त हुए, दुःखरहित शान्तियुक्त परमपद मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

**यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।**
**तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।52।।**

**अन्वय** - (हे अर्जुन!) यदा ते बुद्धिः मोहकलिलम् व्यतितरिष्यति, तदा श्रोतव्यस्य च श्रुतस्य निर्वेदम् गन्तासि।।

**अनुवाद**- (हे अर्जुन!) जब तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदल को पूर्णरूप से पार कर लेगी, तब (तू) सुनने योग्य एवं सुने हुए (भोगों) के प्रति वैराग्यभाव को प्राप्त हो जाएगा।

**श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।**
**समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।53।**

**अन्वयः**- (हे अर्जुन!) यदा श्रुतिविप्रतिपन्ना ते बुद्धिः समाधौ अचला (च) निश्चला स्थास्यति तदा (एवम् त्वम्) योगम् अवाप्स्यसि।।

**अनुवाद**- (हे अर्जुन!) जब अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनकर विचलित हुई तुम्हारी बुद्धि समाधि में निश्चल एवं स्थिर हो जाएगी, तभी (तुम समत्व) योग को अर्थात् तत्त्व ज्ञान को प्राप्त कर लोगे।

**अर्जुन उवाच-**

**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।**
**स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।54।।**

**अन्वय** - (हे) केशव! समाधिस्थस्य स्थितप्रज्ञस्य का भाषा? स्थितधीः किम् प्रभाषेत? (सः) किम् आसीत च किम् व्रजेत?

टिप्पणी

**अनुवाद**- अर्जुन बोले-

हे कृष्ण! समाधि में स्थित स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य का क्या लक्षण है? स्थिर बुद्धि वाला कैसे बोलता है? (वह) कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

**श्रीभगवानुवाच-**

**प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।**
**आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥55॥**

**अन्वयः**- (हे) पार्थ! यदा (जनः) मनोगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति, आत्मना आत्मनि एव तुष्टः (सः जनः) तदा स्थितप्रज्ञः उच्यते।

**अनुवाद**- श्रीभगवान् बोले-

हे अर्जुन! जब (व्यक्ति) मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का परित्याग कर देता है, आत्मा द्वारा आत्मा में ही सन्तुष्ट हुआ (वह व्यक्ति) तब स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

**दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।**
**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥56॥**

**अन्वयः**- (हे अर्जुन!) दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः (च) वीतराग-भय-क्रोधः मुनिः स्थितधीः उच्यते॥

**अनुवाद**- (हे अर्जुन!) दुःखों में अक्षुब्ध मन वाला, सुखों में समाप्त हो चुकी स्पृहा वाला एवं राग, भय और क्रोध से पूर्णतया रहित मुनि ही स्थितबुद्धि कहलाता है।

**यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।**
**नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥57॥**

**अन्वयः**- सर्वत्र अनभिस्नेहः यः (जनः) शुभ-अशुभम् तत् तत् प्राप्य न अभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

**अनुवाद**- सभी विषयों में आसक्तिरहित हुआ जो (व्यक्ति) शुभ-अशुभ, उस-उस वस्तु को प्राप्त करके, न प्रसन्न होता है (और) न ही द्वेष करता है। उसकी बुद्धि स्थिर कहलाती है।

**यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥58॥**

**अन्वयः**- च कूर्मः अङ्गानि इव यदा अयम् सर्वशः इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः संहरते, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता (भवति)॥

**अनुवाद**- इसके अतिरिक्त जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को (आत्मरक्षा के लिए) चारों ओर से समेट लेता है, उसी प्रकार जब (व्यक्ति) सब ओर से सभी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अपने वश में कर लेता है। उस समय उसकी बुद्धि स्थिर कहलाती है।

**टिप्पणी**

**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**
**रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥59॥**

**अन्वयः**- निराहारस्य देहिनः रसवर्जम् विषयाः विनिवर्तन्ते। अस्य रसः अपि परम् दृष्ट्वा निवर्तते।।

**अनुवाद**- इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले व्यक्ति के राग को छोड़कर (अन्य) विषय (तो) निवृत्त हो जाते हैं, (किन्तु) इस (स्थितप्रज्ञ) की तो आसक्ति भी परमात्मा को देखकर निवृत्त हो जाती है।

**यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।**
**इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥60॥**

**अन्वय** - (हे) कौन्तेय! हि यततः विपश्चितः पुरुषस्य अपि मनः प्रमाथीनि इन्द्रियाणि प्रसभम् हरन्ति।।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! वस्तुतः प्रयत्न करते हुए बुद्धिमान् व्यक्ति के भी मन को, विक्षुब्ध करने वाली प्रबल इन्द्रियाँ बलपूर्वक हरण कर लेती है।

**तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।**
**वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥61॥**

**अन्वयः**- तानि सर्वाणि संयम्य युक्तः मत्परः आसीत, हि यस्य इन्द्रियाणि वशे तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

**अनुवाद**- योगी उन सभी (इन्द्रियों) को भली भांति नियन्त्रित करके, समाहितचित्त हुआ मुझमें ध्यान लगाए; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।

**ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।**
**सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥62॥**

**अन्वयः**- विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु सङ्गः उपजायते, सङ्गात् कामः संजायते, कामात् क्रोधः अभिजायते।।

**अनुवाद**- विषयों का चिन्तन करते हुए पुरुष की उनमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है, आसक्ति से कामना पैदा होती है तथा कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

**क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।**
**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥63॥**

**अन्वयः**- क्रोधात् संमोहः भवति, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

**अनुवाद**- क्रोध से अविवेक (उत्पन्न) होता है, अविवेक से स्मृति का नाश (तथा) स्मृतिनाश से बुद्धि का नाश (एवं) बुद्धि के विनाश से (व्यक्ति) ही नष्ट हो जाता है।

टिप्पणी

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।**
**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥64॥**

**अन्वयः**- तु विधेयात्मा रागद्वेषवियुक्तैः आत्मवश्यैः इन्द्रियैः विषयान् चरन् प्रसादम् अधिगच्छति।।

**अनुवाद**- किन्तु स्वाधीनचित्त वाला (व्यक्ति) रागद्वेष से रहित, अपने वश में की हुई, इन्द्रियों के द्वारा विषयों को भोगता हुआ प्रसन्नता को प्राप्त करता है।

**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**
**प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥65॥**

**अन्वयः**- प्रसादे अस्य सर्वदुःखानाम् हानिः उपजायते, (तदा) प्रसन्नचेतसः (अस्य) बुद्धिः आशु हि पर्यवतिष्ठते।

**अनुवाद**- प्रसन्न होने पर इस व्यक्ति के सभी दुःखों की समाप्ति हो जाती है और तब प्रसन्न मन वाले की (इसकी) बुद्धि शीघ्र ही सब प्रकार से स्थिर हो जाती है।

**नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।**
**न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥66॥**

**अन्वयः**- अयुक्तस्य बुद्धिः न अस्ति, अयुक्तस्य भावना (अपि) न अस्ति, च अभावयतः शान्तिः न अस्ति। अतः अशान्तस्य सुखम् कुतः।

**अनुवाद**- समत्वयोग से रहित (व्यक्ति) में (निश्चयात्मिका) बुद्धि नहीं होती है, अजितेन्द्रिय (व्यक्ति) के द्वारा परमात्मचिन्तन (भी) नहीं हो पाता है एवं परमात्मचिन्तन न करने वाले को शान्ति (प्राप्त) नहीं होती है। इसलिए अशान्त को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।**
**तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥67॥**

**अन्वयः**- हि यत् मनः, चरताम् इन्द्रियाणाम् अनु विधीयते, तत् अस्य (जनस्य) प्रज्ञाम् वायुः अम्भसि नावम् इव हरति।।

**अनुवाद**- वस्तुतः जो मन (सांसारिक विषयों में) विचरण करती हुई इन्द्रियों का अनुसरण करता है, वह (अनुसरण) इस (व्यक्ति) की बुद्धि को उसी प्रकार हर लेता है, जैसे जल में स्थित नाव को वायु हरण कर लेती है।

**तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥68॥**

**अन्वयः**- तस्मात् (हे) महाबाहो! यस्य (जनस्य) इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः सर्वशः निगृहीतानि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

**अनुवाद**- इसलिए हे विशाल भुजाओं वाले! जिस (व्यक्ति) की इन्द्रियाँ, सब प्रकार के विषयों से नियन्त्रित कर ली गई हैं, उसी (व्यक्ति) की बुद्धि स्थिर (होती है)।

टिप्पणी

**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**
**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥69॥**

**अन्वयः**- सर्वभूतानाम् या निशा (अस्ति) तस्याम् संयमी जागर्ति, यस्यां भूतानि जाग्रति पश्यतः मुनेः सा, निशा (भवति)।

**अनुवाद**- सभी प्रणियों के लिए जो रात्रि (है), उसमें जितेन्द्रिय (व्यक्ति) जागता रहता है और जिसमें सभी प्राणी जागते हैं, आत्मतत्त्व को देखते हुए तत्त्वज्ञानी के लिए वह रात्रि (होती है।)

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं,**
**समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।**
**तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे**
**स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥70॥**

**अन्वयः**- यद्वत् आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठं समुद्रम् आपः प्रविशन्ति, तद्वत् यम् (पुरुषम्) सर्वे कामाः प्रविशन्ति, सः (पुरुषः) शान्तिम्, आप्नोति, कामकामी न॥

**अनुवाद**- जिस प्रकार सब ओर से परिपूर्ण, अपनी मर्यादा को न छोड़ने वाले समुद्र में (नदियों के) जल प्रवेश कर जाते हैं। उसी प्रकार जिस (पुरुष) में सभी कामनाएँ समा जाती हैं, वह (व्यक्ति) परम शान्ति को प्राप्त होता है, कामनाओं को चाहने वाला नहीं। (अर्थात ऐसा व्यक्ति कभी भी शान्ति को प्राप्त नहीं कर पाता)।

**विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।**
**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥71॥**

**अन्वयः**- यः पुमान् सर्वान् कामान् विहाय निर्ममः निरहंकारः निःस्पृहः चरति, सः शान्तिम् अधिगच्छति॥

**अनुवाद**- जो व्यक्ति सभी कामनाओं का परित्याग करके ममतारहित, अहंकाररहित और इच्छा रहित होकर व्यवहार करता है (अर्थात् संसार के भोगों को भोगता है), वह (मोक्षरूप) शान्ति को प्राप्त करता है।

**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**
**स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥72॥**

**अन्व्य :** (हे) पार्थ! एषा ब्राह्मी स्थितिः, एनाम् प्राप्य (जनः) विमुह्यति न। अस्याम् स्थित्वा अन्तकाले ब्रह्मनिर्वाणम् अपि ऋच्छति।

**अनुवाद**- हे अर्जुन! यह ब्रह्मभाव की स्थिति है, इसे प्राप्त करके (व्यक्ति) मोह को प्राप्त नहीं होता है। इसमें स्थित रहकर अन्तिम समय में भी ब्रह्मनिर्वाण (मोक्षपद) को प्राप्त करता है।

टिप्पणी

### अपनी प्रगति जांचिए

5. 'हे अर्जुन! तुम्हे' इस विकट परिस्थिति में स्वर्ग प्रदान न करने वाला, अपयश प्रदान करने वाला, यह मोह कहां से प्राप्त हो गया?'– यह किसका कथन है?

   (क) भीम का (ख) श्रीभगवान का

   (ग) द्रोणाचार्य का (घ) सहदेव का

6. 'हे मधुसूदन! मैं भीष्म और द्रोण के प्रति बाणों से कैसे युद्ध करूंगा?'– यह किसने कहा था?

   (क) भीम ने (ख) नकुल ने

   (ग) अर्जुन ने (घ) शकुनि ने

## 1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)

## 1.6 सारांश

महाभारत के भीष्मपर्व में से लिए गए 700 श्लोकों का लघुकाय ग्रंथ गीता अथवा श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से जाना जाता है। इसे गीतोपनिषद् नाम से भी अभीहित किया जाता है।

गीतोपनिषद् के 700 श्लोक अठारह अध्यायों में विभक्त हैं। 700 श्लोकों में से पहला और एकमात्र श्लोक धृतराष्ट्र के द्वारा उच्चरित है। संजय ने कुल 27 ½ श्लोक कहे हैं। शेष श्लोक अर्जुन और श्रीकृष्ण ने कहे हैं।

कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों के मध्य महाभारत का युद्ध प्रारंभ होने वाला था। दोनों सेनाएँ आमने सामने डट चुकी थीं। पाण्डवों के सेनानायक अर्जुन के मन में सहज यह विचार आया कि वह एक बार उन प्रमुख योद्धाओं की पहचान कर ले, जिनके साथ अन्तिम युद्ध के लिए वह रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ है। वस्तुतः दोनों पक्षों की ओर से शंखनाद हो चुकने के बाद उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था, यह कहकर उसके सखा, सारथी कृष्ण उसे संभवतः रोक भी सकते थे, परंतु श्रीकृष्ण ने उस समय ऐसा नहीं किया।

टिप्पणी

सामने की सेना में अपने पूज्य पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण तथा अनेक निकट संबंधियों को देखकर अर्जुन मोहग्रस्त व विषादपूर्ण हो गया। इन पितामह आदि को खोकर राज्य पा भी लिया, तो वह किस काम का? ऐसी विषादग्रस्त अवस्था में अर्जुन युद्धक्षेत्र में शोकग्रस्त होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। युद्धक्षेत्र में ऐसी कायरतापूर्ण स्थिति उसे नपुंसक सिद्ध कर देगी, ऐसा संकेत करते हुए श्रीकृष्ण ने जब अर्जुन को ललकारा तब अर्जुन की चेतना कुछ जागृत हुई। ऐसी अवस्था में वह श्रेष्ठ नीति पारंगत श्रीकृष्ण की शरण को प्राप्त हुआ।

गीता की विषय-वस्तु के रूप में श्रीकृष्ण अर्जुन का संवाद जीवन की समस्त गुत्थियों को सुलझा देने वाला गीता का उपदेश है। अठारह अध्यायों के अठारह योग (अर्जुन विषाद योग से लेकर मोक्ष-संन्यास योग तक) जो ज्ञान की गंगा प्रवाहित हुई है, वह संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए कल्याणकारिणी है।

गीता की संरचना कुल अठारह अध्यायों में विभक्त है। गीता के पहले अध्याय का नाम 'अर्जुनविषादयोग' है। इस अध्याय में उभय पक्ष के प्रमुख सेनानायकों, दोनों पक्षों द्वारा शंख ध्वनि, अर्जुन द्वारा शत्रु सेना के निरीक्षण व युद्ध के संभावित दुष्परिणामों का वर्णन होने से अर्जुन को विषाद की प्राप्ति होने के कारण ही यह अर्जुन विषाद योग कहलाता है।

दूसरे अध्याय का नाम 'सांख्य योग' है। इसमें अर्जुन द्वारा युद्ध न करने के निश्चय को कृष्ण की ललकार, सांख्य शास्त्रानुसार आत्मा की निर्लिप्तता, अवध्यता, शरीर की दशाओं के परिवर्तन में भी आत्मा का विकाररहित रहना, क्षात्रधर्म व स्थितप्रज्ञता के लक्षण आदि विषयों का वर्णन हुआ है।

तीसरे अध्याय 'कर्मयोग' में, कर्म की आवश्यकता व उसका अनासक्त भाव से निर्वाह, काम-क्रोधादि से बचने के लिए उनके क्रम ज्ञान के विषय को स्पष्ट किया गया है।

'ज्ञानकर्मसंन्यासयोग' नामक चौथे अध्याय में ईश्वर के सगुण साकार रूप के उद्भव के कारण, योगस्थ पुरुषों के आचार-व्यवहार, विभिन्न प्रकार के सरल (द्रव्यरहित) किंतु महान फलदायक यज्ञों व ज्ञान के महत्व का वर्णन है।

पांचवां अध्याय है, 'कर्मसंन्यासयोग'। इसमें समस्त कर्मों से मुक्ति के लिए भक्तिसहित ध्यान योग को बताया गया है।

छठे अध्याय 'आत्मसंयम योग' में चंचल मन को वश में करने के उपाय तथा योगभ्रष्ट की नियति को स्पष्ट किया गया है।

सातवें अध्याय 'ज्ञान-विज्ञान योग' में भगवान के प्रभाव व स्वरूप को न जानने वालों को होने वाली हानि से परिचित कराया गया है तथा जानने वालों के परम लाभ का भी वर्णन हुआ है।

टिप्पणी

'अक्षरब्रह्मयोग' गीता का आठवाँ अध्याय है। भक्तियोग, सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन में योगी जनों की गति के वर्णन इसमें स्पष्ट हैं।

नवें अध्याय 'राजविद्या राजगुह्ययोग' में जगत की उत्पत्ति व उसमें ईश्वर की सर्वव्यापकता के स्वरूप का वर्णन करने के साथ-साथ, धर्मपथ से भटकनेवालों की दुर्गति का भी वर्णन हुआ है। अनन्य भक्ति पर आश्रितों के योगक्षेम का परमात्मा द्वारा निर्वाह भी इसमें बताया गया है।

दसवां अध्याय 'विभूति योग' है। इसमें भगवान के उपास्य विभूति स्वरूपों का वर्णन है।

ग्यारहवें अध्याय 'विश्वरूपदर्शनयोग' में परमात्मा के कालस्वरूप का अर्जुन को साक्षात्कार होने का वर्णन है।

'भक्ति योग' नामक बारहवें अध्याय में निराकार व साकार भक्ति के प्रभाव का वर्णन है।

तेरहवें अध्याय 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग' में शरीर की क्षेत्रता और उसके क्षेत्रज्ञ परमात्मा से अनुप्राणित होने के माध्यम से प्रकृति में चित् तत्व के महत्व का ज्ञान प्राप्त करना वर्णित है।

चौदहवें अध्याय 'गुणत्रयविभाग योग' में सम्पूर्ण सृष्टि में सत्व, रज व तम इन तीन गुणों की ओतप्रोतता का वर्णन हुआ है।

पन्द्रहवें अध्याय 'पुरुषोत्तम योग' में संसार रूपी वृक्ष व उसके उच्छेदन की आवश्यकता व विधि का वर्णन विशेष रूप से वर्णित हुआ है।

सोलहवें अध्याय 'दैवासुर-सम्पद्-विभाग योग' में- दैवी गुणों व आसुरी प्रवृत्तियों का निवास जिनमें रहता है, उनके प्रति परमात्मा के व्यवहार का उल्लेख है।

सत्रहवें अध्याय 'श्रद्धात्रय विभाग योग' में सात्विक, राजसी और तामसी श्रद्धा वालों के उपास्यों व उनके फल का वर्णन हुआ है।

अन्तिम अठारहवें अध्याय 'मोक्षसंन्यासयोग' में कार्य की सिद्धि के पांच कारणों को बताते हुए अकर्ताभाव को धारण करने की विधि व फलसहित वर्णाश्रम धर्म के वर्णन के बाद फलश्रुति का भी प्रसंग है।

अध्यात्म क्षेत्र हो अथवा सांसारिक व्यवहार का क्षेत्र, संसार के विभिन्न भागों से अनेक विशिष्ट व सामान्य जनों को गीता से विशेष लाभ मिला है। वस्तुतः इसका महत्व हर उस व्यक्ति के लिए है जो इसके संपर्क में आकर इसके अर्थ से श्रद्धा सहित परिचित होने लगता है। 'ईश्वरःसर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति' के वचनानुसार गीता के माध्यम से मनुष्य हृदयस्थ परमात्मा से जुड़ जाता है। इसके बाद इसके महत्व से वह स्वयं ही परिचित हो जाता है।

टिप्पणी

## 1.7 मुख्य शब्दावली

- **विवेकोद्बोधन** – विवेक को जगाना
- **उत्थापित** – उठाया गया
- **अहत्वा** – मारे बिना
- **इषुभिः** – तीरों के द्वारा
- **जिजीविषामः** – हम जीवित रहना चाहते हैं
- **उच्छोषणम्** – सुखाने वाला
- **अगतासून्** – जिनके प्राण नहीं गए उन्हें
- **वासांसि** – वस्त्र
- **ऋच्छति** – प्राप्त करता है

## 1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

**लघु–उत्तरीय प्रश्न**

1. भगवद्गीता की विषय–वस्तु को वर्णित कीजिए।
2. कार्पण्यदोष का भाव स्पष्ट कीजिए।
3. वेदवादियों की वाणी गीता में किस प्रकार की बताई गई है।

**दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न**

1. भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के अनुसार आत्मा की विशेषताएं बताइए।
2. गीता के द्वितीय अध्याय के सांख्य योग पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
3. स्थितप्रज्ञ का परिचय लिखिए।

## 1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *Insights Into Bhagvadgita* by Vimla Thakur, Published by: Motilal Banarasidas, Bunglow Road, Jawahar Nagar, Delhi-110007
2. *श्रीमद्भगवद्गीता–शांकरभाष्यसमन्विता,* गीताप्रेस गोरखपुर।

# इकाई 2 मनुस्मृतिनवनीतम्

टिप्पणी

## संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मनुस्मृति–विवेचनम्
2.3 मनुस्मृतिनवनीतम्
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

## 2.0 परिचय

मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति, धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों आदि का बोध सहज ही इस इकाई से प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि संग्रह के शीर्षक से ही स्पष्ट है, ये सभी श्लोक मनुस्मृति का सार उपस्थापित करते हैं। इकाई में श्लोकों के अभिप्राय को स्पष्ट करने के उद्देश्य से आवश्यक स्थलों पर मनुस्मृति पर कुल्लूकभट्ट की टीका से तथा अन्य स्रोतों से भी टिप्पणियों व उद्धरण श्लोक आदि को भी अनुस्यूत किया है।

पुस्तक की प्रस्तुत इकाई में 'मनुस्मृतिनवनीतम्' शीर्षक के अन्तर्गत स्मृतिग्रन्थों में श्रेष्ठ मनुस्मृति के बारह अध्यायों से 326 संगृहीत श्लोक अन्वय, अर्थ तथा व्याख्या सहित उपनिबद्ध हैं।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था के स्वरूप व सिद्धान्त को जान पाएंगे;
- षोडश संस्कारों में से जातकर्म, नामकरण आदि प्रमुख संस्कारों का परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- भारत के भौगोलिक परिचय को जान पाएंगे;
- गुरु शिष्य के सम्बन्ध के शिष्टाचार को समझ पाएंगे;
- आठ प्रकार के विवाह के स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;
- वेद एवं वेदाध्ययन के महत्व को समझ पाएंगे;
- शासन तथा राजा के कर्तव्यों को जान पाएंगे;
- आत्मज्ञान की प्राप्ति द्वारा शरीर प्राप्ति की कृतकृत्यता को भी जान पाएंगे।

## 2.2 मनुस्मृति–विवेचनम्

टिप्पणी

मनुस्मृति विश्वजनीन सनातन धर्म का अति प्राचीन धर्मशास्त्र है। प्राचीन भारतीय समाज प्रायः इसी धर्मशास्त्र की व्यवस्थाओं पर आधारित थे। 'रामराज्य' की जो आदर्श शासन कल्पना की जाती है, उसमें भी मनुस्मृति के सिद्धान्तों का पालन आदर्श रूप से होता था। अतः भारतवर्ष के प्राचीन गौरव और उन्नति में मनुस्मृति का महत्वाधायी योगदान रहा है। इसमें वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था के सिद्धान्त प्राचीन युग से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में जीवित हैं। यद्यपि उन सिद्धान्तों का पालन उतनी कठोरता से करने वाले विरले ही बचे हैं, तथापि इसकी अपेक्षा तो ग्रन्थकार को भी थी। तभी महाराज मनु ने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में लिखा है–

**अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।**
**अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः।।1/85।।**

अतः युगानुसार ह्रास के अनुसार नियमों में भी ह्रास स्वाभाविक ही है।

### मनुस्मृति के रचनाकार मनु

सनातन धर्म में मनु को सृष्टि का प्रथम पुरुष माना गया है। इन्हीं के नाम से मानवीय सृष्टि के सभी लोग मनुष्य अथवा मानव कहे जाते हैं। स्वायम्भुव मनु के क्रम में ही कुल चौदह मनुओं का वर्णन मिलता है। वर्तमान चतुर्युगी के अंतर्गत सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु कहे जाते हैं।

महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश के प्रथम सर्ग में इनका परिचय देते हुए लिखा है–

**वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।**
**आसीन्महीक्षिताम् आद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।1।।**

तथापि मनुस्मृति का रचनाकार स्वायम्भुव मनु को ही माना जाता है। वेदमूलक वर्णाश्रम व्यवस्था जिस तरह सर्वप्राचीन है उसी प्रकार मनुस्मृति के अंतर्गत वर्णित वर्णाश्रम नियमों की प्राचीनता भी इसी सिद्धान्त के अनुरूप है। वैवस्वत मनु के वंश में उत्पन्न महाराज दिलीप के राज्य में भी सारी प्रजा मनु द्वारा प्रतिष्ठापित सिद्धान्तों का पूरी निष्ठा से पालन करती थी। इसका वर्णन महाकवि कालिदास ने निम्नलिखित श्लोक में किया है–

**रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।**
**न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।।**

**(रघुवंशम्–1/17)**

### मनुस्मृति में वर्णित वर्णव्यवस्था

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में विराट् पुरुष अर्थात् परमात्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति के आधार पर चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था को महाराज मनु ने भी प्रतिपादित किया है–

**सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः**

**मुखबाहूरूपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्।।**

**(मनुस्मृतिः–1/87)**

टिप्पणी

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के विभाजन के अनुसार इनके लिए विभिन्न कर्तव्यों का निर्धारण मनुस्मृति में विस्तारपूर्वक हुआ है। वर्ण जन्म के अनुसार है अथवा कर्म के अनुसार इस प्रकार के विवाद का शमन भी मनुस्मृति के अध्ययन से तत्काल हो जाता है। मनु ने मनुष्य के गर्भ में प्रवेश से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का निर्धारण करते हुए कहा है–

**गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।**

**(मनुस्मृतिः–2/36)**

उपनयन संस्कार का विधान केवल प्रथम तीन वर्णों के लिए है, अतः इनकी द्विज संज्ञा भी होती है।

### आश्रम व्यवस्था

पुरुष की पूर्ण आयु सौ वर्ष की कही गई है। इसे विभाजित करते हुए प्रथम पच्चीस वर्ष 'ब्रह्मचर्य आश्रम' के कहे गए हैं। तदनंतर अगले पच्चीस वर्ष की अवधि 'गृहस्थ आश्रम' के लिए है। 51 से 75 वर्ष की आयु 'वानप्रस्थ आश्रम' और तत्पश्चात् शेष आयु का काल 'संन्यास आश्रम' का कहा गया है। इनके लिए जिन–जिन नियमों का परिपालन आवश्यक है, उसकी विस्तृत चर्चा मनुस्मृति में द्रष्टव्य है।

### मनुस्मृति में वर्णित अन्य विषय

'मनुस्मृतिनवनीतम्' के अन्तर्गत जिन अन्य विषयों को प्रमुख स्थान दिया गया है उनमें सर्वप्रथम है, 'सदाचार'। महाभारत में भी कहा गया है–

**आचारः परमो धर्मः**

अर्थात् धर्म की उत्पत्ति सदाचार से ही होती है। इसलिए मनु का कथन है–

**आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।**

**तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।।**

**(मनु. नवनीतम्–11)**

भारतवर्ष के महत्व और इसकी भौगोलिक स्थिति को भी मनु ने विशेष रूप से बताया है। इसे पढ़कर उन लोगों की भ्रान्ति किंवा षड्यन्त्र का समूलोन्मूलन हो जाता है, जो यह कहते हैं कि 'आर्य' एक जाति है और ये यहां के मूल निवासी नहीं थे। प्राचीनतम स्मृति ग्रन्थ के अधोलिखित वचन के समक्ष अन्य समस्त कल्पनाएं स्वतः ही निर्मूल हो जाती हैं।

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।**

**स्वं–स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।**

वस्तुतः 'आर्य' शब्द ऋत (सत्य) धर्म का पालन करने वाले लोगों का चरित्र ही है, जिससे लोगों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और यही कार्य प्राचीन काल से होता आ रहा था। उल्लिखित श्लोक से इस तथ्य को जाना जा सकता है। उच्च सदाचार

टिप्पणी

से सम्पन्न पुरुषों के द्वारा पत्नी, अनुज आदि के 'आर्य' सम्बोधन के यत्र–तत्र अनेक प्रयोगों को प्राचीन ग्रन्थों, संस्कृत नाटकों आदि में भी देखा जा सकता है। अतः सुतरां प्रमाणित है कि 'आर्य' किसी जाति का नाम नहीं है। सदाचार ही आर्य शब्द के मूल में है तथा इसकी शिक्षा के लिए अन्य देशों से लोगों का यहां आना स्वाभाविक रहा होगा।

### नामकरण आदि संस्कार

'मनुस्मृतिनवनीतम्' में वर्णधर्मानुसार चातुर्वर्ण्य के नामकरण संस्कार को भी बताया गया है–

**शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।**
**वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्।।**

स्पष्ट है कि नामकरण में चातुर्वर्ण्य के कर्तव्यों का बोध आजीवन व्यक्ति के साथ जोड़ा गया है। समाज को सुख पहुंचाना, समाज की रक्षा करना, समाज का पोषण करना तथा समाज की सेवा के द्वारा उसके जीवन को सरल व स्वच्छ बनाने का दायित्व नामकरण संस्कार द्वारा निरन्तर स्मारित कराना है, स्मृति ग्रन्थ का लक्ष्य इससे समझा जा सकता है।

इसी प्रकार निष्क्रमण संस्कार में शिशु के समाज में प्रवेश की आयु का निर्धारण भी उसके स्वास्थ्य व सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए किया गया है। इस नियम के पालन के अभाव में आधुनिक युग में अस्पतालों में ही शिशु के जन्म से अनेक विडम्बनाओं को देखा जा सकता है। सामान्य प्रसव के स्थान पर शल्य चिकित्सा से प्रसवों की संख्या बढ़ती जा रही है। चिकित्सकों का व्यापार इसी से फल–फूल रहा है। चिकित्सा विज्ञान का यह पतन है अथवा उन्नति, यह विचारणीय है। अस्पतालों में शिशुओं की मृत्यु–दर भी कम नहीं है। शिशुओं के अपहरण आदि की घटनाओं को देखते हुए, निष्क्रमण संस्कार के महत्व को पहचाना जाना चाहिए।

चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन संस्कार, उपनयन संस्कार अर्थात् यज्ञोपवीत विधान का भी 'मनुस्मृतिनवनीतम्' में आवश्यकतानुसार समावेश किया गया है। इनमें से भी उपनयन संस्कार का विशेष महत्व है। इससे ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत विद्याध्ययन में बालक का प्रवेश होता है। इसमें भिक्षा ग्रहण, भोजन–विधि, गुरु को प्रणाम और ब्रह्माञ्जलिपूर्वक ज्ञान–प्राप्ति का विधान भी बताया गया है–

**ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यो गुरोः सदा।**
**संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः।।**

(मनुस्मृति–नवीनतम्–37)

विवाह संस्कार के अन्तर्गत आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया गया है। समाज में विभिन्न प्रकार के विवाहों को मान्यता देकर गृहस्थ–आश्रम की शुचिता को महत्व दिया गया है–

**ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।**
**गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।**

(मनुस्मृति–नवीनतम्–67)

टिप्पणी

### समाज में नारी–सम्मान

परिवार में पिता, भाई, पति और देवर आदि सभी के द्वारा नारी के सम्मान का मनुस्मृति ने निर्देश दिया है–

**पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।**
**पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।।**

**(मनुस्मृति–नवनीतम्–76)**

किसी भी कुल के उत्थान व पतन में स्त्री सम्मान की रक्षा की विशेष भूमिका है–

**स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।**
**तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।**

### गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता

मनुस्मृति में चारों आश्रमों में से गृहस्थ आश्रम की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है–

**यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।**
**तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।**

(मनुस्मृति–नवीनतम्–80)

गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिए उचित समय का निर्देश करते हुए मनु का कथन है–

**चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः।**
**द्वितीयमायुषो भोगं कृतदारो गृहे वसेत्।।**

इस तरह पच्चीस वर्ष की आयु में गृहस्थाश्रम के इस निर्देश से स्पष्ट है कि मनुस्मृति के निर्देश के उल्लंघन के परिणामस्वरूप ही भारत में बाल विवाह की कुप्रथा का प्रसार हुआ होगा।

इन सामाजिक सन्दर्भों के अतिरिक्त वैयक्तिक उन्नति के लिए जितेन्द्रियत्व और आत्मज्ञान की प्राप्ति आदि के प्रसंगों के लिए मनुस्मृति का गहन अध्ययन आवश्यक है।

## अपनी प्रगति जांचिए

1. सनातन धर्म में सृष्टि का प्रथम पुरुष किसको माना गया है?
   (क) कालिदास (ख) मनु
   (ग) वेदव्यास (घ) इनमें से कोई नहीं
2. मनुस्मृति में चारों आश्रमों में से किसकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है?
   (क) वानप्रस्थ (ख) संन्यास
   (ग) गृहस्थाश्रम (घ) ब्रह्मचर्य

## 2.3 मनुस्मृतिनवनीतम्

टिप्पणी

पूर्वोवाक् आरंभिक 120 श्लोक पाठ्यक्रम के लिए और शेष श्लोक अध्येताओं के ज्ञानवर्धन के लिए दिए गए हैं।

**अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।**

**अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः।।1।।**

**अन्वयः**– कृतयुगे अन्ये धर्माः (भवन्ति) त्रेतायां (च) द्वापरे अपरे धर्माः (भवन्ति) (च) कलियुगे (अपि) युगह्रासानुरूपतः नृणाम् अन्ये धर्माः भवन्ति।

**अर्थ / व्याख्या**– सतयुग (कृतयुग) में मनुष्यों के लिए जो धर्म होते हैं उनसे भिन्न–भिन्न धर्म त्रेता, द्वापर और कलियुग में युगों के ह्रास के अनुसार होते हैं। कहने का अभिप्राय है कि बाद में आने वाले युगों में कुछ–कुछ कमियां आती रहती हैं अतः उन कमियों के अनुरूप ही धर्म की कठोरता भी कम होती रहती है। वर्णाश्रम धर्म के नियमों में इस शिथिलता को विशेष रूप से देखा जा सकता है।

**तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।**

**द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।2।।**

**अन्वयः**– कृतयुगे परं धर्मः तपः उच्यते, त्रेतायां (परं धर्मः) ज्ञानम् उच्यते, द्वापरे परं धर्मः यज्ञम् एव (ऋषयः) आहुः (च) कलौ युगे एकम् दानम् (एव) अवशिष्टम्।

**अर्थ / व्याख्या**– धर्म रूपी वृषभ के चार पैर तप, ज्ञान, यज्ञ और दान कहे गए हैं। ये क्रमशः हर युग में क्षीण होते जाते हैं। इस प्रकार कलियुग में 'दान' ही एक चरण बचा हुआ है, तप, ज्ञान और यज्ञ का प्रभाव लुप्तप्राय है।

**अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।**

**दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।3।।**

**अन्वयः**– अध्यापनम्, अध्ययनं, यजनं तथा याजनं, दानं च प्रतिग्रह एव ब्राह्मणानाम् (कृत्यानि विधाता) अकल्पयत्।

**अर्थ / व्याख्या**– अध्यापन, अध्ययन, यज्ञ करना (और) वैसे ही यज्ञ करवाना, दान करना और दान लेना, ये कार्य ब्राह्मणों के लिए विधाता ने नियत किए अर्थात वेदादि ग्रंथों का अध्ययन, अध्यापन आदि कार्य विधाता ने ब्राह्मणों की सृष्टि के साथ उनके लिए रच दिए।

**प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।**

**विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।4।।**

**अन्वयः**– प्रजानां रक्षणम्, दानम्, इज्या च अध्ययनम् च विषयेषु अप्रसक्तिः समासतः क्षत्रियस्य कृते (विधाता अकल्पयत्)।

**अर्थ / व्याख्या**– प्रजाजनों की रक्षा करना, दान कर्म, यज्ञ, वेद–धनुर्वेद आदि का अध्ययन, विषयों से बहुत अधिक लगाव न रखना–इन कार्यों को विधाता ने क्षत्रिय के लिए रचा।

**पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।**

**वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।5।।**

**अन्वयः**– पशूनां रक्षणं, दानम्, इज्या च अध्ययनम् वणिक्पथं च कुसीदं च कृषिम् एव वैश्यस्य कृते (विधाता अकल्पयत्)

**टिप्पणी**

**अर्थ/व्याख्या**– गाय आदि पशुओं का पालन, दान, यज्ञ, अध्ययन करना एवं व्यापार का मार्ग अपनाना, ऋण का लेन–देन (ब्याज सहित) और खेती द्वारा अन्नोत्पादन ये कर्म वैश्य के लिए विधाता ने बनाए।

**एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।**

**एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।6।।**

**अन्वयः**– प्रभुः शूद्रस्य तु एकम् एव कर्म समादिशत् (तद् अस्ति) एतेषाम् (ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्यानां) वर्णानाम् अनसूयया शुश्रूषा (कर्तव्या तेन)।

**अर्थ/व्याख्या**– शूद्र के लिए विधाता ने एक ही कार्य का विधान किया, वह कर्म है कि वह इन (पूर्वोक्त तीन) वर्णों की सेवा ईर्ष्या रहित होकर करे अर्थात् तीनों वर्णों को सेवा से प्रसन्न करने में ही अपनी प्रसन्नता माने।

**उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठयाद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।**

**सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः।।7।।**

**अन्वयः**– उत्तमाङ्गोद्भवात्, ज्यैष्ठात् च ब्रह्मणः एव धारणात्, अस्य सर्वस्य सर्गस्य एव धर्मतः ब्राह्मणः प्रभुः (अस्ति)।

**अर्थ/व्याख्या**– उत्तम अङ्ग (मुख) से उत्पन्न होने के कारण, सभी वर्णों का (सबसे पहले उत्पन्न होने से) ज्येष्ठ होने से और ब्रह्म (परमात्म ज्ञान) को धारण करने के कारण सारी सृष्टि का स्वामी धर्म दृष्टि से ब्राह्मण ही है अर्थात् शेष तीनों वर्णों को उसके आदेश का पालन करना चाहिए। एक ज्ञान व सदाचार से सम्पन्न के आदेश पालन से ही समाज अनुशासन पथ पर चल सकता है, यह अभिप्राय इस कथन में निहित है।

**भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।**

**बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।।8।।**

**अन्वयः**– (सर्वेषां चराचराणां) भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः (भवन्ति), प्राणिनां बुद्धिजीविनः (श्रेष्ठाः भवन्ति), बुद्धिमत्सु (प्राणिषु) नराः श्रेष्ठाः भवन्ति (च) नरेषु ब्राह्मणाः (श्रेष्ठाः) सन्ति।

**अर्थ/व्याख्या**– जड़ चेतनात्मक समस्त जगत् में प्राणधारी (श्वास ग्रहण करने वाले और श्वास–हीन होने पर मर जाने वाले) श्रेष्ठ होते हैं, प्राणियों में से वे श्रेष्ठ हैं जिन्हें सोचने–समझने की बुद्धि प्राप्त हुई है, बुद्धि सम्पन्न प्राणियों में से ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में से ब्राह्मण श्रेष्ठ है। (तप व अध्ययन के बल से समाज को उचित मार्ग पर ले जाने के कारण ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बताई गई है।)

**ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।**

**कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः।।9।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**— च ब्राह्मणेषु विद्वांसः (श्रेष्ठाः भवन्ति), विद्वत्सु कृतबुद्धयः श्रेष्ठाः भवन्ति, कृतबुद्धिषु कर्तारः (श्रेष्ठाः भवन्ति) (च) कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः।

**अर्थ/व्याख्या**— ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ होते हैं, विद्वानों में संस्कारित बुद्धि वाले श्रेष्ठ होते हैं, संस्कारित बुद्धि वालों में से (प्रमादरहित होकर) कर्म करने वाले कर्ता श्रेष्ठ होते हैं और उन कर्ताओं में ब्रह्म के ज्ञाता श्रेष्ठ होते हैं। ऐसे ब्रह्मवेत्ताओं से ही जगत का कल्याण और ज्ञान संवर्धन होता है।

**ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।**

**ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये।।10।।**

**अन्वयः**— जायमानः हि ब्राह्मणः पृथिव्यां सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ईश्वरः अधिजायते।

**अर्थ/व्याख्या**— जन्म लेते ही ब्राह्मण पृथ्वी पर सभी प्राणियों के धर्म के खजाने की रक्षा के लिए उनका स्वामी/आदेशकर्ता बन जाता है अर्थात् जन्म लेते ही ब्राह्मण का यह कर्तव्य निर्धारित हो जाता है कि वह सबके धर्मपालन में सहायक हो तथा उन्हें उचित दिशा दिखाए।

**आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।**

**तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यः स्यादात्मवान्द्विजः।।11।।**

**अन्वयः**— आचारः प्रथमः धर्मः अस्ति इति श्रुत्युक्तः (च) स्मार्तः एव अस्ति, तस्मात् (कारणात्) आत्मवान् द्विजः सदा अस्मिन् (सदाचारे) द्विजः युक्तः स्यात्।

**अर्थ/व्याख्या**— वेदों और समस्त स्मृति ग्रंथों में कहा गया है कि ब्राह्मण के लिए निर्धारित आचरण उसका परम धर्म है। अतः स्वयं का बोध रखते हुए ब्राह्मण को अपने आचरण का सदैव निर्वाह करना चाहिए। अभिप्राय यह है कि अपने सर्वोच्च पद की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए सदाचार के पथ पर चलते रहना और प्रमादरहित होकर अपने कर्तव्य का पालन करना ब्राह्मण का परम धर्म है।

**आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।**

**आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग्भवेत्।।12।।**

**अन्वयः**— (यदा) विप्रः आचाराद्विच्युतः (भवति तदा सः) वेदफलम् न अश्नुते। आचारेण संयुक्तः तु सम्पूर्णफलभाग् भवेत्।

**अर्थ/व्याख्या**— जब ब्राह्मण अपने आचरण से गिर जाता है तब वेदों में ब्राह्मण होने के जो सुपरिणाम बताए गए हैं, वह उन्हें नहीं प्राप्त कर सकता। जबकि आचरण पर स्थित रहकर ही वह वेदोक्त सम्पूर्ण फलों को प्राप्त कर सकता है।

**देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्माश्च शाश्वतान्।**

**पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः।।13।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**– शाश्वतान् देशधर्मान्, जातिधर्मान् च कुलधर्मान् च पाषण्डगण– धर्मान् मनुः अस्मिन् (मनुस्मृति–) शास्त्रे उक्तवान्।

**व्याख्याः**– इस मनुस्मृति नामक शास्त्र में मनु ने स्थान विशेष के लिए, जाति विशेष के लिए, कुल विशेष के लिए और पाखण्ड समूहों को लक्ष्य करके सनातन (तीनों कालों में लागू) धर्मों (कर्तव्यों) को बताया है अर्थात् मनुस्मृति में ऐसे धर्म बताए गए हैं जो भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों में पालन करने पर लाभप्रद होते हैं। उनका पालन करने से स्थान, जाति और कुल तीनों का कल्याण होता है।

**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**

**एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।14।।**

**अन्वयः**– वेदः स्मृतिः, सदाचारः च स्वस्य आत्मनः प्रियं च (येन स्यात्) एतत् चतुर्विधं धर्मस्य साक्षात् लक्षणं (ऋषयः) प्राहुः।

**अर्थ/व्याख्या**– वेदों में बताए गए निर्देश, स्मृति ग्रन्थों के वाक्य, सनातन सदाचार (सत्य, दम, धृति आदि) के नियम और अपनी आत्मा को जो संतुष्टि दे – ये चार प्रकार के धर्म के लक्षण हैं। कहने का आशय है कि वेदादि के धर्म मार्ग पर चलना चाहिए और जिस विषय में वेद आदि का निर्देश स्पष्टतः प्राप्त न हो रहा हो, उस विषय में संस्कारवान् व्यक्ति की आत्मा ही उसे सत्पथ दिखाती है। धर्म के पथ पर चलने वाले के लिए कभी अंधकार नहीं होता।

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।**

**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।।15।।**

**अन्वयः**– पृथिव्यां सर्वमानवाः एतद्देशस्य प्रसूतस्य अग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्।

**अर्थ/व्याख्या**– अग्रजन्मे ब्राह्मणों के अध्ययन और अध्यापन के परिणामस्वरूप भारत में ही सर्वप्रथम सभ्यता और सुसंस्कारों का विकास हुआ अतः संपूर्ण विश्व में जिन्होंने भी सत्य और संस्कारवान् बनना चाहा, उन्होंने इस देश के ब्राह्मणों से अपने–अपने लिए श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा यहां के ब्राह्मणों से ग्रहण की। यही कारण है कि विश्व में भारत की जगद्गुरु पदवी प्रतिष्ठित है।

**हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि।**

**प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।।16।।**

**अन्वयः**– हिमवद्–विन्ध्ययोर्मध्ये (च) विनशनात् अपि प्राक् प्रयागात् च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।

**अर्थ/व्याख्या**– हिमालय और विन्ध्याचल इन दोनों पर्वतों के बीच और सरस्वती नदी के लुप्त होने वाले विनशन स्थान से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम तक का क्षेत्र मध्यदेश कहा जाता है।

टिप्पणी

विनशन क्षेत्र का वर्णन महाभारत के वनपर्व में प्राप्त है–

*एषा सरस्वती पुण्या दिव्या चौघवती नदी।*
*एतद्विनशनं नाम सरस्वत्या विशाम्पते।।।।*
*द्वारं निषादराष्ट्रस्य येषां दोषात् सरस्वती।*
*प्रविष्टा पृथिवीं वीर मा निषादास्तु मां विदुः।।*

(महाभारत वन पर्व–130 अध्याय)

**आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।**
**तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं बिदुर्बुधाः।।17।।**

**अन्वयः**– आसमुद्रात् तु पूर्वात् (च) आसमुद्रात् पश्चिमात्, तयोः गिर्योः एव अन्तरं वै बुधाः आर्यावर्तं विदुः।

**अर्थ/व्याख्या**– पूर्व दिशा के समुद्र और पश्चिम दिशा के समुद्र और उन दोनों पर्वतों (हिमालय और विन्ध्याचल) के बीच स्थित प्रदेश को आर्यावर्त कहा जाता है। अर्थात् यही ऋत (सत्य–सनातन विद्याओं से सम्पन्न) विद्याओं से युक्त लोगों का जन्म/निवास स्थान आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध है।

**स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।**
**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।18।।**

**अन्वयः**– स्वाध्यायेन, व्रतैः, होमैः, त्रैविधेन, इज्यया च सुतैः महायज्ञैः इयं तनुः ब्राह्मी क्रियते।

**अर्थ/व्याख्या**– निरंतर स्वाध्याय, (शरीर को तपस्या की शक्ति देने वाले) व्रतों, हवनों, वेदत्रयी के अध्ययन और अध्यापन, यज्ञों तथा सोमसवन वाले महायज्ञों के द्वारा इस शरीर को ब्रह्ममय बनाया जाता है (न कि विषय भोगों/भोगवादी संस्कृति से)। ब्रह्ममय शरीर समस्त जगत् के लिए कल्याणकारी होता है।

**प्राङ्नाभिर्वर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते।**
**मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्।।19।।**

**अन्वयः**– पुंसाम् नाभिवर्धनात् प्राक् जातकर्म विधीयते च अस्य हिरण्य–मधुसर्पिषां मन्त्रवत् प्राशनं (कारणीयं भवति)।

**अर्थ/व्याख्या**– (षोडश संस्कारों में से अन्यतम द्वितीय संस्कार जातकर्म के विषय में बताया जा रहा है कि) पुरुषों के जन्म होने पर उनकी नाल के छेदन के पूर्व जातकर्म किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत स्वर्ण और मधु से युक्त घृत जातक को चखाया जाना चाहिए। ये तीनों क्रमशः पुरुष के लिए ऐश्वर्य, माधुर्य और पौष्टिकता से समन्वित स्वास्थ्य प्रदायक व बल प्रदायक होते हैं।

**नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।**
**पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।।20।।**

**अन्वयः**– अस्य (जातकस्य) नामधेयं तु दशम्यां वा द्वादश्यां पुण्ये तिथौ, मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते (कस्मिंश्चित् काले) कारयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– (नामकरण संस्कार के विषय में निर्देश देते हुए मनु का वचन है कि) जन्म से दसवें या बारहवें दिन जातक का नामकरण संस्कार किसी पुण्यमयी तिथि, मुहूर्त या शुभ नक्षत्र में किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

**मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्।**

**वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।।21।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मणस्य मङ्गल्यं नाम स्यात्, क्षत्रियस्य बलन्वितं (स्यात्), वैश्यस्य धनसंयुक्तं (स्यात्) (च) शूद्रस्य तु जुगुप्सितं (नाम स्यात्)।

**अर्थ/व्याख्या**– (नामकरण में नाम का चयन ऐसा हो कि) ब्राह्मण (जातक) का नाम मंगल सूचक (दूसरों का उपकारक), क्षत्रिय का बलसूचक और वैश्य का धन सूचक (वृद्धि सूचक हो) किंतु शूद्र का नाम तो अरुचिकर हो (ताकि वह अपने धर्म के पालन के द्वारा अगले जन्म में श्रेष्ठ वर्ण के अन्तर्गत उत्पन्न होने के प्रति सजग रहे)।

**शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।**

**वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्।।22।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मणस्य नाम शर्मवत् स्यात्, राज्ञः (नाम) रक्षासमन्वितं स्यात्, वैश्यस्य नाम पुष्टिसंयुक्तं (स्यात्) (च) शूद्रस्य (नाम) प्रेष्यसंयुतम् (भवेत्)।

**अर्थ/व्याख्या**– ब्राह्मण का नाम सुखसूचक हो, क्षत्रिय का नाम रक्षासूचक हो, वैश्य का नाम पोषणसूचक हो और शूद्र का नाम सेवाभाव का सूचक हो। कहने का अभिप्राय है कि चारों वर्णों के नाम इस प्रकार के हों जिससे उन्हें स्वधर्म पालन की प्रेरणा मिलती रहे।

**स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्।**

**मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्।।23।।**

**अन्वयः**– स्त्रीणां नाम सुखोद्यम् अक्रूरं, विस्पष्टार्थं, मनोहरम्, मनोहरं, दीर्घवर्णान्तम् आशीर्वादाभिधानवत् भवेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– स्त्रियों का नाम सुखपूर्वक उच्चारणीय, निर्दयता से रहित, स्पष्ट अर्थ वाला, मन को भाने वाला, मंगलसूचक 'आ, ई' आदि दीर्घ स्वरों से समाप्त होने वाला (विमला/कल्याणी/ उषा, प्रियंवदा, अवन्ती आदि) और आशीर्वाद भाव से संयुक्त होना चाहिए।

**चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।**

**षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले।।24।।**

**अन्वयः**– शिशोः गृहात् निष्क्रमणं चतुर्थे मासि कर्तव्यम् (च) षष्ठे मासि वा कुले यद् इष्टं मङ्गलम् (दिनं भवेत् तदा) अन्नप्राशनं कर्तव्यम्।

**व्याख्याः**– शिशु को घर से बाहर ले जाने वाला, निष्क्रमण संस्कार चौथे महीने में किया जाना चाहिए। अन्न–प्राशन (शिशु को पहली बार अन्न का भोजन) का संस्कार

छठे महीने में उस दिन किया जाना चाहिए जो कुल परम्परा में मांगलिक दिन माना जाता हो।

टिप्पणी

**चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।**

**प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्।।25।।**

**अन्वयः**— सर्वेषाम् एव द्विजातीनां चूडाकर्म श्रुतिचोदनात् धर्मतः प्रथमे वा तृतीये अब्दे कर्तव्यम्।

**अर्थ/व्याख्या**— ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन सभी द्विजातियों का चूडाकर्म (मुण्डन संस्कार) वेदों के निर्देश के अनुसार धर्मपूर्वक, शिशु की एक वर्ष आयु हो जाने पर या तीन वर्ष आयु हो जाने पर किया जाना चाहिए।

**गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।**

**गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।।26।।**

**अन्वयः**— ब्राह्मणस्य उपनायनम् गर्भाष्टमे अब्दे कुर्वीत, राज्ञः (उपनायनं) गर्भाद् एकादशे (वर्षे कुर्वीत) (च) विशः तु गर्भात् द्वादशे वर्षे (कुर्वीत)।

**व्याख्याः**— ब्राह्मण (के पुत्र) का उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार तब किया जाना चाहिए जब उसके गर्भ में आने के आठ वर्ष हो गए हों, क्षत्रिय का उपनयन संस्कार गर्भागमन से ग्यारहवें और वैश्य का गर्भागमन के बारहवें वर्ष में किया जाए। ध्यान देने योग्य है कि यहां जातक के जन्म का समय नहीं गिना जा रहा अपितु गर्भ में शिशु के प्रवेश के समय की गिनती की जा रही है। स्पष्ट है जाति का निर्धारण भी जन्म से नहीं अपितु गर्भ में जीव के आगमन से ही माना गया है। एक ऐसा समय जिसमें शिशु पूरी तरह माता के शरीर के भीतर ही पोषण प्राप्त कर रहा होता है और किसी भी कर्म का निष्पादन स्वेच्छा से करने में सक्षम नहीं होता। अतः जाति को कर्म से निर्धारित करने का प्रयास तो केवल राजनीति का खेल है, जो कि कदापि धर्मसम्मत नहीं है।

**ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।**

**राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।।27।।**

**अन्वयः**— ब्रह्मवर्चसकामस्य विप्रस्य (उपनयन संस्कारः) (गर्भस्य) पञ्चमे (वर्षे कारणीयः), बलार्थिनः राज्ञः (गर्भस्य) षष्ठे (वर्षे कारणीयः) अर्थिनः वैश्यस्य इह अष्टमे (वर्षे कारणीयः)।

**अर्थ/व्याख्या**— ब्रह्मतेज की कामना वाले ब्राह्मण का उपनयन संस्कार गर्भ में आने के बाद पांचवें वर्ष में किया जाना चाहिए, बलवृद्धि की कामना वाले क्षत्रिय का उपनयन संस्कार गर्भ के छठे वर्ष में किया जाना चाहिए और धन वैभव की कामना वाले वैश्य का उपनयन संस्कार गर्भ के आठवें वर्ष में किया जाना चाहिए।

**प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम्।**

**प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद् भैक्षं यथाविधि।।28।।**

**अन्वयः**— ईप्सितं दण्डं प्रतिगृह्य च भास्करम् उपस्थाय अग्निं प्रदक्षिणं परीत्य भैक्षं यथाविधि चरेत्।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– इच्छानुसार (किसी भी वृक्ष की लकड़ी से निर्मित) दण्ड लेकर, सन्ध्याविधि के अनुसार सूर्य का उपस्थान (उदुत्यं जादवेदसम् आदि मन्त्रों के द्वारा) करके अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् निर्धारित विधि से भिक्षाचरण प्रत्येक यज्ञोपवीत धारी बटुक को करना चाहिए। गुरुकुल में रहते हुए भिक्षाचरण से प्राप्त अन्न को गुरु के प्रति निवेदन करने का विधान इसीलिए था ताकि बटुकों की शिक्षा में समाज का योगदान रहे और विद्यार्थी समाज के प्रति कृतज्ञ रहें।

**भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षम् उपनीतो द्विजोत्तमः।**

**भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्।।**

**समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदन्नममायया।**

**निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः।।29।।**

**अन्वयः**– यावद् अन्नं तद् भैक्षं प्राप्तम् (तत् सर्वम्) समाहृत्य अमायया गुरवे निवेद्य प्राङ्मुखः (आचम्य) (च) शुचि भूत्वा अश्नीयात्।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस निर्धारित विधि का संकेत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है उसके अन्तर्गत भिक्षा मांगने के लिए तीन प्रकार बताए गए हैं–

1. ब्राह्मण बटुक के द्वारा 'भवति भिक्षां देहि'
2. क्षत्रिय बटुक के द्वारा 'भिक्षां भवति देहि' और
3. वैश्य बटुक के द्वारा 'भिक्षां देहि भवति'

इन तीन प्रकार के वाक्यों के उच्चारण से गृहस्वामिनी को भिक्षा के लिए पुकार लगाने का नियम है। जितना भी अन्न उस भिक्षा में प्राप्त हुआ हो वह सारा लाकर निष्कपट भाव से गुरु के प्रति निवेदित करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके, आचमन करके पवित्र होने के बाद (बटुक को) भोजन करना चाहिए।

**आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।**

**श्रियं प्रत्युङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः।।30।।**

**अन्वय / व्याख्याः**– प्राङ्मुखो (भूत्वा यः) भुङ्क्ते (सः) आयुष्यं (प्राप्नोति), दक्षिणामुखो (भूत्वा यः भुङ्क्ते सः) यशस्यं (प्राप्नोति) प्रत्यङ्मुखः (भूत्वा यः) भुङ्क्ते (स) श्रियं (प्राप्नोति) (च) उदङ्मुखो (भूत्वा) हि ऋतं भुङ्क्ते।

**अर्थ / व्याख्या**– जो पूर्व की ओर मुख करके भोजन ग्रहण करता है वह दीर्घायु को प्राप्त करता है, दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करने से यश को प्राप्त करता है, पश्चिम की ओर मुख करके भोजन करने से श्री (धन व शोभा) प्राप्त करता है और उत्तराभिमुख होकर भोजन करने से ऋत (सत्य) को प्राप्त करता है।

**पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।**

**अपूजितं तु तद् भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्।।31।।**

**अन्वयः**– पूजितम् अशनं हि नित्यं बलम् ऊर्जं च यच्छति (किम्+) तु तद् अपूजितं भुक्तम् इदम् उभयं नाशयेत्।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– अन्न का आदर करते हुए (रुचिपूर्वक) जो भोजन किया जाता है वह सदा बल और तेज की वृद्धि करता है किंतु उसे (भोजन को) जब अनादृत (अपमानित / निंदायुक्त करके) खाया जाता है तब वह दोनों (बल और ऊर्जा) को नष्ट कर देता है। अतः कभी भी भोजन के समय उसके दोष नहीं कहने चाहिए, भोजन के प्रति प्रशंसा का भाव रखते हुए उसे आनंद सहित रस लेते हुए ग्रहण करना चाहिए।

**नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।**

**न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।।32।।**

**अन्वयः**– कस्यचित् (कृते) उच्छिष्टं भोजनं नदद्यात् तथा अन्तरा न (उच्छिष्टम्) आदद्यात्, च न एव अत्यशनं कुर्यात् च उच्छिष्टः क्वचिद् न व्रजेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– किसी को जूठा भोजन नहीं देना चाहिए और न ही किसी से जूठा भोजन लेना चाहिए। कभी भी अति भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात् अपनी पाचन–शक्ति को हानि पहुंचाए बिना सीमित मात्रा में भोजन करना चाहिए। जूठे (मुंह वाला) होकर कहीं नहीं जाना चाहिए (भोजन के बाद जल से मुख–शुद्धि करना आवश्यक है, अन्यथा मुख में स्थित अन्न दांतों के रोगों का भी कारण बनता है)।

**अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।**

**अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत।।33।।**

**अन्वयः**– अतिभोजनं (तु) अनारोग्यम् अनायुष्यम् अस्वर्ग्यम्, अपुण्यम् च लोकविद्विष्टं (भवति) तस्मात् तत् परिवर्जयेत्

**अर्थ / व्याख्या**– अत्यधिक भोजन करने से स्वास्थ्य का विनाश होता है, आयु की हानि होती है, स्वर्ग की प्राप्ति में बाधा आती है, पुण्यों का नाश होता है और संसार में दूसरों से शत्रुता होती है। कहने का अभिप्राय है कि अति भोजन करने वाले को निंदा प्राप्त होती है और रोगों के कारण उसका जीवन नरक समान हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को मित्र भी कम मिलते हैं, यहां तक कि घर के लोग भी उसके प्रति शत्रुता का भाव रखते हुए सोचते हैं कि "काम का न काज का दुश्मन अनाज का।"

**केशान्त संस्कार**

**केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।**

**राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः।।34।।**

**अन्वयः**– षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य केशान्तः (संस्कारः) विधीयते, राजन्य– बन्धोर्द्वाविंशे वर्षे (केशान्तसंस्कारः) (च) वैश्यस्य द्वयधिके मतः।

**अर्थ / व्याख्या**– सोलह वर्ष का हो जाने पर ब्राह्मण का (ग्यारहवां संस्कार) केशांत संस्कार किया जाता है (इसमें शिरोमुंडन और दाढ़ी–मूंछ का क्षौरकर्म सम्मिलित है।) क्षत्रिय का केशान्त संस्कार बाइसवें वर्ष में होता है तथा वैश्य का केशान्त संस्कार चौबीसवें वर्ष में होता है।

**उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।**

**आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च।।35।।**

**टिप्पणी**

**अन्वयः**– गुरुः शिष्यम् उपनीय आदितः शौचं शिक्षयेत्, आचारम् च अग्निकार्यं च सन्ध्योपासनम् एव (शिक्षयेत्)।

**अर्थ/व्याख्या**– गुरु का कर्तव्य है कि उपनयन संस्कार करवाने के पश्चात् वह शिष्य को प्रारंभ से ही पवित्रता का व्यवहार सिखाए ताकि शिष्य सदा तन और मन से पवित्र रहे। साथ ही सदाचार, अग्नि में हवन विधि और सन्ध्या उपासना की विधि भी गुरु द्वारा शिष्य को सिखाई जानी चाहिए। प्रातः और सायंकाल दोनों समय की संध्योपासना से शिष्य के जीवन में पवित्रता बनी रहती है। अतः नियमपूर्वक इसका अनुष्ठान द्विजाति के लिए अनिवार्य और अपरिहार्य है।

**अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः।**

**ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः।।36।।**

**अन्वयः**– यथाशास्त्रम् तु आचान्तं अध्येष्यमाणः शिष्यः यदा ब्रह्माञ्जलिकृतः, लघुवासा। (च) जितेन्द्रियः उदङ्मुखः (गुरुसमक्षम् उपतिष्ठेत् तदा स गुरुणा) अध्याप्यः (भवति)।

**अर्थ/व्याख्या**– गुरु के समक्ष उत्तर दिशा की ओर मुख किए हुए शिष्य को शास्त्रानुसार आचमन करके, ज्ञान प्राप्ति के लिए दोनों हाथों को जोड़कर, कम वस्त्रों में और इन्द्रियों को जीतकर विद्याग्रहण के लिए बैठना चाहिए। ऐसा शिष्य ही गुरु के द्वारा पढ़ाने योग्य होता है। दोनों हाथों को जोड़ने में श्रद्धा का भाव है। कहा भी गया है–

***"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।"***

**ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा।**

**संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः।।37।।**

**अन्वयः**– ब्रह्मारम्भे च अवसाने सदा गुरोः पादौ ग्राह्यौ च हस्तौ संहत्य स्मृतः अवध्येयं, सहि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः।

**अर्थ/व्याख्या**– वेदादि शास्त्रों को पढ़ने के प्रारंभ में और अध्यापन सत्र की समाप्ति पर गुरु के चरणों का स्पर्श शिष्य को करना चाहिए। दोनों हाथों को जोड़कर अध्ययन करना चाहिए–इसे ही ब्रह्मांजलि कहा गया है। वस्तुतः विनयशीलता के अभाव में विद्या ग्रहण संभव नहीं अतः इस प्रकार की व्यवस्था की गई है।

**व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।**

**सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो, दक्षिणेन च दक्षिणः।।38।।**

**अन्वयः**– व्यत्यस्तपाणिना (शिष्येण) गुरोः (पादयोः) सङ्ग्रहणं कार्यम्। सव्येन (पाणिना) सव्यः (पादः) च दक्षिणेन (पाणिना गुरोः) दक्षिणः पादः स्प्रष्टव्यः।

**अर्थ/व्याख्या**– अपने दोनों हाथों को व्यत्यस्त किए हुए अर्थात् दाएं हाथ को बाईं ओर तथा बाएं हाथ को दाईं ओर रखकर शिष्य व्यत्यस्त पाणि हो जाता है। इस प्रकार उसे गुरु के बाएं पैर को बाएं हाथ से और दाएं पैर को दाएं हाथ से स्पर्श करना चाहिए। पद्मासन, सिद्धासन आदि में बैठे हुए गुरु के चरणों का स्पर्श व्यत्यस्त पाणि होकर नहीं किया जाता। यह विधि सम्मुख खड़े हुए गुरु के संदर्भ में कही गई है।

**टिप्पणी**

**अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।**

**वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च।।39।।**

**अन्वयः**– अकारं च उकारम् अपि च मकारं च इति च भूः, भुवः च स्वः इति प्रजापतिः वेदत्रयात् निरदुहत्।

**अर्थ/व्याख्या**– अकार, उकार, मकार (ऊँकार) और भूः, भुवः, स्वः (इन तीन महा व्याहृतियों) को प्रजापति ने तीनों वेदों से सार रूप में दुहकर निकाला है।

कहने का अभिप्राय यह है कि प्रणव तथा गायत्री मन्त्र के प्रारंभ में उच्चरित होने वाली ये तीन महाव्याहृतियां वस्तुतः तीनों वेदों का सार हैं।

**इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।**

**संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम्।।40।।**

**अन्वयः**– अपहारिषु विषयेषु विचरताम् इन्द्रियाणाम् संयमे विद्वान् वाजिनाम् यन्ता इव यत्नम् आतिष्ठेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– (मन का) अपहरण करने वाले विषयों में भटकती इन्द्रियों को संयमित करने में विद्वान् व्यक्ति को वैसे ही प्रयत्न करना चाहिए जैसे घोड़ों को संयमित करने में सारथि प्रयत्न करता है। अर्थात् जिस प्रकार पांच घोड़ों वाले रथ को चलाने वाला सारथी उन पांचों घोड़ों की लगामों को कुशलतापूर्वक प्रयोग करता है, वैसे ही विद्वान व्यक्ति को भी परिस्थिति के अनुसार इन्द्रियों पर लगाम लगाते रहना चाहिए तथा उन्हें अधर्म के पथ पर नहीं जाने देना चाहिए।

**न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।**

**हविषा कृष्णावर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।41।।**

**अन्वयः**– कामानाम् उपभोगेन कामः जातु न शाम्यति (अपितु उपभोगेन कामः) हविषा कृष्णवर्त्म इव भूयः एव अभिवर्धते।

**अर्थ/व्याख्या**– कामनाओं का उपभोग करने से काम कभी शान्त नहीं होता, बल्कि जिस तरह आहुति डालने पर अग्नि और अधिक बढ़ती है वैसे ही कामोपभोग से 'काम' और भी भड़कता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसीलिए काम को महाशन (बहुत खाने वाला) कहा गया है–

*काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।*

*महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।*

**श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।**

**न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रियः।।42।।**

**अन्वयः**– (श्रवणस्पर्शचाक्षुषरसन–घ्राणानां विषयान् क्रमशः) श्रुत्वा, स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा भुक्त्वा च घ्रात्वा यः नरः, न हृष्यति वा (न) ग्लायति सः जितेन्द्रियः विज्ञेयः।

**अर्थ/व्याख्या**– श्रवणादि के जो विषय हैं उन्हें सुनकर, छूकर, देखकर, खा–पीकर, और सूंघकर जो मनुष्य न तो हर्षित होता है और न (पापजन्य) ग्लानि का

टिप्पणी

अनुभव करता है, वह मनुष्य जितेन्द्रिय कहलाता है। अभिप्राय यह है कि विषयों से जुड़ाव तभी प्रमाणित होता है जब उनसे क्रमशः हर्ष और ग्लानि की प्राप्ति होती है। जिस पदार्थ को छूकर हर्ष होता है बाद में मर्यादा के उल्लंघन की ग्लानि भी उससे अवश्यम्भावी है। किंतु विषयों से हर्षित न होने वाला व्यक्ति ग्लानिग्रस्त भी नहीं होता, अतः जितेन्द्रिय कहा जाता है।

**अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।**

**सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः।।43।।**

**अन्वयः**– अपां समीपे नियतः (सन्) नैत्यकं विधिम् आस्थितः (अथवा) अरण्यं गत्वा अपि समाहितः सावित्रीम् अधीयीत।

**अर्थ/व्याख्या**– नदी के तट पर नियमपूर्वक सन्ध्या–गायत्री जप की नित्य विधि में (बटुक को) नियमपूर्वक स्थिर रहना चाहिए अथवा वन में जाकर (एकान्त में) भी स्थिर चित्त होकर गायत्री जप करना चाहिए। गायत्री मन्त्र में 'सविता देवता' की उपासना के कारण इसे ही सावित्री मन्त्र भी कहा जाता है।

**विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना।**

**आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत्।।44।।**

**अन्वयः/अर्थ/व्याख्या**– कामं विद्यया समम् एव ब्रह्मवादिना मर्तव्यम् (किन्तु) घोरायाम् आपदि अपि एनाम् इरिणे एनां न वपेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– भले ही विद्या के साथ ही वेदज्ञाता मर जाए किंतु इसे (विद्या को) अपात्र (अनधिकारी) को न प्रदान करे। आशय यह है कि वेद ज्ञान केवल योग्य पात्र को ही दिया जाना चाहिए, अपात्र को नहीं।

**विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।**

**असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा।।45।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मणम् एत्य विद्या इति आह, "(अहं) ते शेवधिः (अस्मि) माम् रक्ष, माम् असूयकाय मा दाः तथा स्यां वीर्यवत्तमा।"

**अर्थ/व्याख्या**– विद्या ने ब्राह्मण के पास जाकर कहा कि मुझे असूयक (ईर्ष्या/डाह से युक्त व्यक्ति) को मत देना, मैं तुम्हारी निधि हूं इसलिए मेरी रक्षा इस प्रकार करो कि मैं सर्वाधिक बलवती बनी रहूं। कहने का अभिप्राय यही है कि योग्य सत्पात्र को देने से विद्या की वृद्धि होती है तथा अयोग्य व कुपात्र को देने से वह ध्वंसकारिणी होते हुए क्रमशः स्वयं भी नष्ट हो जाती है।

**यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम्।**

**तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने।।46।।**

**अन्वयः**– यम् एव तु शुचिं (च) नियतब्रह्मचारिणं विद्यात् तस्मै निधिपाय अप्रमादिने मां ब्रूहि।

**अर्थ/व्याख्या**– विद्या ने ब्राह्मण से यह भी कहा कि जिस शिष्य को तुम इन्द्रियों पर संयम रखने वाला ब्रह्मचारी जानो तथा विद्यारूपी निधि की रक्षा करने वाला

और अप्रमादी (स्वाध्याय में आलस्य न करने वाला) जानो उसी विप्र को मुझे सिखाना। अर्थात् उसी को शिक्षित बनाना चाहिए जो विद्या की गोपनीयता के महत्व को भी समझे और स्वाध्याय, प्रवचन आदि में प्रमाद न करते हुए विद्या की रक्षा और विस्तार में भी योगदान करे।

टिप्पणी

**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**

**चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।47।।**

**अन्वयः**– अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः तस्य (एतानि) चत्वारि वर्धन्ते–आयुः, विद्या, यशः (च) बलम्।

**अर्थ/व्याख्या**– प्रणाम, चरणस्पर्श विधि के द्वारा जो (गुरुजन का) अभिवादन करने वाला होता है तथा वृद्ध जनों के समीप रहकर उनके आदेश का पालन करते हुए उनकी सेवा करता है (गुरुजनों के आशीर्वाद से) उसकी ये चार वस्तुएं बढ़ती रहती हैं–आयु, विद्या, यश और बल।

**उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।**

**सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।।48।।**

**अन्वयः**– यः द्विजः तु शिष्यम् उपनीय सकल्पं च सरहस्यं वेदम् अध्यापयेद् तम् आचार्यं प्रचक्षते।

**अर्थ/व्याख्या**– जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन संस्कार करके (अपने गुरुकुल में) उसे कल्प (यज्ञों की विधि) और रहस्यों सहित वेद का अध्यापन करता है उसे 'आचार्य' कहा जाता है। इस श्लोक में उपनीय में दो अर्थ समाहित हैं–उपनयन संस्कार कराने के पश्चात् और स्वयं के पास रखकर। अर्थात् उपनीत अन्तेवासी को वेद विद्या का प्रदाता आचार्य कहा जाता है।

**एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।**

**योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।।49।।**

**अन्वयः**– वेदस्य एकदेशं तु वा पुनः वेदस्य अङ्गानि यः (शिष्यं) वृत्त्यर्थम् अध्यापयति सः उपाध्यायः उच्यते।

**अर्थ/व्याख्या**– वेद के किसी एक भाग मात्र को अथवा शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छंद ज्योतिष और व्याकरण–इन वेदांगों को जो अपनी जीविका चलाने के लिए पढ़ाता है, उसे उपाध्याय कहा जाता है।

**न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।**

**ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्।।50।।**

**अन्वयः**– न हायनैः, न पलितैः, न वित्तेन (च) न बन्धुभिः (कोऽपि महान् भवति अपितु) यः नः अनूचानः सः (एव) महान् (अस्ति इति) ऋषयः धर्मं चक्रिरे।

**अर्थ/व्याख्या**– कोई भी विद्वान न तो आयु के वर्षों से, न बालों के सफेद होने से, न धन से और न बन्धुओं की अधिकता से महान् होता है अपितु हममें से महान् वह

है जो वेद और वेदांगों का ज्ञाता होकर उन्हें पढ़ाने में समर्थ (अनूचान) होता है, ऐसा सिद्धान्त ऋषियों ने निर्धारित किया है।

टिप्पणी

**अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।**

**वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।।51।।**

**अन्वयः**– भूतानां श्रेयः अनुशासनम् अहिंसया एव कार्यम्। धर्मम् इच्छता च (विदुषा) मधुरा च श्लक्ष्णा वाक् एव प्रयोज्या।

**अर्थ/व्याख्या**– प्राणियों के कल्याण के लिए उन्हें अहिंसा के द्वारा ही शिक्षा देनी चाहिए और मधुर तथा मनोहर वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए। कहने का अभिप्राय है कि शिक्षा देते समय शिष्य पर शारीरिक दण्ड का और कटुवाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। दण्ड के प्रयोग से शिष्य की शिक्षा में अरुचि हो जाती है जबकि प्रेमपूर्वक मधुर वाणी को सुनकर विद्याग्रहण में रुचि बढ़ती है।

**सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।**

**अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा।।52।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मणः नित्यं सम्मानाद् विषमिव उद्विजेत् च सर्वदा अवमानस्य (प्राप्तिम्) अमृतस्य इव आकाङ्क्षेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– ब्राह्मण को सम्मान से (प्रशंसा वाक्यों से) वैसे ही व्याकुल होना चाहिए जैसे विष पीने वाला व्याकुल होता है तथा अपमान (कटु आलोचना) की इच्छा वैसे ही करनी चाहिए जैसे कोई अमृत की इच्छा करता है। कहने का अभिप्राय यही है कि सम्मान का लोभी दंभी होकर नष्ट हो जाता है तथा अपनी निंदा सुनकर जो अपने दोषों को पहचानते हुए अपनी कमियां दूर करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त करता है।

**सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते।**

**सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति।।53।।**

**अन्वयः**– अस्मिन् लोके अवगतः हि सुखं शेते च सुखम् प्रबुध्यते (च) सुखं चरति (किन्तु) अवमन्ता विनश्यति।

**अर्थ/व्याख्या**– इस संसार में अपमानित व्यक्ति तो सुख से सोता और विचरण करता है जबकि अपमान करने वाला (परनिन्दक) नष्ट हो जाता है। अभिप्राय यह है कि शान्त भाव से दूसरों के द्वारा की जाने वाली निन्दा को सुनकर जो उत्तेजित नहीं होता वही विद्वान् है और सुखी रहता है जबकि दूसरों का अपमान करने वाला अपने भीतर की क्रोध की आग से ही नष्ट हो जाता है।

**वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः।**

**शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।।54।।**

**अन्वयः**– मधु, मांसं, गन्धं, माल्यं, रसान्, स्त्रियः च यानि सर्वाणि शुक्तानि च प्राणिनां हिंसनम् एव वर्जयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– विद्यार्थी / ब्रह्मचारी को मदिरा, मांस, इत्र, माला धारण, फलों के रसों, स्त्रियों, सभी प्रकार के शुक्त (सिरका आदि पर्युषित ऐसे रस जो जौ आदि से प्राप्त किए जाते हैं) और प्राणियों की हिंसा से दूर रहना चाहिए।

**टिप्पणी**

'शुक्त' की व्याख्या करते हुए मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने लिखा है–

***यानि स्वभावतो मधुरादिरसानि, कालवशेन उदकवासादिना चाम्लवन्ति भवन्ति तानि शुक्तानि।***

**अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।**

**कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्।।55।।**

**अन्वयः**– अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्, कामं च क्रोधम्, लोभं, नर्तनं च गीतवादनम् (अपि वर्जयेत्)।

**अर्थ / व्याख्या**– शरीर पर उबटन (लगाकर आकर्षक बनने का प्रयास), आंखों में काजल / सुरमा, छाता धारण करना, जूते पहनना, काम, क्रोध, लोभ, नृत्य और गीत–बाजा आदि आडम्बरों का भी ब्रह्मचारी को त्याग कर देना चाहिए।

**दूरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद्विहायसि।**

**सायम्प्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः।।56।।**

**अन्वयः**– दूरात् समिधः आहृत्य विहायसि (ताः) सन्निदध्यात् (ततः) सायं च प्रातः (च) अतन्द्रियः (सन्) ताभिः अग्निं जुहुयात्।

**अर्थ / व्याख्या**– (हवन के लिए) दूर से समिधाएं (हवन योग्य लकड़ियां) लाकर उन्हें खुले आकाश के नीचे रखना चाहिए तथा सायंकाल और प्रातःकाल नियमपूर्वक बिना आलस्य हवन करना चाहिए।

**आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।**

**माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः।।57।।**

**अन्वयः**– आचार्यः ब्रह्मणः मूर्तिः (भवति), पिता (च) प्रजापतेः मूर्तिः (भवति), माता तु पृथिव्याः मूर्तिः (भवति) स्वः भ्राता (च) आत्मनः मूर्तिः भवति।

**अर्थ / व्याख्या**– आचार्य को परमात्मा की मूर्ति, पिता को हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की मूर्ति, माता को पृथ्वी की मूर्ति और अपने (सगे) भाई को अपना ही रूप जानना चाहिए तथा इनकी उसी प्रकार सेवा भी करनी चाहिए।

**त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।**

**त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः।।58।।**

**अन्वयः**– ते (माता, पिता, आचार्यः च) एव त्रयः लोकाः, ते एव त्रयः आश्रमाः, ते एव त्रयः वेदाः च ते एव त्रयः अग्नयः (प्रोक्ताः)।

**अर्थ / व्याख्या**– वे माता, पिता और आचार्य ही तीनों लोक (भू, भुवः और स्वः), तीनों आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ) तीनों वेद (ऋक्, यजुस और साम) तथा तीनों अग्नियां (गार्हपत्य, दक्षिण तथा आहवनीय) बताए गए हैं।

**श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।**

**अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।59।।**

**अन्वयः**– श्रद्दधानः शुभां विद्याम् अवराद् अपि आददीत, परं धर्मम् अन्त्याद् अपि (आददीत) (च) दुष्कुलाद् अपि स्त्रीरत्नम् आददीत।

**टिप्पणी**

**अर्थ/व्याख्या**– गारुडमन्त्र (विषहरण मन्त्र) आदि जैसी प्रकट प्रभावशाली विद्या शूद्र से भी ग्रहण कर ली जानी चाहिए। दुष्कर्मों का शेष भाग भोगने के लिए कोई मोक्षपथगामी यदि चाण्डाल योनि को प्राप्त हुआ है तो उस अन्त्यज/चाण्डाल से भी मोक्ष के उपायरूपी परं धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए। अन्य अभिप्राय यह है कि लौकिक विधि में व्यवहार सिखाने वाला ज्ञान चाण्डाल से भी ग्रहण करने योग्य होता है, जैसे–'इस स्थान में अधिक देर तक न रुको और इस तालाब में मत नहाओ' इस प्रकार का ज्ञान चाण्डाल से न लेना ही अनुचित होगा। विवाह के लिए अपने से निम्न कुल से भी श्रेष्ठ स्त्री को स्वीकार करने में कोई दोष नहीं।

**विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।**

**अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्।।60।।**

**अन्वयः**– विषाद् अपि अमृतं, बालाद् अपि सुभाषितम्, अमित्राद् अपि सद्वृत्तम् च अमेध्याद् अपि काञ्चनम् ग्राह्यम् भवति।

**अर्थ/व्याख्या**– अमृत भी यदि विष में मिश्रित हो तो विष को हटाकर उसमें से अमृत ग्रहण करना चाहिए। छोटे बालक से भी हितवचन को ग्रहण करना चाहिए। शत्रु के भी सज्जन व्यवहार से सद्व्यवहार सीखना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे अपवित्र वस्तु या स्थान पर गिरा हुआ सोना ग्रहण कर लिया जाना चाहिए।

**न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित्।**

**स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्।।61।।**

**अन्वयः**– धर्मवित् (स्नातकत्वात्) पूर्वं गुरवे किञ्चिद् (अपि) न उपकुर्वीत। स्नास्यंन् तु गुरुणा आज्ञप्तः (सन्) शक्त्या गुर्वर्थम् आहरेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– धर्मज्ञ ब्रह्मचारी को स्नातक होने से पूर्व गाय, वस्त्र आदि देने की आवश्यकता नहीं होती। भिक्षा आदि में जो भी मिले वह तो गुरु को देना ही होता है। किन्तु विद्या सम्पन्न होकर गुरु की आज्ञा के अनुसार यथाशक्ति गुरुदक्षिणा देने का विधान है। इसके लिए किसी धनी से भिक्षा मांगकर भी गुरु की इच्छा पूर्ति करने का प्रयास करना चाहिए।

**क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम्।**

**धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत्।।62।।**

**अन्वयः**– क्षेत्रं, हिरण्यम्, गाम्, अश्वम्, छत्रोपानहम्, आसनं, धान्यं, शाकम् च वासांसि गुरवे प्रीतिम् आवहेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– खेत, सोना, गाय, घोड़ा, छाता और जूता, अनाज, सब्जियां और वस्त्र आदि प्रीतिपूर्वक गुरु को दक्षिणार्थ दी जा सकती हैं। इसमें पूर्व श्लोक से

आए हुए यथाशक्ति शब्द का अनुवर्तन है। इनमें से किसी भी वस्तु से अथवा इनके अतिरिक्त भी जिस वस्तु से गुरु की सन्तुष्टि हो वह वस्तु दी जा सकती है। वस्तुतः यह कृतज्ञता ज्ञापन के लिए है, अन्यथा गुरु के ऋण से उऋण होना संभव नहीं। कहा भी गया है–

टिप्पणी

*"एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।*

*पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं, यद् दत्त्वा चानृणीभवेत्।।*

**एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः।**

**स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेहाजायते पुनः।।63।।**

**अन्वयः**– यः विप्रः अविलुप्तः ब्रह्मचर्यम् एवं चरति, सः उत्तमस्थानं गच्छति, च इह पुनः न आजायते।

**अर्थ/व्याख्या**– उपनयन संस्कार से लेकर गुरुदक्षिणा देने तक बताए गए विधान के अनुसार जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य के अखण्डित व्रत का पालन करता है वह स्वर्ग से ऊपर के ऐसे लोकों को प्राप्त करता है, जिससे उसे पुनः आवागमन के चक्र में नहीं गिरना पड़ता। (यह मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय का अन्तिम श्लोक है।)

**गृहस्थाश्रम**

**श्लोक क्रमांक 64 से 130 तक गृहस्थ आश्रम के धर्म के अनुपालन का उपदेश किया गया है। गृहस्थाश्रम में कर्तव्य एवं अकर्तव्य का विवेचन किया गया है। इसमें विवाह के आठ प्रकारों का वर्णन किया गया है। साथ ही स्त्रियों तथा कुटुंबीजनों के साथ सम्मानजनक व्यवहार किए जाने का उपदेश किया गया है।**

**वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।**

**अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।।64।।**

**अन्वयः**– यथाक्रमं वेदान् वा वेदौ वा वेदम् अपि अधीत्य अविलुप्तब्रह्मचर्यः गृहस्थाश्रमम् आवसेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– अपनी सामर्थ्य के अनुसार तीनों (ऋग, यजु, साम) वेदों अथवा दो वेदों या एक वेद (मन्त्र, भाग–ब्राह्मण भाग सहित) का अध्ययन करने के पश्चात् ब्रह्मचर्य की रक्षा कर चुके ब्रह्मचारी (जिसने पूर्व में स्त्री संभोग, मदिरापान, मांस भक्षण आदि अधर्म न किए हों) गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे अर्थात् विधिपूर्वक विवाह करके ब्रह्मचारी से गृहस्थ बने।

**गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।**

**उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।65।।**

**अन्वयः/व्याख्या**– गुरुणा अनुमतः यथाविधि समावृतः (समावर्तन–संस्कार–निष्पन्नः) द्विजः सवर्णां लक्षणान्वितां भार्याम् उद्वहेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– सोलह संस्कारों में से बारहवां संस्कार है समावर्तन संस्कार, इसमें ब्रह्मचारी गुरु से दीक्षान्त उपदेश ग्रहण करके गुरुकुल से घर लौटता है।

समावर्तन संस्कार के अन्तर्गत गुरु से गृहस्थाश्रम में प्रवेश की अनुमति पाए हुए ब्रह्मचारी द्विज को अपने ही वर्ण की उत्तम लक्षण वाली कन्या से विवाह करना चाहिए।

**चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।**

**अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत।।66।।**

**अन्वयः**– इह च प्रेत्य चतुर्णाम् अपि वर्णानां हिताहितान् अष्टौ इमान् स्त्रीविवाहान् समासेन निबोधत।

**अर्थ/व्याख्या**– इस लोक में और परलोक में चारों वर्णों के लिए स्त्री प्राप्ति हेतु किए जाने वाले हितकारक व अहितकारक आठ प्रकार के विवाहों को संक्षेप से जान लीजिए। अर्थात् आठ प्रकार के विवाह हैं, जिनके भिन्न–भिन्न प्रकार के परिणाम मृत्यु से पूर्व और पश्चात होते हैं।

**ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।**

**गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।67।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मः, दैवः तथा एव आर्षः, प्राजापत्यः तथा असुरः, गान्धर्वः च राक्षसः च अष्टमः अधमः पैशाचः (विवाहाः भवन्ति)।

**अर्थ/व्याख्या**– ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और सबसे अधम आठवें प्रकार का विवाह पैशाच विवाह कहा जाता है।

**आठ प्रकार के विवाह**

**श्लोक क्रमांक 68 से 75 में आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया गया है।**

**आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।**

**आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।।68।।**

**अन्वयः**– (वरम्) स्वयम् आहूय आच्छाद्य च अर्चयित्वा श्रुतिशीलवते वराय कन्यायाः दानम् ब्राह्मः धर्मः प्रकीर्तितः।

**अर्थ/व्याख्या**– कन्या के पिता के द्वारा वेद ज्ञान और सुशील वर को आमंत्रित करके सुंदर वस्त्रों से वर और कन्या को ढककर और अलंकारों आदि से पूजित करके कन्यादान करने की विधि वाला विवाह धर्मानुसार किया जाने वाला ब्राह्म विवाह कहा जाता है।

**यज्ञे तु विततते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।**

**अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते।।69।।**

**अन्वयः**– यज्ञे तु विततते सम्यक् कर्म कुर्वते ऋत्विजे अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते।

**अर्थ/व्याख्या**– ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ के प्रारंभ होने पर उस यज्ञ के पुरोहित को आभूषणों से सुसज्जित कन्या का दान–दैव विवाह कहा जाता है।

**एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।**

**कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते।।70।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**– एकं गोमिथुनं वा द्वे गोमिथुने धर्मतः वरात् आदाय (तस्मै वराय) विधिवत् कन्यादानम् आर्षः धर्मः उच्यते।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– गाय और बैल की जोड़ी को गोमिथुन कहा जाता है, अतः धर्म के अनुसार (न कि मूल्य की दृष्टि से) यज्ञादि सम्पन्न करने के लिए वर से एक या दो गोमिथुन लेकर उसे पुत्री का दान आर्ष विवाह कहा जाता है।

**सहौभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।**

**कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः।।71।।**

**अन्वयः**– उभौ सह धर्मम् चरताम् च इति वाचा अनुभाष्य (वरम्) अभ्यर्च्य कन्याप्रदानं प्राजापत्यः विधिः स्मृतः।

**अर्थ / व्याख्या**– 'आप दोनों मिलकर धर्म का पालन करें', ऐसा वाणी से कहकर और वर का पूजन करके जो विवाह सम्पन्न कराया जाता है, वह प्राजापत्य विवाह कहा जाता है।

**ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।।**

**कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्मः उच्यते।।72।।**

**अन्वयः**– कन्यायै (मातापित्रादिभ्यः) ज्ञातिभ्यः च शक्तितः द्रविणं दत्त्वा स्वाच्छन्द्यात् (यत्) कन्याप्रदानं क्रियते सः एव आसुरः धर्मः उच्यते।

**अर्थ / व्याख्या**– पत्नी के रूप में किसी कन्या को प्राप्त करने के लिए (निर्धन / लोभी) माता–पिता आदि को अपनी शक्ति के अनुसार जो कन्यादान करवा लिया जाता है, वह आसुर विवाह कहा जाता है।

**इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।**

**गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः।।73।।**

**अन्वयः**– कन्यायाः च वरस्य इच्छया अन्योऽन्यसंयोगः कामसम्भवः मैथुन्यः सः तु गान्धर्वः (विवाहः) विज्ञेयः।

**अर्थ / व्याख्या**– कन्या और वर का इच्छानुसार मिलना और काम से उत्पन्न मैथुन के लिए अनुकूल हो जाने के पश्चात् जो विवाह होता है उसे गान्धर्व विवाह कहा जाता है। इस विवाह में माता–पिता आदि की अनुपस्थिति में कन्या और वर इच्छानुसार पत्नी व पति बन जाते हैं।

**हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।**

**प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते।।74।।**

**अन्वयः**– हत्वा, छित्त्वा च भित्वा च गृहात् क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसः विधिः उच्यते।

**अर्थ / व्याख्या**– रुकावट आने पर कन्या के संबंधियों को मार–काट कर और दीवार आदि को भी तोड़कर, "हाय भाई! हाय पिता जी! मेरा अपहरण हो रहा है" इस प्रकार रोती–बिलखती कन्या का हरण करके ले जाना राक्षस विवाह कहा जाता है। इस प्रकार के विवाह में पुरुष 'वर' नहीं कहा जाता अपितु राक्षस कहा जाता है।

**सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।**

**स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।75।।**

**अन्वयः**– सुप्तां, मत्तां, प्रमत्तां वा रहः यत्रोपगच्छति सः पापिष्ठः विवाहानां अष्टमः पैशाचः अधमः (उच्यते)।

टिप्पणी

**अर्थ/व्याख्या**– सोई हुई, बावली हो चुकी, मदिरा आदि पीने से होश खो चुकी निर्जन प्रदेश में अपने शील को बचाने में असमर्थ कन्या के साथ बलात्कार करके जो विवाह किया जाता है वह आठवां और सबसे अधम पैशाच विवाह है। इस तरह के विवाह में पुरुष पिशाच की संज्ञा प्राप्त करता है तथा मरकर पिशाच योनि प्राप्त करके भटकता रहता है।

## स्त्रीमहिमा

**श्लोक क्रमांक 76, 77, 78 में सामाजिक जीवन में स्त्री की महिमा का वर्णन किया गया है।**

**पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।**

**पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।।76।।**

**अन्वयः**– एताः (नार्यः/स्त्रियः) बहुकल्याणम् ईप्सुभिः पितृभिः, भ्रातृभिः, च पतिभिः तथा देवरैः (न केवलं विवाहकाले अपितु तदनन्तरम् अपि) पूज्याः च भूषयितव्याः।

**अर्थ/व्याख्या**– इन स्त्रियों को बहुत धन आदि सम्पत्तियां चाहने वाले तथा विभिन्न प्रकार के अन्य कल्याण (भी) चाहने वाले पिता, भाई, पति और देवरों के द्वारा वस्त्र–अलंकार आदि देकर पूजित किया जाना चाहिए तथा भूषित (आभूषण सम्पन्न) किया जाना चाहिए।

**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।**

**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।77।।**

**अन्वयः**– यत्र तु नार्यः पूज्यन्ते तत्र देवताः रमन्ते, यत्र तु एताः न पूज्यन्ते, तत्र सर्वाः क्रिया अफलाः भवन्ति।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस कुल में पिता, भाई, पति, देवर आदि के द्वारा वस्त्राभूषण आदि से नारियों का सम्मान किया जाता है वहां सभी देवता प्रसन्न रहते हैं, कृपा करते हैं। किंतु जहां इनकी पूजा नहीं होती वहां देवताओं की प्रसन्नता के अभाव में यज्ञ आदि सब क्रियाएं निष्फल ही होती रहती हैं।

**स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।**

**तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।।78।।**

**अन्वयः**– स्त्रियां रोचमानायां तु तत् सर्वं कुलं रोचते, तस्याम् अरोचमानायां सर्वम् एव न रोचते।

**अर्थ/व्याख्या**– वस्त्राभूषण आदि के द्वारा तथा पति के प्रति बढ़ते स्नेह के कारण स्त्री के कान्तिमती होने पर वह कुल (जिसमें वह वधू के रूप में आई है) चमकता रहता है। ऐसी स्त्री परपुरुष में आसक्त नहीं होती, किंतु जब पति से विद्वेष के कारण

वह अपनी कान्ति/चमक खो देती है तथा अन्य पुरुष के सम्पर्क में आने पर वह सारा कुल नष्ट हो जाता है।

टिप्पणी

**गृहस्थ धर्म व गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता**

**अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।**

**होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।79।।**

**अन्वयः**– अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः (प्रोक्तः), तर्पणम् तु पितृयज्ञः (प्रोक्तः), होमः दैवयज्ञः (प्रोक्तः) बलिः भौतः (यज्ञः प्रोक्तः) (च) अतिथिपूजनम् नृयज्ञः (प्रोक्तः)।

**अर्थ/व्याख्या**– अध्ययन और अध्यापन को ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है। अध्यापन शब्द में ही अध्ययन का भाव भी समाहित है, ऐसा मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूकभट्ट का कथन है–

**अध्यापनशब्देनाध्ययनमपि गृह्यते।**

कृष्णपक्ष और श्राद्धादि के अवसर पर अन्न और जल से पितरों के लिए जो तर्पण किया जाता है उसे पितृयज्ञ कहा जाता है। अग्नि में वेदमन्त्रों के उच्चारण तथा भगवन्नाम के उच्चारण के साथ जो आहुतियां दी जाती हैं–उनसे होम होता है–यह होम दैव यज्ञ है, कौआ–चींटी–श्वान आदि प्राणियों को जो अन्न बलिवैश्वदेव के अन्तर्गत दिया जाता है, उसे भूतयज्ञ कहा गया है तथा गृहस्थाश्रमी के द्वारा घर आए अतिथि का सत्कार नृयज्ञ (मनुष्य यज्ञ) कहा गया है।

**श्लोक क्रमांक 80 व 81 में गृहस्थ आश्रम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है।**

**यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।**

**तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमः।।80।।**

**अन्वयः**– यथा वायुं समाश्रित्य सर्वजन्तवः वर्तन्ते तथा सर्वे आश्रमाः गृहस्थम् आश्रित्य वर्तन्ते।

**अर्थ/व्याख्या**– प्राणवायु पर आश्रित होकर जिस प्रकार सभी के जीवन का निर्वाह होता है, उसी प्रकार अन्य सभी आश्रमी (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी) गृहस्थ आश्रम के सहारे निर्वाह करते हैं।

**यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।**

**गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।81।।**

**अन्वयः**– यस्मात अन्वहं अपि आश्रमिणः ज्ञानेन च अन्नेन गृहस्थेन एवं धार्यन्ते, तस्मात् गृही आश्रमः ज्येष्ठाश्रमः (कथ्यते)।

**अर्थ/व्याख्या**– गृहस्थ के अलावा अन्य तीनों आश्रम (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास) वेदार्थव्याख्यान और अन्न के दान के द्वारा गृहस्थाश्रमियों द्वारा उपकृत किए जाते हैं और अपने धर्म को धारण करने में समर्थ होते हैं, इसलिए चारों आश्रमों में 'गृहस्थ' आश्रम ही सबसे बड़ा है, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

## गृहस्थ ब्राह्मण के कर्तव्य और अकर्तव्य

**(श्लोक क्रमांक 82 से 130 तक गृहस्थ ब्राह्मण के कर्तव्यों तथा अकर्तव्यों का वर्णन किया गया है।)**

टिप्पणी

**एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति।**

**स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथार्जुना।।82।।**

**अन्वयः**– यः ब्राह्मणः एवं सर्वभूतानि नित्यम् अर्चति सः तेजोमूर्तिः (भूत्वा) पथार्जुना परं स्थानं गच्छति।

**अर्थ/व्याख्या**– मनुस्मृति के तीसरे अध्याय के श्लोक संख्या 82 से 92 तक बलिवैश्वदेव यज्ञ के विषय में बताया गया है, जिससे समस्त प्राणियों की पूजा होती है, उसी के विषय में इस श्लोक में कहा गया है कि जो ब्राह्मण इस प्रकार नित्य सभी प्राणियों की पूजा करता है वह तेजोमूर्ति होकर अर्चिमार्ग से परं धाम को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् परब्रह्म में लीन हो जाता है।

**तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।**

**एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।83।।**

**अन्वयः**– तृणानि (शयनीयम्), भूमिः, उदकं चतुर्थी च सूनृता (प्रह्लादकारिणी) वाक्, सतां गेहे कदाचन न उच्छिद्यन्ते।

**अर्थ/व्याख्या**– यदि अतिथि के सत्कार के लिए अन्न का अभाव हो तब भी शय्या, विश्राम का स्थान, हाथ–पांव धुलाने के लिए जल और प्रियवचन धार्मिक गृहस्थ के यहां कभी समाप्त नहीं होते, अर्थात् इन वस्तुओं से अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिए।

**एकारात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।।**

**अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते।।84।।**

**अन्वयः**– एकरात्रं (गृहे) निवसन् ब्राह्मणः अतिथिः स्मृतः। (सः) हि यस्मात् अनित्यम् स्थितः भवति तस्मात् अतिथिः उच्यते।

**अर्थ/व्याख्या**– (पराए घर में) एक रात के लिए रहता हुआ ब्राह्मण अतिथि होता है, चूंकि उसका यह निवास नित्य नहीं होता इसलिए उसे अतिथि कहा जाता है।

**ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथाऽपरे।**

**तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे।।85।।**

**अन्वयः**– केचित् द्विजाः ज्ञाननिष्ठाः (भवन्ति) तथा अपरे तपोनिष्ठाः (भवन्ति), तपःस्वाध्यायनिष्ठाः (केचिद् भवन्ति) च तथा अपरे कर्मनिष्ठाः भवन्ति।

**अर्थ/व्याख्या**– कुछ ब्राह्मण ज्ञाननिष्ठ होते हैं अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति में लगे रहते हैं, कुछ अन्य प्राजापत्य आदि तपों की साधना करने वाले होते हैं, कुछ अन्य तप और अध्ययन इन दो कार्यों में ही लगने वाले होते हैं और इसी तरह कुछ कर्मकांड को प्रधान मानकर यज्ञों का अनुष्ठान करते रहते हैं।

**चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः।**

**द्वितीयमायुषो भोगं कृतदारो गृहे वसेत्।।86।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**– आयुषः (प्रथमं) चतुर्थम् भागं गुरौ (गुरुसन्निधौ) उषित्वा आयुषः द्वितीयं भागम् गृहे कृतदारः वसेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– (सौ वर्ष की) आयु का पहला चौथा भाग (पच्चीस वर्ष की आयु पूरी होने से पहले का अधिकांश भाग) ब्राह्मण को गुरुकुल में रहकर बिताना चाहिए और इससे आगे का दूसरा भाग (25 से 50 वर्ष आयु) विवाह करके पत्नी के साथ गृहस्थ आश्रम में बिताना चाहिए। इस प्रकार प्रथम 25 वर्ष ब्रह्मचर्य को और तत्पश्चात् 25 वर्ष गृहस्थाश्रम को समर्पित होने चाहिए।

**यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।**

**अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्।।87।।**

**अन्वयः**– स्वैः अगर्हितैः कर्मभिः शरीरस्य अक्लेशेन यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं धनसञ्चयम् कुर्वीत।

**अर्थ/व्याख्या**– अपने अनिन्द्य कर्मों के द्वारा शरीर को रोगादि कष्टों में न डालते हुए जीवन यात्रा मात्र के लिए ब्राह्मण को धनसंग्रह करना चाहिए, न कि भोग–विलास का जीवन बिताने के लिए।

**ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा।**

**सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन।।88।।**

**अन्वयः**– ऋतामृताभ्यां (ऋतेन च अमृतेन च), मृतेन वा प्रमृतेन वा सत्यानृताभ्यां (सत्येन च अनृतेन च) अपि जीवेत् (किम्+) तु कदाचन श्ववृत्त्या न (जीवेत्)।

**अर्थ/व्याख्या**– इससे पूर्व के श्लोकों में आए हुए 'अनापदि' (विपत्तिकाल न होने पर) शब्द का अनुवर्तन इस श्लोक में भी है। कहने का अभिप्राय है कि विपत्तिकाल न होने पर ऋत, अमृत, मृत या प्रमृत अथवा सत्य और अमृत से जीवनचर्या से जीवनयापन कर लेना चाहिए। किंतु दूसरों की सेवा/नौकरी के द्वारा कभी जीवन यापन नहीं करना चाहिए। (अगले श्लोक में 'ऋत' आदि का तात्पर्य स्पष्ट किया गया है।)

**ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम्।**

**मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम्।।89।।**

**अन्वयः**– उञ्छशिलं ऋतं ज्ञेयम्, अयाचितम् अमृतं स्यात् याचितं मृतं (स्यात्), भैक्षं तु प्रमृतं (ज्ञेयम्) (च) कर्षणं प्रमृतं स्मृतम्।

**अर्थ/व्याख्या**– अनाज के एक–एक कण को दो अंगुलियों से चुनना 'उञ्छ' कहा जाता है और धान्य की पूरी 'मञ्जरी' को चुनना शिल कहलाता है। अतः उञ्छ और शिल विधि के द्वारा आवश्यकतानुसार अनाज का संग्रह 'ऋत' जाना जाता है। बिना मांगे जो मिल जाए ऐसे अयाचित को अमृत कहा गया है और भूमि में खेती करते

हुए अनेक भूमिगत प्राणियों की हत्या करके जो अनाज मिलता है उसे प्रमृत कहा गया है।

टिप्पणी

**सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते।**

**सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्।।90।।**

**अन्वयः**– वाणिज्यं तु सत्यानृतं (कथ्यते) च तेन अपि जीव्यते, सेवा श्ववृत्तिः आख्याता तस्मात् तां परिवर्जयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– कुछ सच और कुछ झूठ बोलकर व्यापार किया जाता है। अतः वाणिज्य (व्यापार) को सत्यानृत कहा गया है, जीवन यात्रा उससे भी चल जाती है, किंतु सेवा तो कुत्ते के समान व्यवहार है अर्थात् मालिक के टुकड़ों पर पलने के समान है। इसलिए सेवाकार्य से बचना चाहिए।

**षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते।**

**द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति।।91।।**

**अन्वयः**– एषाम् एकः षट्कर्मा भवति, अन्यः त्रिभिः प्रवर्तते (अन्यः) एकः द्वाभ्यां (प्रवर्तते) चतुर्थः तु ब्रह्मसत्रेण जीवति।

**अर्थ/व्याख्या**– इन गृहस्थों में से कोई छह कर्मों से अर्थात् ऋत, अयाचित, भैक्ष, कृषि, वाणिज्य और कुसीद (ब्याज पर धन देकर कमाना) से जीवन यात्रा चलाने वाला षट्कर्मा होता है। कोई खेती, वाणिज्य और कुसीद– इन तीन प्रकारों से जीवनयापन करने वाला त्रिकर्मा होता है। इसी तरह याजन, अध्यापन और दान– इन तीन से भी जीवनयापन करने वाला भी त्रिकर्मा ही होता है। कोई केवल याजन और अध्यापन से जीविका चलाने वाला द्विकर्मा होता है। ऊपर बताए गए से अलग चौथे प्रकार का केवल ब्रह्मसत्र अर्थात् अध्यापन मात्र से जीवित रहता है। उञ्छ और शिल से जीवन यापन करने वाले को भी मेघातिथि ने 'ब्रह्मसत्र' द्वारा जीवनयापन बताया है।

**न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन।**

**अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम्।।92।।**

**अन्वयः**– (ब्राह्मणः) कथञ्चन वृत्तिहेतोः लोकवृत्तं न वर्तेत (सः तु) अजिह्माम्, अशठां (च) शुद्धां ब्राह्मणजीविकां जीवेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– झूठी और प्रिय लगने वाली कथा आदि कहकर और विचित्र परिहास आदि सुनाकर जीविका कमाना–लोकवृत्त कहा जाता है। इसे जीविका के रूप में अपनाकर ब्राह्मण को जीवन यात्रा का प्रवर्तन नहीं करना चाहिए। अपितु आत्म–प्रशंसा से रहित निष्पाप, सरल, दंभहीन तथा वैश्य के समान व्यापार के लिए सच–झूठ वाली वृत्ति से रहित शुद्ध जीविका ब्राह्मण को अपनानी चाहिए।

**सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।**

**सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।।93।।**

**अन्वयः**– परम् सन्तोषम् आस्थाय ब्राह्मणः सुखार्थी (च) संयतः भवेत् (यतोहि) सुखं हि सन्तोषमूलं (भवति) विपर्ययः (असन्तोषः तु) दुःखमूलं भवति।

**अर्थ / व्याख्या**– यथासंभव सेवकों और अपने प्राण धारण के लिए आवश्यक और पंच यज्ञ के अनुष्ठान के लिए आवश्यक जितने धन की आवश्यकता होती है उससे अधिक की इच्छा न करना सन्तोष कहा जाता है–

टिप्पणी

**"यथासम्भवभृत्यात्मप्राणधारणावश्यक–पञ्च–यज्ञाद्यनुष्ठानमात्रोचित धनानधिका स्पृहा सन्तोषः"**–कुल्लूकभट्टः

इस प्रकार के सन्तोष में स्थिर होकर सुख अनुभव करके अधिक धन कमाने के विषय में संयम करना चाहिए। ऐसा सन्तोष ही सुख का मूल होता है तथा ऐसे जीने वाला स्वर्ग के सुखों को भोगता है, जबकि असन्तोष में जीने वाला नरकगामी होता है अतः असन्तोष ही दुःख का मूल है।

**वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।**
**तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्।।94।।**

**अन्वयः**– स्वकं वेदोदितं कर्म नित्यम् अतन्द्रितः कुर्यात्। यथाशक्ति तद् हि कुर्वन् परमां गतिं प्राप्नोति।

**अर्थ / व्याख्या**– वेदों में (जिस आश्रम के लिए) जो कर्म बताए गए हैं, उन्हें बिना आलस्य के निरंतर करते रहना चाहिए। उन्हें यथाशक्ति करते हुए ही ब्राह्मण परम गति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि नित्यकर्मों का अनुष्ठान करने से निष्पाप अन्तःकरण के द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। कहा भी गया है–

**ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्यकर्मणः।**
**तत्रादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि**

**–मोक्षधर्मपर्व, महाभारतम्**

**इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः।**
**अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत्।।95।।**

**अन्वयः**– सर्वेषु इन्द्रियार्थेषु कामतः न प्रसज्येत एतेषां च अतिप्रसक्तिं मनसा सन्निवर्तयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, श्रवण–इन सभी इन्द्रिय विषयों के उपभोग में अत्यन्त आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। इनमें अतिप्रसक्ति के निवारण के लिए उपाय बताते हुए कहा गया है कि विषय अस्थिर अर्थात् नाशवान होते हैं और स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष) के, श्रेयमार्ग के बाधक होते हैं, इस भावना से मन के द्वारा इनसे निवृत्त हो जाना चाहिए।

**सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः।**
**यथातथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता।।96।।**

**अन्वयः**– स्वाध्यायस्य विरोधिनः सर्वान् अर्थान् त्यजेत्, यथा तथा अध्यापयन् तु सा हि अस्य कृतकृत्यता।

**अर्थ / व्याख्या**– स्वाध्याय के विरोधी सभी कार्यों का यथासंभव त्याग कर देना चाहिए। किसी न किसी प्रकार स्वाध्याय जारी रहे यही स्नातक की कृतार्थता है, सफलता है। नित्य स्वाध्याय होते रहने से ही ज्ञानबुद्धि का नाश नहीं होता।

टिप्पणी

**वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च।**

**वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह।।97।।**

**अन्वयः**– वयसः, कर्मणः, अर्थस्य, श्रुतस्य च अभिजनस्य (अनुसारेण) वेषवाग्बुद्धिसारूप्यम् आचरन् इह (संसारे) विचरेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– आयु, (जीविका के लिए चुने गए) कार्य, (प्राप्त) धन, वेदज्ञान की प्राप्ति और अपने उच्च कुल की मर्यादा के अनुसार वेष, वाणी, बुद्धि का प्रयोग करते हुए इस संसार में व्यवहार करना चाहिए। अर्थात् यौवन में माला–गन्ध–लेपादि का प्रयोग हो, तो वार्द्धक्य में मोक्ष दिलाने वाली वाणी और बुद्धि पर विशेष ध्यान रहे।

**बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।**

**नित्यं शास्त्रण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्।।98।।**

**अन्वयः**– आशु बुद्धिवृद्धिकराणि धन्यानि च हितानि च शास्त्राणि च वैदिकान् निगमान् नित्यम् अवेक्षेत।

**अर्थ / व्याख्या**– जो वेद के अनुकूल बुद्धि का विकास करते हों, ऐसे व्याकरण, मीमांसा, स्मृति, पुराण, न्यायशास्त्र आदि शास्त्रों को, अर्थशास्त्र, बार्हस्पत्य नीति, शुक्रनीति आदि धन्य (धनवर्धक) शास्त्रों को, प्रत्यक्ष उपकार करने वाले वैद्यक, ज्योतिष आदि शास्त्रों को और वेदार्थ बोधक निगम शास्त्रों का नित्य पर्यालोचन ब्राह्मण को करते रहना चाहिए, जिससे उसकी बुद्धि का शीघ्र विकास हो।

**यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।**

**तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते।।99।।**

**अन्वयः**– यथा–यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति तथा–तथा (सः तत् शास्त्रं सम्यग्) विजानाति, अस्य च विज्ञानं रोचते।

**अर्थ / व्याख्या**– निरन्तर अभ्यास से जैसे–जैसे मनुष्य शास्त्र को जानने लगता है, वैसे–वैसे वह उसे और अच्छी तरह से जानने लगता है। कहा भी गया है–

**विद्या गुरूणां गुरुः**

इस तरह विद्या में वृद्धि के कारण उस विज्ञान में उसकी रुचि का विकास होने लगता है।

**एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः।**

**अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति।।100।।**

**अन्वयः**– एके शास्त्रविदः अनीहमानाः जनाः एतान् महायज्ञान् सततम् इन्द्रियेषु एव जुह्वति।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– शास्त्रों के कुछ ज्ञाता जो इच्छारहित होते हैं, वे इन पांच महायज्ञों (ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ और पितृयज्ञ) को निरन्तर इन्द्रियों में ही संयमपूर्वक सम्पादित करते रहते हैं। अर्थात् पांचों इन्द्रियों के विषयों से संयम करते हुए भी इन पांचों यज्ञों के पुण्य को प्राप्त कर लेते हैं।

**वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा।**

**वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम्।।101।।**

**अन्वयः**– एके सर्वदा वाचि प्राणम् च प्राणे वाचं जुह्वति, (ते) च वाचि प्राणे अक्षयाम् यज्ञनिर्वृत्तिं पश्यन्तः (वर्तन्ते)।

**अर्थ / व्याख्या**– कुछ साधक वाणी में प्राणवायु का और प्राणवायु में वाणी का हवन करते हैं और वे वाणी और प्राणवायु में अनन्त यज्ञों के परिणाम को प्राप्त करते हैं। कहने का आशय है कि वे वाणी को प्राणवायु में स्थिर कर देते हैं जिससे मौन साधना प्रारंभ होती है तथा वाणी में प्राणवायु को स्थिर करने से मितभाषी होकर जगत् के उपकार मात्र के लिए ही बोलते हैं। समाधि की स्थिति को पाने का यह प्रकार है।

**ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा।**

**ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा।।102।।**

**अन्वयः**– अपरे विप्राः एषां (यज्ञानाम्) ज्ञानमूलां क्रियां ज्ञानचक्षुषा पश्यन्तः ज्ञानेन एव सदा एतैः मखैः यजन्ति।

**अर्थ / व्याख्या**– अन्य विप्र जो ब्रह्मनिष्ठ होते हैं, वे ज्ञानरूपी नेत्र से यह जानते हुए कि यज्ञों की उत्पत्ति ज्ञान से ही होती है, वे ज्ञान से ही इन यज्ञों का सम्पादन करते हैं। ज्ञान ही ब्रह्म है, ऐसा तैत्तिरीयोपनिषद् में भी कहा गया है–

***सत्यं ज्ञानमनन्तम्*** **(तै.उ. 2.1.1)**

**आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा।**

**नास्य कश्चिद्वसेद् गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः।।103।।**

**अन्वयः**– आसनाशनशय्याभिः, अद्भिः मूलफलेन वा शक्तितः अनर्चितः कश्चिद् अतिथिः अस्य (गृहस्थस्य) गेहे न वसेद्।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस गृहस्थ के घर में आसन, भोजन, शय्या, जल अथवा फल–मूल आदि के द्वारा शक्ति होने पर भी अतिथि का सत्कार नहीं किया जाता, ऐसे गृहस्थ के घर में किसी अतिथि को नहीं रहना चाहिए। ऐसा घर अतिथि के योग्य नहीं होता।

**शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना।**

**संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः।।104।।**

**अन्वयः**– गृहमेधिना अपचमानेभ्यः च भूतेभ्यः भोजनस्य संविभागः शक्तितः अनुपरोधतः दातव्यम्।

**अर्थ / व्याख्या**– गृहस्थ के द्वारा उन अतिथियों या प्राणियों को भोजन आदि का संविभाग करके अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिए जो स्वयं पकाने में समर्थ नहीं

हैं। शक्ति के अनुसार कहने का अभिप्राय है, स्वयं को हानि पहुंचाए बिना। इस कथन द्वारा निर्धनों तथा पराश्रित जीव जन्तुओं को पका हुआ भोजन देने का निर्देश हुआ है। संविभाग से तात्पर्य है कि केवल भोजन ही नहीं अपितु औषधि, वस्त्र आदि का दान भी यथाशक्ति करके उपकार वृत्ति को अपनाया जाए।

टिप्पणी

**नाधार्मिके वसेद् ग्रामे च व्याधिबहुले भृशम्।**

**नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत्।।105।।**

**अन्वयः**– अधार्मिके ग्रामे च भृशं व्याधिबहुले (ग्रामे) न वसेत्। एकः अध्वानं न प्रपद्येत (च) पर्वते चिरं न वसेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस गांव में धार्मिक लोग न रहते हों अथवा जिस गांव में अनेक प्रकार के रोगों की अधिकता हो (ऐसे गांव में नहीं रहना चाहिए, क्योंकि ऐसे गांव में रहने से अपराधियों के साथ सामना होने से लेकर व विविध रोगों से ग्रस्त होने की संभावना बहुत बढ़ जाती है।) लंबी दूरी वाले मार्ग पर अकेले नहीं जाना चाहिए और पर्वत पर बहुत देर तक नहीं रहना चाहिए।

**न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत्।**

**नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्नं जातु स्यात्कुतूहली।।106।।**

**अन्वयः**– वृथा चेष्टां न कुर्वीत, अञ्जलिना वारि न पिबेत्, भक्ष्यान् उत्सङ्गे च अन्नं न भक्षयेत् जातु न कुतूहली स्यात्।

**अर्थ/व्याख्या**– व्यर्थ की चेष्टाओं में अपनी ऊर्जा को नहीं लगाना चाहिए अर्थात् राह चलते फूल–पत्ते तोड़ना या किसी जीव–जंतु को सताना आदि अनेक प्रकार की निरर्थक तथा हानिकारक चेष्टाएं नहीं करनी चाहिए। हाथों की अंजलि बनाकर उससे पानी नहीं पीना चाहिए क्योंकि इससे पानी के जूठे छींटे अपने पर ही गिरते हैं और पानी की बर्बादी भी होती है। गोद में भोजन रखकर नहीं खाना चाहिए, इससे वस्त्र और शरीर दोनों अपवित्र होते हैं तथा व्यर्थ की जिज्ञासा भी नहीं रखनी चाहिए। अनधिकार ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास में ज्ञान देने वाला क्रोधित हो सकता है अथवा ठग किस्म के लोग ठगी करके हानि पहुंचा सकते हैं।

**उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्।**

**उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च।।107।।**

**अन्वयः**– अन्यैः धृतम् उपानहौ च वासः च उपवीतम् अलङ्कारम्, स्रजं, च करकम् (कमण्डुलम्) एवं (इति वस्तुजातम्) न धारयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– दूसरों के द्वारा धारण किए गए जूते, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गहने, मालाएं और कमण्डलु आदि धारण नहीं करने चाहिए। ऐसा करने से अन्य व्यक्ति से रोगों का संक्रमण हो सकता है।

**अद्वारेण च नातीयाद् ग्रामं वा वेश्म वावृतम्।**

**रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत्।।108।।**

**अन्वयः**– आवृतम् ग्रामं वा वेश्म च अद्वारेण न अतीयाद् (अति+इयात्) च रात्रौ वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत्।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– जहां घेराबंदी की गई हो ऐसे गांव या घर में दरवाजे के अलावा दूसरे साधन से (खिड़की से, दीवार लांघने आदि से) प्रवेश नहीं करना चाहिए (करने पर चोरों की पिटाई जैसा दंड मिलना संभव है, हाथ–पैर भी टूट सकते हैं)। रात में वृक्षों के नीचे जाने से बचना चाहिए। रात्रि में वृक्षों से दूषित वायु निकलती है तथा वृक्ष के मूल में रहने वाले कीट, मूषक आदि भी हानि पहुंचा सकते हैं।

**ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।**
**कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च।।109।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत च धर्मार्थौ अनुचिन्तयेत् च कायक्लेशान् तन्मूलान् च वेदतत्त्वार्थम् एव चिन्तयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– ब्राह्म मुहूर्त अर्थात् रात्रि के अन्तिम प्रहर में जागना चाहिए तथा उन कार्यों को सोचना चाहिए जिन्हें जागने के पश्चात् करने से धर्म और धन में वृद्धि होती हो। शरीर से संबंधित कष्टों का और उनके कारणों का चिंतन करके उन कारणों पर विजय पाने के उपाय सोचने चाहिए तथा वेदों के तत्वार्थ का चिन्तन करना चाहिए। 'ब्राह्मी' का अर्थ है सरस्वती तथा रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसका बोध भली–भांति होता है, इसलिए उस समय को ब्राह्म मुहूर्त कहा जाता है।

**ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वादीर्घमायुरवाप्नुयुः।**
**प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।।110।।**

**अन्वयः**– दीर्घसन्ध्यत्वात् ऋषयः दीर्घम् आयुः, प्रज्ञां, यशः च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसम् एव अवाप्नुयुः।

**अर्थ / व्याख्या**– दीर्घकाल तक प्रमादहीन होकर सन्ध्या और उसमें गायत्री जप के द्वारा ऋषियों ने दीर्घ आयु, प्रज्ञा, यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज को भी प्राप्त किया। कहने का अभिप्राय है कि ऋषियों के कार्यों का अनुसरण करते हुए सन्ध्यावन्दन आदि कर्म को बिना आलस्य के सम्पन्न करते रहना चाहिए।

**नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च।**
**धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा।।111।।**

**अन्वयः**– ग्रामेषु च नगरेषु च पूतिगन्धे (स्थाने) धर्मनैपुण्यकामानाम् सर्वदा नित्यानध्यायः एव स्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**– धर्म में निपुणता पाने वालों को गांवों, नगरों तथा अन्य दुर्गन्ध वाले स्थानों में सदा अध्ययन का अवकाश / विराम रखना चाहिए। धर्म–निपुणता के अतिरिक्त जीविका आदि के लिए जो विद्यानैपुण्य के इच्छुक हैं, उन पर यह रोक नहीं लगाई गई।

**न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि।**
**न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये।।112।।**

**अन्वयः**– न भुक्त्वा, न आतुरः, न महानिशि, न वासोभिः न अविज्ञाते जलाशये अजस्रं स्नानम् आचरेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– भोजन कर लेने के बाद स्नान नहीं करना चाहिए, रोगी (आतुर) के लिए भी स्नान का निषेध है, तथापि सिर धोए बिना गीले कपड़े से रोगी के स्नान का निषेध नहीं है। कहा भी गया है–

टिप्पणी

*अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्।*

*आर्द्रेण वाससा वा स्यान्मार्जनं दैहिकं विदुः।।*

महानिशा अर्थात् आधी रात में भी (जब दो प्रहर रात बीत चुकी हो) स्नान नहीं करना चाहिए। सामान्य रूप से बहुत वस्त्रों के साथ भी स्नान नहीं करना चाहिए तथापि शव, चाण्डालादि के स्पर्श के पश्चात् यह निषेध लागू नहीं होता। अज्ञात जलाशय में मगरमच्छ आदि का खतरा हो सकता है। अतः अज्ञात जलाशय में भी स्नान नहीं करना चाहिए।

**देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा।**

**नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च।।113।।**

**अन्वयः**– देवतानां:, गुरोः, राज्ञः तथा स्नातकाचार्ययोः च दीक्षितस्य बभ्रुणः छायां कामतः न आक्रामेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– देवताओं (पत्थर आदि से बनी मूर्तियों) की, गुरु की, राजा की, स्नातक और आचार्य की (संयुक्त) और यज्ञ के लिए दीक्षित होने के पश्चात् हवन के धुएं चंदन आदि से भूरे बने यजमान की छाया को जानबूझकर नहीं लांघना चाहिए।

**सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।**

**प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।114।।**

**अन्वयः**– सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात् अप्रियम् सत्यम् न ब्रूयात् च प्रियम् अनृतम् (अपि) न ब्रूयात् (इति) एषः सनातनः धर्मः अस्ति।

**अर्थ/व्याख्या**– सत्य कहना चाहिए, प्रिय कहना चाहिए, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए और प्रिय झूठ भी नहीं बोलना चाहिए। वेदमूलक होने के कारण यह सनातन धर्म है।

**मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्।**

**पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम्।।115।।**

**अन्वयः**– मैत्रम्, प्रसाधनं, स्नानम्, दन्तधावनम्, अञ्जनम् च देवतानां पूजनम् (एतत् सर्वं कार्यं) पूर्वाह्णे एव कुर्वीत।

**अर्थ/व्याख्या**– मलत्याग, शरीर–सज्जा, स्नान, दांतों की सफाई, नेत्रों में सुरमा/काजल लगाना और देवताओं की पूजा ये सभी कार्य दिन के प्रथम प्रहर तक कर लेने चाहिए। यहां केवल कार्यों का निर्देश है, क्रम का नहीं, अतः स्नान के पश्चात् दांतों की सफाई का नियम नहीं लिया जाना चाहिए, क्योंकि दंतधावन के पश्चात् ही स्नान किया जाता है।

**अभिवादयेद् वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम्।**

**कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात्।।116।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**– वृद्धान् च अभिवादयेत् च स्वकम् आसनं (तेभ्यः) दद्यात्। (गुरुसमीपे) बद्धाञ्जलिः उपासीत गच्छतः (तान्) पृष्ठतः अन्वियात्।

**अर्थ / व्याख्या**– घर में जो अपने से बड़े हैं उनका प्रणाम आदि विधि से अभिवादन करना चाहिए, उनके आने पर (स्वयं बैठे रहने के बजाय उठकर) अपने बैठने का स्थान देना चाहिए। जब वे कहीं जा रहे हों तो उनके पीछे चलना चाहिए। आशय यह है कि विनयशील स्वभाव को अपनाते हुए गुरुजन का सदा सम्मान करना चाहिए।

**आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।**

**आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्।।117।।**

**अन्वयः**– (मनुष्यः) आचारात् (वेदोक्तम्) आयुः लभते, आचारात् ईप्सिताः प्रजाः (लभते) (च) आचारात् अक्षय्यम् धनं (लभते) आचारः अलक्षणम् (अशुभफलसूचकं देहस्थम् अलक्षणम्) हन्ति।

**अर्थ / व्याख्या**– सदाचार का पालन करने से मनुष्य को वेदों में बताई गई पूर्ण आयु (सौ वर्ष) प्राप्त होती है, सदाचार से पुत्र–पौत्र–पुत्री आदि अभीष्ट सन्तान की प्राप्ति होती है, सदाचार से बहुत धन की प्राप्ति होती है तथा सदाचार के फलस्वरूप शरीर में स्थित बुरे लक्षणों का प्रभाव भी समाप्त हो जाता है।

**यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।**

**यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः।।118।।**

**अन्वयः**– यत् यत् कर्म परवशं (भवेत्) तत् तत् यत्नेन वर्जयेत् (किन्तु) यत् यत् आत्मवशं (कर्म) स्यात्, तत् तत् यत्नेन सेवेत।

**अर्थ / व्याख्या**– दूसरों के प्रति प्रार्थना करके जो–जो कर्म करवाए जा सकते हैं, कोशिश करके ऐसे कर्मों से बचना चाहिए, उनके बिना जीवन को सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए। किंतु जो कर्म आत्माधीन हों, (पराधीन न हों) उन्हें ही प्रयत्न करके पूरा करना चाहिए। (इसका कारण अगले श्लोक में बताया जा रहा है)

**सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।**

**एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।119।।**

**अन्वयः**– सर्वं परवशं (परप्रार्थनाऽऽदिसाध्यम्) दुःखं (दुःखहेतुः भवति च) सर्वम् आत्मवशम् (आत्माधीनं) सुखम् (सुखहेतुः भवति)। सुखदुःखयोः एतत् लक्षणं समासेन जानीयात्।

**अर्थ / व्याख्या**– जो–जो कार्य दूसरों से प्रार्थना करके करवाए जाते हैं वे दुख का कारण बनते हैं किंतु अपने वश में जो कार्य होते हैं, वे सुख उत्पन्न करते हैं।

**यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।**

**तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्।।120।।**

**अन्वयः**– यत् कर्म कुर्वतः अस्य (अनुष्ठातुः) अन्तरात्मनः परितोषः स्यात् तत् (कर्म) प्रयत्नेन कुर्वीत (तस्मात्) विपरीतं तु वर्जयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस कर्म को करने से मनुष्य की अन्तरात्मा को संतोष मिले वह प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए किंतु जिससे अन्तरात्मा व्याकुल होती हो, ऐसे ग्लानि उत्पन्न करने वाले कर्म का त्याग कर देना चाहिए।

टिप्पणी

**अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम्।**

**हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते।।121।।**

**अन्वयः**– यः नरः हि अधार्मिकः (भवति) च यस्य धनम् अपि अनृतं (च) यः नित्यं हिंसारतः असौ इह सुखं न एधते।

**अर्थ / व्याख्या**– जो धर्म के विरुद्ध व्यवहार करने वाला होता है, झूठ बोलकर और रिश्वत आदि से कमाया गया जिसका अनृत–धन होता है और दूसरों के प्रति हिंसा का व्यवहार करता है, वह इस संसार में सुख से नहीं विकसित होता। अतः ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।

**परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।**

**धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च।।122।।**

**अन्वयः**– यौ अर्थकामौ धर्मवर्जितौ स्यातां (तौ) परित्यजेत्, असुखोदर्कम् च लोकविक्रुष्टम् धर्मम् अपि (परित्यजेत्)।

**अर्थ / व्याख्या**– जो अर्थ (धन का अर्जन) और काम धर्म के विरुद्ध हो उनका त्याग कर देना चाहिए (क्योंकि वे इस लोक और परलोक दोनों में हानिकारक सिद्ध होते हैं)। उस धर्म का भी त्याग कर देना चाहिए जो बाद में असुख अर्थात् दुख को उत्पन्न करें अथवा लोगों में जिनसे आक्रोश उत्पन्न हो। उदाहरण के लिए ऐसा सर्वस्वदान जिससे पुत्रों, सेवकों आदि का भरण–पोषण ही रुक जाए, वह 'दान' होने के कारण धर्म होते हुए भी करणीय नहीं है।

**येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।**

**तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते।।123।।**

**अन्वयः**– अस्य पितरः येन (मार्गेण) याताः, येन (मार्गेण अस्य) पितामहाः याताः, तेन (एव) सतां मार्गं (गच्छेत् सः), तेन गच्छन् न रिष्यते (अधर्मेण न हिंस्यते)।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस सन्मार्ग से मनुष्य के पिता–पितामह आदि ने जाकर कुल की प्रतिष्ठा को गिरने नहीं दिया। उसी मार्ग से मनुष्य को आगे बढ़ने पर मनुष्य का कल्याण होता है। सन्मार्ग पर चलने वाला अधर्म के द्वारा नष्ट नहीं होता।

**अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।**

**अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति।।124।।**

**अन्वयः**– (यथा) अम्भसि अश्मप्लवेन इव (कश्चिज्जनः) मज्जति (तथैव यः) द्विजः अतपाः अनधीयानः भवति किन्तुः परिग्रहरुचिः भवति (सः अपि तथैव सर्वस्वेन निमज्जति)।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस तरह पत्थर की नौका पानी में डूब जाती है उसी प्रकार वह ब्राह्मण भी सर्वस्व सहित डूब जाता है तथा नरकगामी होता है जो तप और विद्या

से रहित होकर दान लेने में रुचि रखने वाला होता है। तप और विद्या से ही ब्राह्मण दान का सुपात्र बनता है। कुपात्र होकर भी दान लेने का पाप उसे नरक में डुबा देता है। कुल्लूक भट्ट के शब्दों में–

टिप्पणी

*'अनर्हप्रतिग्रहादानपापयुक्तेन सह नरके निमज्जति।'*

**तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात्।**

**स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति।।125।।**

**अन्वयः**– तस्मात् अविद्वान् यस्मात्–तस्मात् प्रति–ग्रहात् बिभियात् (यतोहि) अविद्वान् स्वल्पकेन अपि प्रतिग्रहात् पङ्के गौः इव सीदति।

**अर्थ / व्याख्या**– चूंकि अल्प धन के ग्रहण से भी मूर्ख व्यक्ति कीचड़ में बैल के फंसने के समान नरक में डूबता है इसलिए विद्वत्ता और तपस्यारहित ब्राह्मण को थोड़ा सा दान लेने से भी डरना चाहिए।

**सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।**

**वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।।126।।**

**अन्वयः**– वारि–अन्न–गो–मही–वासः–तिल–काञ्चन–सर्पिषाम् (इति) सर्वेषाम् एव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।

**अर्थ / व्याख्या**– पानी, अन्न, गाय, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सोना और घी आदि सभी दानों में वेदज्ञान का दान सबसे विशेष महत्व रखता है अर्थात सबसे अधिक पुण्य देता है।

**यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।**

**आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात्।।127।।**

**अन्वयः**– अनृतेन यज्ञोः क्षरति, विस्मयात् तपः क्षरति, विप्रापवादेन आयुः क्षरति च दानं परिकीर्तनात् क्षरति।

**अर्थ / व्याख्या**– झूठ बोलने से यज्ञ क्षीण होता है, अभिमान से तप क्षीण हो जाता है, ब्राह्मण–निंदा से आयु क्षीण होती है और दान करके उसके बारे में चर्चा करने से दान का पुण्य क्षीण हो जाता है।

**नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।**

**न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः।।128।।**

**अन्वयः**– अमुत्र सहायार्थं हि न माता च पिता तिष्ठतः च पुत्रदाराः (तिष्ठन्ति) न ज्ञातिः (तिष्ठति) केवलः धर्मः तिष्ठति।

**अर्थ / व्याख्या**– परलोक में पीड़ा से मुक्ति दिलाने में सहायता के लिए पिता, माता, पुत्र, पत्नी, सम्बन्धी सहायक नहीं होते केवल स्वयं के द्वारा पालन किया गया धर्म सहायक होता है। अतः पुत्र आदि से अपेक्षा करने के स्थान पर अपने पारलौकिक कल्याण के लिए अपने धर्म का पालन पूर्ण यत्न से करना चाहिए।

**एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।**

**एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्।।129।।**

**अन्वयः**– जन्तुः (प्राणी) एकः (एव) प्रजायते, एकः एव प्रलीयते, सुकृतम् (अपि) एकः (एव) अनुभुङ्क्ते च एकः एव दुष्कृतम् (अपि अनुभुङ्क्ते)।

**अर्थ/व्याख्या**– प्राणी इस संसार में अकेला ही आता है (बन्धु–बान्धवों के साथ नहीं), अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होकर यहां से जाता है। पुण्यों के फलस्वरूप स्वर्ग का भोग भी एकाकी करता है और दुष्कर्मों के फलरूपी नरक के कष्टों को भी अकेला ही प्राप्त करता है। अतः धर्म के मार्ग पर अपना कर्तव्य भी अकेले का समझ कर, उस पर दृढ़ रहना चाहिए।

टिप्पणी

**एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः।**

**एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति।।130।।**

**अन्वयः**– (वानप्रस्थे संन्यासे वा) विविक्ते (प्रदेशे) आत्मनः हितं चिन्तयेत्। एकाकी (भूत्वा) हि चिन्तयानः परं श्रेयः (मोक्षलक्षणं) प्राप्नोति।

**अर्थ/व्याख्या**– (गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों को पूर्ण करके) विजन प्रदेश में एकाकी होकर अपने कल्याण का चिन्तन करना चाहिए अर्थात् सदा वेदान्त में कहे गए जीव के ब्रह्मभाव का ध्यान करना चाहिए। वैसा ध्यान करते हुए ही मोक्षरूपी परं श्रेय की प्राप्ति पुरुष कर सकता है। (यहां तक मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय के सम्पादित श्लोक सम्पन्न हुए)

## मांस त्याग का कर्तव्य–गृहस्थ ब्राह्मण के लिए (श्लोक 131–136)

**श्लोक क्रमांक 131 से 136 तक यह उपदेश किया गया है कि बिना हिंसा के मांस उत्पन्न नहीं होता। हिंसा करना पाप है। अतः भोजन में एक गृहस्थ ब्राह्मण को मांस का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।**

**नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।**

**न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।।131।।**

**अन्वयः**– प्राणिनां हिंसाम् अकृत्वा क्वचित् मांसं न उत्पद्यते, च प्राणिवधः स्वर्ग्यः न (भवति) तस्मात् मांसं विवर्जयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– प्राणियों की हिंसा के बिना कहीं भी (और कभी भी) मांस का उत्पादन नहीं किया जाता, और प्राणियों का वध न केवल स्वर्ग प्राप्त कराने में बाधा उत्पन्न करता है, अपितु नरक का कारण होता है अतः मांस नहीं खाना चाहिए।

**समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।**

**प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्।।132।।**

**अन्वयः**– मांसस्य समुत्पत्तिं च देहिनां च वधबन्धौ प्रसमीक्ष्य सर्वमांसस्य भक्षणात् निवर्तेत।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– मांस को उत्पन्न करने पर और उसके लिए शरीरधारियों के वध और बंधन पर भली–भांति विचार करके सब प्रकार के मांस के भक्षण से हट जाना चाहिए। किस गंदगी से भरपूर वातावरण में पशुओं को बांधकर रखा जाता है और किस तरह क्रूरतापूर्वक उनकी हत्या की जाती है, यह समझ आने पर मांस भक्षण में रुचि का त्याग किया जाना चाहिए। यह सब सोचकर भी जिसके मन में अपने पर घृणा और पशुओं पर जिसे दया नहीं आती, वह व्यक्ति किस प्रकार के हृदय वाला है? यह भी उसे विचार करना चाहिए, यह भाव भी प्रसमीक्ष्य शब्द में निहित है।

**वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।**

**मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम्।।133।।**

**अन्वयः**– वर्षे वर्षे यः अश्वमेधेन शतं समाः यजेत च यः मांसानि न खादेत्, तयोः समं पुण्यफलं भवति।

**अर्थ / व्याख्या**– प्रतिवर्ष अश्वमेध यज्ञ करते हुए जो व्यक्ति सौ अश्वमेध यज्ञ कर लेता है तथा जो व्यक्ति मांस नहीं खाता–उन दोनों व्यक्तियों का पुण्यफल समान होता है अर्थात स्वर्ग में सौ अश्वमेध यज्ञकर्ता को जो सुख प्राप्त होते हैं, वही सुख उस व्यक्ति को भी प्राप्त होते हैं जो मांस नहीं खाता।

**फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः।**

**न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात्।।134।।**

**अन्वयः**– मेध्यैः फलमूलाशनैः मुन्यन्नानां च भोजनैः तत् फलं न अवाप्नोति यत् फलं मांसपरिवर्जनात् (प्राप्नोति)।

**अर्थ / व्याख्या**– कोई भी व्यक्ति पवित्र फल और कंद–मूल आदि के भोजन से नहीं पल सकता और जल में स्वतः उगने वाले नीवार (धान्य) के भोजन से उस फल को नहीं पा सकता जो फल मांस का भोजन न करने से प्राप्त होता है अर्थात् मांस भक्षण के त्याग से मिलने वाला पुण्य, मुनि भोजन करने से भी बढ़कर है।

**अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।**

**विद्यातपोभ्याम् भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति।।135।।**

**अन्वयः**– गात्राणि अद्भिः शुद्धयन्ति, मनः सत्येन शुद्धयति, भूतात्मा विद्यात–पोभ्यां शुद्धयति (च) बुद्धिः ज्ञानेन शुद्धयति।

**अर्थ / व्याख्या**– पसीने और मिट्टी आदि से मलिन शरीर के अंग जल से शुद्ध हो जाते हैं, मन की शुद्धि निषिद्ध चिन्तन आदि के त्याग व सत्य से होती है, सूक्ष्म शरीर धारी जीवात्मा ब्रह्मविद्या के द्वारा और पापों का क्षय करने वाले तप के द्वारा शुद्ध होता है और बुद्धि जो कि विपरीत ज्ञान से ढकी होती है वह विषयों के यथार्थ ज्ञान से शुद्ध होती है।

**सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।**

**सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।।136।।**

**अन्वयः**– (भार्यया) सदा प्रहृष्टया, गृहकार्येषु दक्षया, सुसंस्कृतोपस्करया च व्यये अमुक्तहस्तया भाव्यम्।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– (पति के विरुद्ध होने पर भी) पत्नी को सदा प्रसन्न रहने वाली घर के सब कार्यों (सांस्कृतिक आयोजनादि) में चतुर, घर के बर्तन आदि को स्वच्छ रखने वाली और खर्च करने में मितव्ययिनी (कम खर्च करने वाली) होना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि उसका प्रसन्न स्वभाव और कार्यों में दक्षता घर को स्वर्ग समान बनाने में सहायक होता है।

**श्लोक क्रमांक 137 से 151 तक वानप्रस्थ आश्रम धर्म की विवेचना की गई है।**

**गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।**

**अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।137।।**

**अन्वयः**– यदा गृहस्थः आत्मनः वलीपलितं, च अपत्यस्य अपत्यं (पौत्रं / पौत्रीम्) पश्येत् तदा सः अरण्यं समाश्रयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– मनुस्मृति के छठे अध्याय के इस द्वितीय श्लोक में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश के अवसर के विषय में बताया जा रहा है। स्मृतिकार का कथन है कि जब गृहस्थ अपने बालों को सफेद होते देखे, त्वचा के ढीले होने को देखे तथा संतान की संतान को भी देख ले तब विषयों से विराग की भावना को अपनाकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर ले।

**सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।**

**पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा।।138।।**

**अन्वयः**– सर्वम् ग्राम्यम् (व्रीहियवादिकम्) आहारं च सर्वं परिच्छदं सन्त्यज्य (वनवासम् अनिच्छन्तीं) भार्यां पुत्रेषु निक्षिप्य वा (तया) सह एवं वनंगच्छेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– (तपोवन में जाते समय) सभी ग्रामीण भोजनों (चावल, जौ आदि) और गाय, घोड़ा, शय्या आदि सहायक सामग्री को त्यागकर तथा वनवास के लिए अनिच्छुक पत्नी का दायित्व पुत्रों पर छोड़कर अथवा उसके साथ ही वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

**अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।**

**ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः।।139।।**

**अन्वयः**– अग्निहोत्रं समादाय च अग्निपरिच्छदं गृह्यम्, (ततः) ग्रामात् अरण्यं निस्सृत्य नियतेन्द्रियः निवसेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– यज्ञ करने के लिए अग्नि और अग्निहोत्र आदि उपकरण सामग्री को लेकर वानप्रस्थ को जाने वाले गृहस्थ को गांव निवास छोड़कर वन को जाना चाहिए तथा वहां पर इन्द्रियों को संयमित करते हुए रहना चाहिए।

**मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।**

**एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्।।140।।**

**अन्वयः**– (वानप्रस्थी भूत्वा) मुन्यन्नैः विविधैः मेध्यैः (पदार्थैः) वा शाकमूलफलेन (पूर्वोक्तान्) एतान् महायज्ञान् एव विधिपूर्वकम् निर्वपेद्।

**अर्थ / व्याख्या**– वानप्रस्थी हो जाने के पश्चात् उन (पहले बताए गए) पांच महायज्ञों का शास्त्र–विधि से निष्पादन नीवार आदि अन्नों, विभिन्न प्रकार के पवित्र पदार्थों अथवा शाक–मूल–फल आदि से करना चाहिए।

टिप्पणी

**वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा।**
**जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च।।141।।**

**अन्वयः**– चर्म वा चीरं वसीत, सायं तथा प्रगे स्नायात्, जटाः च श्मश्रुलोमनखानि नित्यं बिभृयात्।

**अर्थ / व्याख्या**– वानप्रस्थी का कर्तव्य है कि वह पहनावे के लिए मृगचर्म या वल्कल वस्त्र धारण करे, सायंकाल और इसी प्रकार प्रातःकाल स्नान करे और सदा जटाएं, मूंछ–दाढ़ी और नाखूनों को धारण करे (काटे नहीं)।

**स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।**
**दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।।142।।**

**अन्वयः**– स्वाध्याये नित्ययुक्तः, दान्तः, मैत्रः, समाहितः, नित्यम् दाता, अनादाता व सर्वभूतानुकम्पकः स्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**– वानप्रस्थी सदा वेद के स्वाध्याय में लगा रहे, सर्दी–गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहन करे, सभी प्राणियों पर मित्र–भाव रखे, मन पर संयम रखे, निरंतर दाता / दानी बने, किंतु दान ले नहीं तथा सभी प्राणियों पर कृपा बनाए रखे।

**देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः।**
**शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम्।।143।।**

**अन्वयः**– तद् वन्यं मेध्यतरं हविः देवताभ्यः तु हुत्वा शेषम् आत्मनि, स्वयं कृतं च लवणं युञ्जीत।

**अर्थ / व्याख्या**– वन की पवित्र हवि से देवताओं के लिए हवन करने और बची हुई हविष्य / पवित्र सामग्री स्वयं उपभोग करे तथा (खारे जल आदि से) स्वयं बनाए गए नमक का प्रयोग करे।

**न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्।**
**न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च।।144।।**

**अन्वयः**– फालकृष्टम्, केनचित् उत्सृष्टम् अपि, न आर्तः अपि ग्रामजातानि मूलानि च फलानि अश्नीयात्।

**अर्थ / व्याख्या**– हल चलाकर उपजाया गया अन्न, किसी के द्वारा (जूठा) छोड़ा गया भोजन तथा रोगी होने पर भी गांव में उत्पन्न मूल और फलों को न खाए।

**अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा।**
**अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा।।145।।**

**अन्वयः**– वा अग्निपक्वाशनः वा कालपक्वभुग् एव स्यात्, वा अश्मकुट्टः अपि वा दन्तोलूखलिकिः अपि भवेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– आग में पकाकर खाने वाला बने या ऋतु में समयानुसार पकने वाले फल मूल आदि खाने वाला बने, या पत्थर पर कूटकर खाने वाला हो जाए या ऊखल (ओखल) के बजाय दांतों से ही ओखली का कार्य ले अर्थात् ओखली में कूट कर खाना वानप्रस्थी के लिए वर्जित है।

टिप्पणी

**सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्मासषञ्चयिकोऽपि वा**

**षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा।।146।।**

**अन्वयः**– वा सद्यः प्रक्षालकः स्यात् वा माससञ्चयिकः अपि (स्यात्), वा षण्मासनिचयः वा समानिचयः एव वा स्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**– या तो वानप्रस्थी तत्काल अपने पात्र आदि धो डालने वाला बने, अर्थात् मात्र एक दिन के नीवार अन्न आदि का संचय करने वाला हो, अथवा एक महीने, छह महीने या साल भर का संचय करने वाला बने। कहने का अभिप्राय है कि संचय करने के लिए उसे एक दिन से लेकर एक वर्ष तक की छूट, नियम निर्धारित करने के आधार पर उपलब्ध है। जितना कठिन तप उतना कम संचय हो। वानप्रस्थी की तप करने की क्षमता पर यह निर्भर करता है।

**पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा।**

**कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः।।147।।**

**अन्वयः**– वा वैखानसमते स्थितः (भूत्वा) कालपक्वैः स्वयं शीर्णैः केवलैः पुष्पमूलफलैः सदा वर्तयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– अथवा वानप्रस्थी को वैखानस शास्त्र में बताए गए मार्ग पर स्थिर होकर केवल उन पुष्पों, मूल और फलों द्वारा क्षुधा शान्त करनी चाहिए जो अपना समय आने पर पक जाते हैं और पककर भूमि पर गिर जाते हैं। पुष्प आदि को स्वयं तोड़कर खाने की अनुमति वैखानस नियम में नहीं है।

**ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः।**

**आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः।।148।।**

**अन्वयः**– (वानप्रस्थी पुरुषः) क्रमशः तपः वर्धयन् ग्रीष्मे तु पञ्चतपाः, वर्षासु अभ्रावकाशिकः, हेमन्ते तु आर्द्रवासाः स्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**– वानप्रस्थी को क्रमशः अपने तप में वृद्धि करते हुए ग्रीष्मकाल में (चारों दिशाओं में अग्नि और ऊपर सूर्य के साथ) पञ्चाग्नि तप करते हुए, वर्षाकाल में छाते आदि के प्रयोग के बिना खुले आकाश के नीचे वर्षा जल को सहन करते हुए और सर्दियों में गीले / ठंडे वस्त्रों में रहने का तप करते हुए रहना चाहिए। कहने का अभिप्राय है कि विभिन्न ऋतुओं में उनमें उत्पन्न कठिनाइयों को सहन करते हुए वानप्रस्थी को अपनी तपस्या को बढ़ाना चाहिए।

**अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।**

**शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः।।149।।**

**अन्वयः**– सुखार्थेषु अप्रयत्नः, धराशयः वृक्षमूलनिकेतनः च (भूत्वा) शरणेषु अममः (ममत्वरहितः भवेत्)।

**अर्थ / व्याख्या**– (वानप्रस्थी) स्वादिष्ट भोजन और शीत, धूप आदि से बचने के सुखों का प्रयत्न न करे, वृक्षों के नीचे रहने वाला बनकर, रहने के स्थान की ममता (यह मेरा निवास स्थान है–इस भावना) का त्याग कर दे।

टिप्पणी

**एताश्चान्यांश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।**
**विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः।।150।।**

**अन्वयः**– वने वसन् विप्रः आत्मसंसिद्धये एताः अन्याश्च दीक्षाः च विविधाः औपनिषदीः श्रुतीः सेवेत।

**अर्थ / व्याख्या**– वानप्रस्थ आश्रम वनवास के अन्तर्गत ब्राह्मण को ब्रह्म संसिद्धि अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार के उद्देश्य से इन नियमों, वानप्रस्थ से संबंधित अन्य शास्त्रीय नियमों तथा उपनिषद् ग्रन्थों में कहे गए ब्रह्मप्रतिपादक वाक्यों का अभ्यास करना चाहिए।

**वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।**
**चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत्।।151।।**

**अन्वयः**– एवं च आयुषः तृतीयं भागम् वनेषु विहृत्य, सङ्गान् त्यक्त्वा आयुषः चतुर्थं भागं परिव्रजेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– वानप्रस्थ के लिए बताए गए नियमों के अनुसार आयु के तीसरे भाग अर्थात् पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु को वन में बिता लेने पर आयु के चतुर्थ भाग में सभी सङ्गों का त्याग करके ब्राह्मण को संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए।

**संन्यास आश्रम धर्म विवेचना श्लोक 152 से 160**

(श्लोक क्रमांक 152 से 160 में संन्यास आश्रम धर्म की विवेचना की गई है।)

**अगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः।**
**समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत्।।152।।**

**अन्वयः**– अगारात् अभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितः (च भूत्वा) कामेषु समुपोढेषु निरपेक्षः (सन्) परिव्रजेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– (मौनव्रत का आलंबन करके) मुनि होकर कुशा–कमण्डलु आदि पवित्र पदार्थों सहित सामने रखे गए प्रिय पदार्थों की भी इच्छा न रखते हुए परिव्रज्या (संन्यास) को अपनाए। 'पवित्रोपचितः' का अर्थ मेधातिथि ने करते हुए 'पवित्र मंत्रों का जप अथवा पवित्र कठिन व्रतों का आचरण बताया है–

"पवित्रैर्मन्त्रजपैः अथवा पावनैः कृच्छ्रैर्युक्तः।"

**अनग्निरनिकेतः स्यात् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।**
**उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः।।153।।**

**अन्वयः**– (परिव्राजकः) अनग्निः च अनिकेतः स्यात्, अन्नार्थम् एव ग्रामम् आश्रयेत् उपेक्षकः, असंकुसुकः, मुनिः च भावसमाहितः (अपि स्यात्)।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– संन्यासी को लौकिक अग्नि का त्याग करके निवास स्थान के बिना रहना चाहिए। अन्न के लिए भिक्षा ग्रहण मात्र के लिए गांव को जाना चाहिए, शरीर में होने वाले रोगों की उपेक्षा करनी चाहिए, 'असंकुसुक' अर्थात् स्थिरमति होना चाहिए, मौन भाव अपनाए हुए 'मुनि' होना चाहिए और परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए–

**मुनिर्ब्रह्ममननात्**

तथा ब्रह्म भाव में ही समाहित रहना चाहिए। श्लोक में लौकिक अग्नि के त्याग का निर्देश है–शास्त्रीय अग्नि वैतान अग्नि (भस्मपान आदि के द्वारा) को धारण करने के लिए पहले ही कहा जा चुका है–

***अग्नीनात्मनि वैतानान् समारोप्य यथाविधि***

**अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।**

**आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह।।154।।**

**अन्वयः**– (परिव्राजकः) अध्यात्मरतिः, निरपेक्षः, निरामिषः (च भूत्वा) इह आत्मना एव सहायेन विचरेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– संन्यासी को सदैव स्थिर रहकर (भ्रमण की रुचि न रखते हुए) अध्यात्म में रत रहना चाहिए अर्थात् ब्रह्म का चिन्तन व ध्यान करना चाहिए, कमंडलु और दण्ड आदि के प्रति भी निरपेक्ष भाव रखना चाहिए, मांसाहार कदापि नहीं करना चाहिए और अपनी सहायता स्वयं करते हुए मोक्ष के सुख का अभिलाषी होना चाहिए।

**विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे मुक्तवज्जने।**

**वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्।।155।।**

**अन्वयः**– (ग्रामे) विधूमे, सन्न–मुसले, व्यङ्गारे, मुक्तवज्जने, शरावसम्पाते वृत्ते, यतिः नित्यं भिक्षां चरेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– जब गांव के घरों से धुआं उठना बंद हो गया हो अर्थात् पाकाग्नि को शान्त कर दिया गया हो, अन्न कूटने के लिए मूसल की आवाज़ें आनी बंद हो चुकी हों, लोग भोजन करके मुक्त हो चुके हों, बर्तन धोए–मांजे जा चुके हों, ऐसे समय में संन्यासी को भिक्षा मांगने के लिए विचरण करना चाहिए।

**सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्यते।**

**दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते।।156।।**

**अन्वयः**– सम्यग् दर्शनसम्पन्नः (संन्यासी) कर्मभिः न निबद्ध्यते तु दर्शनेन विहीनः संसारं प्रतिपद्यते।

**अर्थ / व्याख्या**– ब्रह्म में समाहितात्मा अर्थात् ब्रह्म के चिन्तन में निरत संन्यासी को भलीभांति ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है तथा वह कर्मबन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। श्रुतिवचन भी है–

**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।**

टिप्पणी

देह की उत्पत्ति में पाप–पुण्यों का सम्बन्ध कारण होता है, वह सम्बन्ध ही ब्रह्म साक्षात्कार से समाप्त हो जाता है, अतः सम्यग्दर्शी आवागमन के चक्र से छूट जाता है। किन्तु संन्यास के नियमों का निर्वाह करने से चूक जाने पर ब्रह्म साक्षात्कार से रहित संन्यासी का जन्म–मरण का बन्धन समाप्त नहीं होता।

**नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।**

**तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद् ग्राहाद्विमुच्यते।।157।।**

**अन्वयः**– यथा वृक्षः नदीकूलं वा यथा शकुनि वृक्षं (त्यजति) तथा इमं देहं त्यजन् (ब्रह्मवेत्ता) कृच्छ्रात् ग्राहात् विमुच्यते।

**अर्थ/व्याख्या**– ब्रह्म के उपासक के कर्मों के विनाश के साथ उसकी मुक्ति के दो प्रकार हैं। जो ब्रह्मोपासक कर्मों के अधीन अपनी देह के छूटने को देखता है वह वैसे ही देह का त्याग करता है जैसे नदी के वेग से गिरता हुआ वृक्ष नदी के तट से पृथक् हो जाता है। दूसरी विधि के अन्तर्गत स्वाधीन मृत्यु वाले भीष्मादि के समान उसी तरह इस संसार चक्र को छोड़ देते हैं जैसे कोई पक्षी वृक्ष को छोड़ कर चला जाता है। इन दोनों तरह से मुक्ति पाने वाले जन्म मरण के इस कठोर ग्राह (मगरमच्छ) से छूट जाते हैं। नदी कूल को वृक्ष द्वारा त्यागने का अन्य अर्थ यह है कि वे ब्रह्मवेत्ता इस संसार रूपी वृक्ष को वैसे ही गिरते हुए अर्थात् निर्मूल होते हुए देखते हैं जैसे नदी के प्रचंड वेग से किसी वृक्ष की जड़ें उखड़ जाती हैं। इसी उपमा का प्रयोग शंकराचार्य रचित लक्ष्मीनृसिंह स्तोत्र में भी हुआ है–

*संसारवृक्ष–भवबीजमनन्तकर्म–*

*शाखा–शतं करणपत्रमनङ्गपुष्पम्।*

*आरुह्य दुःखफलितं पततो दयालो*

*लक्ष्मीनृसिंह! मम देहि करावलम्बम्।।*

**प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्।**

**विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम्।।158।।**

**अन्वयः**– स्वेषु प्रियेषु (यत्) सुकृतम् (यत् च) अप्रियेषु दुष्कृतम् (तत् सर्वम्) ध्यानयोगेन विसृज्य सनातनं ब्रह्म अभ्येति।

**अर्थ/व्याख्या**– ब्रह्मवेत्ता विद्वान अपने प्रियजनों के प्रति अच्छे (सुख पहुंचाने वाले) कर्मों का और अप्रियजनों के प्रति दुःखदायक कर्मों का ध्यानयोग के द्वारा त्याग करके नित्य ब्रह्म में लीन हो जाता है। वे सुकृत और दुष्कृत क्रमशः उसके पुत्रों और शत्रुओं को प्राप्त होते हैं। इस सम्बन्ध में श्रुतिवचन हैं–

1. *तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्। (शाट्यायनसूत्रम्)*
2. *तत्सुकृतदुष्कृते विधूनते तस्य प्रिया जातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतमिति। (कौषीतकीब्राह्मण)*

**यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः।**

**तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्।।159।।**

**अन्वयः**– यदा (विषयान् प्रति दोषबुद्धेः) भावेन सर्वभावेषु निःस्पृहः (भवति) तदा प्रेत्य च इह शाश्वतं सुखम् अवाप्नोति।

**टिप्पणी**

**अर्थ/व्याख्या**– जब परिव्राजक सभी विषयों में दोष की भावना से देखता है तब सभी विषयों की इच्छा से निवृत्त हो जाता है। ऐसा होने पर वह इस संसार में सन्तोष के सुख को और परलोक में अविनाशी सुख को प्राप्त करता है।

**एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम्।**

**वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत।।160।।**

**अन्वयः**– एषः नियतात्मनां यतीनां धर्मः वः अनुशिष्टः, (अधुना) वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत।

**अर्थ/व्याख्या**– चार प्रकार के संयतात्मा संन्यासियों (कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंस संन्यासियों) का यह सामान्य धर्म (नियम समुदाय) आपको यहां तक बताया गया। (अब) कुटीचर कहे जाने वाले, वेदविहित कर्मयोगियों के नियम आप जानिए। चार प्रकार के सन्यासियों के विषय में कहा गया है–

*चतुर्धा भिक्षवस्तु स्युः कुटीचरबहूदकौ।*

*हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः।।*

### गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता (श्लोक 161)

श्लोक क्रमांक 161 में गृहस्थ आश्रम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है।

**यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।**

**तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे याान्ति संस्थितिम्।।161।।**

**अन्वयः**– यथा सर्वे नदीनदाः सागरे संस्थितिं यान्ति तथा एव सर्वे आश्रमिणः गृहस्थे संस्थितिं यान्ति।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस प्रकार से गंगा, शोण, ब्रह्मपुत्र आदि सब नदियां और नद समुद्र में आश्रय पाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम भी गृहस्थ आश्रम के आश्रय से स्थित होते हैं। इन तीनों आश्रमों के लिए भोजनादिक सामग्री गृहस्थ आश्रम द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध होती है।

### धर्म के दस लक्षण (श्लोक 162)

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**

**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।162।।**

**अन्वयः**– धृतिः, क्षमा, दमः, अस्तेयम्, शौचम्, इन्दिय–निग्रहः, धीः, विद्या, सत्यम्, अक्रोधः (इति) दशकं धर्मलक्षणम्।

**अर्थ / व्याख्या**– सन्तोष ही धृति है, दूसरों के द्वारा बुरा किए जाने पर भी बदले में उसे हानि न पहुंचाना क्षमा है, विकार का कारण होने पर भी मन में विकार न आए–यह 'दम' है–

टिप्पणी

**मनसो दमनं दमः – सनन्दनः**

**शीतातपादिद्वन्द्वसहिष्णुता दमः – गोविन्दराजः**

अन्यायपूर्वक किसी का धन लेना स्तेय कहा जाता है, वैसा कदापि न करना 'अस्तेय' है। शास्त्र के अनुसार मिट्टी और पानी के द्वारा देह को स्वच्छ रखना 'शौच' है, विषयों से नेत्र आदि इन्द्रियों को रोककर रखना इन्द्रिय निग्रह है। शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञान सम्पन्नता बुद्धि है, आत्मज्ञान ही विद्या है, यथार्थ को ही सत्य कहते हैं और क्रोध का कारण होने पर भी क्रोध न करना – ये दस लक्षण धर्म के हैं। इसे ही धर्म का स्वरूप समझना चाहिए।

## राजा का महत्व और राजधर्म (श्लोक 163–180)

श्लोक क्रमांक 163 से 180 तक राजधर्म की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

**बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।**

**महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।163।।**

**अन्वयः**– बालः अपि भूमिपः मनुष्य (इति मत्वा) न अवमन्तव्यः। एषा महती देवता नररूपेण तिष्ठति।

**अर्थ / व्याख्या**– राजा यदि बाल्य अवस्था में भी हो तो भी उसे साधारण मनुष्य समझकर उसकी उपेक्षा अथवा तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह मनुष्य के रूप में महान देवता ही उपस्थित होता है। जिस तरह से देवता का अपमान अधर्म का कारण होता है वैसे ही राजा का अपमान भी अधर्म कहा गया है।

**स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।**

**चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।164।।**

**अन्वयः**– सः राजा (एव) पुरुषः, सः दण्डः, नेता च सः शासिता, (सः एव) चतुर्णाम् आश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।

**अर्थ / व्याख्या**– राजशक्ति के योग से वह राजा ही दण्ड है, वही पुरुष है क्योंकि अन्य सभी उसकी आज्ञा के अनुसार चलने के कारण स्त्री के समान हैं–

**स एव पुरुषस्ततोऽन्ये स्त्रिय इव तद्विधेयत्वात्।**

**–कुल्लूकभट्टः**

कार्यों को आगे बढ़ाने के कारण वही नेता है, शासन अर्थात् आज्ञा देने के कारण शासिता भी है, चारों आश्रमों के धर्म सम्पादन में सहायक होने से वही धर्म की सुरक्षा भी है।

**दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।**

**दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।165।।**

**अन्वयः**– सर्वाः प्रजाः दण्डः शास्ति च अभिरक्षति एव, सुप्तेषु (लोकेषु) दण्डः जागर्ति (अतः) बुधाः दण्डम् (एव) धर्मं विदुः।

**अर्थ/व्याख्या**– दण्ड नीति की आज्ञा सारी प्रजा पर लागू होती है अतः दण्ड ही सारी प्रजा पर शासन करता है और उसकी रक्षा करता है। जब लोग सो रहे होते हैं तब भी दण्ड जागता रहता है और उसके भय से अनेक अपराध नियन्त्रित होते हैं, इन्हीं कारणों से विद्वानों ने 'दण्ड' को धर्म कहा है।

टिप्पणी

**समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः।**

**असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः।।166।।**

**अन्वयः**– सः (दण्डः) समीक्ष्य धृतः (सन्) सर्वाः प्रजाः रञ्जयति (सानुरागाः करोति)। असमीक्ष्य तु प्रणीतः (चेत्) सर्वतः विनाशयति।

**अर्थ/व्याख्या**– शास्त्रों की ठीक प्रकार से समीक्षा करके अपराधों के अनुसार यदि धन और शरीर पर दण्डनीति का प्रयोग किया जाए तो ऐसी दण्डनीति सारी प्रजा को प्रसन्न करने वाली होती है। इसके विपरीत लोभादि के कारण यदि ठीक से विचार करके इसे लागू नहीं किया जाता तो सब कुछ नष्ट हो जाता है।

**इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।**

**जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।167।।**

**अन्वयः**– दिवानिशम् इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेत् (यतः) जितेन्द्रियः हि प्रजाः वशे स्थापयितुं शक्नोति।

**अर्थ/व्याख्या**– दिन रात अर्थात् हर समय सावधानीपूर्वक चक्षु आदि इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाने का यत्न (राजा को) करना चाहिए, क्योंकि जो राजा जितेन्द्रिय होता है, सारी प्रजा उसके वश में रहती है, न कि विषयों के उपभोग के लिए व्याकुल रहने वाले राजा के।

**यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।**

**तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः।।168।।**

**अन्वयः**– यथा (क्षेत्रे) निर्दाता कक्षम् उद्धरति च धान्यं रक्षति तथा नृपः परिपन्थिनः हन्यात् च राष्ट्रं रक्षेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस प्रकार खेत में फसल काटने वाला घास–फूस को निकाल कर अनाज को सुरक्षित करता है उसी प्रकार राजा को राष्ट्रद्रोहियों को समाप्त करना चाहिए, न कि उनके निर्दोष भाई–पुत्र आदि सम्बन्धियों को। इसी प्रकार वह राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ होता है। इसी संदर्भ में **कुल्लूक भट्ट** का वचन है–

***एवं नृपती राष्ट्रे दुष्टान् हन्यात् न तु अदुष्टान् तदीयसहजान् भ्रातॄनपि।***

**यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम्।**

**तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रं कल्पयेत्सततं करान्।।169।।**

**अन्वयः**– यथा राजा च कर्मणां कर्ता फलेन युज्येत तथा नृपः राष्ट्रम् अवेक्ष्य सततं करान् कल्पयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस प्रकार राजा को प्रजा की देखभाल और व्यापारी वर्ग आदि कर्ताओं को उनके कर्मों के फल की प्राप्ति होती रहे, उसी तरह संपूर्ण राष्ट्र के हित को देखकर राजा को करों / शुल्कों का निर्धारण करना चाहिए।

टिप्पणी

**यथाल्पाल्पमदन्त्याघं वार्योकिर्वत्सषट्पदाः।**

**तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः।।170।।**

**अन्वयः**– यथा वार्योकिः वत्सषट्पदाः आद्यम् अल्पाल्पम् अदन्ति तथा राज्ञा (अपि) राष्ट्रात् आब्दिकः करः अल्पाल्पः (एव) ग्रहीतव्यः।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस तरह जोंक, बछड़े, और भंवरे क्रमशः थोड़ा–थोड़ा रक्त, दूध और मधु खाते / पीते हैं, उसी प्रकार राजा के द्वारा भी वार्षिक कर थोड़ा–थोड़ा ही लेना चाहिए। इन दृष्टान्तों से संकेत किया गया है कि कर देने में प्रजा को विभिन्न प्रकार से कष्ट होता है तथापि राष्ट्र की रक्षा में लगे राजा का कर्तव्य है कि वह उस कष्ट बहुत न बढ़ाए।

**विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्भ्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः।**

**संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः सः न तु जीवति।।171।।**

**अन्वयः**– यस्य संभृत्यस्य (राज्ञः) सम्पश्यतः प्रजाः दस्युभिः विक्रोशन्त्यः राष्ट्राद् भ्रियन्ते सः राजा मृतः एव (अस्ति) न तु जीवति।

**अर्थ / व्याख्या**– अमात्य आदि सेवकों सहित जिस राजा के देखते–देखते राष्ट्र से चिल्लाती रोती प्रजाएं चोर–डाकुओं द्वारा अपहृत की जाती हैं, उनकी संपत्ति लूट ली जाती है, ऐसा राजा जीते जी मरे के समान है। प्रजा की रक्षा राजा का सर्वोच्च कर्तव्य है और वही न कर सकने के कारण वह मरे हुए के समान ही है।

**क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।**

**निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते।।172।।**

**अन्वयः**– प्रजानां पालनम् एव क्षत्रियस्य परः धर्मः (अस्ति), (अस्य पालनेन सह) निर्दिष्टफल भोक्ता राजा हि धर्मेण युज्यते।

**अर्थ / व्याख्या**– क्षत्रिय / राजा का यह सर्वोच्च धर्म है कि वह प्रजा की रक्षा करे, इस कर्तव्य का पालन करते हुए कर आदि फलों का भोग करने वाला राजा ही धर्मी कहा जाता है, अन्यथा वह अधर्मी राजा कहलाता है।

**संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।**

**द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।।173।।**

**अन्वयः**– सन्धिम् च विग्रहम् एव, यानम् च आसनम् एव, द्वैधीभावं च संश्रयम् एतान् षट् गुणान् (राजा) सदा चिन्तयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– राजा को इन छह गुणों पर (अवसर के अनुरूप) सदा विचार करना चाहिए–1. सन्धि, 2. विग्रह, 3. यान, 4. आसन, 5. द्वैधी भाव और 6. संश्रय। हाथी, घोड़े, सोने आदि पदार्थों के द्वारा हम दोनों एक दूसरे का भला करेंगे। ऐसा परस्पर अनुबन्ध (दो राजाओं की) सन्धि कही जाती है। दो राजाओं का परस्पर एक दूसरे के

टिप्पणी

प्रति हानि पहुंचाने का वैर–भाव विग्रह कहा जाता है, शत्रु के प्रति आक्रमण के लिए प्रयाण 'यान' है तथा शत्रु की उपेक्षा 'आसन' है, स्वार्थ की सिद्धि के लिए सेना को दो भागों में बांटकर रखना 'द्वैधी भाव' है तथा शत्रुओं से पीड़ित होने पर अपने से प्रबल राजा की शरण में जाना 'संश्रय' कहा जाता है। विभिन्न राजाओं के साथ इनमें से कौन–सा व्यवहार राष्ट्र के हित में होगा, ऐसा विवेचन राजा को निरंतर करते रहना चाहिए।

**आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च।**

**कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च।।174।।**

**अन्वयः**– आसनं च यानम् एव, सन्धिं च विग्रहम् एव, द्वैधम् च संश्रयम् एव कार्ये वीक्ष्य प्रयुञ्जीत।

**अर्थ/व्याख्या**– आसन या यान इन दोनों में से क्या ठीक रहेगा, सन्धि या विग्रह में से क्या ठीक रहेगा और द्वैधीभाव या संश्रय में से क्या ठीक रहेगा–कार्य की सफलता को समझते हुए राजा को इनमें से उचित विकल्प का चयन करके उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। क्योंकि केवल समीक्षा करने से कुछ नहीं होता, व्यवहार में लाई गई उचित नीति ही सफलता दिलाती है।

**यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।**

**तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः।।175।।**

**अन्वयः**– यथा एनम् (राजानम्) मित्रोदासीनशत्रवः न अभिसंदध्युः ततः सः सर्वं (कार्यं) संविदध्यात्, इति सामासिकः नयः (अस्ति)।

**अर्थ/व्याख्या**– जिससे इस (राजा) को मित्र, उदासीन और शत्रु, कोई भी बाधा न पहुंचाएं उस तरह से उसे सब कार्य करने चाहिए, यही नीति का सार संक्षेप है।

**हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।**

**यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्।।176।।**

**अन्वयः**– हिरण्यभूमि–सम्प्राप्त्या पार्थिवः तथा न एधते यथा ध्रुवं मित्रं लब्धवा आयति कृशम् अपि (तत् मित्रं लाभप्रदं भवितुं) क्षमम् (भवति)।

**अर्थ/व्याख्या**– सोना और भूमि को पा लेने से भी राजा की वैसी उन्नति नहीं होती, जैसी उन्नति एक विकसित होते स्थिर मित्र से होती है, क्योंकि राष्ट्र के कमजोर होने पर भी भविष्य में वह सहायता करने में समर्थ होता है।

**धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।**

**अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते।।177।।**

**अन्वयः**– (यत् मित्रं) धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिम् एव, अनुरक्तं च स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते।

**अर्थ/व्याख्या**– जो मित्र धर्मज्ञ और कृतज्ञ होता है (उपकार को याद रखकर भविष्य में यथाशक्ति लाभ पहुंचाता है), प्रसन्न स्वभाव वाला होता है, परस्पर स्नेह रखता

है, मज़बूती से कार्य करता है, ऐसा मित्र कम बल वाला भी हो तो भी अच्छा होता है। (इन्हीं गुणों को देखकर राम ने सुग्रीव से मित्रता की थी।)

टिप्पणी

**प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।**

**कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः।।178।।**

**अन्वयः**– प्राज्ञं, कुलीनं, शूरं च दक्षम् च दातारम् एव, कृतज्ञं च धृतिमन्तम् अरिम् बुधाः कष्टम् आहुः।

**अर्थ/व्याख्या**– जो विद्वान् हो, अच्छे कुल का हो, शूरवीर और चतुर भी हो, दानी हो, कृतज्ञ हो और सुख–दुख में धैर्य रखता हो ऐसे शत्रु को बुद्धिमान, कष्टकारक अथवा कठिनाई से उखाड़ा जा सकने वाला बताते हैं। अभिप्राय यह है कि ऐसे व्यक्ति से सन्धि करने में ही कल्याण है।

**सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम्।**

**संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद् बुधः।।179।।**

**अन्वयः**– सर्वाः आपदः सह (एव) भृशम् समुत्पन्नाः (इति) प्रसमीक्ष्य बुधः संयुक्तान् च वियुक्तान् च सर्वोपायान् सृजेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– खजाने की कमी, प्राकृतिक प्रकोप, शत्रुओं में वृद्धि आदि सारी समस्याएं जब एक साथ उत्पन्न हो जाएं, ऐसे कठिन समय में बुद्धिमान (राजा) को मोहग्रस्त न होकर साम, दान, दण्ड, भेद आदि सभी उपायों का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार संयुक्त रूप से या भिन्न–भिन्न रूप से करना चाहिए।

**उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः।**

**एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये।।180।।**

**अन्वयः**– उपेतारम् च उपेयम् च सर्वोपायान् एतत् त्रयं कृत्स्नशः समाश्रित्य अर्थसिद्धये प्रयतेत।

**अर्थ/व्याख्या**– प्राप्तकर्ता (स्वयम्), प्राप्तव्य और उसके लिए संभव उपाय इन तीनों परिपूर्णता अथवा बलाबल का निर्धारण करने के पश्चात् ही इनमें यथासंभव वृद्धि करके सफलता के लिए राजा को प्रयास करना चाहिए।

## राजा की न्याय–व्यवस्था का विवेचन (श्लोक 181–190)

श्लोक क्रमांक 181 से 190 तक राजा की न्याय व्यवस्था का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

**व्यवहारान्ददृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।**

**मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम्।।181।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मणैः, मन्त्रज्ञैः, च मन्त्रिभिः एव सह व्यवहारान् दिदृक्षुः पार्थिवः सभां विनीतः प्रविशेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– मनुस्मृति के आठवें अध्याय के इस प्रथम श्लोक में राजा के द्वारा व्यवहारों (न्यायाधीन मामलों) को देखने के लिए न्याय सभा में प्रवेश विधि का

वर्णन है। मनु का कथन है कि ब्राह्मणों, मन्त्रज्ञों और मन्त्रियों के साथ राजा को विनीत भाव से न्याय सभा में प्रवेश करना चाहिए। 'व्यवहार' शब्द को स्पष्ट करते हुए कुल्लूक भट्ट की टिप्पणी है–

टिप्पणी

**ऋणादानाद्यष्टादश–विवादे विरुद्धार्थार्थिप्रत्यर्थिवाक्यजनितसन्देहहारी विचारः एव व्यवहारः।**

अर्थात् ऋण के लेन–देन आदि अठारह प्रकार के विवादों में एक–दूसरे के विरुद्ध अर्थी–प्रत्यर्थी (वादी–विवादी) के कथनों से उत्पन्न सन्देह को समाप्त करने वाला विचार ही 'व्यवहार' कहा जाता है। इसी अभिप्राय को कात्यायन ने भी निम्नलिखित श्लोक में स्पष्ट किया है–

**वि–नानार्थेऽव–सन्देहे**
**हरणं हार उच्यते।**
**नानासन्देहहरणाद्**
**व्यवहार इति स्मृतः।।**

व्यवहार–सभा में राजा का विनीत होना इसलिए आवश्यक है क्योंकि राजा के क्रोधयुक्त अथवा अशिष्ट आचरण से वादी–प्रतिवादी बौखलाकर अपनी बात ठीक से नहीं रख पाएंगे, अतः सत्य तक पहुंचना कठिन हो जाएगा।

**तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम्।**
**विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम्।।182।।**

**अन्वयः**– तत्र (सभायाम्) आसीनः अपि वा स्थितः (सन्) दक्षिणं पाणिम् उद्यम्य विनीतवेषाभरणः (राजा) कार्यिणाम् कार्याणि पश्येत्।

**अर्थ/व्याख्या**– न्याय सभा में विनय द्योतित करने के लिए वस्त्राभूषण पहने हुए सभा में बैठकर दायां हाथ (बाहु) उठाकर राजा को सम्बद्ध पक्षों के कार्यों का विवेचन करना चाहिए। हाथ उठाने का उद्देश्य अभय मुद्रा दर्शाना है।

**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**
**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।183।।**

**अन्वयः**– हतः धर्मः एव हन्ति (च) रक्षितः धर्मः रक्षति। तस्मात् धर्मः न हन्तव्यः (च) हतः धर्मः न मा अवधीत्।

**अर्थ/व्याख्या**– धर्म का अतिक्रमण करने से ही धर्म की हत्या होती है और धर्म की हत्या इष्ट को नष्ट कर देती है, न कि वादी और प्रतिवादी को। इसलिए राजा को धर्म का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। सभा में उपस्थित धर्माधिकार/न्यायाधिकरण के लोगों को यह चेतावनी है कि वे धर्म की हत्या न करें क्योंकि ऐसा करने पर नष्ट धर्म के द्वारा वे भी मारे जाएंगे।

**एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।**
**शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।184।।**

**अन्वयः**— एकः धर्मः एव (तादृशः) सुहृद् अस्ति (यः) निधने अपि अनुयाति। सर्वम् अन्यत् शरीरेण समं हि नाशं गच्छति।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**— धर्म ही एक ऐसा मित्र है जो इच्छित फल देने के लिए मरने पर भी पीछे जाता है। अन्य सभी पत्नी—पुत्र आदि सम्बन्ध तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। अतः धन और सम्बन्धियों के स्नेह से धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए।

**धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः**

**प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत्।।185।।**

**अन्वयः**— संवीताङ्गः धर्मासनम् अधिष्ठाय (च) समाहितः (भूत्वा सर्वेभ्यः) लोकपालेभ्यः प्रणम्य कार्यदर्शनम् आरभेत्।

**अर्थ / व्याख्या**— शरीर को ढक कर तथा न्यायासन पर बैठकर मन को एकाग्र करके सभी लोकपालों (इन्द्र, अग्नि, अर्यमा, यमराज, वरुण, वायु, कुबेर और शंकर) को प्रणाम करके प्रकरणों का अवलोकन राजा / न्यायाधिकारी (राजप्रतिनिधि) को करना चाहिए। राजा स्वयं आठ लोकपालों का स्वरूप होता है अतः उनकी शक्ति को प्रणामपूर्वक उसे निर्भीक व निष्पक्ष होकर न्याय करना चाहिए। मनु के ही शब्दों में—

*सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च*

*अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः।।*

(मनुस्मृति—5 / 96)

**अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ।**

**वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम्।।186।।**

**अन्वयः**— अर्थानर्थौ उभौ च केवलौ धर्माधर्मौ बुद्ध्वा कार्यिणाम् वर्णक्रमेण सर्वाणि कार्याणि पश्येत्।

**अर्थ / व्याख्या**— प्रजा की रक्षा के दायित्व को धारण करते हुए उचित और अनुचित दोनों तथा केवल धर्म और अधर्म को जानकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णों के क्रम से सभी अभ्यर्थियों के मामलों को देखना चाहिए। कुल्लूक भट्ट का वाक्य इस सन्दर्भ में—

***बहुवर्णमेलके तु ब्राह्मणादिक्रमेण पश्येत्।* (मनुस्मृति—टीका—8 / 24)**

**बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्।**

**स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च।।187।।**

**अन्वयः**— नृणाम् बाह्यैर्लिङ्गैः (यथा) स्वर—वर्णेङ्गिताकारैः चक्षुषा च चेष्टितेन (तेषाम्) अन्तर्गतं भावम् (नृपः) विभावयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**— लोगों के बाहरी चिह्नों, जैसे स्वर, वर्ण, संकेत, आकार, नेत्र और विभिन्न चेष्टाओं से राजा को उनके आन्तरिक भावों को जान लेना चाहिए अर्थात् स्वर में कंपन, चेहरे का काला पड़ जाना, नीचे देखना आदि इशारे, देह में पसीना आदि आकार संबंधी लक्षण मनुष्य के आन्तरिक भावों को प्रकट कर देते हैं।

**आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।**

**नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः।।188।।**

**अन्वयः**– आकारैः, इङ्गितैः, गत्या, चेष्टया च भाषितेन च नेत्रवक्त्र– विकारैः (मनुष्यस्य) अन्तर्गतं मनः गृह्यते (बुध्यते)।

टिप्पणी

**अर्थ/व्याख्या**– झुकना–अकड़ना–पसीना आना आदि आकार, बोलने के ढंग और आंखों तथा मुखाकृति में आने वाले बदलावों से मनुष्य के भीतरी भावों का ज्ञान हो जाता है।

**यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम्।**

**नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम्।।189।।**

**अन्वयः**– यथा मृगयुः मृगस्य असृक्पातैः (तस्य) पदं नयति तथा नृपतिः अनुमानेन धर्मस्य पदम् नयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस तरह से कोई शिकारी चोट खाए हिरण के गिरे हुए रक्त से उसके स्थान को जान जाता है वैसे अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाण आदि से धर्म के तत्त्व का निश्चय राजा को कर लेना चाहिए।

**सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः।**

**देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः।।190।।**

**अन्वयः**– व्यवहारविधौ स्थितः (नृपः) सत्यं च अर्थम्, आत्मानम् अथ साक्षिणः, देशं च रूपं च कालम् सम्पश्येत्।

**अर्थ/व्याख्या**– न्यायिक प्रकरणों (व्यवहारों) को देखते हुए राजा छल का परित्याग करके सत्य को देखे। धन से संबंधित मामलों को देखे, स्वयं की सामर्थ्य को देखते हुए आवश्यकता के अनुसार अन्य व्यक्तियों की सहायता भी ले, देश और काल के अनुरूप गवाहों की सत्यता की विवेचना भी करे।

## न्यायालय में साक्षियों का विवेचन (श्लोक 191–197)

(श्लोक क्रमांक 191 से 197 तक न्यायालय में साक्ष्य (गवाही) देने वाले के संबंध में राजा के लिए निर्देश हैं।)

**बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः।**

**समेषु तु गुणोत्कृष्टान्गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान्।।191।।**

**अन्वयः**– साक्षिद्वैधे (सति) नराधिपः बहुत्वं परिगृह्णीयात्, समेषु (साक्षिषु) तु गुणोत्कृष्टान् (गृह्णीयात्) (च) गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् गृह्णीयात्।

**अर्थ/व्याख्या**– जब दो प्रकार के साक्षी विरुद्ध कथन कर रहे हों तब राजा को बहुतों के द्वारा जो कहा गया हो उसे स्वीकार करना चाहिए। यदि दोनों प्रकार के साक्षियों की संख्या समान हो तब जिसका कथन अधिक गुणवान् हो उसे स्वीकार करना चाहिए। गुण के आधार पर भी दोनों के समान होने पर द्विजों में जो उत्तम अर्थात् क्रियावान् हों (केवल नाममात्र के द्विज न हों) उनके कथन को स्वीकार करना चाहिए।

**अत एव बृहस्पतिः – "गुणिद्वैधे क्रियायुक्ताः"**

(कुल्लूकभट्टीका मनुस्मृति 8–73)

टिप्पणी

**समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्धयति।**

**तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते।।192।।**

**अन्वयः**– समक्षदर्शनात् साक्ष्यं च श्रवणात् एव सिद्धयति। तत्र सत्यं ब्रुवन् साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते।

**अर्थ/व्याख्या**– आंखों से देखने योग्य वस्तु को देखने वाला और सुनने से श्रोता साक्षी सिद्ध होता है। अर्थात् किसी को कुछ कहते हुए सुनने वाला भी साक्षी कहा जाता है। दोनों ही स्थितियों में सत्य कहने वाला गवाह (साक्षी) धर्म और अर्थ की हानि नहीं प्राप्त करता। सत्य बोलने से उसके धर्म की हानि नहीं होती और असत्य न बोलने के कारण उसे आर्थिक दंड भी नहीं मिलता।

**जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भद्र! त्वया कृतम्।**

**तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा।।193।।**

**अन्वयः**– (हे) भद्र! त्वया जन्मप्रभृति यत् किञ्चित् सुकृतं कृतम्, यदि त्वम् अन्यथा ब्रूयाः, ते तत् सर्वं शुनः गच्छेद्।

**अर्थ/व्याख्या**– (साक्षी के बोलने से पहले उसे कहा जाना चाहिए कि) हे शुभ आचरण वाले! यदि तुम असत्य बोलोगे तो तुमने पैदा होने से लेकर आज तक जो भी पुण्य कमाए हैं वे सब कुत्ते आदि पशुओं को प्राप्त हों।

**एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण! मन्यसे।**

**नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः।।194।।**

**अन्वयः**– (हे) कल्याण। एकः (एव) अहम् अस्मि (इति) यत् त्वं मन्यसे (तद् उचितं नास्ति)। (यस्मात्) एषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः ते हृदि स्थितः।

**अर्थ/व्याख्या**– (साक्षी के प्रति यह भी कहने योग्य है कि) हे कल्याण–कामी! यदि तुम यह मानते हो कि तुम अकेले हो, तो यह ठीक नहीं क्योंकि पुण्य और पाप का साक्षी सर्वज्ञ मुनि (परमात्मा) तुम्हारे हृदय में नित्य विराजमान है।

**मननान्मुनिः सर्वज्ञस्तव हृदये परमात्मा नित्यमवस्थितः।**

(कुल्लूकभट्टीका मनुस्मृति 8–91)

***सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः।*** (भगवद्गीता)

**यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः।**

**तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः।।195।।**

**अन्वयः**– तव हृदि यः एषः यमः वैवस्वतः देवः स्थितः, चेत् तेन (सह) ते अविवादः तर्हि मा गङ्गां च मा कुरून् गमः।

**अर्थ/व्याख्या**– (सत्य–साक्षी के प्रति यह प्रशंसा वाक्य है कि) यदि तुम्हारे हृदय में सबका संयमन करने वाला जो दण्डधारी (वैवस्वत) परमात्मा है, यदि तुम्हारा

उसके साथ कोई विवाद नहीं (दोनों एक ही सत्य से जुड़े हैं) तब (अपने पाप धोने के लिए) तुम्हें न गंगा जाना है, न कुरुक्षेत्र। गंगा और कुरुक्षेत्र को पापक्षालन के लिए मत्स्यपुराण में एक समान बताया गया है–

टिप्पणी

*कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता।*

**अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं वजेत्।**

**यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन् धर्मनिश्चये।।196।।**

**अन्वयः**– यः धर्मनिश्चये प्रश्नं पृष्टः सन् वितथम् (उत्तरम्) ब्रूयात् (सः) किल्बिषी अन्धे तमसि अवाक्शिराः नरकं व्रजेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– (साक्षी को सत्य बोलने के लिए प्रेरित करने के लिए शास्त्रवचन) जो साक्षी प्रश्न पूछे जाने पर असत्य उत्तर देता है, वह पापी महान्धकार में स्थित नरक को अधोमुख होकर प्राप्त करता है।

**यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।**

**तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः।।197।।**

**अन्वयः**– यस्य (साक्षिणः) वदतः क्षेत्रज्ञः विद्वान् न अभिशङ्कते तस्मात् (पुरुषात्) देवाः लोके अन्यं पुरुषं श्रेयांसं न विदुः।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस (साक्षी) पुरुष के बोलने पर, 'यह झूठ कह रहा है या सच' ऐसा संदेह सर्वान्तर्यामी परमात्मा को नहीं होता, देवता उससे अधिक श्रेययुक्त किसी अन्य पुरुष को नहीं जानते (और उस पर प्रसन्न होते हैं)। अतः देवों की कृपा से वंचित न होने के लिए साक्षी को सत्य धर्म पर टिके रहना चाहिए।

## राजा के दण्ड विधान की विवेचना (श्लोक संख्या 198–204)

श्लोक क्रमांक 198 से 204 तक राजा के दण्ड विधान की विवेचना की गई है।

**उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः।**

**ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः।।198।।**

**अन्वयः**– यः (जनः) उपधाभिः कश्चित् परद्रव्यं हरेत् सः ससहायः प्रकाशं विविधैः वधैः हन्तव्यः।

**अर्थ/व्याख्या**– जो व्यक्ति मिथ्या भय, धन–धान्य आदि के लोभ का छल करके किसी भी बहाने से दूसरे के धन को ले लेता है, उसे उसके धोखे में सहायकों सहित विभिन्न वध के उपायों से राजा के द्वारा खुले में मरवा देना चाहिए।

*छद्मधनसहकारसहितो बहुजनसमक्षं*

*कर–चरणश्छेदादिभिर्नानाप्रकारैर्वधोपायै राज्ञा हन्तव्यः।*

(कुल्लूकभट्टटीका मनुस्मृति 8–193)

**आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन् यथाभाषितमादितः।**

**स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम्।।199।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**— आर्तः (तु) पुनः स्वस्थः सन् आदितः यथाभाषितं (कर्म) करोति सः दीर्घस्य कालस्य अपि तत् वेतनं लभेत एव।

**अर्थ / व्याख्या**— रोगी होने के कारण जो कार्य करने में असमर्थ हो गया था किंतु स्वस्थ होने के पश्चात् पहले कहे गए निर्देश के अनुसार कर्म करता है, तब उस सेवक को लम्बे समय के अवकाश का भी वेतन मिलना चाहिए।

**यो ग्रामदेशसङ्घानां कृत्वा सत्येन संविदम्।**
**विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्।।200।।**

**अन्वयः**— यः नरः ग्रामदेशसङ्घानां सत्येन संविदं कृत्वा लोभात् विसंवदेत्, (तं नरं नृपः) राष्ट्राद् विप्रवासयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**— जो व्यक्ति गांव या देश के साथ कोई अनुबंध सत्य की शपथ के साथ करके उसे बाद में लोभ के कारण निभाने से मना कर दे, ऐसे व्यक्ति को राजा 'देश निकाला' का दंड दे।

**काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम्।**
**तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम्।।201।।**

**अन्वयः**— (कमपि) काणम् अथवा अन्यं खञ्जं अपि वा तथाविधम् (कमपि अङ्गविकारयुक्तं) तथ्येन अपि ब्रुवन् कार्षापणावरम् दण्डं (राज्ञा) दाप्यः।

**अर्थ / व्याख्या**— किसी को काना या लंगड़ा अथवा किसी अन्य विकलांग को उसके दोषयुक्त शब्द से सच में कहने पर भी एक तांबे के पैसे का मामूली आर्थिक दण्ड लगाया जाए। दण्ड का विधान अपराधबोध के लिए आवश्यक है।

**वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा।**
**तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा।।202।।**

**अन्वयः**— यथा–यथा वनस्पतीनाम् सर्वेषां उपभोगः हिंसायाम् (कश्चित् कुर्यात्) तथा तथा दमः कार्यः, इति धारणा।

**अर्थ / व्याख्या**— वृक्ष आदि वनस्पतियों के उपभोग में हिंसा की मात्रा के अनुसार दण्ड दिया जाना चाहिए। फलों को पाने के लिए वृक्ष को काटने पर उत्तम दण्ड, फूलों को पाने के लिए मध्यम दण्ड और लताओं को काटने पर सौ तांबे के पैसे का कम से कम दण्ड तथा घास उखाड़ने पर एक पैसे का दण्ड बताया गया है।

**मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति।**
**यथा यथा महद् दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा।।203।।**

**अन्वयः**— मनुष्याणां च पशूनां दुःखाय प्रहृते सति यथा–यथा दुःखं महत् तथा–तथा महत् दण्डं कुर्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**— मनुष्यों और पशुओं को दुख पहुंचाने के लिए प्रहार करने पर जितनी अधिक पीड़ा पहुंचाई गई हो उतना ही दुखदायक दण्ड भी होना चाहिए।

**परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः।**

**स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते।।204।।**

**अन्वयः**– स्तेनानां निग्रहे नृपः परमं यत्नम् आतिष्ठेत् (यतः) स्तेनानां निग्रहात् अस्य (नृपस्य) यशः च राष्ट्रम् (अपि) वर्धते।

**टिप्पणी**

**अर्थ/व्याख्या**– चोरों को पकड़ने में राजा को उत्कृष्ट (प्रजा को सन्तोषप्रद) प्रयास करने चाहिए क्योंकि चोरों के पकड़े जाने से उस राजा का यश तो बढ़ता ही है, साथ ही राष्ट्र का विकास भी होता है। इसके विपरीत चोर–डाकुओं से त्रस्त प्रजा हानि को सहते हुए निरंतर क्षीण होती है तथा परिश्रम से लाभ को प्राप्त करने में असमर्थ रहती है।

**अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः।**

**सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम्।।205।।**

**अन्वयः**– यः नृपः अभयस्य दाता (भवति) सः नृपः सततं पूज्यः भवति (च) तस्य अभय–दक्षिणं सत्रं वर्धते हि।

**अर्थ/व्याख्या**– चोर–डाकू आदि से रक्षा की व्यवस्था करके सज्जनों को अभय का दान करने वाला निरंतर पूज्य होता है, आदर प्राप्त करता है। चोरों को पकड़ने वाली अभय की दक्षिणा से युक्त उसका राज्य रूपी यज्ञ–सत्र बढ़ता ही रहता है, अर्थात् उसके राज्य की वृद्धि और विकास होते रहते हैं।

**सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः।**

**अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः।।206।।**

**अन्वयः**– रक्षतः राज्ञः सर्वतः धर्मषड्भागः भवति, अस्य अरक्षतः हि अधर्मात्ः अपि षड्भागः भवति।

**अर्थ/व्याख्या**– जो राजा सज्जनों की रक्षा के कर्तव्य का पालन करता है उसे सबसे (ब्राह्मण, व्यापारी आदि से) उनके धर्म का छठा भाग प्राप्त होता है और जो सज्जनों की रक्षा के कर्तव्य का पालन नहीं करता उसे सबसे उनके अधर्म का ही छठा भाग मिलता है।

**यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति।**

**तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात्।।207।।**

**अन्वयः**– (प्रजासु यः कोऽपि) यद् अधीते, यद् यजते, यद् द्दाति, (च) यद् अर्चति तस्य रक्षणात् (तस्य सर्वस्य सुकृतस्य) राजा षड्भागभाग् सम्यग् भवति।

**अर्थ/व्याख्या**– प्रजाजनों के द्वारा अध्ययन, यज्ञ, दान अथवा पूजा का जो भी सत्कर्म होता है, उन–उन सत्कर्मों की रक्षा करने से उन पुण्य कर्मों के छठे भाग का अधिकारी राजा होता है। राज्य में सुरक्षा के वातावरण के अभाव में ये सत्कर्म होना संभव नहीं, अतः इन पुण्य फलों पर राजा का अधिकार न्यायतः सिद्ध भी है।

**रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन्।**

**यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः।।208।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**– धर्मेण भूतानि रक्षन् वध्यांश्च घातयन् राजा अहरहः सहस्रशतदक्षिणैः यज्ञैः यजते।

**अर्थ/व्याख्या**– धर्मपूर्वक अर्थात् दण्ड–नीति के निर्वाह द्वारा राज्य की संपत्तियों और प्राणियों की रक्षा करते हुए तथा चोरों आदि को दंड देते हुए राजा प्रतिदिन लाखों गायों के दान की दक्षिणा के समान यज्ञों के पुण्य फल को प्राप्त करता है–

*प्रत्यहं लक्षगोदक्षिणैर्यज्ञैर्यजते, तज्जन्यं पुण्यं प्राप्नोतीति भावः।*

(कुल्लूकभट्टटीका मनुस्मृति 8–306)

**क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम्।**

**बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः।।209।।**

**अन्वयः**– क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् च बालवृद्धातुराणां आत्मनः हितं कुर्वता प्रभुणा क्षन्तव्यम्।

**अर्थ/व्याख्या**– मुकदमे में उपस्थित वादी प्रतिवादी बालक, वृद्ध और रोगियों के आक्षेपों को अपना हित चाहने वाले राजा को नित्य सह लेना चाहिए। अर्थात् उनके आक्षेपों से विचलित हुए बिना उसे ठीक प्रकार से न्याय करना चाहिए, इसी में उसका हित है। ठीक प्रकार से न्याय करने वाले राजा की तत्पश्चात् प्रशंसा ही होती है।

**शासनाद्वाविमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।**

**अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम्।।210।।**

**अन्वयः**– शासनाद् वा विमोक्षाद् वा स्तेनः स्तेयाद् विमुच्यते (किम्+) तु तम् अशासित्वा राजा स्तेनस्य किल्बिषम् आप्नोति।

**अर्थ/व्याख्या**– चोर को दण्ड देने से अथवा उसे न्याय प्रक्रिया के अन्तर्गत छोड़ने के बाद चोर चोरी के अपराध से मुक्त हो जाता है। किंतु उस पर दयाभाव लाकर उसे दण्डित न करने से चोर का पाप राजा को प्राप्त होता है। कुल्लूक भट्ट के अनुसार चोर को बहुत अधिक पीटने के पश्चात् जब वह मरे हुए के समान हो जाता है, तब उसे छोड़ देने के बाद चोर का पाप समाप्त हो जाता है–

*सकृन्मुसलादिप्रहारेण प्राणपरित्याजनान्मृतकल्प स्यजीवतोऽपि परित्यागाद्वा स चौरस्तस्मात् पापात् प्रमुच्यते। अत एव याज्ञवल्क्य :–*

*मृतकल्पः प्रहारार्तो जीवन्नपि विशुद्धयति।*

(याज्ञ.स्मृति–3–248)

(कुल्लूकभट्टटीका मनुस्मृति 8–316)

**येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।**

**तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः।।211।।**

**अन्वयः**– स्तेनः येन येन यथा अङ्गेन नृषु विचेष्टते, पार्थिवः प्रत्यादेशाय तस्य तत् तत् एव (अङ्गं) हरेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– हाथ–पैर आदि जिन–जिन अंगों का प्रयोग करके चोर सेंध लगाकर चोरी करता है उस–उस अंग को राजा कटवा डाले, ताकि वह पुनः उस कार्य को न कर पाए। चोरी के सामान के मूल्य के अनुसार इस दण्ड में कमी अथवा अधिकता हो सकती है, ऐसी कुल्लूक भट्ट की टिप्पणी (मनु. 8/334) है।

टिप्पणी

**पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।**

**नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।212।।**

**अन्वयः**– पिता, आचार्यः, सुहृद्, माता, भार्या, पुत्रः, पुरोहितः (एतेषु कोऽपि) यः स्वधर्मे न तिष्ठति, सः राज्ञा अदण्ड्यः नाम न अस्ति।

**अर्थ/व्याख्या**– पिता, आचार्य आदि में से कोई भी यदि अपने धर्म का उल्लंघन करके अपराध करता है तो उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसे राजा दण्ड न दे सके अर्थात् राजा को किसी भी प्रकार के अपराधी को दण्ड देने का अधिकार है।

**गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।**

**आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।।213।।**

**अन्वयः**– आततायिनं गुरुं वा (आततायिनौ) बालवृद्धौ वा बहुश्रुतं ब्राह्मणं वा आयान्तं (दृष्ट्वा) अविचारयन् हन्यात् एव।

**अर्थ/व्याख्या**– (मार डालने के लिए आते हुए) आततायी गुरु को, बालक को, वृद्ध को अथवा बहुत विद्वान् ब्राह्मण को भी बिना विचार किए मार डालना चाहिए। आततायी को मारने में दोष नहीं होता–

*नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।* (मनु. 8/351)

**न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति।**

**त्यजन्नापतितानेतान्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्।।214।।**

**अन्वयः**– न माता, न पिता, न स्त्री (च) न पुत्रः त्यागम् अर्हति। एतान् अपतितान् त्यजन् राज्ञा शतानि षट् दण्डयः भवति। (त्यजन् + अपतितान् + एतान् + राज्ञा)

**अर्थ/व्याख्या**– माता, पिता, पत्नी और पुत्र का त्याग नहीं किया जा सकता। यदि ये पतित नहीं हों और फिर भी कोई इनका त्याग कर रहा हो तो उस पर छह सौ स्वर्ण मुद्राओं का दण्ड राजा के द्वारा लगाया जाना चाहिए। ऊपर बताए गए माता–पिता आदि में से एक–एक के लिए यह दण्ड राशि है।

**अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः।**

**श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम्।।215।।**

**अन्वयः**– अन्धः, जड़ः, पीठसर्पी, यः च सप्तत्या स्थविरः च श्रोत्रियेषु उपकुर्वन् (जना) केनचित् करं न दाप्याः।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– जो अन्धा हो, बहरा हो, लंगड़ा हो, सत्तर वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो अथवा वेदज्ञ ब्राह्मणों की सेवा धन–धान्य से कर रहा हो ऐसे व्यक्ति पर किसी भी राजा के द्वारा (भले ही राजकोष में कमी हो) कर नहीं लगाया जाना चाहिए। **'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्'** नियम से 'सप्तति' शब्द में तृतीया का प्रयोग हुआ है।

**श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम्।**

**महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा।।216।।**

**अन्वयः**– श्रोत्रियं च व्याधितार्तौ, बालवृद्धौ, अकिञ्चनम्, च महाकुलीनम् आर्यम् राजा सदा सम्पूजयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– विद्याविचार सम्पन्न ब्राह्मण, रोगी, पुत्रादि की मृत्यु से व्याकुल, बालक, वृद्धजन, दरिद्र और महान कुल में उत्पन्न दयालु आचरण वाले व्यक्ति की राजा द्वारा दान–मान आदि से पूजा की जानी चाहिए।

**राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च।**

**तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः।।217।।**

**अन्वयः**– राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि च यानि प्रतिषिद्धानि (वस्तूनि भवेयुः) तानि लोभात् निर्हरतः नृपः सर्वहारं हरेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– राजा से संबंधित जिन बेचने योग्य वस्तुओं को बाहर ले जाने पर प्रतिषेध लगाया गया हो, उन वस्तुओं को यदि कोई लालच के कारण बाहर ले जा रहा हो (निर्यात कर रहा हो) ऐसे व्यक्ति का सर्वस्व राजा को छीन लेना चाहिए। जैसे अकाल की स्थिति में अनाज को अन्य देश ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा हो और कोई व्यापारी अनाज को देशान्तर ले जा रहा हो तो उसका सर्वस्व हरण राजा के द्वारा अपेक्षित है–

***यथा दुर्भिक्षे धान्यं देशान्तरं न नेयम् इति तानि लोभाद् देशान्तरं नयतो वणिजः सर्वहरणं राजा कुर्यात्।*** (कुल्लूकभट्ट–टीका मनुस्मृति 399–8)

**शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी।**

**मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम्।।218।।**

**अन्वयः**– शुल्कस्थानम् (शुल्कग्रहणाय निर्धारितं प्रहरिस्थलम्) परिहरन् (जनः) अकाले क्रयविक्रयी, च सङ्ख्याने मिथ्यावादी अत्ययम् अष्टगुणम् दाप्यम्।

**अर्थ / व्याख्या**– कर बचाने के लिए रास्ता बदल कर जाते हुए, निषिद्ध समय (रात्रि आदि) में खरीद–बेच करते हुए और कर बचाने के लिए वस्तुओं की मात्रा / गिनती कम बताते हुए व्यक्ति पर, जितने की बचत कर रहा हो उससे आठ गुना आर्थिक दंड लगाया जाना चाहिए।

**तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्।**

**षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्।।219।।**

**अन्वयः**– तुलामानम् च प्रतीमानं सर्वं सुलक्षितं स्यात् च षट्सु–षट्सु मासेषु (नृपतिः सभ्यपुरुषैः) पुनः एव परीक्षयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– सोना आदि तौलने की छोटी तुला अथवा अनाज आदि तौलने की बड़ी तराजू और उनके बाट आदि स्पष्ट दिखने चाहिए। हर छह महीने में निरीक्षकों द्वारा राजा को उनकी परख करवानी चाहिए ताकि कोई बेईमानी करके लोगों को अधिक मूल्य में कम वस्तु न बेचे।

टिप्पणी

## गृहलक्ष्मी की गरिमा व उसकी उपादेयता (220–224)

श्लोक क्रमांक 220 से 224 तक स्त्री अर्थात् गृहलक्ष्मी की गरिमा एवं उसकी उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है।

**अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैवं नियोजयेत्।**

**शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे।।220।।**

**अन्वयः**– अर्थस्य सङ्ग्रहे च व्यये, शौचे, धर्मे, अन्नपक्त्यां, पारिणाह्यस्य च वेक्षणे एनां (धर्मपत्नीं) नियोजयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– (पति के द्वारा) धन की बचत और खर्च, धन की और शरीर की पवित्रता, यज्ञ आदि धर्मकार्यों, भोजन पकाने और घर के उपकरणों (सुख–सुविधा–साधनों) की देखभाल में धर्मपत्नी को नियुक्त किया जाना चाहिए।

**प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।**

**स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।।221।।**

**अन्वयः**– (एताः स्त्रियः) प्रजनार्थं महा–भागाः, पूजार्हाः च गृहदीप्तयः (भवन्ति अतः) गेहेषु स्त्रियः च श्रियः अनयोः (पक्षयोः) कश्चन् विशेषः न (अस्ति)।

**अर्थ / व्याख्या**– सन्तानोत्पत्ति के कारण ये (स्त्रियां) महान उपकारिणी तथा कल्याण रूपिणी होती हैं–

***एताः स्त्रियो महोपकाराः गर्भोत्पादनार्थं बहुकल्याणभाजभूताः... /***

(कुल्लूकभट्टटीका मनु. 9–26)

वस्त्र, अलंकार आदि के द्वारा इनका सम्मान किया जाना चाहिए। घर की शोभा होने से घरों में स्त्रियां और लक्ष्मियां इन दोनों में कोई अंतर नहीं है।

**उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।**

**प्रत्यहं लोकयात्रायां प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।।222।।**

**अन्वयः**– अपत्यस्य उत्पादनम्, जातस्य अपत्यस्य परिपालनम् (च) प्रत्यहं लोकयात्रायाः (प्रवर्तनम्) प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।

**अर्थ / व्याख्या**– संतान का जन्म, जन्म के पश्चात् संतान का पालन और प्रतिदिन अतिथि–भोजन आदि गृहस्थ के कर्तव्यों के लिए भार्या ही प्रत्यक्ष आश्रय अथवा समाधान है अर्थात् जीवन यात्रा के ये आवश्यक दायित्व भार्या की सहायता से सुसम्पन्न होते हैं, अतः जहां ये स्त्री के कर्तव्य हैं वहीं गृहस्थाश्रम का आधार होने से सम्माननीय भी हैं।

**एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह।**

**विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना।।223।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**– जाया, आत्मा, प्रजा इति ह यत् पुरुषः एतावान् एव भवति तथा च विप्राः प्राहुः एतद् यः भर्ता सा (एव) अङ्गना स्मृता।

**अर्थ/व्याख्या**– पत्नी, स्वयं और सन्तान–इन तीनों से ही पुरुष की सीमा है। अर्थात् इन तीनों को मिलाकर ही पुरुष पूर्ण होता है। इसी तरह ब्राह्मणों का यह भी कथन है कि यह जो पति है वही पत्नी भी है। अर्थात् दोनों एक दूसरे से ही पूर्णता प्राप्त करते हैं। ऐसा ही वाजसेनयब्राह्मणम् में भी कहा गया है–

***अर्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद् यज्जायां न विन्दते नैतावत् प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति, अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति तथा चैतद् वेदविदो विप्रा वदन्ति यो भर्ता सैव भार्या स्मृता।***

**अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।**

**एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः।।224।।**

**अन्वयः**– अन्योऽन्यस्य आमरणान्तिकः (यदि) अव्यभिचारः (भवेत्, तदा) एषः स्त्रीपुंसयोः परः धर्मः समासेन ज्ञेयः।

**अर्थ/व्याख्या**– पति और पत्नी का मरने तक परस्पर अव्यभिचारात्मक सम्बन्ध ही उन दोनों का सर्वोत्कृष्ट धर्म है अर्थात् दोनों किसी अन्य से प्रेम प्रसंगादि में लिप्त न हों। पुरुष के लिए अन्य स्त्री से और पत्नी के लिए अन्य पुरुष से सम्बन्ध अधर्म है। अतः स्व–धर्मरक्षार्थ इन्हें अन्य के प्रति आकर्षण का त्याग करना चाहिए।

## कौटुम्बिक व्यवहार (श्लोक 225 से 229)

(श्लोक क्रमांक 225 से 229 तक कौटुम्बिक व्यवहार का वर्णन किया गया है।)

**पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः।**

**पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः।।225।।**

**अन्वयः**– ज्येष्ठः (भ्राता) यवीयसः (भ्रातॄन्) पिता इव पालयेत् (च यवीयांसः भ्रातरः) ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः (तस्य) पुत्रवत् वर्तेरन्।

**अर्थ/व्याख्या**– सबसे बड़े भाई का कर्तव्य है (परिवार में बंटवारा न हुआ हो तो) बड़ा भाई छोटे भाई–बहनों का पिता के समान पालन करे और छोटे–भाई बहन भी बड़े भाई का वैसे ही सम्मान करें जैसे पुत्रों को पिता का करना चाहिए।

**ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।**

**ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः।।226।।**

**अन्वयः**– ज्येष्ठः भ्राता कुलं वर्धयति वा पुनः विनाशयति (अपि), लोके ज्येष्ठः पूज्यतमः (च) साधुभिः अगर्हितः।

**अर्थ/व्याख्या**– सबसे बड़ा भाई यदि सदाचारी होता है तो वह कुल को बढ़ाने वाला होता है, क्योंकि छोटे भाई–बहन भी उसी का अनुसरण करते हैं, किंतु दुराचारी

होने पर वह कुल का विनाशकर्ता भी होता है। ज्येष्ठ (अपने ज्येष्ठ होने के कारण ही) सबसे अधिक पूज्य होता है, अतः उसे अपने पूज्यतम होने का सम्मान करते हुए अपने कर्तव्यों का ठीक प्रकार निर्वाह करना चाहिए।

टिप्पणी

**पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।**

**अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्।।227।।**

**अन्वयः**– (पुरुषः) पुत्रेण (पुत्र–प्राप्त्या) लोकान् जयति, पौत्रेण अनन्त्यम् अश्नुते, अथ (च) पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्य विष्टपम् आप्नोति।

**अर्थ/व्याख्या**– 'पुं' नामक नरक से रक्षा के कारण पुत्र का जन्म होता है, अतः पुत्र जन्म से ही पुरुष स्वर्गादि लोकों पर विजय प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् 'पौत्र' का जन्म होने से उन स्वर्ग आदि श्रेष्ठ लोकों में अनन्तकाल तक निवास करता है। इससे भी बढ़कर पुत्र के यहां भी पौत्र का जन्म होने पर 'ब्रध्न' अर्थात् सूर्य के लोक को प्राप्त करता है।

**पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।**

**तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा।।228।।**

**अन्वयः**– यस्मात् सुतः पितरं पुंनाम्नः नरकात् त्रायते तस्मात् (सः) स्वयं स्वयम्भुवा पुत्रः इति प्रोक्तः।

**अर्थ/व्याख्या**– पुत्र अपने जन्म के द्वारा ही पिता की रक्षा पुं नामक नरक से करता है इसलिए सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने उसे 'पुत्र' नाम दिया है।

**यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम्।**

**तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः।।229।।**

**अन्वयः**– कुप्लवैः जलं सन्तरन् (कश्चिद्) यादृशं फलम् आप्नोति, कुपुत्रैः तमः सन्तरन् (जनः) तादृशम् (एव) फलम् आप्नोति।

**अर्थ/व्याख्या**– केवल पुत्र होना ही कल्याणकारक नहीं होता, अपितु पुत्र को सुपुत्र भी होना चाहिए, अतः कहा जा रहा है कि जिस तरह घास–फूस आदि से बनाई गई नौका से नदी पार जाने की कोशिश का बुरा परिणाम होता है, अर्थात् पार जाने का इच्छुक डूब जाता है वैसी ही दशा कुपुत्रों के द्वारा नरक के अंधकार से पार पाने के प्रयास में होती है। कुपुत्रों के कारण पुरुष पारलौकिक दुख को पाता है–

***तथाविधमेव कुपुत्रैः क्षेत्रजादिभिः पारलौकिकं दुःखं दुस्तरं प्राप्नोति।***

(कुल्लूक भट्ट–मनु. 9/161)

## राज्य में जुए का निषेध (श्लोक 230–233)

(श्लोक क्रमांक 230 और 233 में राज्य में जुए का निषेध किया गया है।)

**द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्।**

**राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्।।230।।**

**अन्वयः**– राजा राष्ट्रात् द्यूतं च समाह्वयम् राष्ट्रात् निवारयेत् एव, पृथिवीक्षिताम् (कृते) एतौ द्वौ दोषौ राजान्तकरणौ (स्तः)।

**टिप्पणी**

**अर्थ / व्याख्या**– द्यूत और समाह्वय (इनके लक्षण श्लोक 232 में) इन दोनों को राजा के द्वारा राष्ट्र से निकाला ही जाना चाहिए। क्योंकि ये दोनों ही दोष राजाओं के राज्य का विनाश करने वाले होते हैं।

**प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद् देवनसमाह्वयौ।**

**तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत्।।231।।**

**अन्वयः**– देवन–समाह्वयौ यत् एतत् प्रकाशं तास्कर्यम् एव (अस्ति तस्मात्) नित्यं तयोः प्रतीघाते नृपतिः यत्नवान् भवेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– जुआ (द्यूत) और समाह्वय ये दोनों तो साफतौर पर चोरी ही हैं, इसलिए राजा को इनके विनाश के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

**अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते।**

**प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः।।232।।**

**अन्वयः**– लोके (यत्) अप्राणिभिः क्रियते तत् द्यूतम् उच्यते (परं) यः तु प्राणिभिः क्रियते सः समाह्वयः विज्ञेयः।

**अर्थ / व्याख्या**– पांसे, शलाका आदि निष्प्राण वस्तुओं (जड़–पदार्थों) के द्वारा जो पण किया जाता है (दांव लगाया जाता है) वह दुनिया में 'द्यूत' के नाम से कहा जाता है। जबकि भेड़, मुर्गा आदि जीवित प्राणियों के द्वारा जो दांव लगाया जाता है वह समाह्वय कहा जाता है। (दो मुर्गों को लड़वाकर या दो भेड़ों को लड़वाकर दांव लगाना समाह्वय के उदाहरण हैं।)–

***प्राणिभिर्मेषकुक्कुटादिभिः पणपूर्वकं क्रियते समाह्वयो ज्ञेयः।***

(कुल्लूक भट्ट–मनुस्मृति–9 / 223)

**द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत्।**

**तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।।233।।**

**अन्वयः**– एतत् द्यूतं पुरा कल्पे महत् वैरकरं दृष्टम्, तस्मात् बुद्धिमान् हास्यार्थमपि द्यूतं न सेवेत।

**अर्थ / व्याख्या**– जुए को प्राचीन कल्प से ही महान शत्रुता के कारण के रूप में देखा गया है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को परिहास में भी जुआ नहीं खेलना चाहिए।

## राजा के लिए धर्माचरण (श्लोक 234–237)

(श्लोक क्रमांक 234 से 237 में राजा को धर्म द्वारा विहित आचरण करने का निर्देश दिया गया है)

**ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः।**

**ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः।।234।।**

**अन्वयः**– दण्डस्य ईशः वरुणः (अस्ति) (च) सः हि राज्ञाम् (अपि) दण्डधरः वेदपारगः ब्राह्मणः सर्वस्य जगतः ईशः।

**अर्थ/व्याख्या**– दण्ड विधान के शासक वरुण देवता हैं, अतः वे अन्यायी राजा को भी दंडित कर सकते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण सारे जगत का स्वामी है अतः राजा को उससे धर्माचरण सीखना चाहिए।

टिप्पणी

**यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे।**

**अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः।।235।।**

**अन्वयः**– अवध्यस्य वधे यावान् अधर्मः नृपतेः दृष्टः तावान् वध्यस्य मोक्षणे अपि (अधर्म दृष्टः), (वध्याय दण्डम्) विनियच्छतः (एव नृपतेः) धर्मः।

**अर्थ/व्याख्या**– मनुस्मृति का यह श्लोक (9/245) अपने से पूर्व उन दो श्लोकों (243, 244) के क्रम में है जिनमें कहा गया है कि महापापी का धन राजा को नहीं लेना चाहिए अपितु उसका धन या तो जल के देवता वरुण को अर्पण करते हुए नदी आदि के जल में डाल देना चाहिए अथवा वेद के विद्वान सदाचारी ब्राह्मण को दे देना चाहिए। यदि राजा स्वयं दण्डस्वरूप उस धन को लेगा तो वह उस पापी के पाप से जुड़ जाएगा। इसका कारण बताते हुए प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि दंड का स्वामी जल देवता वरुण है और राजाओं पर भी वही दण्ड धारण करता है जबकि वेद में पारंगत ब्राह्मण सारे जगत् का स्वामी होता है। अतः राजा को केवल अधर्मी को ही दंडित करना चाहिए।

जो धर्म के योग्य नहीं है उसका वध करने में राजा का जितना अधर्म (पाप) शास्त्र में बताया गया है उतना ही अधर्म वध के योग्य व्यक्ति को छोड़ने में बताया गया है। वध के योग्य व्यक्ति का वध कर देना ही राजा का धर्म है, अतः धर्म का पालन करते हुए राजा का कर्तव्य है कि वह वध्य का वध अवश्य करे।

**एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः।**

**देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत्।।236।।**

**अन्वयः**– एवं सम्यक् कार्याणि कुर्वन् महीपतिः अलब्धान् देशान् लिप्सेत, च लब्धान् परिपालयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– इस प्रकार न्यायमार्ग पर चलते हुए राजा को ही अन्य राज्यों पर विजय पाने की इच्छा करनी चाहिए और अपने अधीन राज्यों की रक्षा करनी चाहिए।

**निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम्।**

**तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः।।237।।**

**अन्वयः**– यस्य (नृपतेः) बाहुबलाश्रितं राष्ट्रं निर्भयं भवेत् तस्य तद् (राष्ट्रं) सिच्यमानः द्रुमः इव नित्यं वर्धते।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस राजा के बाहुबल के प्रभाव से राष्ट्र चोर–डाकू आदि अपराधियों के भय से मुक्त होता है, उसका वह राष्ट्र सींचे जाते हुए वृक्ष के समान सदा विकसित होता है। यहां उत्प्रेक्षा अलंकार है।

## अपराधियों के लिए दण्ड व्यवस्था (श्लोक 238–250)

(श्लोक क्रमांक 238 से 250 में चोरों, ठगों, धोखेबाजों, घूस लेने वालों आदि को दण्डित किए जाने के सम्बन्ध में राजा को निर्देश दिए गए हैं।)

टिप्पणी

**द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्।**

**प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः।।238।।**

**अन्वयः**– प्रकाशान् च अप्रकाशान् द्विविधान् परद्रव्यापहारकान् तस्करान् चारचक्षुः महीपतिः विद्यात्।

**अर्थ/व्याख्या**– दूसरों का धन हरण करने वाले तस्कर (चोर) दो प्रकार के होते हैं, प्रकट और अप्रकट। इन दोनों प्रकार के तस्करों की गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले राजा को भली–भांति पहचान लेना चाहिए।

**प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः।**

**प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः।।239।।**

**अन्वयः**– तेषां प्रकाशवञ्चकाः नानापण्योपजीविनः, प्रच्छन्नवञ्चकाः तु एते ये स्तेनाटविकादयः।

**अर्थ/व्याख्या**– उन (दो प्रकार के प्रकट और अप्रकट तस्करों) में से प्रकट तस्कर तो वे हैं जो तराजू के बाटों से ठगी करके सोना अनाज आदि का बताए गए मूल्य से अधिक ग्रहण कर लेते हैं। दूसरे प्रकार के प्रच्छन्न छिपे हुए वे तस्कर हैं जो जंगल आदि में छिप जाने वाले चोर–डाकू, ठग आदि हैं।

**उत्कोचकाश्चौपाधिका वञ्चकाः कितवास्तथा।**

**मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह।।240।।**

**असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः।**

**शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः।।241।।**

**एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशांल्लोककण्टकान्।**

**निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः।।242।।**

**अन्वयः**– उत्कोचकाः औपाधिकाः च वञ्चकाः तथा कितवाः च मङ्गलादेशवृत्ताः च भद्राः ईक्षणकैः सह, असम्यक् कारिणः च एव, महामात्राः, चिकित्सकाः, शिल्पोपचारयुक्ताः च निपुणाः पण्ययोषितः–एवम् आदीन् प्रकाशान् लोककण्टकान्, निगूढचारिणः च अन्यान् आर्यलिङ्गिनः अनार्यान् विजानीयात्।

**अर्थ/व्याख्या**– कार्यार्थियों से घूस लेने वाले उत्कोच ग्राही, राजभय–आरक्षि भय आदि भय दिखाकर धन लेने वाले औपाधिक, सोना आदि दिखाकर दूसरी वस्तु देकर ठगने वाले वञ्चक, जुआ–समाह्वय के द्वारा लूटने वाले कितव, धन–पुत्र लाभ का झांसा देकर धन लेने वाले मंगलादेशवृत्त, कल्याणकारी भेष बनाकर छिपकर पाप करने वाले और धन कमाने वाले भद्र, हस्तरेखा देखने आदि के बहाने से मूर्ख बनाकर पैसा लूटने वाले ईक्षणिक, महावत (हाथी की देखभाल करने वाले), हस्ती–शिक्षा के जानकार

होकर धोखा देने वाले महामात्र, चिकित्सा के द्वारा जीविका चलाने वाले ढोंगी चिकित्सक (महावतों और चिकित्सकों के लिए असम्यक्–कारी विशेषण का प्रयोग किया गया है), शिल्प और चित्रकारी के उपाय से जीविका चलाने वाले (जो शिल्प आदि से कुछ उपाय बताकर धन लूटते हैं), दूसरों को वश में करने में निपुण पण्यस्त्रियां (वेश्याएं) इत्यादि जो दुनिया को छलने वाले और ब्राह्मण का वेश धारण करने वाले शूद्र आदि जो अन्य छद्मचारी हैं।

टिप्पणी

**तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः।**

**चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत्।।243।।**

**अन्वयः**– तान् सुचरितैः गूढैः तत्कर्म–कारिभिः, अनेकसंस्थानैः च चारैः विदित्वा प्रोत्साद्य वशम् आनयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– उल्लिखित छली–प्रपंची अपराधियों को उस–उस क्षेत्र के सुचारित लोगों (अच्छे व्यापारी, चिकित्सक आदि) के द्वारा तथा अनेक जगह नियुक्त गुप्तचरों के द्वारा राजा द्वारा पहचान लिया जाना चाहिए और उन्हें पीड़ित करके वश में लाना चाहिए।

**न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः।**

**सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्।।244।।**

**अन्वयः**– धार्मिकः नृपः होढेन बिना चौरं न घातयेत् (किन्तु) सहोढं सोपकरणं (चौरं तु) अविचारयन् घातयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– धार्मिक राजा के द्वारा होढ (चुराई गई वस्तु) के बिना चोर को नहीं मरवाना चाहिए किन्तु चुराए गए धन और चोरी के साधनों के साथ (पकड़े गए) चोर को बिना विचार किए मरवा देना चाहिए। 'अविचारयन्' का तात्पर्य है कि यह निश्चित होने पर कि अमुक चोर के पास जो सामान है वह उसी ने चुराया है, जब यह निश्चय हो जाए।

**ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः।**

**भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपिघातयेत्।।245।।**

**अन्वयः**– ग्रामेषु अपि ये केचित् चौराणां (कृते) भक्तदायकाः चैव भाण्डावकाशदाः (भवेयुः) तान् सर्वान् (नृपः) अपिघातयेत्

**अर्थ/व्याख्या**– गांव आदि निवास स्थानों में चोरों को जो भोजन, बरतन व रहने का स्थान आदि देते हों उन सबको भी राजा के द्वारा मरवा दिया जाना चाहिए, क्योंकि चोरों को शरण देना चोरी को प्रोत्साहित करता है।

**ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने।**

**शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः।।246।।**

**अन्वयः**– ग्रामघाते, हिताभङ्गे (च) पथि मोषाभिदर्शने (ये) शक्तितः न अभिधावन्तः (भवेयुः ते) सपरिच्छदाः निर्वास्याः।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– 'ग्रामघाते' अर्थात् चोर–डाकुओं द्वारा गांव के लूटे जाने पर, हिताभङ्गे अर्थात बांध या सेतु के टूटने पर तथा रास्ते में चोर दिखाई देने पर जो शक्ति रहते भी रक्षा करने के लिए नहीं दौड़े आते, उन्हें राजा के द्वारा देश से उनके गाय, शय्या आदि सहित निकलवा देना चाहिए। 'हिताभङ्गे' का अर्थ कुल्लूक भट्ट ने मेधातिथि के सन्दर्भ से 'फसल को उजाड़ने या किसी का व्यवसाय को उजाड़ने' के अर्थ में भी बताया है–

***"क्षेत्रोत्पन्नसस्यनाशने वृत्तिभङ्गे च" इति मेधातिथिः।***

(कुल्लूकभट्टटीका–मनुस्मृति–9 / 274)

**अङ्गुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे।**

**द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति।।247।।**

**अन्वयः**– ग्रन्थिभेदस्य प्रथमे ग्रहे अङ्गुलीः छेदयेत् द्वितीये हस्तचरणौ (छेदयेत्) तृतीये (ग्रन्थिभेदः) वधम् अर्हति।

**अर्थ / व्याख्या**– कपड़े के कोने में गांठ के अन्दर रखे गए सोने आदि द्रव्य को चुराने वाला (गिरहकट) जब पहली बार पकड़ा जाए तो उसकी तर्जनी अंगुली और अंगूठा कटवा देने चाहिए–

***ते चाङ्गुष्ठतर्जन्यौ*** (कुल्लूकभट्टटीका–9 / 277)

दूसरी बार पकड़े जाने पर उसके हाथ–पैर कटवाएं तथा तीसरी बार वह चोर वध के योग्य हो जाता है।

**अग्निदान् भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान्।**

**संनिधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः।।248।।**

**अन्वयः**– मोषस्य (कृते) अग्निदान् च भक्तदान् तथा शस्त्रावकाशदान् च संनिधातॄन् च एव ईश्वरः (नृपः) चौरमिव हन्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**– चोर को (भोजन पकाने के लिए) चूल्हा, भात, शस्त्र, स्थान और शरण देने वालों को भी राजा के द्वारा चोर के बराबर का दण्ड देना चाहिए अर्थात् क्रमशः पहली, दूसरी और तीसरी बार क्रमशः उनकी अंगुलियां काटी जाएं, हाथ–पैर काटे जाएं और वध कर दिया जाए।

**बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ।**

**दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः।।249।।**

**अन्वयः**– च राजा सर्वाणि बन्धनानि मार्गे निवेशयेत् यत्र (खलु) दुःखिताः, विकृताः, पापकारिणः दृश्येरन्।

**अर्थ / व्याख्या**– राजा के द्वारा अपराधियों के बन्धन–गृह (कारागार) सार्वजनिक रूप से देखे जा सकने वाले राजमार्ग पर स्थापित करवाए जाने चाहिए, ताकि वे दुखी, बिगड़ी दशा वाले पापी सबको दिखाई दें तथा उन्हें देखकर अन्य लोग अपराध मार्ग पर चलने का साहस न करें।

**अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च।**

**मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम्।।250।।**

**अन्वयः**– अबीजविक्रयी चैव तथैव च बीजोत्कृष्टम् (इति उक्त्वा यः विक्रीणाति) च मर्यादाभेदकः एव विकृतम् वधम् आप्नुयात्।

**अर्थ/व्याख्या**– जो व्यक्ति उपजाऊ शक्ति से रहित बीजों को बेच रहा हो या अच्छे और बुरे बीजों में मिलावट करके बेच रहा हो तथा जो गांव और नगर की सीमा को तोड़ता हो उसके नाक, कान, हाथ, पैर आदि को विकृत करने वाला वध–दण्ड मिलना चाहिए।

टिप्पणी

## परिश्रम की महिमा (श्लोक 251–264)

(श्लोक क्रमांक 251 से 264 में उद्यम की महिमा का वर्णन किया गया है।)

**आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।**

**कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते।।251।।**

**अन्वयः**– श्रान्तः पुनः कर्माणि श्रान्तः पुनः (कर्माणि) आरभेत (यतः) कार्याणि आरभमाणं हि पुरुषं श्रीः निषेवते।

**अर्थ/व्याख्या**– बार–बार थकने पर, कुछ विश्राम के पश्चात् मनुष्य को पुनः कार्य करने में जुट जाना चाहिए क्योंकि कार्य को प्रारंभ करने वाले को सम्पन्नता और सफलताएं प्राप्त होती हैं।

**कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।**

**राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते।।252।।**

**अन्वयः**– कृतम्, त्रेतायुगं च द्वापरं च कलिः एवः (एतानि सर्वाणि युगानि) राज्ञः वृत्तानि (सन्ति, अतः) राजा हि 'युगम्' उच्यते।

**अर्थ/व्याख्या**– सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग भी राजा के आचरण का नाम है। इसलिए राजा को ही युग कहा गया है। कहने का अभिप्राय है कि राजा का आचरण और कर्तव्यपालन अच्छा हो तो कलियुग में भी सत्ययुग की अनुभूति संभव है।

**कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम्।**

**कर्मण्यभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्।।253।।**

**अन्वयः**– कलिः प्रसुप्तः भवति, जाग्रत्, द्वापरंयुगम् (भवति) कर्मणि अभ्युद्यतः त्रेता भवति, विचरन् (च) कृतं युगं भवति।

**अर्थ/व्याख्या**– गहरी नींद में सोया हुआ कलियुग होता है, जागने के लिए तैयार हो रहा द्वापर युग है, कर्म करने के लिए जिसने कमर कस ली वह त्रेता युग है और जो कर्मपथ पर चलता हुआ है वह कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है। ऐतरेयब्राह्मण में रोहित हरिश्चन्द्र–उपाख्यान में भी कहा गया है–

**कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।**

**उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।।**

**चरैवेति चरैवेति** (7–18)

टिप्पणी

आशय यही है कि परिश्रमशील व्यक्ति सदैव सत्ययुग का स्वरूप है।

**इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च।**

**चंद्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत्।।254।।**

**अन्वयः**– इन्द्रस्य, अर्कस्य च वायोः, यमस्य च वरुणस्य चन्द्रस्य, अग्नेः च पृथिव्याः तेजोवृत्तं नृपः चरेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– इन्द्र, सूर्य, वायु, यमराज, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि और पृथ्वी इन देवी–देवताओं के तेज के अनुरूप राजा को अपना आचरण प्रस्तुत करना चाहिए।

**वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति।**

**तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन्।।255।।**

**अन्वयः**– यथा चतुरः वार्षिकान् मासान् इन्द्रः अभिवर्षति तथा (नृपः अपि) इन्द्रव्रतं चरन् स्वं राष्ट्रम् कामैः अभिवर्षेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– वर्ष में आषाढ़–श्रावण आदि चार महीने इन्द्र वर्षा के द्वारा धरती की प्यास बुझाता है उसी प्रकार इन्द्र के व्रत का पालन करते हुए राजा को भी अपने राष्ट्र की अपेक्षा पूरी करनी चाहिए।

**अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।**

**तथा हरेत्करं राष्ट्रन्नित्यमर्कवृतं हि तत्।।256।।**

**अन्वयः**– यथा आदित्यः अष्टौ मासान् रश्मिभिः तोयं हरति तथा (नृपःअपि) नित्यम् अर्कव्रतं (गृहीत्वा) तत् राष्ट्रं करं हरेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– वर्षा के चार महीनों के अतिरिक्त बचे हुए आठ महीने सूर्य अपनी किरणों से जल को ग्रहण करता है, उसी प्रकार सदा राजा को राष्ट्र से कर ग्रहण करते हुए अर्कव्रत (सूर्यव्रत) का आचरण करना चाहिए।

**प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः।**

**तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम्।।257।।**

**अन्वयः**– यथा मारुतः सर्वभूतानि प्रविश्य चरति तथा (राज्ञा अपि राष्ट्रे) चारैः प्रवेष्टव्यम् एतद् हि तस्य मारुतं व्रतम् (अस्ति)।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस प्रकार वायु समस्त जड़–चेतन पदार्थों में प्रवेश करके विचरण करता है उसी प्रकार अपने गुप्तचरों द्वारा राष्ट्र में सर्वत्र प्रवेश करके राजा सम्पूर्ण राष्ट्र की जानकारी भी प्राप्त करे और राष्ट्र को जीवित रखे यही उसका मारुत–व्रत है।

**यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।**

**तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्।।258।।**

**अन्वयः**– यथा यमः प्राप्ते काले प्रियद्वेष्यौ (तुल्यरूपेण) नियच्छति तथा राज्ञा प्रजाः नियन्तव्याः, तत् हि (राज्ञः) यमव्रतम् अस्ति।

टिप्पणी

**अर्थ/व्याख्या**– यद्यपि यमराज के कोई शत्रु या मित्र नहीं होते, फिर भी जो उसकी पूजा करते हैं या उसकी निन्दा करते हैं, उन दोनों प्रकार के लोगों के साथ समान व्यवहार करते हुए उचित अवसर पर वह उन्हें मृत्यु देता है। उसी प्रकार राजा को भी प्रिय अथवा अप्रिय प्रजाजनों के साथ समान रूप से दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिए, यही उसका यमव्रत है।

**वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते।**

**तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम्।।259।।**

**अन्वयः**– यथा वरुणेन पाशैः बद्धः एव दृश्यते तथा (राजा अपि) पापान् निगृह्णीयाद् एतद् हि (राज्ञः) वारुणं व्रतम् (अस्ति)।

**अर्थ/व्याख्या**– जैसे वरुण के पाश से बंधा हुआ (कोई जलोदर रोगी) दिखाई देता है, वैसे ही राजा सभी पापियों का निग्रहण करे, यही राजा का वारुण व्रत है।

**परिपूर्णं यथा चद्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः।**

**तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः।।260।।**

**अन्वयः**– यथा परिपूर्णं चन्द्रं दृष्ट्वा मानवाः हृष्यन्ति, तथा यस्मिन् (नृपतौ दृष्टे) प्रकृतयः (हर्षिताः स्युः) सः चान्द्रव्रतिको नृपः।

**अर्थ/व्याख्या**– जिस तरह से पूर्ण चन्द्रमा के दर्शन से मनुष्य प्रसन्न होते हैं उसी तरह जिस राजा को देखकर प्रजाएं सन्तुष्ट हों वह चान्द्रव्रती राजा कहा जाता है।

**प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु।**

**दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम्।।261।।**

**अन्वयः**– पापकर्मसु (नृपः) नित्यं प्रतापयुक्तः तेजस्वी च दुष्टसामन्तहिंस्रः च स्यात्, तत् (तस्य) आग्नेयं व्रतं स्मृतम्।

**अर्थ/व्याख्या**– पाप कर्म करने वालों के विषय में दण्ड धारण करके अग्नि की तरह राजा असहनीय और तेजस्वी हो तथा दुष्ट मन्त्रियों के प्रति हिंसा के स्वभाव वाला हो, यह राजा का अग्नि से संबंधित व्रत है।

**यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्।**

**तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्।।262।।**

**अन्वयः**– यथा धरा सर्वाणि भूतानि समं धारयते तथाः सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः (राज्ञः) पार्थिवं व्रतम् (भवति)।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– जिस तरह से पृथ्वी समान रूप से जड़ चेतन सकल पदार्थों को धारण करती है उसी प्रकार विद्वान्, धनिक गुणीजन से लेकर दीनों और अनाथों तक सबकी रक्षा राजा को करनी चाहिए और धन आदि की सहायता से उनको धारण करना ही राजा का पृथ्वी से संबंधित व्रत है।

**नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते।**

**ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते।।263।।**

**अन्वयः**– अब्रह्म क्षत्रं न ऋध्नोति (च) अक्षत्रं ब्रह्मं न वर्धते, ब्रह्म च क्षत्रं सम्पृक्तम् इह च अमुत्र वर्धते।

**अर्थ / व्याख्या**– ब्राह्मण के बिना न तो क्षत्रिय की वृद्धि होती है और न ही क्षत्रिय के बिना ब्राह्मण की वृद्धि होती है। अपितु परस्पर जुड़कर ही दोनों इस लोक में और परलोक में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में वृद्धि प्राप्त करते हैं।

**एवं चरन् सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः।।**

**हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत्।।264।।**

**अन्वयः**– एवं सदा राजधर्मेषु युक्तः पार्थिवः चरन् सर्वान् भृत्यान् च लोकस्य हितेषु एव नियोजयेत्।

**अर्थ / व्याख्या**– मनुस्मृति के तीन अध्यायों (7वें, 8वें और 9वें) में जो राजधर्म बताए गए हैं उनसे जुड़कर राजा को व्यवहार करते हुए अपने सेवकों को सदा लोगों के हित में नियुक्त करना चाहिए, अर्थात् उनसे लोकहित के कार्य करवाने चाहिए।

**वैश्य कर्म का विवेचन (श्लोक 265–271)**

(श्लोक क्रमांक 265 से 272 में वैश्य कर्म का विवेचन किया गया है–)

**वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम्।**

**वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे।।265।।**

**अन्वयः**– कृतसंस्कारः वैश्यः तु दारपरिग्रहं कृत्वा, वार्तायां पशूनां रक्षणे च एव नित्ययुक्तः स्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**– उपनयन पर्यन्त संस्कारों से युक्त वैश्य विवाह आदि करके कृषि आदि वार्ता के कार्यों में और पशुओं के रक्षा कार्य में सदा लगा रहे।

**न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति।**

**वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन।।266**

**अन्वयः**– 'न रक्षेयं पशून्' इति च वैश्यस्य कामः न स्यात् च वैश्ये इच्छति अन्येन (पश्वः) न रक्षितव्याः।

**अर्थ / व्याख्या**– 'मैं पशुओं का रक्षण न करूं' ऐसी इच्छा वैश्य को कदापि नहीं करनी चाहिए, अर्थात् कृषि आदि जीविका के साधन रहने पर भी वैश्य को पशुरक्षण कर्तव्य का पालन अवश्य करना चाहिए। वैश्य जब पशुरक्षण कार्य के लिए तत्पर हो तो किसी अन्य से पशुरक्षण कर्म नहीं करवाना चाहिए।

**मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च।**

**गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम्।।267।।**

**अन्वयः**– मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां च तान्तवस्य च गन्धानां च रसानाम् अर्घबलाबलं (वैश्यः) विद्यात्।

टिप्पणी

**अर्थ/व्याख्या**– मणियां, मोती, मूंगा आदि रत्नों, लोहे, वस्त्र, इत्र और विभिन्न रसायनों आदि के मूल्यों की कमी व बढ़ोतरी की जानकारी वैश्य को रखनी चाहिए।

**बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च।**

**मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः।।268।।**

**अन्वयः**– (वैश्यः) बीजानाम् उप्तिवित् स्यात्, च क्षेत्रगुणदोषस्य (अपि वेत्ता स्यात्), (सः) च सर्वशः मानयोगं च तुलायोगान् जानीयात्।

**अर्थ/व्याख्या**– वैश्य को बीजों को बोने की विधि और उनके लिए खेत के गुण–दोषों का ज्ञाता होना चाहिए तथा उसे हर प्रकार से तराजू और उसके बाटों तथा वस्त्र को मापने के साधनों को जानना चाहिए, ताकि किसी के साथ किसी प्रकार का धोखा न हो।

**सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान्।**

**लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम्।।269।।**

**अन्वयः**– (वैश्यः) च भाण्डानां सारासारं च देशानां गुणागुणान्, पण्यानां लाभालाभं च पशूनां परिवर्धनं (जानीयात्)।

**अर्थ/व्याख्या**– एक ही जाति की विभिन्न वस्तुओं में यह उत्कृष्ट है अथवा यह निकृष्ट है ऐसा सार–असार, किस स्थान पर क्या सस्ता और क्या महंगा है। कितने समय पर वस्तुओं के मूल्य में कमी या बढ़ोतरी से कितना लाभ या हानि होगी तथा किस प्रकार के घास, अनाज आदि को खिलाने से पशुओं का संवर्धन होगा आदि जानकारी वैश्य को होनी चाहिए।

**भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम्।**

**द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च।।270।।**

**अन्वयः**– (वैश्यः) भृत्यानां भृतिं च नृणाम् विविधाः भाषाः, च द्रव्याणां स्थानयोगान् च क्रयविक्रयम् एव विद्यात्।

**अर्थ/व्याख्या**– देश काल के अनुरूप किस सेवक को कितना वेतन दिया जाना चाहिए, उत्तर व दक्षिण की विभिन्न भाषाओं को, किस वस्तु को कैसे कहां रखना चाहिए और कौन–सी वस्तु कब–कहां खरीदी–बेची जाए यह भी वैश्य को जानना चाहिए।

### ब्राह्मण और शूद्र आदि की स्थिति व कर्म (श्लोक 271–278)

**वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्।**

**संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः।।271।।**

**टिप्पणी**

**अन्वयः**— वैशेष्यात्, प्रकृतिश्रैष्ठ्यात् च नियमस्य धारणात् च संस्कारस्य विशेषात् ब्राह्मणः वर्णानां प्रभुः।

**अर्थ/व्याख्या**— जाति के उत्कर्ष की विशेषता के कारण, हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का उत्तम अंग रूपी कारण (प्रकृति) होने से, वेद रूप नियम को धारण करने के कारण तथा क्षत्रियादि की अपेक्षा उपनयन संस्कार की प्रधानता होने से (स्वयं करने और दूसरों को उपनयन के पश्चात वेदाध्यापन करने से ब्राह्मण की प्रधानता है) सभी वर्णों का ईश्वर पूज्य ब्राह्मण है।

**यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः।**
**तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च।।272।।**

**अन्वयः**— यैः प्रचरितैः कर्मभिः द्विजातयः शुश्रूष्यन्ते तानि विविधानि कारुक कर्माणि च शिल्पानि (शूद्रः कुर्यात्)

**अर्थ/व्याख्या**— जिन कर्मों से द्विजातियों की परिचर्या/सेवा हो ऐसे विभिन्न प्रकार के कर्म और शिल्प कार्य (बढ़ईगीरी, चित्र–निर्माण आदि) शूद्र को करने चाहिए।

**श्लोक क्रमांक 273 से 278 में ब्राह्मण वृति का वर्णन किया गया है।**

**जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः।**
**आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते।।273।।**

**अन्वयः**— यः जीवितात्यम् आपन्नः यतः–ततः (आपदि) अन्नम् अत्ति सः आकाशम् पङ्केन इव पापेन न लिप्यते।

**अर्थ/व्याख्या**— जो ब्राह्मण जीवन के संकट में पड़ा हुआ हो, वह यहां–वहां से यदि अन्न खाता है तो उसे वैसे ही पाप नहीं लगता जैसे आकाश कीचड़ से गंदा नहीं होता। कहने का आशय है कि यद्यपि ब्राह्मण को द्विजाति से ही अन्न ग्रहण करना चाहिए तथापि प्राणों पर संकट हो तो शूद्र से अन्न ग्रहण करने पर भी वह पाप–ग्रस्त नहीं होता।

**शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः।**
**प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते।।274।।**

**अन्वयः**— अजीवन् विप्रः यतस्ततः शिलोञ्छम् अपि आददीत्, प्रतिग्रहात् शिलः श्रेयान् ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते।

**अर्थ/व्याख्या**— जीविका के अन्य साधनों के अभाव में ब्राह्मण कहीं से शिल और उञ्छ भी ग्रहण कर ले क्योंकि दान लेने से शिल लेना अच्छा है और शिल से भी उञ्छ–वृत्ति अच्छी है। अन्न की मञ्जरी का संचय शिल तथा एक–एक अन्न के दाने का चयन उञ्छ कहा जाता है।

**विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।**
**धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः।।275।।**

**अन्वयः**– विद्या, शिल्पं, सेवा, गोरक्ष्यं, विपणिः कृषिः, भैक्ष्यं, च कुसीदम् (इति) दश जीवनहेतवः।

**टिप्पणी**

**अर्थ/व्याख्या**– आपत्तिकाल में ब्राह्मण के लिए दस प्रकार के जीवन साधन हैं–विद्या अर्थात् वेद विद्या से अतिरिक्त 1. वैद्यक, विषहरण मन्त्रों का ज्ञान आदि, 2. शिल्पकला (चित्रकारी आदि), 3. भृति अर्थात किसी के द्वारा किसी कार्य से कहीं भेजे जाने का वेतन लेना–

*भृतिः प्रैषभावेन वेतनग्रहणम्।*

(कुल्लूक भट्टटीका मनु.–10/116)

4. सेवा (दूसरों की आज्ञा से कार्य करना) 5. गोपालन, 6. वाणिज्य व्यापार, 7. कृषि 8. धृति (सन्तोष) 9. भिक्षा समूह में सम्मिलित होकर भिक्षा ग्रहण 10. कुसीदम् (ब्याज की कमाई)।

**योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः सम्प्रयच्छति।**

**स कृत्वा प्लवमात्मानं सन्तारयति तावुभौ।।276।।**

**अन्वयः**– यः असाधुभ्यः अर्थम् आदाय साधुभ्यः सम्प्रयच्छति, सः आत्मानं प्लवं कृत्वा तौ उभौ सन्तारयति।

**अर्थ/व्याख्या**– जो ब्राह्मण असाधु कार्यों से धन कमाकर अर्थात् किसी के लिए यज्ञ आदि साधन से कमाई करके उत्कृष्टों (ऋत्विक् आदि) को धन देता है वह स्वयं नौका बनाकर उन दोनों को तार देता है। अर्थात् जिसके लिए यज्ञ आदि का साधन करता है, उसके पापों को नष्ट करता है तथा ऋत्विक् आदि की दुर्गति/दुखों का नाश करता है, इस प्रकार दोनों को सुख पहुंचाता है–

*यज्ञाङ्गादि साधनं कृत्वा साधुभ्य उत्कृष्टेभ्यः ऋत्विगादिभ्यो धनं ददाति स यस्यापहरति तद्दुरितं नाशयति यस्मै तद्ददाति तद्दौर्गत्याभिघाताद् इत्येवं द्वावप्यात्मानमुडुपं कृत्वा दुःखान्मोचयति।* (कुल्लूक भट्टटीका मनु.–11/19)

**न ब्राह्मणोऽवेदयेत् किंचिद्राजनि धर्मवित्।**

**स्ववीर्येणैव ताञ्छिष्यान्मानवानपकारिणः।।277।।**

**अन्वयः**– धर्मवित् ब्राह्मणः राजनि किञ्चित् न अवेदयेत्, तान् अपकारिणः मानवान् स्ववीर्येण एव शिष्यात्।

**अर्थ/व्याख्या**– धर्मज्ञ ब्राह्मण अपने प्रति किए गए किसी अपराध के विषय में राजा से निवेदन न करे, अपितु अपने ही मन्त्र बल से अपकारी मनुष्यों को दण्ड दे। कहने का अभिप्राय है कि अपकारी के प्रति अभिचार मंत्रों का प्रयोग दोषकारक नहीं होता। अन्यथा राजा से निवेदन करने में भी दोष नहीं है।

**स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम्।**

**तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः।।278।।**

**अन्वयः**— स्ववीर्यात् च राजवीर्यात् स्ववीर्यं बलवत्तरम् (भवति) तस्मात् द्विजः स्वेन वीर्येण एव अरीन् निगृह्णीयात्।

**टिप्पणी**

**अर्थ / व्याख्या**— अपने बल और राजबल इन दोनों में से अपना ही बल अधिक प्रभावशाली होता है, अतः ब्राह्मण अपने बल से शत्रुओं को दण्डित करे।

दण्ड का यह स्वरूप शस्त्र के द्वारा नहीं अपितु शास्त्र के द्वारा है। इसे स्पष्ट करते हुए मनु ने अथर्ववेद के आङ्गिरस मन्त्रों का प्रयोग करने का सुझाव दिया है—

*श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।*

*वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः।। (11/33)*

## पापनिवृत्ति के उपाय (श्लोक 279—285)

(श्लोक क्रमांक 279 से 285 में मनुष्यों को पापनिवृत्ति का उपाय बताया गया है।)

**अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।**

**कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः।।279।।**

**अन्वयः**— अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति, कामतः मोहात् कृतं (पापं) तु पृथग्विधैः प्रायश्चित्तैः शुध्यति।

**अर्थ / व्याख्या**— अनिच्छा (अनजाने) से किया गया पाप वेदाभ्यास से छूट जाता है, जबकि इच्छापूर्वक राग—द्वेषादि से प्रेरित होकर किए गए पाप का शोधन अलग—अलग प्रकार के प्रायश्चित्तों से नष्ट होता है। पाप हल्का होने पर कम कष्टकारक प्रायश्चित्त से और भारी पाप अधिक कष्टकारक प्रायश्चित्त से समाप्त होता है।

**ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेन च।**

**पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि।।280।।**

**अन्वयः**— ख्यापनेन, अनुतापेन, तपसा च अध्यनेन पापकृत् पापात् मुच्यते तथा आपदि दानेन (अपि पापात् मुच्यते)।

**अर्थ / व्याख्या**— अपना पाप बता देने से, 'मुझे धिक्कार है कि मैंने यह पाप किया'—इस प्रकार पश्चात्ताप से, गायत्री जप की मात्रा बढ़ाकर की गई तपस्या से, पुराणादि में भगवत्कथाओं के अध्ययन से और इसी प्रकार आपत्तिकाल में गोदान आदि दान कर्म से पाप कर्म से मुक्त हुआ जा सकता है।

**यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते।**

**तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते।।281।।**

**अन्वयः**— यथा—यथा (पापी) नरः अधर्मं कृत्वा स्वयम् अनुभाषते तथा (सः) 'अहिः त्वचा' इव अधर्मेण मुच्यते।

**अर्थ / व्याख्या**— जैसे (पाप करने वाला) मनुष्य अपने अधर्म को बताता है वैसे—वैसे वह किए गए पाप से वैसे ही मुक्त हो जाता है, जैसे सांप धीरे—धीरे अपनी केंचुली से बाहर आ जाता है।

**यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।**

**तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते।।282।।**

**अन्वयः**– यथा–यथा तस्य (पापिनः) मनः तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति तथा–तथा तत् (तस्य) शरीरं तेन अधर्मेण मुच्यते।

**अर्थ/व्याख्या**– जैसे–जैसे पापी का मन उसके दुष्कर्म की निंदा करता है वैसे–वैसे जीवात्मा उस अधर्म/पाप से मुक्त हो जाता है।

**कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।**

**नैवं कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः।।283।।**

**अन्वयः**– पापं कृत्वा सन्तप्य हि (नरः) तस्मात् पापात् प्रमुच्यते, पुनः एवं न कुर्यात् इति निवृत्या सः तु पूयते।

**अर्थ/व्याख्या**– पाप करने के बाद सन्ताप करके ही मनुष्य उस पाप से छूट जाता है। पुनः इस पाप को नहीं करूंगा, इस प्रकार का संकल्प धारण कर लेने से वह उस पाप से निवृत्त होकर पवित्र हो जाता है।

**एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम्।**

**मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत्।।284।।**

**अन्वयः**– प्रेत्य कर्मफलोदयं (भविष्यति) एवं मनसा सञ्चिन्त्य, नित्यं वाङ्मनोमूर्तिभिः (मनुष्यः) शुभं कर्म समाचरेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– परलोक जाने पर शुभ और अशुभ फलों के कर्म भोगने होंगे ऐसा भली–भांति सोचकर मन–वाणी और कर्म से सदा शुभ कर्म ही करने चाहिए। शुभ कर्मों से अभीष्ट फल मिलता है जबकि अशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप नरक के दुख भोगने पड़ते हैं।

**अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम्।**

**तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत्।।285।।**

**अन्वयः**– अज्ञानात् यदि वा ज्ञानात् विगर्हितं कर्म कृत्वा तस्माद् विमुक्तिम् अन्विच्छन् (स्यात् तदा नरः) द्वितीयं न समाचरेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– अनजाने में अथवा जानबूझकर निषिद्ध कर्म को किया हो तब उससे मुक्ति चाहते हुए मनुष्य को वह कर्म दोबारा नहीं करना चाहिए।

### तपःसाधना (श्लोक 286–292)

(श्लोक क्रमांक 286 से 292 में तप–साधना का वर्णन किया गया है।)

**तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।**

**तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः।।286।।**

**अन्वयः**– इदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम् तपोमूलम्, तपोमध्यं च तपोऽन्तम् इति बुधैः वेद–दर्शिभिः प्रोक्तम्।

टिप्पणी

**अर्थ / व्याख्या**– दृश्यमान जगत् में देवताओं और मनुष्य का जो सुख है वह समस्त तप के मूल, मध्य और अन्त वाला है। देवताओं और लौकिक संसार के समस्त सुखों की सृष्टि, स्थिति और प्रलय तप के द्वारा ही होती है।

टिप्पणी

**ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।**

**वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्।।287।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मणस्य तपः ज्ञानम्, क्षत्रस्य तपः रक्षणम्, वैश्यस्य तपः तु वार्ता च शूद्रस्य तपः सेवनम् (अस्ति)।

**अर्थ / व्याख्या**– ज्ञान प्राप्त करना ब्राह्मण की तपस्या है, रक्षा करना क्षत्रिय की तपस्या है, वैश्य की तपस्या व्यापार करना है और सेवा करना शूद्र की तपस्या है।

**ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः।**

**तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्।।288।।**

**अन्वयः**– संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ऋषयः सचराचरं त्रैलोक्यं तपसा एव प्रपश्यन्ति।

**अर्थ / व्याख्या**– वाणी, मन और शरीर पर नियन्त्रण करते हुए तथा फल–कंद मूल और वायु का सेवन करते हुए निष्पाप अन्तःकरण वाले होकर, जड़–चेतन सहित पृथ्वी, अंतरिक्ष और स्वर्ग तीनों लोकों का साक्षात् अवलोकन करने में ऋषि समर्थ होते हैं।

**औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः।**

**तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम्।।289।।**

**अन्वयः**– औषधानि, अगदः (गदः–रोग, रोगाभावः / नैरुज्यम्) विद्या च विविधा दैवी स्थितिः तपसा एव सिध्यन्ति (यतः) तेषां साधनं तपः हि (अस्ति)।

**अर्थ / व्याख्या**– रोगों को शान्त करने वाली औषधियां, आरोग्यता, वेदादि विद्याएं तथा विभिन्न प्रकार की दैवी स्थितियां / कृपाएं तप से ही सिद्ध होती हैं क्योंकि उन्हें प्राप्त करने का साधन तप ही है।

**यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।**

**सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।।290।।**

**अन्वयः**– यत् दुस्तरं, यत् दुरापम्, यत् दुर्गम् च यत् दुष्करं तत् सर्वं तु तपसा साध्यम्, तपः हि दुरतिक्रमम्।

**अर्थ / व्याख्या**– ग्रह दोष आदि व उनके आधार पर सूचित विपत्तियां आदि जिनसे पार पाना कठिन है, जिन्हें प्राप्त करना कठिन है (जैसे क्षत्रिय होकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त करना), जहां पहुंचना कठिन है (जैसे सुमेरु पर्वत पर पहुंचना), जिसको करना कठिन है (जैसे गाय आदि महादान) ये सब तपस्या से साधे जा सकते हैं। अतः तप की शक्ति को रोकना असंभव प्राय है।

**प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः।**

**तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे।।291।।**

**अन्वयः**– इदं (वेद) शास्त्रं प्रभुः प्रजापतिः तपसा एव असृजत् तथा एव ऋषयः तपसा वेदान् प्रतिपेदिरे।

टिप्पणी

**अर्थ/व्याख्या**– समस्त संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के प्रभु हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) ने तप से ही वेद–शास्त्र की रचना की उसी तरह तपस्या से ही ऋषियों ने मन्त्र–ब्राह्मणात्मक वेदों को प्राप्त किया–

***ऋषयो वसिष्ठादयस्तपसैव मन्त्रब्राह्मणात्मकान् वेदान् प्राप्तवन्तः।***

(कुल्लूकभट्ट–टीका मनु.–11/243)

**इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते।**

**सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम्।।292।।**

**अन्वयः**– अस्य सर्वस्य तपसः उत्तमं पुण्यं प्रपश्यन्तः देवाः तपसः इति एतत् महाभाग्यं प्रचक्षते।

**अर्थ/व्याख्या**– जो कुछ भी दुर्लभ है वह इस तप से प्राप्त हो जाता है, ऐसा तप का महा सौभाग्य देखकर देवता भी तप की महिमा का बखान करते हैं।

## कर्मफल का विवेचन (श्लोक–293–296)

(श्लोक क्रमांक 293 से 296 में कर्मफल का विवेचन किया गया है।)

**शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम्।**

**कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः।।293।।**

**अन्वयः**– मनोवाग्देहसम्भवम् शुभाशुभफलं (भवति ततः च) नृणां कर्मजा गतयः उत्तमाधममध्यमाः भवन्ति।

**अर्थ/व्याख्या**– विहित और निषिद्ध दो प्रकार के जो कर्म मन, वाणी और शरीर से होते हैं, वे विहित होने पर शुभ और निषिद्ध होने पर अशुभ फल देने वाले होते हैं। उन्हीं कर्मों के फलस्वरूप मनुष्यों की उत्तम, अधम व मध्यम तीन प्रकार की गतियां होती हैं। उन्हीं के आधार पर जन्मान्तर की प्राप्ति होती है। मनुस्मृति के बारहवें अध्याय के इस तीसरे श्लोक का भाव यही है कि उत्तम गति को पाने के लिए मनुष्य को उत्तम कर्मों में वृद्धि करनी चाहिए।

**मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।**

**वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्।।294।।**

**अन्वयः**– मानसं (यत् कर्म तस्य) शुभाशुभं (फलं) अयम् (नरः) मनसा एव उपभुङ्क्ते, वाचा कृतं वाचा, कायिकं (कर्म) च कायेन (एव उपभुङ्क्ते)।

**अर्थ/व्याख्या**– मन के द्वारा किए गए पुण्य या पाप का शुभ–अशुभ फल मनुष्य इस जन्म या जन्मान्तर में मन से ही भोगता है, वाणी द्वारा किए कर्म का फल

वाणी से ही भोगता है (अर्थात् मधुर या हकलाहट आदि वाणी के विभिन्न रूप से फल भोगता है) तथा शरीर से किए गए कर्मफल शरीर द्वारा ही भोगे जाते हैं।

टिप्पणी

**शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।**

**वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्।।295।।**

**अन्वयः**— शरीरजैः कर्मदोषैः नरः स्थावरतां याति, वाचिकैः कर्मदोषैः पक्षिमृगतां (च) मानसैः (कर्मदोषैः) अन्त्यजातिताम् (याति)।

**अर्थ/व्याख्या**— शरीर के कर्म दोषों की अधिकता होने पर मनुष्य जन्मान्तर में स्थावर (वृक्ष, शिला आदि जड़ पदार्थ) बनता है, वाणी के कर्म दोषों से पशु—पक्षी बनता है तथा मानस—कर्म दोषों की अधिकता से चाण्डाल आदि बनता है।

**वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।**

**यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते।।296।।**

**अन्वयः**— वाग्दण्डः, मनोदण्डः तथा एव च कायदण्डः—एते (त्रयःदण्डाः) यस्य बुद्धौ निहिता सः (अपि) त्रिदण्डी इति उच्यते।

**अर्थ/व्याख्या**— वाणी का दमन करने के लिए वाग्दण्ड, मन का दमन करने के लिए मनोदण्ड और शरीर का दमन करने के लिए कायदण्ड ये तीन (दण्ड) जिसकी बुद्धि में धारण रहते हैं, वह (भी) त्रिदण्डी कहलाता है। मात्र दण्डधारी संन्यासी को ही त्रिदण्डी नहीं समझना चाहिए।

## आत्मा—गुण—धर्म विवेचन (श्लोक 297—309)

(श्लोक क्रमांक 297 से 309 में आत्मा के गुण धर्मों का विवेचन किया गया है।)

**योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।**

**यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः।।297।।**

**अन्वयः**— अस्य आत्मनः यः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते (च) यः तु कर्माणि करोति बुधैः सः भूतात्मा उच्यते।

**अर्थ/व्याख्या**— इस शरीर नामक आत्मा को जो कर्मों में प्रवृत्त करता है उसे बुद्धिमान् क्षेत्रज्ञ कहते हैं और पृथ्वी आदि पञ्चभूत से निर्मित जो शरीर उन कर्म—व्यापारों को करता है उसे बुद्धिमानों के द्वारा भूतात्मा कहा जाता है। (आत्मा का उपकारक होने से शरीर को भी आत्मा कहा जाता है।)

**जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।**

**येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु।।298।।**

**अन्वयः**— यः सहजः सर्वदेहिनाम् अन्तरात्मा (अस्ति) सः जीवसञ्ज्ञः (वर्तते), येन जन्मसु सर्वं सुखं दुःखं च वेदयते।

**अर्थ/व्याख्या**— सभी देहधारियों में जन्म लेने वाली जो अन्तरात्मा है वह अन्य है, उसे जीवात्मा कहा जाता है, वह मन—बुद्धि अहंकार के साथ भिन्न—भिन्न शरीरों को प्राप्त करके प्रत्येक जन्म के सुख और दुख को अनुभव करती है।

**तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च।**

**उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः।।299।।**

**अन्वयः**– तौ उभौ महान् च क्षेत्रज्ञः एव भूतसम्पृक्तौ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं (परमात्मानं) व्याप्य तिष्ठतः।

टिप्पणी

**अर्थ/व्याख्या**– वे दोनों ही महान् और क्षेत्रज्ञ, उत्कृष्ट और अपकृष्ट प्राणियों में स्थित परमात्मा को व्याप्त करके स्थिति धारण करते हैं। इसी के विषय में गीता में भी कहा गया है–

***उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।***

***यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्ययमीश्वरः।। (15/17)***

**सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान्।**

**यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः।।300।।**

**अन्वयः**– सत्त्वं, रजः, तमः च एव इति आत्मनः त्रीन् गुणान् विद्यात्, यैः व्याप्य इमान् सर्वान् भावान् महान् अशेषतः स्थितः।

**अर्थ/व्याख्या**– सत्व, रज और तम ये महान् आत्मा के तीन गुण हैं। इन तीनों के द्वारा पूरी तरह व्याप्त होकर महान् तत्व इन सभी स्थावर–जंगम भावों (भूतों) में स्थित है। स्थावर–जंगम भावों का निर्देश करते हुए कुल्लूकभट्ट की टिप्पणी है–

***इमान् स्थावरजङ्गमरूपान् पदार्थान् अशेषेण व्याप्य स्थितः।*** (कुल्लूक भट्ट–टीका मनु.12/24)

**सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्।**

**एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः।।301।।**

**अन्वयः**– सत्त्वं ज्ञानम् (भवति) तमः अज्ञानं (भवति च) रजः रागद्वेषौ (इत्युभयात्मकं रूपं) स्मृतम्। एतेषां एतद्व्याप्तिम् सर्वभूताश्रितं वपुः।

**अर्थ/व्याख्या**– यथार्थ का बोध रूपी ज्ञान सत्व गुण का लक्षण है, यथार्थ के बोध का अभाव अज्ञान है, यह तमोगुण का लक्षण है। राग और द्वेष के भावों की स्थिति रजोगुण का लक्षण है। ये तीनों गुण सभी देहधारियों में समाए हैं, अतः सबके शरीर इन्हीं पर आश्रित होकर व्यवहार करते हैं।

**तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्।**

**प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्।।302।।**

**अन्वयः**– यत् किञ्चित् आत्मनि प्रीतिसंयुक्तं प्रशान्तम् इव, शुद्धाभं च लक्षयेत् तत् सत्त्वम् उपधारयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– अपने में जो प्रेम से युक्त, प्रशान्त और प्रकाशमान अनुभव हो उसे सत्त्व जानिए।

**यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।**

**तद्रजो प्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्।।303।।**

टिप्पणी

**अन्वयः**– यत् तु देहिनाम् दुःख समायुक्तम् आत्मनः अप्रीतिकरम् प्रतिपम् (इन्द्रियाणां च) हारि तत् रजः भवति।

**अर्थ/व्याख्या**– जो शरीरधारियों के लिए दुख से जुड़ा हुआ है, अप्रीति को जन्म देने वाला है, विषयों के प्रति मन का हरण करने वाला शत्रुरूप (प्रतिपक्ष) है, उसे रजोगुण जानिए।

**यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।**

**अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्।।304।।**

**अन्वयः**– यत् तु मोहसंयुक्तम् अव्यक्तं विषयात्मकं, अप्रतर्क्यं च अविज्ञेयं स्यात्, तत् तमः उपधारयेत्।

**अर्थ/व्याख्या**– जो अज्ञान से जुड़ा अर्थात् सत्–असत् के विवेक से शून्य, विषयों के स्वभाव और आकार में प्रच्छन्न/अस्पष्ट स्वभाव वाला, तर्क से परे और जिसे जानना कठिन है (तमोगुणी यही नहीं जान पाता कि उसकी वास्तविक अभिलाषा क्या है), उसे तमोगुण जानिए।

**वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**

**धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम्।।305।।**

**अन्वयः**– वेदाभ्यासः, तपः, ज्ञानं, शौचम्, इन्द्रियनिग्रहः च धर्मक्रियात्मचिन्ता (इति सर्वम्) सात्त्विकं गुणलक्षणम्।

**अर्थ/व्याख्या**– वेदाध्ययन–प्रवचन का अभ्यास तथा उसके अनुसार प्राजापत्य यज्ञ आदि का अनुष्ठान, शास्त्रों का ज्ञान, मिट्टी और जल आदि से शरीर की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, दान आदि धर्म का अनुष्ठान और आध्यात्मिक चिन्तन–ये सात्त्विक गुण के क्रियात्मक लक्षण हैं।

**आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः।**

**विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्।।306।।**

**अन्वयः**– आरम्भरुचिता, अधैर्यम्, असत्कार्यपरिग्रहः च अजस्रं विषयोपसेवा (इति एतत् कार्यजातम्) राजसं गुणलक्षणम्।

**अर्थ/व्याख्या**– फल के उद्देश्य से कार्यों को प्रारंभ करने की रुचि, छोटी–सी वस्तु के लिए भी विकलता, निषिद्ध कार्यों का आचरण, निरन्तर शब्द आदि विषयों के उपभोग की लालसा–ये सभी राजस गुण के कार्य लक्षण हैं।

**लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।**

**याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्।।307।।**

**अन्वयः**– लोभः, स्वप्नः, अधृतिः, क्रौर्यम्, नास्तिक्यम्, भिन्नवृत्तिता, याचिष्णुता, च प्रमादः तामसं गुणलक्षणम्।

**अर्थ / व्याख्या**– अधिक से अधिक धन की लालसा, नींद, इच्छापूर्ति के लिए क्रूर व्यवहार, परलोक के अभाव की बुद्धि, शास्त्र विरुद्ध आचरण, मांगने का स्वभाव, कार्यों से आलस्य व लापरवाही, ये सब तामस गुण के व्यवहार व लक्षण हैं।

टिप्पणी

**तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।**

**सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्।।308।।**

**अन्वयः**– तमसः लक्षणं कामः (अस्ति) रजसः तु (लक्षणम्) अर्थः उच्यते (च) सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः (अस्ति) एषाम् श्रैष्ठ्यं यथा उत्तरम्।

**अर्थ / व्याख्या**– तमोगुण का लक्षण है कामवृत्ति का प्राधान्य, रजोगुण का लक्षण है धनलिप्सा और सत्त्व का लक्षण है धर्म का पालन (धृति, क्षमा, दम आदि दस लक्षणों का व्यवहार)। जिस क्रम में ये गुण बताए गए हैं, क्रमशः बाद वाला अपने से पूर्व वाले की अपेक्षा अच्छा है।

**जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम्।**

**क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम्।।309।।**

**अन्वयः**– (विषयेषु रताः अल्पबुद्धयः) अप्रतीकारां जरां च व्याधिभिः च उपपीडनम् तान् तान् विविधान् क्लेशान् च दुर्जयम् मृत्युम् एव (प्राप्नुवन्ति)।

**अर्थ / व्याख्या**– मनुस्मृति के द्वादश अध्याय के श्लोक संख्या 73–74 आदि में विषयाभ्यासी अल्पबुद्धियों को प्राप्त होने वाले कष्टों के बारे में बताया जा रहा है कि विषयों की मूर्खता से बंधे हुए मनुष्य अनिवार्य बुढ़ापे को पाते हैं, अनेक रोगों और उनसे जुड़े नाना प्रकार के कष्टों को पाते हुए अन्ततोगत्वा उस मृत्यु के द्वारा समाप्त कर दिए जाते हैं, जिससे जीतना अत्यन्त कठिन है। आत्मज्ञान प्राप्त करने वाला ही मृत्युञ्जय होता है न कि विषयभोगी।

## मोक्ष प्राप्ति के उपाय (श्लोक 310–314)

(श्लोक क्रमांक 310 से 314 में मोक्ष प्राप्ति के उपाय बताए गए हैं।)

**वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।**

**अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्।।310।।**

**अन्वयः**– वेदाभ्यासः, तपः, ज्ञानम् च इन्द्रियाणां संयमः, अहिंसा च गुरुसेवा (एतत् सर्वं) परं निःश्रेयसकरम् (अस्ति)।

**अर्थ / व्याख्या**– वेदाभ्यास, तप, ब्रह्मविषयक ज्ञान, विषयों के प्रति इन्द्रियों के आकर्षण को रोकने में सफलता, प्राणिहिंसा का त्याग तथा गुरु की सेवा, ये मोक्ष के परम उत्कृष्ट साधन हैं।

**सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।**

**तद्ध्यग्रयं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः।।311।।**

**अन्वयः**– च एतेषां सर्वेषां अपि (शुभानां कर्मणाम्) आत्मज्ञानं परंस्मृतम्, तद् हि सर्वविद्यानाम् अग्रचम् (अस्ति यतः) ततः अमृतं प्राप्यते।

**अर्थ / व्याख्या**– ये सभी साधन शुभकर्म फलदायक हैं। उपनिषद् ग्रन्थों में बताया गया है कि परमार्थ ज्ञान सर्वोकृष्ट है क्योंकि वह सभी विद्याओं में प्रधान है। इस प्रधानता का कारण यह है कि इससे अमृतत्व अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

टिप्पणी

**सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**

**समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।।312।।**

**अन्वयः**– सर्वभूतेषु च आत्मानं च आत्मनि सर्वभूतानि समं पश्यन् आत्मयाजी स्वाराज्यम् अधिगच्छति।

**अर्थ / व्याख्या**– स्थावर–जंगम आदि सभी पदार्थों में मैं ही हूं और सभी पदार्थ परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण मुझमें समाए हैं। ऐसा समझते हुए ब्रह्मार्पण से आत्मयाजी ब्रह्मत्व भाव वाले स्वाराज्य को प्राप्त कर लेता है। इसी के समर्थन में यजुर्वेद का अधोलिखित मन्त्र भी है–

***यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।***

***सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।***

**यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।**

**आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान्।।313।।**

**अन्वयः**– यथोक्तानि अपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः आत्मज्ञाने च शमे च वेदाभ्यासे यत्नवान् स्यात्।

**अर्थ / व्याख्या**– ब्राह्मण के लिए शास्त्रों में अग्निहोत्र आदि जो कर्म कहे गए हैं उनको भी छोड़कर ब्रह्म के ध्यान, इन्द्रियों पर विजय के द्वारा 'शम' की प्राप्ति और वेदाभ्यास का ब्राह्मण को प्रयास करना चाहिए। ये मोक्ष का साधन होने से उत्कृष्ट हैं, यह बताना यहां अभिप्रेत है। अग्निहोत्र का त्याग करने का तात्पर्य नहीं।

**एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः।**

**प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा।।314।।**

**अन्वयः**– ब्राह्मणस्य विशेषतः एतद् हि जन्मसाफल्यम्। एतत् प्राप्य हि द्विजः कृतकृत्यः भवति न अन्यथा।

**अर्थ / व्याख्या**– यह आत्मज्ञान प्राप्त करना ही ब्राह्मण के लिए तो विशेष रूप से जन्म की सफलता है। क्योंकि इसे पाकर ही द्विज कृतकृत्य होता है, न कि अन्य कार्यों से। अन्य सभी कार्यों से तो 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' का चक्र टूट ही नहीं सकता।

## वेदमहिमा (श्लोक 315–322)

(श्लोक क्रमांक 315 से 322 में वेद महिमा का गुणगान किया गया है।)

**पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।**

**अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः।।315।।**

**अन्वयः**– वेदशास्त्रं हि पितृदेवमनुष्याणां (तादृशं) सनातनं चक्षुः (अस्ति) वेदः यत् अशक्यं च अप्रमेयं च (अस्ति) इति (वस्तुस्थितिः)।

**अर्थ / व्याख्या**– हव्य–कव्य और अन्नदान के साधन का निर्देष्टा होने से वेद ही पितरों, देवताओं और मनुष्यों का अनश्वर नेत्र है। स्वयं प्रमाण होने से यह अप्रमेय है। इसे मनुष्य नहीं बना सकते, अतः यह अशक्य है–

टिप्पणी

***अशक्यं च वेदशास्त्रं कर्तुम्। अनेन अपौरुषेयता उक्ता, अप्रमेयं च मीमांसादिन्यायनिरपेक्षतया अनवगम्यमानम् अप्रमेयम् एवं व्यवस्था।***

(कुल्लूकभट्ट–टीका मनु. 12 / 94)

**चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।**

**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति।।316।।**

**अन्वयः**– चातुर्वर्ण्यं, त्रयः लोकाः च पृथक् (पृथक्) चत्वारः आश्रमाः भूतं, भव्यं च भविष्यम् (इति) सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।

**अर्थ / व्याख्या**– 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' इस वेद वचन से ही चारों वर्णों की स्थिति व ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्वर्गादि तीनों लोकों और ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम भी वेद से ही प्रख्यात हैं। अतीत, वर्तमान और वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान भी वेद ज्ञान से सम्भव है, यह महर्षि वेदव्यास द्वारा लिखित अठारह पुराणों से प्रमाणित है।

**बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।**

**तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्।।317।।**

**अन्वयः**– सनातनं यत् वेदशास्त्रम् सर्वभूतानि बिभर्ति, तस्मात् (कारणात्) अस्य जन्तोः एतत् परं साधनम्।

**अर्थ / व्याख्या**– सदा विद्यमान यह वेदशास्त्र सभी प्राणियों को धारण करता है। वेद मन्त्रों की आहुति से प्राणियों की उत्पत्ति होती है, ऐसा ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है–

***"हविरग्नौ हूयते सोऽग्निरादित्यमुपसर्पति तत्सूर्यो रश्मिभिर्वर्षति तेनान्नं भवति अथेह भूतानामुत्पत्तिस्थिश्चेति हविर्जायते" इति ब्राह्मणम्।"***

(कुल्लूकभट्ट–टीका मनु. 12 / 99)

इस प्रकार वैदिक कर्म के अधिकारी पुरुष के लिए वेदशास्त्र ही परम साधन है।

**यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान्।**

**तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः।।318।।**

**अन्वयः**– यथा जातबलः वह्निः आर्द्रान् अपि द्रुमान् दहति, तथा वेदज्ञः आत्मनः कर्मजं दोषं दहति।

**अर्थ / व्याख्या**– जिस प्रकार से प्रचण्ड अग्नि (दावानल) गीले वृक्षों को भी जला देती है, उसी प्रकार वेद का ज्ञाता अपने द्वारा हुए प्रतिषिद्ध कर्मों के पाप को भी भस्म कर देता है। यह निर्देश अज्ञान और प्रमाद से हुए कर्मों के लिए कहा गया है, अर्थात्–

टिप्पणी

*न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरुचिर्भवेत्।*

*अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दहते कर्म नेतरत्।।*

**वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।**

**इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते।।319।।**

**अन्वयः**– वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः यत्र–तत्र आश्रमे वसन् सः इह एव लोके तिष्ठन् ब्रह्मभूयाय कल्पते।

**अर्थ / व्याख्या**– जो विद्वान् वेद के अर्थ और ब्रह्मात्मक कर्म का ज्ञाता होता है वह नित्यनैमित्तिक कर्मों से प्राप्त ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से ब्रह्मचर्य आदि किसी भी आश्रम में रहते हुए ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है।

**अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः।**

**धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः।।320।।**

**अन्वयः**– अज्ञेभ्यः ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः, ग्रन्थिभ्यः धारिणः वराः, धारिभ्यः ज्ञानिनः श्रेष्ठाः च ज्ञानिभ्यः व्यवसायिनः श्रेष्ठा (भवन्ति)।

**अर्थ / व्याख्या**– जो अज्ञानी हैं उनसे वे श्रेष्ठ हैं जो सम्पूर्ण ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं, उन ग्रन्थियों से वे श्रेष्ठ है जो ग्रन्थ को हृदय में धारण करते हैं, धारण करने वालों से वे श्रेष्ठ हैं जो ग्रन्थ के तात्पर्य के ज्ञाता होते हैं और उनसे भी वे श्रेष्ठ हैं जो उस पर आचरण करते हैं, ग्रन्थ–ज्ञान का अनुष्ठान करते हैं। इस प्रकार जो मात्र ग्रन्थी हैं, वे ऐसे अध्येता होते हैं, जो पढ़कर भूल जाते हैं।

**तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।**

**तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।।321।।**

**अन्वयः**– तपः च विद्या विप्रस्य परम् निःश्रेयस–करं, (विप्रः) तपसा किल्बिषं हन्ति विद्यया अमृतम् अश्नुते।

**अर्थ / व्याख्या**– अपने धर्म पर टिके रहना तप है–*तपः स्वधर्मवर्तित्वम्* (कुलूक. मनु. 12 / 104)

तप को मोक्ष का साधन भी कहा गया है। तप का यह महत्व भी है कि इसके बल से विप्र अपने पाप को समाप्त कर देता है। विद्या के द्वारा विप्र अमृत अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। श्रुति वचन भी है–

*विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।*

*अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।*

(ईशावास्योपनिषद–11)

**धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।**

**ते शिष्टा ब्राह्मणाः ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः।।322।।**

**अन्वयः**– यैः सपरिबृंहणः वेदः धर्मेण अधिगतः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ते शिष्टाः ब्राह्मणाः ज्ञेयाः।

टिप्पणी

**अर्थ/व्याख्या**– ब्रह्मचर्यादि धर्म का पालन करते हुए जिन्होंने वेदांगों, मीमांसा, धर्मशास्त्र और पुराण आदि के विस्तार सहित वेद को अधिगत कर लिया हो, वे पदार्थ को प्रकट करने में सक्षम होने से शिष्ट ब्राह्मण जाने जाते हैं।

## आत्म–तत्व विवेचन (श्लोक 323–326)

(श्लोक क्रमांक 323 से 326 में 'आत्म तत्व' का विवेचन किया गया है।)

**आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।**

**आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्।।323।।**

**अन्वयः**– आत्मा एव सर्वाः देवताः, आत्मनि एव सर्वम् अवस्थितम् (अस्ति) आत्मा ही शरीरिणाम् कर्मयोगम् जनयति।

**अर्थ/व्याख्या**– इन्द्रादि समस्त देवता परमात्मा ही हैं क्योंकि परमात्मा सर्वात्मस्वरूप है। परमात्मा में ही सब समा जाते हैं, अतः सब उसी में स्थित हैं। परमात्मा ही क्षेत्रज्ञादि के कर्मसंबंध को उत्पन्न करता है–

*"एष ह्येव साधु कर्म कारयति यमूर्ध्वं निनीषति।*

*एष ह्येवासाधु कर्म कारयति यमधो निनीषति।।"*

(कौषीतिकी उपनिषत् 3/8)

**प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।**

**रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।।324।।**

**अन्वयः**– प्रशासितारं, अणोः अपि सर्वेषाम् अणीयांसं, रुक्माभम् च– स्वप्नधीगम्यं तं परं पुरुषं विद्यात्।

**अर्थ/व्याख्या**– जो ब्रह्मा से लेकर तिनके तक – चेतन और अचेतन जगत का नियन्ता है, सूर्यादि के भ्रमण और अग्नि के उष्णता आदि धर्म जिसके आदेश से क्रियाशील होते हैं, जो शुद्ध स्वर्ण जैसी चमक वाला है (*एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः– छान्दोग्योपनिषद्*–1/6/6), स्वप्न की बुद्धि के समान जिसका ज्ञान होता है अर्थात् मन से जाना जाता है–

*नैवासौ चक्षुषा ग्राह्यो न शिष्टैरपीन्द्रियैः।*

*मनसा तु प्रसन्नेन गृह्यते सूक्ष्मदर्शिभिः।।* (–वेदव्यासः)

ऐसे उस परमात्मा को जानो। उसी के शासन से अग्नि उष्णता को धारण करती है, ऐसा कठोपनिषद् के मन्त्र में भी कहा गया है–

टिप्पणी

*भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।*

*भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।। (2/3/3)*

**एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः।**

**जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत्।।325।।**

**अन्वयः**– एषः पञ्चभिः मूर्तिभिः सर्वाणि भूतानि व्याप्य जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं चक्रवत् संसारयति।

**अर्थ/व्याख्या**– यह परमात्मा पृथ्वी, जल आदि पांच महाभूतों से समस्त शरीरों में व्याप्त होकर विभिन्न जन्मों के कर्मों से अर्जित फलों के अनुरूप उत्पत्ति, स्थिति विनाश के द्वारा रथ के पहिए के समान उन्हें संसार में संसरण कराता है–

*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।*

*भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।*

(श्रीमद्भगवद्गीता–18/61)

**एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।**

**स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्।।326।।**

**अन्वयः**– एवं यः सर्वभूतेषु आत्मना आत्मानं पश्यति सः सर्वसमताम् एत्य परं पदं ब्रह्म आभ्येति।

**अर्थ/व्याख्या**– 'एष सर्वाणि भूतानि...' श्लोक के तात्पर्यानुसार जो सभी पदार्थों में आत्मतत्व के ज्ञान से स्वयं को देख पाता है वह समत्वयोग को प्राप्त करके श्रेष्ठ स्थान ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है अर्थात् मुक्त हो जाता है–

*तत्रात्यन्तं लीयते मुक्तो भवतीत्यर्थः।* (कुल्लूक. मनु. 12/125)

## अपनी प्रगति जांचिए

3. 'सहोभौ चरतां धर्मम्' कहकर कन्यादान किस प्रकार के विवाह के अन्तर्गत होता है?

(क) ब्राह्म (ख) दैव

(ग) आर्ष (घ) प्राजापत्य

4. 'दण्ड' का ईश्वर किसे कहा गया है?

(क) वरुण को (ख) इन्द्र को

(ग) अग्नि को (घ) वायु को

## 2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ख)
2. (ग)
3. (घ)
4. (क)

## 2.5 सारांश

मनुस्मृति विश्वजनीन सनातन धर्म का अति प्राचीन धर्मशास्त्र है। प्राचीन भारतीय समाज प्रायः इसी धर्मशास्त्र की व्यवस्थाओं पर आधारित थे। 'रामराज्य' की जो आदर्श शासन कल्पना की जाती है, उसमें भी मनुस्मृति के सिद्धान्तों का पालन आदर्श रूप से होता था। अतः भारतवर्ष के प्राचीन गौरव और उन्नति में मनुस्मृति का महत्वाधायी योगदान रहा है। इसमें वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था के सिद्धान्त प्राचीन युग से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में जीवित हैं। यद्यपि उन सिद्धान्तों का पालन उतनी कठोरता से करने वाले विरले ही बचे हैं, तथापि इसकी अपेक्षा तो ग्रन्थकार को भी थी।

सनातन धर्म में मनु को सृष्टि का प्रथम पुरुष माना गया है। इन्हीं के नाम से मानवीय सृष्टि के सभी लोग मनुष्य अथवा मानव कहे जाते हैं। स्वायम्भुव मनु के क्रम में ही कुल चौदह मनुओं का वर्णन मिलता है। वर्तमान चतुर्युगी के अंतर्गत सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु कहे जाते हैं।

तथापि मनुस्मृति का रचनाकार स्वायम्भुव मनु को ही माना जाता है। वेदमूलक वर्णाश्रम व्यवस्था जिस तरह सर्वप्राचीन है उसी प्रकार मनुस्मृति के अंतर्गत वर्णित वर्णाश्रम नियमों की प्राचीनता भी इसी सिद्धान्त के अनुरूप है। वैवस्वत मनु के वंश में उत्पन्न महाराज दिलीप के राज्य में भी सारी प्रजा मनु द्वारा प्रतिष्ठापित सिद्धान्तों का पूरी निष्ठा से पालन करती थी।

भारतवर्ष के महत्व और इसकी भौगोलिक स्थिति को भी मनु ने विशेष रूप से बताया है। इसे पढ़कर उन लोगों की भ्रान्ति किंवा षड्यन्त्र का समूलोन्मूलन हो जाता है, जो यह कहते हैं कि 'आर्य' एक जाति है और ये यहां के मूल निवासी नहीं थे। प्राचीनतम स्मृति ग्रन्थ के अधोलिखित वचन के समक्ष अन्य समस्त कल्पनाएं स्वतः ही निर्मूल हो जाती हैं।

सतयुग (कृतयुग) में मनुष्यों के लिए जो धर्म होते हैं उनसे भिन्न–भिन्न धर्म त्रेता, द्वापर और कलियुग में युगों के ह्रास के अनुसार होते हैं। कहने का अभिप्राय है कि बाद में आने वाले युगों में कुछ–कुछ कमियां आती रहती हैं अतः उन कमियों के अनुरूप ही धर्म की कठोरता भी कम होती रहती है। वर्णाश्रम धर्म के नियमों में इस शिथिलता को विशेष रूप से देखा जा सकता है।

धर्म रूपी वृषभ के चार पैर तप, ज्ञान, यज्ञ और दान कहे गए हैं। ये क्रमशः हर युग में क्षीण होते जाते हैं। इस प्रकार कलियुग में 'दान' ही एक चरण बचा हुआ है, तप, ज्ञान और यज्ञ का प्रभाव लुप्तप्राय है।

**टिप्पणी**

अध्यापन, अध्ययन, यज्ञ करना (और) वैसे ही यज्ञ करवाना, दान करना और दान लेना, ये कार्य ब्राह्मणों के लिए विधाता ने नियत किए अर्थात वेदादि ग्रंथों का अध्ययन, अध्यापन आदि कार्य विधाता ने ब्राह्मणों की सृष्टि के साथ उनके लिए रच दिए।

इस मनुस्मृति नामक शास्त्र में मनु ने स्थान विशेष के लिए, जाति विशेष के लिए, कुल विशेष के लिए और पाखण्ड समूहों को लक्ष्य करके सनातन (तीनों कालों में लागू) धर्मों (कर्तव्यों) को बताया है अर्थात् मनुस्मृति में ऐसे धर्म बताए गए हैं जो भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों में पालन करने पर लाभप्रद होते हैं। उनका पालन करने से स्थान, जाति और कुल तीनों का कल्याण होता है।

वेदों में बताए गए निर्देश, स्मृति ग्रन्थों के वाक्य, सनातन सदाचार (सत्य, दम, धृति आदि) के नियम और अपनी आत्मा को जो संतुष्टि दे – ये चार प्रकार के धर्म के लक्षण हैं। कहने का आशय है कि वेदादि के धर्म मार्ग पर चलना चाहिए और जिस विषय में वेद आदि का निर्देश स्पष्टतः प्राप्त न हो रहा हो, उस विषय में संस्कारवान् व्यक्ति की आत्मा ही उसे सत्पथ दिखाती है। धर्म के पथ पर चलने वाले के लिए कभी अंधकार नहीं होता।

अग्रजन्मे ब्राह्मणों के अध्ययन और अध्यापन के परिणामस्वरूप भारत में ही सर्वप्रथम सभ्यता और सुसंस्कारों का विकास हुआ अतः संपूर्ण विश्व में जिन्होंने भी सत्य और संस्कारवान् बनना चाहा, उन्होंने इस देश के ब्राह्मणों से अपने–अपने लिए श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा यहां के ब्राह्मणों से ग्रहण की। यही कारण है कि विश्व में भारत की जगद्गुरु पदवी प्रतिष्ठित है।

ब्राह्मण (के पुत्र) का उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार तब किया जाना चाहिए जब उसके गर्भ में आने के आठ वर्ष हो गए हों, क्षत्रिय का उपनयन संस्कार गर्भागमन से ग्यारहवें और वैश्य का गर्भागमन के बारहवें वर्ष में किया जाए। ध्यान देने योग्य है कि यहां जातक के जन्म का समय नहीं गिना जा रहा अपितु गर्भ में शिशु के प्रवेश के समय की गिनती की जा रही है। स्पष्ट है जाति का निर्धारण भी जन्म से नहीं अपितु गर्भ में जीव के आगमन से ही माना गया है। एक ऐसा समय जिसमें शिशु पूरी तरह माता के शरीर के भीतर ही पोषण प्राप्त कर रहा होता है और किसी भी कर्म का निष्पादन स्वेच्छा से करने में सक्षम नहीं होता। अतः जाति को कर्म से निर्धारित करने का प्रयास तो केवल राजनीति का खेल है, जो कि कदापि धर्मसम्मत नहीं है।

व्यर्थ की चेष्टाओं में अपनी ऊर्जा को नहीं लगाना चाहिए अर्थात् राह चलते फूल–पत्ते तोड़ना या किसी जीव–जंतु को सताना आदि अनेक प्रकार की निरर्थक तथा हानिकारक चेष्टाएं नहीं करनी चाहिए। हाथों की अंजलि बनाकर उससे पानी नहीं पीना चाहिए क्योंकि इससे पानी के जूठे छींटे अपने पर ही गिरते हैं और पानी की बर्बादी

भी होती है। गोद में भोजन रखकर नहीं खाना चाहिए, इससे वस्त्र और शरीर दोनों अपवित्र होते हैं तथा व्यर्थ की जिज्ञासा भी नहीं रखनी चाहिए। अनधिकार ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास में ज्ञान देने वाला क्रोधित हो सकता है अथवा ठग किस्म के लोग ठगी करके हानि पहुंचा सकते हैं।

टिप्पणी

मनुस्मृति के द्वादश अध्याय के श्लोक संख्या 73–74 आदि में विषयाभ्यासी अल्पबुद्धियों को प्राप्त होने वाले कष्टों के बारे में बताया जा रहा है कि विषयों की मूर्खता से बंधे हुए मनुष्य अनिवार्य बुढ़ापे को पाते हैं, अनेक रोगों और उनसे जुड़े नाना प्रकार के कष्टों को पाते हुए अन्ततोगत्वा उस मृत्यु के द्वारा समाप्त कर दिए जाते हैं, जिससे जीतना अत्यन्त कठिन है। आत्मज्ञान प्राप्त करने वाला ही मृत्युञ्जय होता है न कि विषयभोगी।

## 2.6 मुख्य शब्दावली

- **तोयम्**– जल
- **वार्ता**– व्यापार
- **उञ्छः**– अन्न के एक–एक दाने का संचय
- **कुसीदम्**– ब्याज
- **प्लवम्**– नौका
- **पूयते**– पवित्र होता है
- **क्षेत्रज्ञ**– परमात्मा
- **अजस्रम्**– निरंतर

## 2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संस्कार से क्या अभिप्राय है? सभी सौलह संस्कारों के नाम लिखिए?
2. उपनयन संस्कार के विषय में लिखिए?
3. मनुस्मृति में वर्णित आठ प्रकार के विवाहों के नाम बताइए?
4. एक स्त्री को कैसा होना चाहिए?
5. धर्म के दस लक्षण कौन से हैं?
6. 'पुत्र' का क्या अर्थ है?

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रिय के क्या कार्य और भूमिका है? विस्तार सहित बताइए?
2. वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत वैश्य के कार्य और भूमिका विस्तार सहित बताइए।

3. मनुस्मृति में शूद्र के क्या कार्य बताए गए हैं?
4. आर्यावर्त से आप क्या समझते हैं? मनुस्मृति के आधार पर आर्य संस्कृति का विस्तृत परिचय लिखिए?

टिप्पणी

## 2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. मनुस्मृतिः व्याख्याकार शिवराज आचार्य कौण्डिन्य।
   प्रका. चौखम्भा, संस्कृत प्रतिष्ठा
2. मनुस्मृतिः (द्वितीयोऽध्यायः)–जर्नादन शास्त्री पाण्डेय
   प्रकाशक–मोतीलाल बनारसीदास
3. मनुस्मृति (कुल्लूकभट्ट–टीका)–सम्पादक–जगदीश
   लाल शास्त्री, एस.सी. बनर्जी
   प्रकाशक–मोतीलाल बनारसीदास

# इकाई 3 कठोपनिषद् (सामान्य परिचय)

टिप्पणी

## संरचना


3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 कठोपनिषद् का सामान्य परिचय
3.3 प्रथम अध्याय की तीन वल्लियों का सार–अंश
  3.3.1 प्रथम वल्ली का सार
  3.3.2 द्वितीय वल्ली का सार
  3.3.3 तृतीय वल्ली का सार
3.4 द्वितीय अध्याय की तीन वल्लियों का सार–अंश
  3.4.1 प्रथम वल्ली का सार
  3.4.2 द्वितीय वल्ली का सार
  3.4.2 तृतीय वल्ली का सार
3.5 प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों की तीन–तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या
  3.5.1 प्रथम अध्याय की तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या
  3.5.2 द्वितीय अध्याय की तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या
3.6 कठोपनिषद् का दार्शनिक एवं सामाजिक महत्व
3.7 कठोपनिषद् में निहित संदेश
3.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.9 सारांश
3.10 मुख्य शब्दावली
3.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.12 सहायक पाठ्य सामग्री


## 3.0 परिचय

कठोपनिषद् वैदिक साहित्य के अन्तर्गत प्रमुख उपनिषद्ों में विशेष महत्व से युक्त है। शुक्लयजुर्वेद की 'कठ' शाखा के अन्तर्गत इस उपनिषद् के होने से इसे 'कठोपनिषद्' कहा जाता है।

आरुणि के वंशज उद्दालक के पुत्र नचिकेता का प्रेरक उपाख्यान इस उपनिषद् की रोचकता में वृद्धिकारक है। दो अध्यायों में विभक्त कुल छह वल्लियों में इसके कुल 120 मन्त्र हैं। मन्त्रों की प्रवाहमयी भाषा अध्येता को संस्कृत पठन का विशेष आनन्द दिलाने में सक्षम व अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। इसके श्रवण और पठन का विशेष महत्व प्रथम अध्याय की तृतीय वल्ली के अन्तिम श्लोक में कहा गया है–

**य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।**
**प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते।।**

इस इकाई में कठोपनिषद् का सामान्य परिचय देते हुए प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों की तीन–तीन वल्लियों का सारांश प्रस्तुत किया गया है। कठोपनिषद् की दार्शनिक व सामाजिक महत्ता स्पष्ट करते हुए इस उपनिषद् में निहित संदेश भी इस इकाई में रेखांकित किया गया है।

टिप्पणी

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कठोपनिषद् के सामान्य परिचय से अवगत हो पाएंगे;
- प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों की तीन–तीन वल्लियों का सार समझ पाएंगे;
- प्रथम एवं द्वितीय अध्याय की तीन–तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या कर पाएंगे;
- कठोपनिषद् की दार्शनिक एवं सामाजिक महत्ता स्पष्ट कर पाएंगे;
- कठोपनिषद् के निहित संदेशों से परिचित हो पाएंगे।

## 3.2 कठोपनिषद् का सामान्य परिचय

वैदिक ग्रंथों में उपनिषद्–साहित्य रचना की दृष्टि से अंतिम एवं महत्व की दृष्टि से सर्वोपरि है। उपनिषद् साहित्य को ही 'वेदांत' कहा जाता है, क्योंकि ये अपौरुषेय वेदों के अंतिम एवं आधुनिक सबसे महत्वपूर्ण व्याख्या–ग्रंथ हैं। वेद रूपी वृक्ष की शाखाएं यदि 'ब्राह्मण–ग्रंथ' हैं और 'आरण्यक–ग्रंथ' उन शाखाओं पर उद्भूत होने वाले पुष्प हैं तो निश्चित रूप से उस आरण्यक रूपी पुष्प की सुगंध 'उपनिषद्–साहित्य' ही है।

'उपनिषद्' शब्द 'उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक 'षदलृ' धातु के साथ 'क्विप्' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होता है। 'षदलृ विशरणगत्यवसादनेषु' के अनुसार 'षदलृ' धातु का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है–

1. विशरण – नष्ट होना : इस अर्थ में उपनिषद् के अनुशीलन से समस्त सांसारिक पापों का नाश होता है।
2. गति–ज्ञानप्राप्ति : इसके अनुसार उपनिषद् के अध्ययन से मनुष्य को ब्रह्म–ज्ञान की प्राप्ति होती है।
3. अवसादन–शिथिल करना : इस अर्थ के अनुसार उपनिषद् के परिशीलन से मनुष्य संसार के कारणभूत माया के बंधन को शिथिल करने में सक्षम होता है।

इस प्रकार जो विद्या पाप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्राप्त कराए, आत्मा के रहस्य को समझाए तथा अज्ञान के बंधन को शिथिल करे, वह उपनिषद् है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस ज्ञान के द्वारा 'ब्रह्म' से साक्षात्कार किया जा सके, वही 'उपनिषद्' है। इसे अध्यात्म–विद्या भी कहा गया है।

**उपनिषद्ों की संख्या** – उपनिषद्ों की संख्या के संबंध में मतैक्य नहीं है। 'उपनिषद्वाक्यमहाकोश' के अनुसार उपनिषद्ों की संख्या 223 है। अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास से लगभग दो सौ उपनिषद्–ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'पुराण' के 'उपनिषद् अंक' में 220 उपनिषद्ों का उल्लेख है। परंपरा के अनुसार 108 उपनिषद्ों की प्रमुखता स्वीकार की गई है, किंतु इनमें भी दस उपनिषद्ों को अधिक प्रमुख एवं प्रामाणिक माना गया है। ये हैं–

**ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्डक–माण्डूक्य–तित्तिरिः।**
**ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।**

टिप्पणी

इन उपनिषद्–ग्रंथों में कठोपनिषद् का महत्व नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान है। इसका संबंध कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से है, इसीलिए इसे कठोपनिषद् कहा जाता है। इस उपनिषद् के रचयिता मुनि वैशम्पायन के शिष्य तथा यजुर्वेद की कठ शाखा के प्रवर्तक कठ नामक तपस्वी आचार्य थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण में आरुणि के वंशज नचिकेता की कथा का उल्लेख है। कठोपनिषद् में इसी कथा का विस्तार प्राप्त होता है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन–तीन वल्लियां हैं, जिनमें कुल 120 मंत्र हैं। इन मंत्रों की भाषा अत्यंत ही प्रवाहमयी और प्रभावोत्पादक है।

कठोपनिषद् में वाजश्रवस के पुत्र नचिकेता और यम के बीच संवाद के माध्यम से पितृ–भक्ति एवं अतिथि–सत्कार का महत्व प्रतिपादित करते हुए पारलौकिक ज्ञान तथा आत्मा के अगम स्वरूप का सुन्दर एवं हृदयग्राही वर्णन किया गया है। यमराज द्वारा उपदिष्ट एवं नचिकेता द्वारा प्राप्त सनातन आत्म–विज्ञान के वाचन तथा श्रवण की भी अत्यंत महिमा कही गई है। इस विषय में कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की तृतीय वल्ली का अंतिम श्लोक उल्लेखनीय है–

**य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदिद्य**
**प्रयतः श्राद्धकाले वा तदान्त्याय कल्पते।।1/3/17।।**

### अपनी प्रगति जांचिए

1. वेद–वृक्ष की शाखाएं हैं–

   (क) उपनिषद् (ख) पुराण

   (ग) ब्राह्मण ग्रंथ (घ) आरण्यक ग्रंथ

2. कठोपनिषद् में कुल कितने मंत्र हैं?

   (क) 320 (ख) 520

   (ग) 420 (घ) 120

## 3.3 प्रथम अध्याय की तीन वल्लियों का सार–अंश

प्रथम अध्याय में अपने पिता द्वारा यमराज को प्रदत्त किए जाने पर नचिकेता अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए यम के यहां पहुंचता है और यम की अनुपस्थिति में तीन दिनों तक भूखा–प्यासा उनके द्वार पर बैठा रहता है। तीन दिनों के बाद जब यमराज लौटकर आते हैं, तब देखते हैं कि बालक नचिकेता पिता की आज्ञा के पालनार्थ हमारे यहां उपस्थित हुआ है और तीन दिनों से हमारे दरवाजे पर भूखा–प्यासा हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी इस एकनिष्ठ एवं अनुपम पितृ–भक्ति तथा दृढ़ निष्ठा को देखकर यमराज अत्यंत प्रसन्न हुए। अपनी अनुपस्थिति के कारण अपने अतिथि बालक नचिकेता को तीन दिनों तक भूखे रहने के लिए वे उसे स्वेच्छानुरूप तीन वरदान मांगने को कहते हैं। वे उसे उचित सम्मान देकर भोजन आदि भी कराते हैं। तत्पश्चात नचिकेता द्वारा वरदान मांगने पर 'अध्यात्म' संबंधी उसकी जिज्ञासा शांत करते हैं।

टिप्पणी

### 3.3.1 प्रथम वल्ली का सार

प्रथम अध्याय की प्रथम वल्ली में पितृ–भक्ति तथा आतिथ्य के महत्व का प्रतिपादन हुआ है। कथा के अनुसार किसी समय वाजश्रवा ऋषि के पुत्र वाजश्रवस मुनि ने विश्वजित यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने अपना सम्पूर्ण धन दान कर दिया। जब ऋत्विजों के लिए दक्षिणा हेतु गायें ले जाई जा रही थीं, तब वाजश्रवस के पुत्र नचिकेता के मन में आस्तिकता का संचार हुआ। गायों को देखकर वह सोच में पड़ गया; क्योंकि वे गायें अत्यधिक जर्जर हो चुकी थीं। वे न तो दूध देने योग्य थीं, न संतानोत्पत्ति के लिए सक्षम थीं। उसने सोचा कि इस प्रकार की गायों को दान करने से तो यजमान पुण्य के स्थान पर पाप का ही भागी होगा। अपने पिता को नरक का भागी होने से बचाने के लिए नचिकेता स्वयं को दान के रूप में अर्पित कर देता है।

वह अपने पिता से कहता है – 'हे तात! इससे अच्छा तो था कि आप मुझे ही दान कर देते।'

नचिकेता के बार–बार ऐसा कहने पर पिता ने क्रोधित होकर कह दिया – 'जा, मैं तुझे यम को देता हूं।'

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए नचिकेता यम के द्वार पर जा पहुंचा। उस समय यमराज अपने निवास पर नहीं थे। तीन दिनों के बाद जब यमराज अपने निवास पर लौटते हैं, तब देखते हैं कि उनके द्वार पर बालक नचिकेता पिता की आज्ञा के पालन हेतु निरंतर तीन दिनों से अन्न–जल ग्रहण किए बिना उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। वे घबरा गए; क्योंकि अतिथि के भूखा रहने पर सर्वनाश हो जाता है। यमराज ने नचिकेता को प्रसन्न कर अपने अनिष्ट के निवारण हेतु उसे उपवास की एक–एक रात्रि के लिए एक–एक वर मांगने को कहा।

#### नचिकेता का प्रथम वरदान

यमराज के द्वारा वर मांगने के लिए कहे जाने पर नचिकेता प्रथम वर के रूप में अपने पिता के परितोष एवं प्रसन्नता की मांग करते हुए कहता है – 'हे मृत्युदेव! जब मैं आपके पास से लौटकर घर जाऊं, तो मेरे पिता क्रोध त्याग, शांतचित्त होकर, मुझसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करें और अपनी शेष आयु में उन्हें कोई चिंता न सताए तथा वे सुख से सो सकें।' यमराज ने 'तथास्तु' कहकर नचिकेता को पहला वर प्रदान किया।

#### नचिकेता का द्वितीय वरदान

तदनंतर नचिकेता ने स्वर्गलोक के आनंद का उल्लेख करते हुए यमराज से कहा – 'हे मृत्युदेव! आप मुझे स्वर्ग के साधनभूत उस 'अग्नि–विज्ञान' का उपदेश करें, जिसके द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए पुरुष अमरत्व को प्राप्त करते हैं।'

तब यमराज ने नचिकेता को द्वितीय वर के रूप में स्वर्गलोक को प्राप्त कराने वाली अत्यन्त गोपनीय 'अग्नि–विद्या' का उपदेश किया। यमराज ने नचिकेता को समझाया कि ऐसा यज्ञ करने के लिए कितनी ईंटों की वेदी बनानी चाहिए तथा किस विधि से अग्नि का चयन किया जाए। बालक नचिकेता ने यमराज से सुनी हुई उस अग्नि–विद्या को अक्षरशः दोहरा दिया। उसे सुनकर यमराज बालक नचिकेता की

टिप्पणी

विलक्षण प्रतिभा एवं स्मरण–शक्ति से अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा – 'हे नचिकेता! तुम्हारे मांगे गए तीन वरदानों के अतिरिक्त मैं तुम्हें एक वरदान अपनी ओर से यह देता हूं कि मेरे द्वारा उपदिष्ट यह 'अग्नि–विद्या' आज से तुम्हारे नाम से जानी जाएगी। तुम इस अनेक रूपों वाली माला को स्वीकार करो।' अभिप्राय यह है कि अनेक प्रकार के फल देने वाले कर्म–विज्ञान को भी तुम समझो।

यमराज के वरदानस्वरूप नचिकेता को प्राप्त दिव्य 'अग्नि–विद्या' 'नचिकेताग्नि' के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'नाचिकेत–अग्नि' का तीन बार चयन करने वाला अथवा उसकी 'प्राप्ति', 'अध्ययन' और 'अनुष्ठान' करने वाला 'त्रिणाचिकेत' कहलाता है। ऐसा 'त्रिणाचिकेत' पुरुष माता, पिता और आचार्य से संधि या संबंध (विद्या) प्राप्त करके तथा यज्ञ, अध्ययन एवं दान इन तीन कर्मों को करके जन्म–मृत्यु से पार होकर परम शान्ति को प्राप्त करता है।

यमराज आगे वैराग्य का मार्ग बताते हुए कहते हैं कि 'ब्रह्मजज्ञ' अर्थात ब्रह्मा से उत्पन्न हुए, ज्ञानवान और स्तुति करने के योग्य देवों को शास्त्र से जानकर तथा आत्मभाव से अनुभव करके 'त्रिणाचिकेत' पुरुष वैराग्य प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान और कर्म के समुचित समन्वय का नियमपूर्वक पालन करके ही वैराग्य पद प्राप्त किया जा सकता है।

## नचिकेता का तृतीय वरदान

अब नचिकेता ने यमराज से तीसरा वर मांगा – 'हे मृत्युदेव! ज्ञानियों का कथन है कि मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर आत्मा का अस्तित्व रहता है, परन्तु कुछ की यह मान्यता है कि मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। आप मुझे यह बताएं कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा का क्या होता है?' नचिकेता के तीसरे वरदान को सुनकर यमराज ने उसे समझाया कि यह विषय अत्यन्त गूढ़ है। इसके बदले वे उसे संपूर्ण विश्व की समस्त सम्पदा और साम्राज्य तक दे सकते हैं। मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है, इसे जानना और समझना सुगम नहीं है। इसलिए इसे जानने का हठ वह छोड़ दे। परन्तु नचिकेता ने यमराज से कहा कि इस धर्म के संबंध में बताने वाला यमराज से अच्छा कोई अन्य नहीं हो सकता। इसीलिए इसके समान कोई दूसरा वरदान भी नहीं हो सकता।

नचिकेता के ऐसा कहने पर यमराज ने उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए – 'हे नचिकेता! तुम सौ वर्ष की आयु वाले पुत्र–पौत्र, बहुत–से पशु, हाथी, घोड़े, स्वर्ण, विशाल भू–खंड और इच्छानुसार लंबी उम्र मांग लो। इसके समान यदि कोई अन्य वर तुम्हें अभीष्ट हो; चिरस्थायिनी आजीविका, मनुष्य–लोक में दुर्लभ भोग–वस्तुएं, रथ और बाजों के साथ रमणी स्त्रियां और भी कोई भोग–विलास, जो भी मांगना है, वह मांग लो; किंतु आत्मा और मृत्यु संबंधी प्रश्न मत करो।

नचिकेता ने शांत भाव से यमराज से कहा कि मनुष्य को धन से तृप्त नहीं किया जा सकता है और आपके संपर्क में आने के बाद भला कोई भी मनुष्य अल्पायु एवं निर्धन कैसे रह सकता है। यमराज का एक भी प्रलोभन नचिकेता को डिगा नहीं सका। वह अपने मांगे हुए वर पर ही अड़ा रहा।

टिप्पणी

## 3.3.2 द्वितीय वल्ली का सार

यमराज ने नचिकेता के विवेक और दृढ़ता को देखते हुए कहा – 'हे नचिकेता! 'श्रेय' (कल्याण) और 'प्रेय' (सांसारिक भोग्य पदार्थ) दोनों पुरुषार्थ से सम्बद्ध हैं, किंतु दोनों का मार्ग अलग–अलग है। ये दोनों ही मार्ग मनुष्य के सम्मुख उपस्थित होते हैं। मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार उनमें से किसी एक को चुन लेता है। जो अज्ञानी होते हैं, वे भोग–विलास रूपी अविद्या का मार्ग चुनते हैं और जो ज्ञानी होते हैं, वे श्रेय रूपी विद्या का मार्ग चुनते हैं। सघन अंधकार के समान अविद्या में फंसे मनुष्य पुत्र, पशु, धन इत्यादि सैकड़ों तृष्णा–जाल में उलझे हुए स्वयं को बहुत बुद्धिमान समझते हैं। वास्तव में ऐसे मनुष्य मूढ़ और अविवेकी होते हैं और जरा, मरण और रोगादि से घिरे रहते हैं। ये बारंबार जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे नचिकेता! तुम्हारे समान श्रेय की इच्छा वाला हजारों में कोई एक होता है। अत्यंत सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय आत्म–ज्ञान को शास्त्रज्ञ आचार्य द्वारा जानने का सुअवसर बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। इसे शुष्क तर्क–वितर्क से नहीं जाना जा सकता।'

यमराज कहते हैं – 'प्रिय नचिकेता! जिस आत्मा को तुम जानना चाहते हो उस अति सूक्ष्म पुरातन देव को जानकर बुद्धिमान पुरुष हर्ष और शोक का त्याग कर देता है। समस्त वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, मुमुक्षु जन जिसके लिए ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कठोर तप करते हैं, वह परमपद 'ॐ' है। 'ॐ' ही अक्षरब्रह्म है। इस अक्षरब्रह्म को जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, वही उसका हो जाता है। साधक अपनी आत्मा से साक्षात्कार करके ही इसे जान पाता है; क्योंकि आत्मा ही 'ब्रह्म' को जानने का प्रमुख आधार है। यही 'आत्म–ज्ञान' है। एक साधक मानव–शरीर में स्थित इस आत्मा को ही जानने का प्रयत्न करता है।'

**न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।**

**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 1/2/18।।**

अर्थात् यह नित्य ज्ञान–स्वरूप आत्मा न तो उत्पन्न होती है और न मृत्यु को ही प्राप्त होती है। यह आत्मा न तो किसी अन्य के द्वारा जन्म लेती है और न कोई इससे उत्पन्न होता है। यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत, अक्षय तथा वृद्धि से रहित है। शरीर के नष्ट होने पर भी इसका नाश नहीं होता।

यदि मारने वाला आत्मा को मारने का विचार करता है और मारा जाने वाला उसे मारा गया समझता है तो वे दोनों ही इसे नहीं जानते। आत्मा न तो मारती है और न ही मारी जाती है।

हे नचिकेता! परमात्मा इस जीवात्मा की हृदय–रूपी गुफा में अणु से भी अति सूक्ष्म और महान से भी अति महान रूप में विराजमान है। निष्काम कर्म करने वाला तथा शोक–रहित कोई विरला साधक ही, परमात्मा की कृपा से उसे देख पाता है। दुष्कर्मों से युक्त, इन्द्रियासक्त और सांसारिक मोहों से घिरा ज्ञानी व्यक्ति भी आत्म–तत्त्व को नहीं जान सकता। यह स्थिर होकर भी दूर तक चला जाता है और शयन करता हुआ भी सब ओर पहुंच जाता है। स्थिति एवं गति, नित्य और अनित्य इत्यादि विपरीत धर्म वाली यह चिंतामणि की तरह भासित होती हुई दुर्विज्ञेय आत्मा सूक्ष्म बुद्धि वाले विद्वानों के लिए ही सुविज्ञेय है।

टिप्पणी

जो शरीरों में अशरीर तथा अनित्यों में नित्य स्वरूप विद्यमान है, उस सर्वव्यापक एवं अविकारी आत्मा को जान लेने पर बुद्धिमान पुरुष शोक से मुक्त हो जाते हैं। केवल आत्म–ज्ञान के लाभ के अभिलाषी निष्काम पुरुष को ही, आत्मा के द्वारा ही आत्म–ज्ञान की उपलब्धि होती है। इसके विपरीत जो शास्त्र–निषिद्ध कर्मों में निरत है, जिसकी इन्द्रियां चंचल हैं और जिसका चित्त अशांत है, वह इस आत्म–ज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। दुष्कर्मों से अनुरक्त, इन्द्रियासक्त और सांसारिक मोह में फंसा हुआ ज्ञानी व्यक्ति भी आत्म–तत्त्व को नहीं जान सकता।

### 3.3.3 तृतीय वल्ली का सार

तृतीय वल्ली में विद्या एवं अविद्या को सुगमतापूर्वक समझाने के लिए 'रथ' के रूपक की कल्पना की गई है। इसी तरह प्राप्त करने वाले तथा प्राप्तव्य वस्तु एवं गमन करने वाले तथा गंतव्य लक्ष्य का विवेक करने के लिए दो आत्माओं की कल्पना की गई है। ब्रह्मवेत्ता विद्वान एवं पंचाग्नि की उपासना करने वाले त्रिणाचिकेत (नाचिकेताग्नि का तीन बार चयन करने वाले) पुरुषों का कथन है कि शरीर में बुद्धि रूपी गुहा के प्रकृष्ट ब्रह्म–स्थान में अपने कर्म–फल को भोगने वाले धूप और छाया के समान परस्पर विलक्षण दो तत्त्व हैं। कर्मवेत्ताओं का आश्रय अपरब्रह्म और ब्रह्मवेत्ताओं का आश्रय परब्रह्म – इन दोनों का ही ज्ञान वांछनीय है। इसी ज्ञान को प्राप्त करने के साधन के रूप में 'रथ' की कल्पना की गई है–

**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
**बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। 1/3/3।।**

यमराज कहते हैं कि 'हे नचिकेता! तू आत्मा को रथी और शरीर को रथ समझ। बुद्धि को इस रथ का सारथी और मन को इसकी लगाम समझ।' यमराज आगे कहते हैं कि नेत्र, श्रोत्र आदि इंद्रियां शरीर रूपी रथ के घोड़े हैं और सांसारिक विषय इस रथ के मार्ग हैं। शरीर, इंद्रिय एवं मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहा गया है। जिस प्रकार सारथी के अविवेकी एवं असंयत होने से घोड़े उसके वश में नहीं होते, उसी प्रकार बुद्धि के अविवेकी एवं असंयत होने पर इंद्रियां वश में नहीं रहतीं। ऐसे अस्थिरचित्त और अपवित्र रहने वाले जीव को परम पद की प्राप्ति नहीं होती और वह जन्म–मरण के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता। इसके विपरीत, जो विज्ञानवान, संयत चित्त और सदा पवित्र रहने वाला है, वह उस परम पद को प्राप्त कर लेता है, जहां से वह पुनः जन्म–मरण के बंधन में नहीं पड़ता।

उस प्राप्तव्य परम पद का ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म के क्रम से प्राप्त करना चाहिए। इंद्रियों की अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं, विषयों से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से उत्कृष्ट एवं सूक्ष्म आत्मा (महत्तत्व) है। महत्तत्व से भी श्रेष्ठ संपूर्ण जगत का बीजभूत अव्यक्त (प्रकृति) और प्रकृति से भी श्रेष्ठ पुरुष है। उस पुरुष से उत्कृष्ट अन्य कुछ भी नहीं। वही परम गति है।

आत्म–ज्ञान के अधिकारी के विषय में यमराज कहते हैं कि जो विवेकशील है, जिसने मन सहित अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर लिया है, जो सदैव पवित्र भावों को धारण करने वाला है, वही उस आत्म–तत्त्व को जान पाता है; क्योंकि–

टिप्पणी

**एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।**
**दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।। 1/3/12।।**

अर्थात् सभी प्राणियों में छिपा हुआ यह आत्म–तत्त्व प्रकाशित नहीं होता, वरन् यह सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले तत्त्वदर्शियों द्वारा ही तीव्र एवं सूक्ष्म बुद्धि से देखा जाता है।

इस आत्म–तत्व की प्राप्ति के लिए विवेकी पुरुषों को वाक्, चक्षु आदि इन्द्रियों को मन में लीन कर देना चाहिए। मन को बुद्धि में, बुद्धि को महत्तत्व में और महत्तत्व को शांत आत्मा में लीन कर देना चाहिए। आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए अविद्या–ग्रस्त लोगों को उद्बोधित करते हुए यम कहते हैं–

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**
**क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया**
**दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।। 1/3/14।।**

अर्थात, उठो, अज्ञान की निद्रा से जागो और आत्म–ज्ञानी श्रेष्ठ आचार्यों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। तत्त्व–ज्ञानी इस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बताते हैं, जैसा कि छुरे की अत्यंत तीक्ष्ण धार पर चलना।

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, रसहीन, नित्य और गंधरहित है; जो अनादि, अनंत, महत्तत्व से भी श्रेष्ठ एवं ध्रुव (अटल, निश्चल) है, उस आत्म–तत्व को जानकर पुरुष काल के बंधन से मुक्त हो जाता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

3. यम द्वारा नचिकेता से तीन वरदान मांगने के लिए कहा गया, क्योंकि–
   (क) इससे अधिक वरदान नहीं दिया जा सकता था।
   (ख) पृथ्वी आकाश, पाताल तीन लोक होते हैं, इसलिए।
   (ग) नचिकेता ने तीन दिन यम की प्रतीक्षा की थी, इसलिए।
   (घ) नचिकेता को इतने की ही आवश्यकता थी।
4. आत्मतत्व को कौन नहीं जान सकता?
   (क) दुष्कर्मों से युक्त (ख) इंद्रियासक्त
   (ग) सांसारिक मोहों से घिरा ज्ञानी (घ) उपरोक्त सभी

## 3.4 द्वितीय अध्याय की तीन वल्लियों का सार–अंश

दूसरे अध्याय में परमेश्वर की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं के निवारण और हृदय में उनकी स्थिति का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में ब्रह्माण्ड के मध्य उलटे लटके हुए पीपल के वृक्ष के रूप में संसार की कल्पना की गई है। परमात्मा की सर्वव्यापकता, योग–साधना, ईश्वर–विश्वास और मोक्षादि का विवेचन किया गया है। अन्त में ब्रह्मविद्या के प्रभाव से नचिकेता को ब्रह्म–प्राप्ति का उल्लेख है।

टिप्पणी

### 3.4.1 प्रथम वल्ली का सार

परमात्मा ने जीव की समस्त इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है, जिससे जीवात्मा मात्र बाहरी पदार्थों को देख पाता है और सांसारिक भोग–विलास में ही उसका ध्यान रमा रहता है। वह अन्तरात्मा की ओर नहीं देख पाता। किन्तु मोक्ष की कामना करने वाला धैर्यवान पुरुष अपनी समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित करके अन्तरात्मा को देख पाता है। अल्पज्ञ पुरुष मृत्यु के चतुर्दिक फैले हुए पाश में फंसे हुए मात्र भौतिक भोगों की इच्छा करते हैं, जबकि ज्ञानी पुरुष लौकिक भोग–विलास को अनित्य जानकर अमरत्व को नित्य मानते हैं और उसी की कामना करते हैं।

आत्मा के द्वारा ही जीव रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श इत्यादि का अनुभव कर पाता है। इस लोक में ऐसा कुछ भी नहीं, जो आत्मा से अविज्ञात हो। यही वह (ब्रह्म) है। ज्ञानी पुरुष कर्म–फल को भोगने वाले एवं प्राणादि को धारण करनेवाले शरीर के मध्य में अंगुष्ठ–परिमाण रूप से अवस्थित निर्धूम प्रकाश–पुंज के समान आत्मा को भूत, भविष्यत् और वर्तमान के स्वामी के रूप में जानकर न तो आत्मा की रक्षा की इच्छा करता है और न ही अनित्य वस्तुओं के लिए शोक करता है।

अन्तरात्मा ही ब्रह्म तक पहुंचने का मार्ग है। ब्रह्म–तत्व इससे पृथक् नहीं है। जो मनुष्य इसमें पार्थक्य देखता है, वह काल के वश होकर आवागमन (जन्म–मृत्यु) के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता। सूर्य जहां से उदित होते हैं और जहां तक जाकर अस्त होते हैं, वहां तक समस्त देव शक्तियां विराजमान हैं। उन्हें कोई भी नहीं लांघ पाता। यही ईश्वर है। इस ईश्वर को जानने के लिए सत्य और शुद्ध मन की आवश्यकता होती है।

यमराज कहते हैं – 'हे नचिकेता! शुद्ध जल को जिस पात्र में भी डालो, वह उसी के अनुसार रूप ग्रहण कर लेता है। पौधों में वह रस, प्राणियों में रक्त और ज्ञानियों में चेतना का रूप धारण कर लेता है। उसमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। वह शुद्ध रूप से किसी के साथ भी एकरूप हो जाता है। इसी प्रकार जो साधक सभी सांसारिक विषयों से विमुख होकर परमात्म–तत्त्व से मिलने का प्रयास करता है, उस साधक को ही सत्य पथ का पथिक जानकर 'आत्मतत्त्व' का उपदेश दिया जाता है।'

### 3.4.2 द्वितीय वल्ली का सार

यमराज ब्रह्मानुसंधान का मार्ग बताते हुए कहते हैं कि 'हे नचिकेता! उस चैतन्य और अजन्मा परब्रह्म का नगर अर्थात यह शरीर ग्यारह द्वारों वाला है – दो नेत्र, दो कान, दो नासिका रन्ध्र, एक मुख, नाभि, गुदा, जननेन्द्रिय और ब्रह्मरन्ध्र। ये सभी द्वार शरीर में स्थित हैं। कर्म–बन्धनों से मुक्त होकर, जो साधक इन द्वारों के मोह से निर्लिप्त होकर शरीर रूपी नगर में प्रवेश करता है, वह निश्चय ही परमात्मा तक पहुंचता है। शरीर में स्थित एक देह से दूसरी देह में गमन करने के स्वभाव वाला यह जीवात्मा, जब मृत्यु के उपरान्त दूसरे शरीर में चला जाता है, तब कुछ भी शेष नहीं रहता। यह गमनशील तत्त्व ही ब्रह्म है। यही जीवन का आधार है। प्राण और अपान इसी के आश्रय में रहते हैं। अब मैं तुम्हें बताऊंगा कि मृत्यु के उपरान्त आत्मा का क्या होता है, अर्थात् वह कहां चली जाती है।'

टिप्पणी

यमराज ने आगे कहा –

**योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।**
**स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।। 2/2/7।।**

अर्थात अपने–अपने कर्म और शास्त्राध्ययन के अनुसार प्राप्त भावों के कारण कुछ जीवात्मा तो शरीर धारण करने के लिए विभिन्न चेतन योनियों को प्राप्त करते हैं और कुछ अपने–अपने कर्मानुसार जड़ योनियों अर्थात वृक्ष, लता, पर्वत आदि को भी प्राप्त करते हैं।

'हे नचिकेता! समस्त जीवों के कर्मानुसार उनके कर्म–फलों का व्यवस्थापक वह परम पुरुष परमात्मा, सबके सो जाने (प्रलय) के बाद भी जागता रहता है। वही विशुद्ध, अमृत–तत्त्व अविनाशी परब्रह्म कहलाता है, जिसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। समस्त लोक उसी का आश्रय ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार एक ही अग्नि–तत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होकर प्रत्येक आधारभूत वस्तु के अनुरूप हो जाता है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों में स्थित अन्तरात्मा (ब्रह्म) एक होने पर भी अनेक रूपों में प्रतिभासित होता है। वही भीतर है और वही बाहर है। सबको अपने अधीन रखने वाला तथा समस्त जीवों में स्थित वह ब्रह्म (अंतरात्मा) अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेता है। स्वयं में स्थित उस आत्मदेव को जो धीर पुरुष देख पाते हैं, वे ही नित्य सुख को प्राप्त करते हैं, अन्य कोई नहीं–

**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।**
**तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।। 2/2/12।।**

जो अनित्य पदार्थों में नित्य–स्वरूप तथा ब्रह्मा आदि चेतयिताओं का भी चैतन्य रूप है और जो अकेला ही समस्त जीवों के कर्म–फलों का विधान करता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्मा को जो विवेकी पुरुष देखते हैं, उनको ही शाश्वत शांति प्राप्त होती है, अन्य किसी को नहीं।

विवेकी पुरुष जिस आत्म–विज्ञान को अनिर्वाच्य परम सुख मानते हैं, उसे कैसे जाना जा सकता है? नचिकेता की इस जिज्ञासा का शमन करते हुए यमराज कहते हैं कि आत्मलोक में सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न ही बिजली चमकती है, अग्नि की तो बात ही क्या है। इसके विपरीत, संसार को प्रकाशित करने वाले ये सभी उस बह्म से ही प्रकाशमान हैं।

### 3.4.3 तृतीय वल्ली का सार

इस वल्ली में यमराज संसार की उपमा पीपल के उस वृक्ष से करते हैं, जो इस ब्रह्माण्ड के मध्य उलटा लटका हुआ है। इसका मूल ऊपर की ओर है और शाखाएं नीचे की ओर लटकी हैं या फैली हुई हैं। यह वृक्ष सृष्टि का सनातन वृक्ष है। इसका जो मूल है, वही शुभ्र, विशुद्ध, अविनाशी, निर्विकल्प और चैतन्य आत्म–ज्योति–स्वरूप ब्रह्म का ही रूप है।

यमराज कहते हैं कि यह सम्पूर्ण विश्व उस प्राण–रूप ब्रह्म से ही प्रकट होता है और निरन्तर गतिशील रहता है। जो ऐसे ब्रह्म को जानते हैं, वे ही अमृत्यु अर्थात मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इस परब्रह्म के भय से ही अग्निदेव तपते हैं, सूर्यदेव तपते हैं। इंद्र, वायु और मृत्युदेवता भी इन्हीं के भय से गतिशील रहते हैं।

टिप्पणी

'हे नचिकेता! जो जीव मृत्यु से पूर्व ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है, अन्यथा विभिन्न योनियों में भटकता हुआ अपने कर्मों का फल प्राप्त करता रहता है। इसलिए शरीर छूटने से पहले ही आत्म–ज्ञान लिए मनुष्य को प्रयत्नशील होना चाहिए। मनुष्य का अन्तःकरण विशुद्ध दर्पण के समान है। जिस प्रकार दर्पण में मुख का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार निर्मल अंतःकरण में (मनुष्य–देह में) ही ब्रह्म के दर्शन किए जा सकते हैं। ब्रह्म का ऐसा दर्शन या तो मानव–शरीर में संभव है अथवा ब्रह्म–लोक में। पितृलोक में यह स्वप्न के समान तथा गंधर्वलोक में जल की तरह अस्पष्ट दिखता है। अत्यंत विशिष्ट कर्म और ज्ञान से साध्य होने के कारण वह ब्रह्म–लोक तो दुष्प्राप्य है, इसीलिए मनुष्य–योनि में ही आत्म–दर्शन के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इस आत्मा का रूप भौतिक दृष्टि में नहीं ठहरता। चर्म–चक्षुओं से इसे कोई भी नहीं देख सकता। मन का नियमन करने वाली हृदय–स्थिता बुद्धि से मनन द्वारा ही इसे जाना जा सकता है। इस प्रकार से जो इसे जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

जब मन के साथ सभी इन्द्रियां आत्म–तत्त्व में स्थित हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती है, तब उस अवस्था को जीव की 'परमगति' कहा जाता है। इन्द्रियों का संयम करके आत्मा में लीन होना ही 'योग' है और यह योग ही ब्रह्म (आत्मा) के साक्षात्कार का साधन है। हृदय की समस्त ग्रन्थियों के खुल जाने से, कामनाओं के छूट जाने से मरणधर्मा मनुष्य अमरत्व अर्थात 'मोक्ष' को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य के हृदय से एक सौ एक नाड़ियां निकली हुई हैं, जिनमें से सुषुम्ना नामक एक नाड़ी मूर्धा को भेदकर बाहर निकली हुई है। देहांत के समय आत्मा को अपने हृदय–देश में समाहित करके सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ऊर्ध्व–गमन करने वाला मनुष्य अमरत्व को प्राप्त करता है। विभिन्न गतियों वाली शेष नाड़ियां प्राणोत्सर्ग की हेतु होती हैं। हृदय में स्थित अंगुष्ठमात्र पुरुष (अंतरात्मा) को उसी प्रकार शरीर से धैर्यपूर्वक पृथक करना चाहिए, जैसे मूंज से उसके भीतर रहने वाली सीक को अलग किया जाता है।

यमराज से ऐसी विद्या और संपूर्ण योगविधि को जानकर नचिकेता बन्धनमुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो गया। अन्य भी कोई जो अध्यात्म–तत्व को इस प्रकार से जानेगा, वह भी जन्म–मरण के बंधन से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेगा।

## अपनी प्रगति जांचिए

5. कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय का मुख्य विषय क्या है?

   (क) भगवत्प्राप्ति संबंधी बाधाओं का निवारण

   (ख) श्रेय व प्रेय का विश्लेषण

   (ग) नचिकेताग्नि (घ) इनके से कोई नहीं

6. दो नेत्र, दो कान, दो नासिक रन्ध्र, एक मुख, नाभि, गुदा, जननेंद्रिय और ब्रह्मरन्ध्र को क्या कहा गया है?

   (क) शरीर के ग्यारह विकार (ख) शरीर के ग्यारह द्वार

   (ग) प्रगति के ग्यारह मार्ग (घ) नियंत्रण योग्य ग्यारह अंग

टिप्पणी

## 3.5 प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों की तीन–तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या

**।। शान्ति पाठः।।**

**ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं**

**करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु।**

**मा विद्विषावहै।**

**ऊँ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!**

वह परमात्मा हम (आचार्य और शिष्य) दोनों की रक्षा करें। हम दोनों का साथ–साथ पालन करें। हम एक–साथ विद्यासंबंधी शक्ति प्राप्त करें। हम दोनों का पढ़ा हुआ प्रसिद्धि को प्राप्त करे। हम द्वेष न करें। त्रिविध तापों का शमन हो।

### 3.5.1 प्रथम अध्याय की तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या

**ऊँ उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।**

**तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस!!1!!**

प्रसिद्व है कि यज्ञ के फल के कामी वाजश्रवा के पुत्र ने विश्वजित् यज्ञ में अपना समस्त धन दान कर दिया। उसका नचिकेता नामक एक पुत्र था।

**तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत।।2।।**

जिस समय दक्षिणा के लिए गायें ले जायी जा रही थीं, बालक नचिकेता में, जो अभी कुमारावस्था में ही था– श्रद्धा (आस्तिक्यबुद्वि) का आविर्भाव हुआ। उसने सोचा।

**पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रयाः।**

**अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत्।।3।।**

जिनके खाने–पीने की शक्ति भी समाप्त हो चुकी है, जो दूध भी नहीं दे सकती एवं जिनमें प्रजनन क्षमता भी नष्ट हो गई है उन सर्वतोभावेन निष्क्रिय गायों का दान करने से वह दाता, आनंदरहित लोक को ही प्राप्त करता है।

**स होवाच पितरं तत् कस्मै मां दास्यसीति।**

**द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति।।4।।**

तब, अपूर्ण यज्ञ के कारण पिता को अनिष्ट फल से बचाने के लिए वह पिता के समीप जाकर बोला– 'हे तात! आप मुझे किस दक्षिणा में देंगे?'

पिता द्वारा अपने प्रश्न की उपेक्षा किये जाने पर भी अपनी बात की आवृत्ति करता रहा 'मुझे किसको देंगे? मुझे किसको देंगे?' तब पिता ने क्रुद्ध होकर उससे कहा – 'मैं तुझे मृत्यु को देता हूं।'

**टिप्पणी**

**बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।**
**किंस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति।।5।।**

(उसने सोचा) मैं बहुत–से शिष्य या पुत्रों में अग्रणी हूं और बहुतों में मध्यम हूं। (ऐसा मुझमें क्या दोष आ गया कि) यम के किस कार्य को पिता आज मेरे द्वारा पूर्ण करने जा रहे हैं?

**अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।**
**सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।।6।।**

(अतः मृत्यु से क्या भय क्योंकि) जिस तरह पूर्वजों का व्यवहार होता था उसका ध्यान करें एवं समकालीन लोगों के व्यवहार को भी विचारें। मनुष्य फसल की तरह पकता (वृद्ध होकर मर जाता) है और फसल की भांति ही फिर उत्पन्न हो जाता है।

(इस तरह इस अनित्य संसार में मिथ्या व्यवहार का कोई लाभ नहीं है? अतः अपने वचन को सत्य करें और मुझे यमराज के पास जाने की अनुमति दें।

पुत्र के ऐसा कहने पर पिता ने उसे यमराज के पास भेज दिया। उसने यमराज के घर पहुंचकर तीन रात तक प्रतीक्षा की, क्योंकि यम उस समय वहां नहीं थे। वापस लौटने पर यमराज से उनकी पत्नी ने कहा–)

**वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।**
**तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्।।7।।**

अतिथि के रूप में ब्राह्मण साक्षात् अग्नि के समान घर में प्रविष्ट होता है। उस अग्नि को शांत करने के लिए ही साधु–गृहस्थ जल से अतिथि का स्वागत किया करते हैं। अतः हे वैवस्वत! नचिकेता को पाद्य देने के लिए जल ले जाइए।

**आशाप्रतीक्षे संगत ँसूनृतां च**
**इष्टापूर्ते पुत्रपशू ँश्च सर्वान्।**
**एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो**
**यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे।।8।।**

जिस के घर में ब्राह्मण बिना भोजन किये रहता है उस हतभाग्य पुरुष के ज्ञात–अज्ञात समस्त प्राप्तव्य इष्ट पदार्थ तथा उनके संयोग से प्राप्त होने वाले फल, प्रियवाणी और मिलने वाले फल, यज्ञादि से प्राप्त होनेवाले फल और उद्यानों को लगाने से मिलने वाले फल और पुत्र एवं पशु–इन समस्त समृद्धियों का नाश हो जाता है। अतएव अतिथि ब्राह्मण की किसी भी स्थिति में उपेक्षा नहीं की जा सकती।

**तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे**
**अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।**
**नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु**
**तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ।।9।।**

टिप्पणी

हे ब्रह्मन्! तुम्हें प्रणाम है, मेरा कल्याण करो। तुम पूजनीय अतिथि होकर भी मेरे घर में तीन रात तक बिना भोजन किये रहे, अतः एक–एक रात के लिए एक–एक करके मुझसे तीन वर मांग लो।

**शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्या–**
**द्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।**
**त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत**
**एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ।।10।।**

हे मृत्यो! मुझे प्रथम वरदान यह दें कि मेरे लौटने पर मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्तसंकल्प, प्रसन्नचित और क्रोधरहित होकर मुझे पहचानकर मुझसे पहले जैसा व्यवहार करें।

**यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत**
**औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।**
**सुखँ रात्रीः शयिता वीतमन्यु–**
**स्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ।।11।।**

(यमराज का वरदान) मेरी प्रेरणा से आरुणि उद्दालक तुझे पूर्ववत् पहचान लेगा। और अपने जीवन की शेष रातें सुख से सो सकेगा, क्योंकि तुझे मृत्यु के मुख से मुक्त हुआ देखेगा।

**स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति**
**न तत्र त्वं न जरया बिभेति।**
**उभे तीर्त्वाशनायापिपासे**
**शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।। 12 ।।**

(नचिकेता ने दूसरा वन मांगा) हे मृत्युदेव! स्वर्गलोक में किसी प्रकार का भय नहीं है। वहां आपका भी प्रवेश नहीं है और बुढ़ापे का भी डर नहीं। स्वर्गलोक में पुरुष भूख–प्यास एवं शोक से रहित होकर आनन्दमय रहता है।

**स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो**
**प्रब्रूहि त्वँ श्रद्धानाय मह्यम्।**
**स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त**
**एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ।। 13।।**

हे मृत्यो! ऐसे आनंदपूर्ण स्वर्गलोक की प्राप्ति के साधन अग्नि का ज्ञान आपको है, अतः मुझ स्वर्गकामी को उस का उपदेश करें। जिस अग्नि चयन से स्वर्ग लब्ध पुरुष अमरता अर्थात् देवभाव को प्राप्त हो जाते हैं। दूसरे वर के रूप में मैं इस अग्नि विज्ञान को जानना चाहता हूं।

टिप्पणी

**प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध**
**स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।**
**अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां**
**विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ।।14।।**

(यमराज बोले) हे नचिकेतः! तुम्हारी प्रार्थना मानकर मैं स्वर्ग की प्राप्ति के साधन रूप अग्नि का उपदेश करता हूं। तुम ध्यानपूर्वक इसे सुनो।

यह अग्नि की स्तुति स्वर्गलोक रूपी फल को पाने का हेतु है एवं यह अग्नि विवेकी पुरुषों की बुद्धि में अवस्थित रहती है।

**लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै**
**या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।**
**स चापि तत्प्रत्यवदद् यथोक्त–**
**मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः।।15।।**

तब यमराज ने विश्व के आदिकारण स्वरूप उस अग्नि का तथा उसके चयन करने में (हवन कुंड स्थापित करने के लिए) जिस तरह की तथा जितनी संख्या में ईंटें लगती हैं एवं जिस विधि से उसका चयन किया जाता है वह सब नचिकेता को बताया। नचिकेता ने भी जैसा उसे उपदेश किया गया था उसे ज्यों का त्यों सुना दिया। इससे संतुष्ट होकर मृत्यु ने फिर कहा।

**तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा**
**वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।**
**तवैव नाम्ना भवितायमग्निः**
**सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ।।16।।**

अपने शिष्य को सक्षम जानकर संतुष्ट हुए यम ने नचिकेता से कहा– अब मैं प्रसन्न होकर एक और वर देता हूं। मेरे द्वारा उपदिष्ट यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगा तथा तुम यह शब्दमयी, अनेकरूपा विचित्रवर्णा माला भी ग्रहण करो। (तात्पर्य यह है कि इसके सिवा अनेक फलों के हेतु कर्मविज्ञान को भी स्वीकार करो।)

**त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं**
**त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू।**
**ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा**
**निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति।।17।।**

नचिकेता अग्नि का तीन बार करने वाला चयन त्रिणाचिकेत कहलाता है। जिसने इस अग्नि का ज्ञान प्राप्त कर लिया, और उसका अध्ययन कर इसका सम्यक् अनुष्ठान किया वह त्रिणाचिकेत है।

वेद, स्मृति एवं विज्ञ जनों से अथवा प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम से शिक्षित होकर यज्ञ, अध्ययन और दान–इन तीन कर्मों का संपादन करने वाला पुरुष गमन–आगमन से मुक्त हो जाता है।

टिप्पणी

हिरण्यगर्भ से उद्‌भूत प्राणी को ब्रह्मज कहते हैं और ज्ञानवान ब्रह्मज को ब्रहजज्ञ कहते हैं। वह सर्वज्ञाता होता है। उसे देव संज्ञा से भी अभिहित किया जा सकता है। वह स्तुत्य है। ज्ञान और कर्म के समुच्चय का निष्पादन करने से वह ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है।

**त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा**
**य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम्।**
**स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य**
**शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।18।।**

अग्नि चयन की त्रिविध को अर्थात कैसी ईटें हों, उनकी संख्या कितनी हो तथा किस तरह अग्नि का चयन किया जाये – भली भांति जानने के बाद जो नाचिकेत अग्नि का चयन करता है, वह देहावसान से पहले ही मृत्यु के बंधन से मुक्त होकर एवं शोकातीत ब्रह्मलोक में आनंदित होता हुआ परमात्मस्वरूप में लीन हो जाता है।

**एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो**
**यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण**
**एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास–**
**स्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ।।19।।**

हे नचिकेता! तुमने जिस दूसरे वरदान की प्रार्थना की थी, स्वर्ग की प्राप्ति के साधनभूत उस अग्निविज्ञान का ज्ञान मैंने तुझे प्रदान किया। यह अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। अब तुम अपना तीसरा वर मांगो।

**येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये –**
**ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।**
**एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं**
**वराणामेष वरस्तृतीयः ।।20।।**

मृत व्यक्ति के संबंध में कोई कहता है कि शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से अतिरिक्त देह–परिवर्तन करने वाला आत्मा रहता है और कोई कहता है कि ऐसा कोई आत्मा नहीं रहता। इस संबंध में हमें प्रत्यक्ष या अनुमान से कोई निश्चित ज्ञान प्राप्त नहीं होता तथा परम पुरुषार्थ इसी विज्ञान पर आश्रित है। मैं इसे अच्छी तरह समझ सकूं, इसलिए आप मुझे इसका उपदेश करें। यही मेरे वरों में शेष तीसरा वर है।

(यह नचिकेता आत्मज्ञान के हेतु पूर्ण योग्य है या नहीं, इस बात की परीक्षा करने के लिये यमराज ने कहा–)

टिप्पणी

**देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा**
**न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः।**
**अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व**
**मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ।।21।**

इस विषय में पहले देवताओं को भी संशय हुआ था, क्योंकि इस अत्यंत सूक्ष्म धर्म को आसानी से नहीं जाना जा सकता है। हे नचिकेतः! इसे छोड़कर तुम कोई और वर मांग लो।

**देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल**
**त्वं च मृत्यो यन्न सुज्ञेयमात्थ।**
**वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो**
**नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ।।22।।**

(नचिकेता ने कहा) हे यमराज! इस विषय में देवताओं को भी संशय हुआ था और आप भी इसे सुबोध्य नहीं समझते, अतः अब मुझे यह और भी अधिक अभीष्ट हो गया है। आपके समान इस विज्ञान का उपदेशक कोई और नहीं हो सकता और न ही इसके समान कोई दूसरा वर ही हो सकता है।

**शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व**
**बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान्।**
**भूमेर्महदायतनं वृणीष्व**
**स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि।।23।।**

(यमराज ने प्रलोभन दिया) हे नचिकेतः! तुम शतायु पुत्र–पौत्र बहुत से पशु, हाथी, स्वर्ण एवं घोड़े आदि मांग लो, विशाल भूखंड भी ले लो और स्वयं भी जब तक इच्छा हो जीवित रहो।

**एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं**
**वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।**
**महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि**
**कामानां त्वां कामभाजं करोमि।।24।।**

तुम्हें कुछ और भी यदि इसके समान प्रतीत हो तो वह वर मांग लो अथवा धन और चिरस्थायिनी जीविका ले लो। हे नचिकेता! इस समग्र पृथ्वी का राजा बनकर तुम समृद्धि प्राप्त करो। मैं तुम्हें सभी प्रकार की कामनाओं को इच्छानुसार भोगनेवाला बना देता हूं।

टिप्पणी

**ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके**
**सर्वान् कामाँ श्छन्दतः प्रार्थयस्व।**
**इमा रामाः सरथाः सतूर्या**
**न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।**
**आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व**
**नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।।25।।**

जो जो भोग मर्त्यभुवन में दुर्लभ हैं वे समस्त भोग तुम इच्छानुसार मांग सकते हो। रथ और बाजों से युक्त ये रमणियां तुम्हारी सेवा के लिए प्रस्तुत हैं। ऐसी अप्सराएं मनुष्यों को प्राप्त नहीं होतीं। मेरे द्वारा दी हुई इन अप्सराओं से तुम इच्छानुसार अपनी सेवा कराओ। किंतु हे नचिकेतः! मरने से संबंधित प्रश्न मत पूछो।

**श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैत–**
**त्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।**
**अपि सर्वं जीवितमल्पमेव**
**तवैव वाहास्तव नृत्यगीते।।26।।**

(नचिकेता ने कहा) हे यमराज! ये समस्त भोग तो अनित्य तथा अनर्थकारी हैं क्योंकि ये इन्द्रियों के तेज का क्षय करने वाले हैं। जीवन कितना भी बड़ा क्यों न हो, सीमित ही होता है। आपके वाहन एवं नृत्य–गीत करती हुई अप्सराएं भी आपके ही लोक की शोभा बढ़ाएं।

**न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।**
**जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ।।27।।**

मनुष्य की धन–लिप्सा कभी तृप्त नहीं होती। आपके दर्शन के बाद तो धन प्राप्त हो ही जाएगा। आपके इस यम–पद पर रहते हुए तो मेरा जीवन बना ही रहेगा परंतु मेरा अभीष्ट वर तो वही है।

**अजीर्यतामृतानामुपेत्य**
**जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।**
**अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदा।**
**नतिदीर्घे जीविते को रमेत।।28।।**

कभी जराग्रस्त न होने वाले अमरों के सान्निध्य में आकर भी नीचे पृथ्वी पर रहने वाला कौन जरामरणशील मनुष्य होगा जो केवल शारीरिक वर्ण के राग से प्राप्त होने वाले स्त्रीभोग आदि सुख की अनित्यता देखता हुआ भी अति दीर्घ जीवन में उस मिथ्या सुख को सुख मानेगा?

(अतः मुझे इन मिथ्याभोगों से प्रलोभित करना छोड़कर जिसके लिए मैंने प्रार्थना की है उसे ही प्रदान कीजिए, और–)

**यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो**
**यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।**
**योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो**
**नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।।29।।**

हे मृत्यो! मरणोपरांत जीव की सत्ता के विषय में जो संशय है तथा आत्मा के संबंध में जो निश्चित ज्ञान है, उसका उपदेश मुझे करिए। यह जो गंभीरतापूर्वक विवेच्य विषय है इसके अतिरिक्त कोई अन्य वर नचिकेता नहीं मांगता।

**(प्रथमा वल्ली समाप्त)**

**द्वितीया वल्ली**

**अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय–**
**स्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।।**
**तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति**
**हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।।1।।**

श्रेय (विद्या) एवं प्रेय (अविद्या) पृथक्–पृथक् हैं। वे दोनों अलग प्रयोजन वाली होती हुए भी पुरुष को आकृष्ट करती हैं। उन दोनों में से श्रेय को ग्रहण करना कल्याणकारी होता है एवं जो प्रेय को वरण करता है वह परमार्थ–प्राप्ति से च्युत हो जाता है।

**श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत–**
**स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।**
**श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते**
**प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते।।2।।**

श्रेय और प्रेय (परस्पर मिले हुए–से–होकर) मनुष्य के पास आते हैं। विवेकी पुरुष अच्छी तरह चिंतन कर दोनों को पृथक् करता है। धीर पुरुष प्रेय को छोड़कर श्रेय को ही वरण करता है, किन्तु मंदमति भौतिक अभ्युत्थान के लिए प्रेय की ओर प्रवृत्त होता है।

**स त्वं प्रियान्प्रियरूपांश्च कामा–**
**नभिध्यायन्निचिकेतोऽत्य स्राक्षीः।**
**नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो**
**यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ।।3।।**

हे नचिकेता! तुमने पुत्र–पौत्र, धन एवं अप्सरा आदि सभी प्रलोभनों को, उनकी अनित्यता और असारता आदि दोषों का विचार करके छोड़ दिया जाए तो जिसमें

टिप्पणी

मंदमति प्रवृत्त होकर वित्तमयी–धनप्राया निंदित गति को प्राप्त हो जाते हैं, उस गति से तुम बच गए।

टिप्पणी

**दूरमेते विपरीते विषूची**
**अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।**
**विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये**
**न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ।।4।।**

श्रेय और प्रेय प्रकाश एवं अंधकार की तरह विवेक और अविवेकरूप होने से एक–दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं। इनकी गति भी भिन्न–भिन्न है। ये लोक और मुक्ति का साधन होने के कारण पृथक्–पृथक् फल देनेवाले प्रेय मार्ग के प्रलोभन तुम्हें आकृष्ट नहीं कर सके, इसलिए मैं तुम्हें विद्याभिलाषी मानता हूं।

**अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः**
**स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।**
**दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा**
**अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।5।।**

अविद्या से आविष्ट, अपने को बुद्विमान् पंडित मानने वाले मंदमति, भौतिक सुखों की कामना करते हुए वैसे ही अनर्थ को प्राप्त होते हैं जैसे अन्धे के द्वारा रास्ते को जानने वाले अंधे।

**न साम्परायः प्रतिभाति बालं**
**प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।**
**अयं लोको नास्ति पर इति मानी**
**पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।।6।।**

धन के मोह से अन्धे हुए और पुत्रादि भौतिक प्रयोजनों में आसक्त उस मूढ़ को परलोक का साधन दृष्टिगोचर नहीं होता। यह लोक है, परलोक नहीं है– ऐसा मानने वाला पुरुष बार–बार मेरे वश में आता रहता है अर्थात आवागमन के चक्र में घूमता रहता है।

**श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः**
**शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।**
**आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा–**
**श्चर्यो ज्ञाता कुशलाऽनुशिष्टः।।7।।**

(यह विद्या ऐसी है जो) बहुतों को तो सुनने के लिए ही उपलब्ध नहीं है (और जो सुनते भी हैं उनमें से) बहुत से इसे जान नहीं पाते। कोई इसे ठीक से बताने वाला मिल गया तो यह एक आश्चर्य ही है, इसका ज्ञाता होना भी आश्चर्य है और किसी द्वारा इससे शिक्षित हो जाना आश्चर्य है।

टिप्पणी

**न नरेणावरेण प्रोक्त एष**

**सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।**

**अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति**

**अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।।8।।**

किसी साधारण व्यक्ति के द्वारा यह कहा गया नहीं हो सकता अर्थात् इसे बताने में समर्थ व्यक्ति को विशिष्ट विद्वान् ही समझिए। (उसके परिश्रम और कृपा के महत्व को समझते हुए) बार–बार इसका चिन्तन करने पर इस ज्ञान को भली–भांति जाना जा सकता है। एक परमात्म तत्त्व ही में विश्वास रखने वाले उपदेष्टा के द्वारा बताए जाने वाले आत्मतत्त्व के विषय में 'है–नहीं हैं' इस प्रकार की संशय वाली गति नहीं है अर्थात् सम्पूर्ण विश्वास से ही ज्ञानसिद्धि होती है। अणु से भी अधिक सूक्ष्म होने के कारण इसमें तर्क का अवकाश नहीं है।

**नैषा तर्केण मतिरापनेया**

**प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।**

**यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि**

**त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा।।9।।**

हे सर्वाधिक प्रिय (शिष्य) नचिकेता! सुंदर ज्ञान के लिए तुझे जो यह बुद्धि प्राप्त हुई है वह तर्क से प्राप्त होने वाली नहीं है। तुम्हें वह इसलिए प्राप्त हुई है कि सत्य को प्राप्त करने के तुममें अपेक्षित धैर्य है (अन्यथा प्रलोभनों से विचलित हो जाते)। वस्तुतः तुम्हारे जैसे पूछने वाला पुनः नहीं मिलेगा (अथवा तुम्हारे जैसा पूछने वाला हमें बार–बार मिले।)

**जानाम्यहं शेवधिर्निधिरित्यनित्यं**

**न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।**

**ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्नि**

**रनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।।10।।**

मैं जानता हूं कि कर्म के फलों के रूप में प्राप्त निधि नश्वर है और जो अनश्वर साधन है उनसे उस नित्य (अजर–अमर) आत्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता। (ऐसा जानने के पश्चात्) तब मेरे द्वारा नाचिकेत अग्नि का वरण किया गया, उस अग्नि के अनित्य साधनों से ही मैंने नित्य (यमपदवी) को प्राप्त किया।

**कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां**

**क्रतोरनन्त्यम् अभयस्य पारम्।**

**स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा**

**धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।।11।।**

हे नचिकेता! विशेष धैर्य से धीरता को प्राप्त होकर तुमने जगत् की प्रतिष्ठा और स्तुत्य, महान् और सर्वव्यापक तत्त्व की प्रतिष्ठा को धैर्य सहित देखकर (दोनों का विवेचन करके) अनश्वर जगत् (के सुख भोगों) का त्याग कर दिया।

टिप्पणी

**तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं**
**गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।**
**अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं**
**मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।।12।।**

जो कठिनाई से देखा (जाना) जा सकता है, गूढ़ स्थान में छिपा हुआ है, (हृदय रूपी) गुफा में छिपा होने से गूढ़ स्थान में ही स्थित रहता है। उस सर्वाधिक पुरातन परमात्मा को अध्यात्म योग के द्वारा निश्चयपूर्वक जानकर (उसका ज्ञाता) हर्ष और शोक, दोनों का त्याग कर देता है।

**एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः**
**प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।**
**स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा**
**विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये।।13।।**

मरण धर्मा मनुष्य जब इसे सुनकर भली–भांति ग्रहण करके यत्नपूर्वक धर्म से युक्त इस आत्मतत्त्व को देहादि संघात से पृथक् करके प्राप्त कर लेता है तब उस आनंदवर्धक ज्ञान को प्राप्त करके सानंद हो जाता है, इस प्रकार के ज्ञानरूपी घर का द्वार नचिकेता के लिए खुल चुका है ऐसा मेरा विश्वास है। (आत्मा को जानना मनुष्य का परम धर्म है अतः आत्मा को धर्म्य कहा गया है।)

**अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।**
**अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत् पश्यसि तद्वद।।14।।**

(नचिकेता ने पुनः कहा) जो धर्म से पृथक् है और अधर्म से भी पृथक् रहता है, कार्यकरण सम्बन्ध से भी पृथक् है तथा भूत और भविष्य से भी जो पृथक् है, ऐसा जिसे आप देखते हैं, उसे मुझे बताइए।

**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**
**तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।**
**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति**
**तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।15।।**

जिस (स्पृहणीय) पद का वर्णन समस्त वेद करते हैं, सभी तपस्याएँ जिसे (अपना लक्ष्य) कहती हैं, जिसे चाहते हुए (साधक) ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को मैं तुम्हें बताता हूँ, वह यह 'ओम्' पद ही है।

**एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्।**
**एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।16।।**

यह अक्षर (ॐ) ही ब्रह्म है, यही परम् तत्त्व है, इसको जानकर जो जिसे चाहता है, वह इच्छित पदार्थ उसका हो जाता है।

टिप्पणी

**एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।**

**एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।17।।**

यही श्रेष्ठ आश्रय है, यही सर्वोच्च आश्रय है, इसी आश्रय को जानकर साधक ब्रह्मलोक में महिमावान् हो जाता है।

**न जायते म्रियते वा विपश्चि–**

**न्नायं कुतश्चिन् न बभूव कश्चित्।**

**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो**

**न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।18।।**

यह सर्वज्ञ आत्मा न तो जन्म लेता है, न मरता है, न तो यह कहीं से (कारण से कार्यरूप में) प्राप्त हुआ है और न ही यह कुछ अन्य से कुछ अन्य बन गया है (प्रकृति से विकृति नहीं बना)। यह अजन्मा, नित्य एक रूप और पुरातन तम है (इसने पुराना और कुछ नहीं, अतः एकमात्र पुरातन तत्त्व है), शरीर के मारे जाने पर भी यह मरता नहीं।

**हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।**

**उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।19।।**

(शरीर को) मारने वाला यदि मारने का विचार करता है और मारा गया व्यक्ति यदि इसे मरा हुआ मानता है तो वे दोनों ही सत्य को नहीं जानते, क्योंकि यह न तो मारता है और न मरता है।

**अणोरणीयान्महतो महीयान्**

**आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।**

**तमक्रतुः पश्यति वीतशोको**

**धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।20।।**

वह अणु से भी अणुतर (सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर) और महान् से भी महत्तर आत्मा इस जीवन की हृदय रूपी गुफा में स्थित है। निष्काम पुरुष इन्द्रियों की प्रसादात्मिका स्थिति में आत्मा की महिमा का साक्षात्कार करता है और शोकरहित हो जाता है।

**आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।**

**कस्तं मदामदं देवं यदन्यो ज्ञातुमर्हति।।21।।**

वह एक स्थान पर बैठा हुआ ही दूर तक जाता है, सोता हुआ भी सब दिशाओं में चला जाता है, हर्ष से युक्त होकर भी हर्ष से रहित उस आत्मा को मेरे सिवाय और कौन जान सकता है ('मैं' तत्त्व ही उसे जानता है)।

**अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।**

**महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।22।।**

वह शरीर रहित होता हुआ शरीरों में विद्यमान रहता है अतः अनित्य शरीरों में नित्यस्वरूप है, उस महान और व्यापक आत्मा में विश्वास रखने वाला धीर (अविचलित) शोक नहीं करता।

टिप्पणी

**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो**
**न मेधया न बहुना श्रुतेन।**
**यमेवैष वृणुते तेन लभ्य–**
**स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।23।।**

इस आत्मा को प्रवचन (गुरुपदेश को सुनने के द्वारा) नहीं पाया जा सकता, अनेक ग्रन्थी के अध्ययन से सम्पन्न बुद्धि से और बहुत (ज्ञान चर्चाओं को) सुनने मात्र से भी नहीं पाया जा सकता।

**नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।**
**नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।24।।**

(बहुत प्रवचन, मेधा और श्रवण के पश्चात् भी) जो दुराचारों से नहीं रुका, जिसकी इन्द्रियां व्याकुल हैं, जो समाधि की अवस्था को प्राप्त नहीं कर पाया और जिसका मन अशान्त है वह बहुत ज्ञान से इसे (आत्मतत्त्व) को नहीं प्राप्त कर सकता।

**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।**
**मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः।।25।।**

जिस (आत्मा) के लिए सम्पूर्ण धर्मों को धारण करने वाला ब्राह्मण और धर्म का रक्षक भी भात के समान (भक्षणीय) है और (स्वयं) मृत्यु भी जिसके लिए भोजन का अंगमात्र (शाकादि के समान है), उसे कौन (पूर्वोक्त साधनों के बिना) जान सकता है।

**(द्वितीया वल्ली समाप्त)**

## तृतीया वल्ली

**ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके**
**गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।**
**छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति**
**पञ्चाग्नयो ये त्रिणाचिकेताः।।1।।**

जिन्होंने तीन बार नचिकेता अग्नि का चयन (करके यज्ञ सम्पादन) किया है ऐसे ब्रह्म के वेत्ता कहते हैं कि (अपने) पुण्य के फल को पीने और न पीने वाले दो तत्त्व हृदय रूपी गुफा में समाविष्ट हैं जो परम और परम का अर्धभाग (अंशस्वरूप) हैं।

**यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्।**
**अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि।।2।।**

जो अक्षर (अनश्वर) ब्रह्म यज्ञ करने वालों के लिए और (भवसागर से पार जाने के लिए) पार जाने की इच्छा रखने वालों के लिए सेतु के समान है, उस नाचिकेत अग्नि को समझने/प्राप्त करने में हम सक्षम हों।

**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
**बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।3।।**

आत्मा को तुम रथी (रथ सवार) जानो, शरीर को रथ जानो, बुद्धि को (दिशा देने वाला) सारथी जानो और मन को लगाम जानो।

**इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।**

**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।4।।**

(तत्त्ववेताओं ने) इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को उनके लिए चरागाह बताया है। इन्द्रियों और मन से युक्त आत्मा को उन विषयों का भोक्ता मनीषियों ने कहा है।

**यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।**

**तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।।5।।**

जो अविवेकी स्वभाव वाला (बुद्धि रूपी सारथी) अस्थिर मन (रूपी लगाम) वाला होता है उसके इन्द्रिय रूपी घोड़े ऐसे ही होते हैं, जैसे किसी सारथी के अधीन दुष्ट (कहना न मानने वाले) घोड़े।

**यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।**

**तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।।6।।**

(इसके विपरीत) जो विवेकशील (बुद्धिरूपी सारथी) होता है और अनुशासित मन से जुड़ा होता है उसकी इंद्रियां सारथी के अधीन रहने वाले अच्छे घोड़ों के समान होती हैं (जो कि त्याज्य विषयों से पीछे हट जाती हैं)।

**यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।**

**न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति।।7।।**

जो तो अविवेकी और अनियन्त्रित मन वाला सदा अपवित्र रहने वाला (जीव) होता है वह उस (परम) पद को प्राप्त नहीं करता अपितु संसार (आवागमन के कष्टों) को ही प्राप्त करता है।

**यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।**

**स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।।8।।**

जो तो विवेकशील (जीव) नियन्त्रित (अनुशासित) मन वाला होता है तथा सदा पवित्र (आचरण वाला) होता है वही उस (परम) पद को प्राप्त करता है जिसे पाकर उसे (बार–बार) जन्म नहीं लेना पड़ता।

**विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान् नरः।**

**सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।।9।।**

जो तो विवेकशील सारथी मन को लगाम लगाने वाला होता है वही इस संसार के मार्ग को (भली–भांति) पार कर लेता है और विष्णु (सर्वव्यापक परमात्मा) के पद को प्राप्त कर लेता है।

**इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।**

**मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।।10।।**

टिप्पणी

इन्द्रियों से बढ़कर उनके विषय अधिक प्रबल हैं, विषयों से बढ़कर उनका मन अधिक प्रबल/श्रेष्ठ है, मन से अधिक प्रबल है बुद्धि और बुद्धि से प्रबल (उत्तरदायी) महान् आत्मा है।

टिप्पणी

**महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।**

**पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः।।11।।**

महत् तत्व से बढ़कर अव्याकृत (गूढ़) प्रकृति है, अव्यक्त (गूढ़) प्रकृति से श्रेष्ठी है पुरुष (परमात्मा) है, उससे बढ़कर कुछ नहीं क्यों वही चरम सीमा और परम गति है।

(आत्मा सूक्ष्मबुद्धिग्राह्य है)

**एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।**

**दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।12।।**

(यमराज ने बताया) समस्त जीवों में निगूढ़ यह आत्मा दृष्टिगोचर नहीं होता। यह तो तत्त्वदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीक्ष्ण एवं सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जाता है।

**यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।**

**ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।13।।**

बुद्धिमान पुरुषों को वाक्–इन्द्रिय का मन में संचय करना चाहिए, उसकी दीप्ति को बुद्धि में लय करना चाहिए, बुद्धि को महत्तत्त्व में लीन करके और महत्तत्त्व का शांत आत्मा में विलय कर देना चाहिए।

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

**क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया**

**दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।14।।**

अज्ञान के अंधकार में सुप्त प्राणियो! उठो, जागो एवं श्रेष्ठ पुरुषों के सान्निध्य में ज्ञान प्राप्त करो। जिस तरह छुरे की धार अत्यंत तीखी और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी पुरुष आत्म–ज्ञान के मार्ग को वैसा ही दुर्गम कहते हैं।

(निर्विशेष आत्मज्ञान से अमृतत्व की प्राप्ति)

**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं**

**तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।**

**अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं**

**निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।।15।।**

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन (तारल्यरहित), नित्य और गन्धरहित है, जिसका न आदि है और न अंत है, जो महत्तत्त्व से भी अधिक और स्थिर है उस आत्मतत्त्व को जान लेने के बाद पुरुष मृत्य के मुख से मुक्त हो जाता है।

**नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तꣳ सनातनम्।**
**उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते।।16।।**

मृत्यु के मुख से उपदिष्ट एवं नचिकेता द्वार गृहीत इस सनातन उपाख्यान को कहकर और सुनकर बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

टिप्पणी

**य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।**
**प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते।।**
**तदानन्त्याय कल्पत इति।।17।।**

जो पुरुष इस अत्यंत गूढ़ ज्ञान को श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों की सभा में अथवा श्राद्धकाल में पवित्र होकर ब्राह्मणों के प्रति सुनाता है उसका वह श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है, अनन्त फलदायक होता है। (अध्याय की समाप्ति तथा निश्चितार्थ में द्विरुक्ति)।

## 3.5.2 द्वितीय अध्याय की तीन वल्लियों के मंत्रों की व्याख्या

### प्रथमा वल्ली

**पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभू–**
**स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्**
**कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद्**
**आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।।1।।**

स्वयम्भू (परमात्मा)– ने इन्द्रियों को स्वयं से परे जाने वाली (बहिर्मुखी) बनाकर उन्हें मानों मार ही डाला है। इसी कारण जीव बाहरी विषयों को ही देख पाता है, अन्तरात्मा को नहीं। जिसने मोक्ष की इच्छा से अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित कर लिया है, ऐसा कोई धैर्यवान पुरुष ही आत्मा को प्रत्यक्ष देख पाता है।

**पराचः कामाननुयन्ति बाला–**
**स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्**
**अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा**
**ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते।।2।।**

अल्पज्ञ पुरुष भौतिक भोगों की ही इच्छा करते हैं। वे मृत्यु के चतुर्दिक् फैले हुए जाल में फंस जाते हैं। किन्तु ज्ञानी पुरुष अमरत्व को नित्य जानकर अनित्य लौकिक पदार्थों की लालसा नहीं करते।

**येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शाꣳ श्च मैथुनान्।**
**एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत्।।3।।**

इस आत्मा के द्वारा ही मनुष्य रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श ओर मैथुनजन्य सुखों का अनुभव कर पाता है, उस आत्मा से इस लोक में कुछ भी अविज्ञात नहीं रहता। वह आत्म तत्व निश्चित रूप से यही है।

टिप्पणी

**स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।**

**महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।4।।**

स्वप्नावस्था में प्रतीत होनेवाले तथा जाग्रतावस्था में दिखायी देनेवाले–दोनों प्रकार के पदार्थों को मनुष्य देख पाता है (और अपने द्रष्टामात्र रूप को अनुभव करता है) भूत और भविष्यत् के नियन्ता ईश्वर को जानकर अनित्य वस्तुओं के लिए फिर शोक नहीं करता।

**य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।**

**ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्।।5।।**

ज्ञानी पुरुष कर्म के फलों को भोगने वाले एवं प्राणादि को धारण करनेवाले आत्मा को उसके समीप रहकर भूत, भविष्यत और वर्तमान के स्वामी के रूप में जान जाता है वह उसे विज्ञान को जानने के पश्चात् आत्मा की रक्षा करने की इच्छा नहीं करता। निश्चय ही यही वह आत्मतत्त्व है।

**यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।**

**गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत।।एतद्वै तत्।।6।।**

मोक्षकामी पुरुष पूर्व में उद्भूत तप से हिरणयगर्भ को, जिसका जल आदि भूतों से भी पहले उद्भव हुआ है, भूतों के सहित बुद्धि में गुह्य रूप से अवस्थित हुआ देखता है। वही उस ब्रह्म के भी दर्शन कर पाता है। निश्चित रूपेण यही वह ब्रह्म है।

**या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी।**

**गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत।। एतद्वै तत्।।7।।**

देवमयी अदिति (शब्दादिविषयों का अदन/भोग करने वाली) जो प्राणरूप से प्रकट होती है तथा जो बुद्धि की गुहा में प्रविष्ट होकर स्थित रहती है और भूतों के साथ ही उत्पन्न हुई है, निश्चित रूप से यही वह तत्व है।

**अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।**

**दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।। एतद्वै तत्।।8।।**

गर्भिणी स्त्रियों द्वारा भली प्रकार पोषित हुए गर्भ के सदृश जो यज्ञाग्नि दोनों समिधाओं के मध्य में स्थित है तथा जो प्रमाद रहित एवं होम–सामग्री–युक्त पुरुषों द्वारा नित्यप्रति स्तुत्य है, यही वह ब्रह्म है।।8।।

**यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।**

**तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन।। एतद्वै तत्।।9।।**

सूर्य जहां से उदय को प्राप्त होता है और जहां वह अस्तंगत हो जाता है उस प्राणात्मा में (अन्नादि और वागादिक) समस्त देवता अर्पित हैं। वह किसी भी तरह उल्लंघनीय नहीं है।

**टिप्पणी**

**यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।**

**मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।।10।।**

इस देहेन्द्रियसंघात में जो तत्व भासमान है वही अन्यत्र (देहादिसे परे) भी है और जो अन्यत्र है वही इसमें है, अतः जो मनुष्य इसमें पार्थक्य देखता है वह मृत्यु से पुनः मृत्यु को अर्थात् आवागमन को प्राप्त होता है

**मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।**

**मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।।11।।**

यह तत्त्व मन से ही प्राप्य है। इस ब्रह्मतत्त्व में कुछ विभिन्नता नही हैं जो जीव इसमें पृथक् भाव देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को जाता है।

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।**

**ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्।।12।।**

शरीर के मध्य में जो पुरुष अंगुष्ठपरिमाण रूप से स्थित है, उसे भूत, भविष्य और वर्तमान का स्वामी जानकर वह आत्मा–ज्ञान के कारण अपने देहेन्द्रियसंघात की रक्षा करने की इच्छा नहीं करता, वह आत्म–तत्व निश्चित रूप से वही है।

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।**

**ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः। एतद्वै तत्।।13।।**

यह अङ्गुष्ठपरिमाण पुरुष धुएं से रहित प्रकाशपुंज सदृश है। यह भूत, भविष्य का स्वामी है। यही आज भी है और यही कल भी रहेगा। और निश्चित रूप से यही वह ब्रह्मतत्त्व है।

**यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।**

**एवं धर्मान्पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति।।14।।**

जिस भांति उच्च स्थलों पर बरसा हुआ जल पर्वतों में बह जाता है, उसी प्रकार पृथक्–पृथक् जीवधारियों को देखकर जीव उन्हीं को (भिन्नात्मत्व को ही) प्राप्त होता है।

**यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।**

**एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।।15।।**

हे गौतम! जिस तरह शुद्ध जल में मिलाया हुआ शुद्ध जल वैसा ही हो जाता है उसी तरह विज्ञानी मुनि का आत्मा भी परमात्मा में मिलकर एकाकार हो जाता है।

**(द्वितीय अध्याय प्रथमा वल्ली समाप्त)**

टिप्पणी

## द्वितीया वल्ली

(अन्य प्रकार से ब्रह्मानुसन्धान)

**पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः**

**अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते। एतद्वै तत्।।1।।**

उस नित्यविज्ञानस्वरूप अजन्मा आत्मा का दुर्ग (आवास) अर्थात शरीर ग्यारह द्वारों वाला है। उसका चिंतन करने से मनुष्य शोक रहित हो जाता है, और वह इस शरीर के रहते हुए ही कर्मबंधन से मुक्त होता हुआ मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। निश्चय ही यही वह ब्रह्म है।

**ह ँसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।**

**नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्।।2।।**

वह मन का कर्ता है, आकाशगामी सूर्य है, वसु है, अंतरिक्ष में संचरणशील सर्वव्यापी वायु है, वेदी में स्थित होता है, कलश में स्थित सोम है। इसी तरह वह मनुष्यों में गमन करनेवाला, देवताओं में जानेवाला, सत्य या यज्ञ में गमन करनेवाला, आकाश में जानेवाला, जल, पृथिवी, यज्ञ और पर्वतों से उत्पन्न होनेवाला तथा सत्यस्वरूप और महान् है।

**ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।**

**मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते।।3।।**

प्राण को जो ऊर्ध्वगामी बनाता है और अपान को नीचे की ओर प्रेरित करता है, हृदय के मध्य में स्थित उस वामन की (भजनीय की) सब देव उपासना करते हैं।

**अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः।**

**देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते।। एतद्वै तत्।।4।।**

इस शरीरस्थ देही के भ्रष्ट हो जानेपर–इस देहसे मुक्त हो जानेपर भला इस शरीरमें क्या रह जाता है? (अर्थात् कुछ भी नहीं रहता) यही वह (ब्रह्म) है।

**न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।**

**इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।।5।।**

कोई भी प्राणी न तो प्राण से जीवित रहता है और न ही अपान से। बल्कि वे प्राणी तो, इन दोनों के आश्रयभूत किसी अन्य से ही जीवित रहते हैं।

**हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।**

**यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम।।6।।**

हे गौतम! अब मैं फिर भी तुम्हारे लिए उस प्रच्छन्न एवं शाश्वत ब्रह्म का वर्णन करूंगा, तथा ब्रह्म का ज्ञान न होने से मृत्यु को प्राप्त होने पर आत्मा की जो दशा होती है, उसका भी उपदेश करूंगा।

**टिप्पणी**

**योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।**
**स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।7।।**

अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करने के लिए किसी योनि को प्राप्त होते हैं और कितने ही जड़ता को प्राप्त हो जाते हैं।

**य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।**
**तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।**
**तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्।।8।।**

प्राणादि के सो जाने पर जो यह पुरुष अपने अभीष्ट पदार्थों का निर्माण करता हुआ जागता रहता है वही शुक्र (शुद्ध) है, वह ब्रह्म है और वही अमृत कहा जाता है। उसमें सकल लोक आश्रित है, कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। निश्चियरूपेण यही वह ब्रह्म है।

**अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो**
**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।**
**एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा**
**रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।9।।**

जिस भांति समस्त लोकों में प्रविष्ट हुआ एक ही अग्नि प्रत्येक रूप के अनुरूप हो गया है उसी तरह समस्त भूतों का एक ही अंतरात्मा उन रूपों के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

**वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो**
**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।**
**एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा**
**रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।10।।**

जिस तरह इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है उसी तरह समस्त भूतों का एक ही अंतरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है तथा उनसे बाहर भी है।

**सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु–**
**र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।**
**एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा**
**न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।11।।**

जिस तरह सकल लोक की दृष्टि में प्राप्त होकर भी सूर्य चाक्षुष बाह्यदोषों से लिप्त नहीं होता उसी तरह समस्त भूतों का एक ही अंतरात्मा लौकिक कष्टों में लिप्त नहीं होता, बल्कि उनसे अस्पृष्ट रहता है।

टिप्पणी

**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा**
**एकं रूपं बहुधा यः करोति।**
**तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा–**
**स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।12।।**

जो एक, सब को अपने वशीभूत रखनेवाला और समस्त भूतों का अन्तरात्मा अपने एक रूप को ही नाना तरह का कर लेता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्मदेव को जो धैर्यवान् (विवेकी) पुरुष देखते हैं, उन्हीं को शाश्वत सुख प्राप्त होता है, अन्य किसी को नहीं।

**नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनाना–**
**मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।**
**तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा–**
**स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।13।।**

जो अनित्य पदार्थों में नित्यस्वरूप तथा ब्रह्मा आदि चेतनों में चेतन है और जो अकेला ही सबकी इच्छाओं को पूरा करता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्मा को जो ज्ञानी पुरुष देखते हैं, उन्हीं को सनातनशांति प्राप्त होती है, औरों को नहीं।

**तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।**
**कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा।।14।।**

इस आत्मविज्ञान को ही ज्ञानी पुरुष अनिवर्चनीय एवं श्रेष्ठतम सुख मानते हैं। उसे मैं कैसे जान सकूंगा? क्या वह प्रकट (हमारी बुद्धि का विषय) होता है, अथवा नहीं।

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं**
**नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।**
**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं**
**तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।15।।**

वहाँ (उस आत्मलोकमें) सूर्य ज्योतिर्मान् नहीं होता, चंद्रमा एवं तारागण भी नहीं चमकते और न यह विद्युत् ही चमकती है, फिर इस अग्नि की तो सामर्थ्य ही क्या है? उसके ज्योतित होने पर ही सब कुछ प्रकाशित होता है और उसके प्रकाश से ही यह सब कुछ भासमान है।

**(द्वितीय अध्याय द्वितीया वल्ली समाप्त)**

टिप्पणी

## तृतीया वल्ली

### संसाररूपी अश्वत्थ (पीपल का) वृक्ष

**ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।**
**तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।**
**तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन।**
**एतद्वैतत्।।1।।**

जिसकी जड़ें ऊपर की ओर तथा शाखाएँ नीचे की ओर हैं, ऐसा यह (अपूर्व) अश्वत्थ वृक्ष शाश्वत (अनादिकालीन) है। वही अमृत कहा जाता है। समस्त लोकों का आश्रय वही है, कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। यही निश्चितरूपेण वह ब्रह्म है।

**यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।**
**महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।2।।**

यह जो प्राण–ब्रह्म में उदित होकर समस्त विश्व है उसी से, प्रयत्न कर रहा है। वह ब्रह्म महान् भयरूप और उठे हुए वज्र के सदृश है। जो इसके ज्ञाता हैं वे अमृतत्व को प्राप्त हैं।

**भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।**
**भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।3।।**

इस ब्रह्म (परमात्मा) के डर से ही अग्नि जलती है, इसी के भय से सूर्य तपता है तथा इसी के भय से इन्द्र, वायु और पाँचवाँ मृत्यु दौड़ता है।

**इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः।**
**ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते।।4।।**

यदि इस देह में देहांत से पहले ही ब्रह्म–ज्ञान को प्राप्त कर सका तो आवागमन के बंधन से छूट जाता है, यदि ब्रह्म को नहीं जान पाया तो इन 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, स्वभाव वाले लोकों में जीव शरीर को ही पुनः धारण करता है।

**यथादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।**
**यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके।।5।।**

जिस तरह दर्पण में उसी तरह निर्मल बुद्धि में आत्मा का (स्पष्ट) दर्शन होता है और स्वप्न की तरह ही पितृलोक में एवं जल की तरह गंधर्वलोक में वह (अस्पष्ट) रहता है, किन्तु ब्रह्मलोक में तो छाया और प्रकाश के समान वह (सर्वथा स्पष्ट) अनुभव होता है।

**इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।**
**पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति।।6।।**

भिन्न–भिन्न भूतों से उद्‌भूत इन्द्रियों के जो विभिन्न भाव एवं उनका उद्‌भव और नाश है, उन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता।

टिप्पणी

**इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।**
**सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्।।7।।**

इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बढ़कर बुद्धि है, बुद्धि से उत्तम महत्तत्त्व है और महत्तत्त्व से श्रेष्ठतर अव्यक्त है।

**अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।**
**यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति।।8।।**

अव्यक्त से भी उत्तम पुरुष है। वह सर्वव्यापी तथा अलौकिक है, जिसका ज्ञान होने पर मनुष्य मोक्ष एवं अमरत्व को प्राप्त हो जाता हैं।

**न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य**
**न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।**
**हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो**
**य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।9।।**

इस आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता। इसे भौतिक आंखों से कोई भी नहीं देख सकता। मन का नियंता यह आत्मा हृदयस्थिता बुद्धि से, मनन रूप सम्यक दृष्टि से ही उद्‌भासित होता है। जिन्हें ब्रह्म रूप से इसका ज्ञान हो जाता है, वे अमरत्व को प्राप्त हो जाते हैं।

**यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।**
**बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।10।।**

सभी पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ जब आत्मा में स्थित हो जाती हैं, एवं बुद्धि भी प्रयत्न नहीं करती वही अवस्था परम गति कहलाती है।

**तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।**
**अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।।11।।**

समस्त इन्द्रियों को स्थिर रूप से धारण करना ही योग कहलाता है। उस समय पुरुष प्रमाद रहित हो जाता है, क्योंकि योग ही उत्पत्ति और प्रलयरूप है।

**नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।**
**अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते।।12।।**

उस आत्मा को न वाणी, न मन एवं न दृष्टि से ही प्राप्त किया जा सकता है, वह ऐसा 'है' कहनेवालों से अन्यत्र (भिन्न पुरुषों को) वह किस प्रकार उपलब्ध हो सकता है।

**अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः।**
**अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति।।13।।**

टिप्पणी

वह आत्मा 'है' इस प्रकार ही उसे प्राप्त करना चाहिये एवं उसे तत्त्वभाव से ही जानना चाहिये। इन दोनों प्रकार की उपलब्धियों में से जिसे 'है' इस प्रकार की प्राप्ति हो गयी है, तत्त्वभाव उसके अनुकूल हो जाता है।

**यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।**
**अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।14।।**

इसके हृदय में आश्रित समस्त इच्छाएं जब मुक्त हो जाती हैं, तब वह मर्त्य (मरणधर्मा) अमर हो जाता है और इस शरीर से ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

**यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।**
**अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।।15।।**

इस जीवन में ही जब इसके हृदय की ग्रन्थियों का समग्र रूप से छेदन हो जाता है उस समय यह मरणधर्मा अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। सकल वेदान्तों का इतना ही आदेश है।

**शतं चैका च हृदयस्य नाड्य–**
**स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।**
**तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति**
**विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।16।।**

इस हृदय की एक सौ एक नाडियां हैं, उनमें से एक मूर्धा का भेदन करके बाहर को निकली हुई है। उसके द्वारा ऊर्ध्वरेता पुरुष अमरत्व को प्राप्त होता हैं। शेष विभिन्न गतियुक्त नाड़ियां उत्क्रमण (प्राणोत्सर्ग)–की हेतु होती हैं।

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा**
**सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।**
**तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण।**
**तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति।।17।।**

अंगुष्ठपरिमाण पुरुष, जो अन्तरात्मा है जीवों के हृदय में सदा स्थित रहता है। मूंज से सींक की तरह उसे धैर्यपूर्वक अपने शरीर से पृथक् करके अनुभव करे, इस विद्या को ही शुक्र (शुद्ध) और अमृतरूप समझे, उसे शुक्र और अमृतरूप समझे।

**मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा**
**विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।**
**ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्यु–**
**रन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव।।18।।**

मृत्यु से उपदिष्ट इस विद्या और समस्त योग विधियों को प्राप्त कर नचिकेता ब्रह्मभाव को प्राप्त, विरज (धर्माधर्मशून्य) और मृत्युहीन हो गया। अध्यात्म–तत्त्व को इस प्रकार अन्य कोई भी जानेगा तो वह भी वैसा ही हो जाएगा।

टिप्पणी

**ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं**
**करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु**
**मा विद्विषावहै ।।19।।**
**ऊँ शान्तिः! शान्ति!! शान्तिः!!!**

परमात्मा हम (आचार्य और शिष्य) दोनों की साथ–साथ रक्षा करें। हमारा साथ–साथ पालन करें। हम साथ–साथ विद्या संबंधी सामर्थ्य प्राप्त करें। हमारा अध्ययन किया हुआ तेजस्वी हो। हम द्वेष न करें ।

**(द्वितीय अध्याय तृतीया वल्ली समाप्त)**

### अपनी प्रगति जांचिए

7. नचिकेता ने कितने दिन तक यमराज की प्रतीक्षा की?
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) चार
8. विषय भोग किसके तेज को नष्ट करते हैं?
   (क) मन के (ख) इन्द्रियों के
   (ग) आत्मा के (घ) प्रकृति के
9. इन्द्रियों के ऊपर प्रथमतः किसकी सत्ता है?
   (क) मन की (ख) बुद्धि की
   (ग) महत् तत्त्व की (घ) अव्यक्त की

## 3.6 कठोपनिषद् का दार्शनिक एवं सामाजिक महत्व

भारतीय दार्शनिक चिंतन परंपरा में जहाँ अपौरुषेय वेदों का महत्वपूर्ण स्थान है वहीं सम्पूर्ण आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक चिंतन की परंपरा में ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय मनीषियों के स्वानुभूत तथ्यों से प्रवाहित ज्ञान गंगा द्वारा न केवल भारतीय साहित्य अपितु समग्र विश्व साहित्य ओत–प्रोत है। अतः सम्पूर्ण विश्व की विभिन्न साहित्यिक रचनाएं औपनिषदिक ज्ञान से अनुप्राणित हैं। इस प्रकार उपनिषद् सबसे प्राचीन साहित्य के रूप में माने जाते हैं। उपनिषदों को वेदान्त भी कहा जाता है। आचार्य सदानन्द जी लिखते हैं–

"वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि"। इस सन्दर्भ में एक विदेशी विद्वान शोपनहावर की उक्ति भी बहुत ही महत्वपूर्ण है–In the Whole world there is no study so elevating as that of Upanishad. It has been the solace of my life and it will be the solace of my death.

शाब्दिक व्युत्पत्ति के आधार पर उपनिषद् शब्द 'उप' एवं 'नि' उपसर्गपूर्वक षदलृ धातु से बनता है। षदलृ धातु निम्नलिखित तीन अर्थों में प्रयुक्त होती है–

टिप्पणी

1. विशरण (नष्ट होना)
2. गति (प्राप्त करना या जानना)
3. अवसादन (शिथिल होना)

उपर्युक्त आधार पर उपनिषद् का अभिप्राय है उपनिषद् के अध्ययन से अविद्या का नाश होना, उपनिषद् के अध्ययन से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति एवं उपनिषदों के अध्ययन से सांसारिक दुखों का शिथिल होना। इस प्रकार उपनिषद् का अभिप्राय ब्रह्मविद्या से है किन्तु उपनिषदों के साथ ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रंथों को भी उपनिषद् कहा जाता है। उपनिषद् शब्द की एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार 'उप' एवं 'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से उपनिषद् शब्द बनाया जाता है जिसका अर्थ है गुरु के पास बैठकर गुह्य ज्ञान को प्राप्त करना। यह गुह्य ज्ञान ब्रह्म, जीव एवं जगत के ज्ञान से सम्बन्धित है। इस प्रकार वस्तुतः उपनिषद् का तात्पर्य परमात्मा अथवा चैतन्यरूप आत्मा के चिंतन में प्रेरक एवं आत्मविद्या प्रतिपादक ग्रन्थ से है। प्रो. विण्टरनिट्ज ने उपनिषदों में उपनिषद् का अर्थ रहस्य बताया है यथा "इति रहस्यम्" "इति उपनिषद्"। इस प्रकार ब्रह्मप्राप्ति के साधनभूत ग्रन्थ ही उपनिषद् हैं– "ब्रह्मसामीप्यं हि निश्चयेन सीदति प्राप्नोति यया सा उपनिषद्" अर्थात ब्रह्म का सामीप्य प्राप्त कराने वाले ग्रन्थ उपनिषद् कहलाते हैं। कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत आता है। इसे नाचिकेतोपाख्यान भी कहते हैं। यह उपनिषद् सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपनिषदों में से एक है। इस उपनिषद् की रचना कठ नाम के ऋषि ने की थी। ये वैशम्पायन मुनि के शिष्य थे तथा इन्होंने यजुर्वेद की कठ शाखा का प्रवर्तन किया था। इस उपनिषद् में दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन–तीन वल्लियां हैं, जिनमें यम एवं नचिकेता के बीच हुए संवाद का उल्लेख किया गया है।

प्रथम अध्याय में पिता द्वारा प्रताड़ित नचिकेता यम के पास पहुंचता है, किन्तु यम की अनुपस्थिति में वह तीन दिन भूखा प्यासा यम के द्वार पर बैठा रहता है। तीन दिन बाद यम के लौटने पर उनकी पत्नी उन्हें नचिकेता के विषय में बताती है। भूखे प्यासे बालक अतिथि के विषय में ज्ञात होने पर यम नचिकेता के पास पहुंचकर अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा मांगते हैं एवं नचिकेता से यथा–इप्सित तीन वरदान मांगने के लिए कहते हैं। वे नचिकेता का उचित आतिथ्य करने के उपरान्त नचिकेता द्वारा वरदान मांगने पर उसे अध्यात्म विद्या के रहस्य का भी ज्ञान देते हैं।

प्रथम वल्ली में वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस उद्दालक मुनि के विश्वजित यज्ञ का उल्लेख किया गया है, जिसमें उद्दालक मुनि अपना सम्पूर्ण धन, सम्पत्ति, गौएं आदि दान कर देते हैं। दान की जा रही जर्जर एवं बूढ़ी गौओं को देखकर उद्दालक मुनि का पुत्र नचिकेता विचार करने लगा कि जो गौएं न तो दूध देने योग्य हैं, न ही प्रजनन के योग्य हैं, ऐसी गौओं के दान से क्या लाभ इससे तो पाप ही लगेगा।

पिता को इस पाप से बचाने के लिए नचिकेता ने अपने पिता उद्दालक मुनि से कहा– 'पिता जी इन वृद्ध एवं जर्जर गौओं के दान से क्या लाभ इनके स्थान पर तो आप मुझे ही दान कर देते।' नचिकेता द्वारा बार–बार कहे जाने पर पिता ने क्रोधित होकर कहा– 'मैं तुझे मृत्यु को देता हूं।'

टिप्पणी

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए नचिकेता यम के द्वार पर पहुंच गया तथा यम के न मिलने पर तीन दिन तक भूखा प्यासा प्रतीक्षा करता रहा। यम के द्वारा तीन वरदान मांगने की बात पर नचिकेता ने पहला वरदान मांगा–

नचिकेता ने यम से पहले वरदान में कहा कि हे यम! जब मैं यमलोक से अपने पिता के पास जाऊँ तब वे मुझसे क्रोध छोड़कर प्रेमपूर्वक व्यवहार करें और अपनी शेष आयु में उन्हें कोई चिन्ता न सताए। यमराज ने तथास्तु कहकर उसे पहला वरदान दिया।

दूसरे वरदान में नचिकेता ने यम से अमरत्व प्रदान करने वाली अग्निविद्या का ज्ञान मांगा। यमराज ने नचिकेता को अग्निविद्या का उपदेश देते हुए कहा– 'हे नचिकेता! तुम इस अग्निविद्या का श्रवण एकाग्रचित्त होकर करो। स्वर्गलोक की कारणभूत यह अग्निविद्या अत्यन्त गोपनीय है। तदुपरान्त यमराज ने नचिकेता को यज्ञ से संबंधित वेदी निर्माण, यज्ञ के विधि–विधान एवं मंत्रों का ज्ञान कराया। तदुपरान्त जब यम ने अपने द्वारा बताए गए यज्ञ का विवरण पूछा तब नचिकेता ने अक्षरशः सम्पूर्ण विधि को बताया। जिससे यमराज बालक की एकाग्रता और प्रतिभा से अत्यधिक प्रसन्न हुए एवं प्रसन्नतापूर्वक नचिकेता द्वारा मांगे गए तीन वरदानों के अतिरिक्त चौथा वरदान देते हुए कहा कि हे नचिकेता! आज से यह "अग्निविद्या" तुम्हारे नाम से जानी जाएगी। इस अनेकरूपी ज्ञान तत्वमयी माला को तुम स्वीकार करो। तब से इस विद्या का नाम 'नचिकेताग्नि' (लिप्त न होने वाले की विद्या) पड़ा। इस 'नचिकेताग्नि' का ज्ञाता त्रि सन्धि को प्राप्त कर त्रिकर्म सम्पन्न होकर जन्म–मृत्यु को पार कर लेता है। आचार्यों के अनुसार यह नचिकेता विद्या 'प्राप्ति' 'अध्ययन' एवं 'अनुष्ठान' इन तीन विधियों से युक्त है। साधक इन तीनों के साथ आत्म चेतना की सन्धि करता है। यह प्रक्रिया 'त्रिसन्धि' प्राप्ति कहलाती है। कुछ आचार्यों के मत में माता–पिता एवं गुरु से युक्त होना ही 'त्रिसन्धि' है। जन्म–मरण से मुक्ति हेतु साधक इन सभी को दिव्याग्नि के अनुरूप ढालता है।

तीसरे वरदान में नचिकेता यम से कहता है कि हे यम! कुछ लोगों के विचार से मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व रहता है तथा कुछ लोगों का मानना है कि मृत्यु के पश्चात आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। आप मुझे इस सन्देह से मुक्त करें। वस्तुतः मृत्यु के बाद आत्मा की गति के विषय में मुझे बताएं। नचिकेता द्वारा मांगे गए इस तृतीय वरदान को सुनकर यम ने नचिकेता से कहा–'हे नचिकेता! यह विषय अत्यन्त गूढ़ है। तुम इसके बदले मुझसे विश्व की समस्त सम्पदा, धन, धान्य, ऐश्वर्य मांग लो क्योंकि मृत्यु के बाद आत्मा की गति के विषय में जानना और समझना अत्यन्त कठिन है।' किन्तु नचिकेता समस्त विश्व के प्रलोभन में न आकर अपनी बात पर अडिग रहा।

द्वितीय वल्ली में उल्लिखित है कि जब यमराज द्वारा बार–बार कहे जाने पर भी नचिकेता नहीं माना तब यमराज नचिकेता से कहते हैं कि हे नचिकेता! श्रेय अर्थात् कल्याण एवं प्रेय अर्थात् सांसारिक भोज्य पदार्थों का ज्ञान अलग–अलग है। मनुष्य के सम्मुख ये दोनों ही मार्ग उपस्थित होते हैं किन्तु ज्ञानी जन श्रेय का मार्ग चुनते हैं और अज्ञानी जन सांसारिक भोग–विलास का मार्ग चुनते हैं।

टिप्पणी

हे नचिकेता! आत्मज्ञान का सुअवसर अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है। इसे शुष्क तर्क–वितर्क से जान पाना कठिन है। यमराज ने ऊँकार के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा ऊँ ही वह परमाक्षर है, ऊँ को ही अक्षर ब्रह्म कहा जाता है और इस अक्षर ब्रह्म का ज्ञान ही आत्मज्ञान है। साधक आत्मसाक्षात्कार द्वारा ही इसका ज्ञान प्राप्त कर सकता है, क्योंकि आत्मा ही ब्रह्मज्ञान का प्रमुख आधार है। साधक विभिन्न साधनाओं द्वारा शरीरस्थ आत्मा के ज्ञान के लिए ही प्रयत्न करता है।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

अर्थात् शाश्वत एवं नित्य ज्ञान–स्वरूप यह आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न ही मृत्यु को प्राप्त होता है। अजन्मा, नित्य, शाश्वत, अक्षय एवं वृद्धिरहित यह आत्मा न ही किसी अन्य के द्वारा जन्म लेता है, न ही कोई इससे उत्पन्न होता है। शरीरस्थ यह आत्मा शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है।

जीवात्मा की हृदय रूपी गुफा में परमात्मा अणु से भी सूक्ष्म एवं महान से भी अतिमहान रूप में विराजित है। उस परमात्मा की कृपा से निष्काम कर्मयोगी साधक ही इस आत्मतत्व को देख पाता है। जो इन्द्रियासक्त दुष्कर्मी अज्ञानी जन हैं, वे कामी इस आत्म तत्व के रहस्य का ज्ञान नहीं कर सकते।

तृतीय वल्ली में यम नचिकेता को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे नचिकेता! विवेकशील, इन्द्रियों को वश में करने वाला एवं पवित्र भावों वाला साधक ही इस आत्म तत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है क्योंकि–

"एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्र्य्या बुद्धया सूक्ष्मया, सूक्ष्मदर्शिभिः।"

अर्थात् समस्त प्राणिमात्र में छिपा हुआ यह आत्मतत्व स्वयं प्रकाशित नहीं होता, वरन सूक्ष्म द्रष्टा एवं तत्त्वदर्शियों द्वारा ही दृष्ट है। तदुपरान्त यमराज नचिकेता से मृत्यु के बाद आत्मा की गति के विषय में बताते हुए कहते हैं–

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।

स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।

अर्थात् अपने–अपने कर्मानुसार संचित भावों के कारण कुछ जीवात्मा शरीर धारण हेतु नाना योनियों को प्राप्त करते हैं तथा शेष अपने–अपने कर्मानुसार वृक्ष, लता, पर्वत आदि जड़ योनियों को प्राप्त करते हैं। तदन्तर मोक्ष मार्ग को बताते हुए यम कहते हैं– प्राणरूप ब्रह्म से उत्पन्न होकर यह संपूर्ण जगत निरंतर चलायमान रहता है। इस प्राणरूप ब्रह्म का ज्ञाता ही मोक्ष प्राप्त कर पाता है। इस परब्रह्म के भय से ही अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र आदि देवता भी अपने–अपने कर्म में संलग्न रहते हैं। इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त करने वाला ही जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो पाता है अन्यथा अनन्त काल तक विभिन्न योनियों में भटकता हुआ कर्मफल को भोगता है।

मनुष्य के मन की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए यमराज कहते हैं कि हे नचिकेता! मानव मन विशुद्ध दर्पण की भांति है। इस अन्तःकरण में ही परब्रह्म का

टिप्पणी

साक्षात्कार होता है। इस जीव की परमगति के लिए मन के साथ सभी इन्द्रियों का आत्मतत्व में लीन होना एवं बुद्धि का चेष्टा रहित होना अत्यावश्यक है। इन्द्रिय संयम द्वारा आत्मतत्व में लीन होना ही योग कहलाता है। मरणधर्मी मनुष्य हृदय की समस्त ग्रन्थियों के शिथिल हो जाने पर अमृतत्व अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार अध्यात्म विद्या को जानकर श्रद्धापूर्वक धारण करने वाले अन्य व्यक्ति भी विकार रहित एवं जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर नचिकेता की भांति परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। यथा–

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्

ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव।।

कठोपनिषद् में भारतीय दार्शनिक परम्परा के गूढ़ रहस्यों की विस्तृत विवेचना के साथ ही कर्तव्य पालन की महत्ता का भी प्रतिपादन किया गया है। कठोपनिषद् में नचिकेतोपाख्यान द्वारा यह संदेश दिया गया है कि श्रुति–स्मृति विहित भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ का सम्पादन मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्य है। इन पंच महायज्ञों का न सिर्फ सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी प्रतिपादन विस्तृत रूप से किया गया है।

सर्ववेदस यज्ञ में यज्ञ कर्ता अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का दान कर देता है। जब बालक नचिकेता देखता है कि सर्ववेदस यज्ञ में उसके पिता प्रत्येक दृष्टि से असमर्थ अदेय वस्तु का दान कर रहे हैं जो ब्राह्मणों को कष्ट देंगी, तब वह अपने पिता को उस पापकर्म से बचाने के लिए पूछता है– हे तात! आप मुझे किसे देंगे। "कस्मै मां दास्यसि" अदेय वस्तु का दान पापकारक है। गृहस्थ का उत्तरदायित्व है कि वह वृद्ध गौओं का पालन करे, अपने इस उत्तरदायित्व का भार दूसरों पर डालना 'भूतयज्ञ' के प्रति प्रमाद को दर्शाता है। इस प्रकार कठोपनिषद् में भूतयज्ञ का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

कठोपनिषद् में यम के द्वारा नचिकेता का धान्य, अर्घ्य और पुष्प द्वारा आतिथ्य "अतिथि यज्ञ" के महत्व को दर्शाता है। वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध यम अर्घ्यादि द्वारा नचिकेता को संतुष्ट करते हैं तथा प्रायश्चित स्वरूप प्रत्येक रात्रि हेतु एक–एक वर प्रदान करते हैं। कठोपनिषद् में वर्णित "अतिथि यज्ञ" की महत्ता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर प्रदाता, ब्रह्मवित, मृत्यु के देवता स्वयं यमराज ब्राह्मण बालक का समुचित सत्कार न कर पाने पर अपने अनिष्ट के प्रति अत्यधिक आशंकित हो जाते हैं।

नचिकेता के द्वारा मांगे गए प्रथम वर के द्वारा कठोपनिषद् में "पितृयज्ञ" की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है–

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्या–

द्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।

त्वत्प्रसृष्टं मामिवदेत्प्रतीत

एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।

टिप्पणी

पिता को देव तुल्य कहा गया है "पितृदेवो भव" नचिकेता द्वारा मांगे गए प्रथम वर में पिता की प्रसन्नता, क्रोधविहीनता एवं पिता की मानसिक शान्ति में 'पितृयज्ञ' की सार्थकता दृष्टिगोचर होती है क्योंकि 'पुं नाम नरकात् त्रायत इति पुत्र' अर्थात् पिता के नर्कगामी होने से पिता की रक्षा करना ही पुत्र का परम कर्तव्य है। नचिकेता द्वारा मांगे गए प्रथम वर का सम्बन्ध इहलौकिक है, इसके द्वारा यह बताया गया है कि मनुष्य को अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना अत्यावश्यक है। माता–पिता एवं गुरुजनों को सन्तुष्ट करके ही मनुष्य इहलौकिक एवं पारलौकिक सुखों को प्राप्त कर सकता है। इसका उल्लेख तैत्तिरीयोपनिषद् की शीक्षावल्ली में भी मिलता है, यथा– मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

नचिकेता द्वारा मांगे गए द्वितीय वर में देवयज्ञ के महत्व का उद्घाटन किया गया है। उपनिषत्कार ने नचिकेता द्वारा वृणित द्वितीय वर में देवयज्ञ के महत्व का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है तथा सांसारिक सुखों की उपेक्षा अधिक चिरस्थायी स्वर्गलोक को देवयज्ञ का फल बताकर देवयज्ञ के प्रति अपना पक्षपात भी प्रदर्शित किया है। द्वितीय वर में यम स्वयं स्पष्टतः कहते हैं कि वह विद्वान जो ईंटों का स्वरूप, संख्या एवं लगाने की विधि का ज्ञान प्राप्त करके, तीन बार नचिकेताग्नि का चयन करने वाला होता है, वह देहपात से पूर्व ही मृत्यु पाश से मुक्त होकर शोकरहित स्वर्गलोक में आनन्दित होता है–

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम्।

स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।

नचिकेता द्वारा तृतीय वर में मांगा गया आत्मविषयक सम्पूर्ण ज्ञान "ब्रह्मयज्ञ" के महत्व को प्रदर्शित करता है, क्योंकि आत्मविषयक ज्ञान स्वाध्याय अर्थात् 'ब्रह्मयज्ञ' से कदापि भिन्न नहीं है। इस प्रकार इस उपनिषद् में ब्रह्मविषयक ज्ञान एवं आत्मविषयक ज्ञान का क्रमबद्ध विवेचन दृष्टिगोचर है। लौकिक सुखों की इच्छा वाले व्यक्ति के लिए बताया गया है कि वह अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करे एवं गुरुजनों को प्रसन्न रखे। तत्पश्चात् स्वर्गलोक की प्राप्ति की इच्छा वाले मनुष्य के लिए अग्निचयन विद्या का उपदेश दिया गया है और अन्त में मोक्ष की इच्छा वाले व्यक्ति के लिए ब्रह्म विद्या का विस्तृत एवं विशद उपदेश दिया गया है।

ये पंच महायज्ञ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में सहायक साधन हैं तथा एक श्रृंखला के समान परस्पर एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। अतः प्रत्येक कड़ी के तारतम्य के अभाव में लक्ष्य प्राप्ति नितान्त असम्भव है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कठोपनिषद् का मुख्य उपदेश है कि मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए अग्निहोत्र आदि का सम्प्रदान करते हुए ब्रह्मज्ञान के लिए प्रयत्न करे। यही इस उपनिषद् का दर्शन भी है।

कठोपनिषद् में आत्म–साक्षात्कार के मार्ग को छुरे की धार पर चलने के सदृश अत्यन्त कठिन बताया गया है। अतः इस उपनिषद् में आत्म तत्व जिज्ञासु को सावधान करते हुए कहा गया है–

टिप्पणी

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधयत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।

अर्थात् आत्मज्ञान का मार्ग अत्यन्त गूढ़, गहन एवं छुरे के धार के समान तीक्ष्ण है। आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए योग्य गुरु एवं शिष्य का होना परमावश्यक है। योग्य गुरु एवं योग्य शिष्य का एक ही समय पर मिलना दुर्लभ है।

इस प्रकार कठोपनिषद् में जहाँ मनुष्य को परम पुरुषार्थ के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया गया है वही उपनिषदों के वर्ण्य विषय आत्म तत्व का अत्यन्त स्पष्ट एवं मार्मिक विवेचन किया गया है। यम नचिकेता संवाद में सम्पूर्ण उपनिषदों का सार वर्णित है यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी।

### अपनी प्रगति जांचिए

10. कठोपनिषद् में किसका समन्वय दर्शाया गया है?

(क) कर्तव्य और यज्ञ का (ख) यज्ञ और ब्रह्माविद्या का

(ग) कर्म और ब्रह्मविद्या का (घ) कर्तव्य, यज्ञ और ब्रह्मविद्या का

11. नचिकेता का दूसरा वरदान है–

(क) दैहिक (ख) दैविक

(ग) भौतिक (घ) आधिदैविक

## 3.7 कठोपनिषद् में निहित संदेश

कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से संबद्ध है। यह उपनिषद् संस्कृत साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में नचिकेता की कथा मिलती है। इसी कथा का सर्वांगीण विकास कठोपनिषद् में प्राप्त होता है। इस उपनिषद् में यमराज एवं नचिकेता–संवाद के माध्यम से अध्यात्म विद्या का गंभीर विवेचन किया गया है। यह उपनिषद् दो अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में तीन–तीन वल्लियां हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ में दो अध्याय एवं छह वल्लियां हैं।

कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की प्रथम वल्ली में पितृभक्ति तथा आतिथ्य सत्कार के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। अपने पूज्य पिता को नरक का भागी होने से बचाने के लिए नचिकेता स्वयं को दान के रूप में अर्पित कर देता है। पिता के वचन को सत्य सिद्ध करने के उद्देश्य से वह पूज्यपाद पिता से विनम्र भाव से प्रार्थना करता है कि आप मुझे यमराज के यहां भेज दें। नचिकेता यमराज के पास चला जाता है। यमराज के उस समय अनुपस्थित होने पर बालक नचिकेता निरंतर तीन दिनों तक बिना अन्न–जल ग्रहण किए ही उनकी प्रतीक्षा करता है। तीन दिनों के पश्चात् यमराज अपने घर लौटते हैं। यद्यपि वे सर्वशक्तिमान एवं सर्वप्राणहर्ता हैं किंतु फिर भी बालक नचिकेता के तीन दिनों तक अपने आवास पर उपवास की सूचना प्राप्त कर वे घबरा जाते हैं। अतिथि के भूखा रहने पर मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है–इस तथ्य के ज्ञाता यमराज

टिप्पणी

नचिकेता को प्रसन्न करने के लिए उसे तीन वर प्रदान करते हैं। यम के द्वारा प्रदत्त प्रथम वर में बालक नचिकेता अपने पिता के लिए प्रसन्नता की मांग करता है। इसी क्रम में अतिथि सत्कार के महत्व का भी प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय वल्ली में श्रेय एवं प्रेय मार्ग का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। इस वल्ली में यह स्पष्टतः निर्दिष्ट किया गया है कि मनुष्य के समक्ष कल्याणकारी तथा क्षणिक सुख पहुंचाने वाले पदार्थ विद्यमान हैं। विवेकी व्यक्ति प्रिय लगने वाले भोग–साधनों की अपेक्षा कल्याणकारी साधनों को ही स्वीकार करता है परंतु मन्दबुद्धि एवं अविवेकी व्यक्ति सांसारिक सुखों को देने वाले साधनों के आकर्षण में पड़कर उन्हें ही अपनाता है। परिणामतः वह जन्म–मरण के चक्कर में पड़कर नानाविध दुखों को भोगता रहता है। अतः बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति को प्रेय मार्ग का परित्याग करके श्रेय मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए। श्रेय मार्ग कल्याणकारी है तथा प्रेय मार्ग दुखदायी।

तृतीय वल्ली का प्रतिपाद्य विषय है–जीवात्मा तथा परमात्मा के भेद को रथ–रूपक के माध्यम से समझाना। दूसरे शब्दों में कहें तो तृतीय वल्ली में रथ–रूपक की कल्पना के माध्यम से श्रेय एवं प्रेय मार्ग द्वारा प्राप्त होने वाले फलों को प्रदर्शित किया गया है। शरीर के अन्दर दो तत्व विद्यमान हैं। एक है–कर्मफल का भोक्ता तथा दूसरा है कर्मफलों का उपभोक्ता। कर्मफलों का उपभोक्ता कर्म से बिल्कुल अलग रहकर केवल द्रष्टा के रूप में स्थित रहता है। मानव जीवन रथ यात्रा के समान है। यह शरीर ही रथ है और जीवात्मा इसका स्वामी या रथी है। इसका परम लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त करना है। इस शरीररूपी रथ का सारथी बुद्धि है तथा इन्द्रियां अश्व हैं। मन लगाम है जो इन्द्रियरूपी अश्वों को नियंत्रित करता है। भोग्य विषय ही हरी–हरी घास हैं। वे इन्द्रियरूपी अश्वों को अपनी ओर आकृष्ट करके मार्गच्युत कर देते हैं परंतु बुद्धिरूपी सारथी मनरूपी लगाम से उन इन्द्रियरूपी अश्वों को पूर्णतः नियंत्रित कर लेता है। यदि नियंत्रण नहीं रहता है तो जीवात्मा मोक्षमार्ग से च्युत होकर पतन के गहरे गड्ढे में गिर जाता है। अतः इस रथ–रूपक से यह सिद्ध हो जाता है कि श्रेय मार्ग का अनुसरणकर्ता विवेकी होता है तथा प्रेय मार्ग का यात्री अविवेकी। रथ एवं रथी के रूपक के माध्यम से यह शिक्षा दी गई है कि मनुष्य को अपने मन एवं इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहिए तथा अपने परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर निरंतर अग्रसर होते रहना चाहिए।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त कठोपनिषद् में अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों पर भी पूर्ण प्रकाश डाला गया है। इसमें यह स्पष्टतः निर्दिष्ट किया गया है कि मनुष्य को सदा आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। उसे सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि वास्तव में वह क्या है। दूसरों की आलोचना से पूर्णतः विरक्त रहकर सदैव आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। इससे वास्तविकता का ज्ञान होता है तथा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

कठोपनिषद् में आत्मज्ञान का प्रतिपादन भी भलीभांति किया गया है। मानव–जीवन का परम लक्ष्य है सांसारिक आवागमन के बंधन से सदा के लिए मुक्ति। यह तभी संभव है जब पूर्ण रूप से आत्मज्ञान प्राप्त हो जाए। अतः शरीर के विनष्ट होने के पूर्व ही

टिप्पणी

आत्मज्ञान परमावश्यक है। इससे ब्रह्म का साक्षात्कार अवश्यम्भावी है। अग्रलिखित पंक्तियों से कठोपनिषद् के प्रतिपाद्य विषय की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त हो जाती है–

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**
**क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया**
**दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।**

### अपनी प्रगति जांचिए

12. कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की प्रथम वल्ली में निहित संदेश क्या है?
    (क) पितृभक्ति (ख) आतिथ्य
    (ग) पितृभक्ति और आतिथ्य (घ) श्रेयमार्ग का अनुसरण
13. कठोपनिषद् मानव जीवन के किस लक्ष्य को प्राप्त करने का संदेश देता है?
    (क) मोक्ष (ख) पितृभक्ति
    (ग) ज्ञान प्राप्ति (घ) समाजोन्नति

## 3.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (ग)
4. (घ)
5. (क)
6. (ख)
7. (ग)
8. (ख)
9. (क)
10. (घ)
11. (घ)
12. (ग)
13. (क)

## 3.9 सारांश

अपने पिता को जर्जरकाय गायों को दान करते देखकर नचिकेता को भारी विक्षोभ हुआ। पिता को सन्मार्ग पर लाने के लिए उसने, पुत्र दान करने का प्रस्ताव प्रश्न रूप

टिप्पणी

में पिता के सम्मुख रखा। किन्तु प्रबोध के स्थान पर पिता का क्रोध जाग्रत हो गया। क्रोधावेश में पिता ने नचिकेता को मृत्यु को देने का कथन प्रकट कर दिया। पिता के वचन को मिथ्या होने के दोष से बचाने के लिए नचिकेता यमराज के द्वार पर जा पहुंचा। तीन दिन तक भूखा–प्यासा रहकर यमराज की प्रतीक्षा करता रहा। तीन दिन तक अनशन के बदले यमराज ने नचिकेता को तीन वरदान मांगने को कहा। पितृभक्त नचिकेता ने सर्वप्रथम तो अपने पिता का वात्सल्य ही मांगा। दूसरे वरदान में उसने स्वर्ग–प्राप्ति के लिए किए जाने वाले यज्ञ की विधि का ज्ञान प्राप्त किया और अन्तिम वरदान में उसने अजरत्व अमरत्व दिलाने वाले परमात्मा–ज्ञान को प्राप्त करना चाहा। नचिकेता की ज्ञानपिपासा और ज्ञानाधिकारिता की परीक्षा के लिए उसे इस विषय में न पूछने के बदले अनेक प्रलोभन दिए किन्तु बालक होते हुए भी नचिकेता ने अत्यन्त परिपक्व बुद्धि को अपनाते हुए यमराज के द्वारा दिए गए सभी प्रलोभनों को अस्वीकार कर दिया। ज्ञान के प्रति नचिकेता की सत्यनिष्ठा से सन्तुष्ट यमराज ने उसे जो तत्वज्ञान दिया वह इस उनिषद् में समाहित है।

## 3.10 मुख्य शब्दावली

- **पीतोदकाः** – जो जल पी चुकी हैं।
- **जग्धतृणाः** – जिनकी घास खाने की क्षमता समाप्त हो चुकी है।
- **वैश्वानरः** – अग्नि।
- **वैवस्वत** – सूर्य पुत्र यमराज।
- **सूनृता** – प्रिय वाणी।
- **शोकातिगः** – जो शोक से रहित हो गया हो।
- **श्रेष्ठ** – प्रियतम/सर्वाधिक प्रिय।
- **सद्म** – **घर**
- **प्रत्यगस्यति** – नीचे को फेंकता/धकेलता है।

## 3.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कठोपनिषद् का यह नाम क्यों पड़ा?
2. 'सृङ्का' शब्द से आप क्या समझते हैं?
3. नचिकेत अग्नि का तात्पर्य क्या है?
4. नचिकेता ने सबसे पहले कौन–सा वर मांगा?

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. कठोपनिषद् की परिचयात्मक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

2. नचिकेता को मिले तीन वरदानों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. कठोपनिषद् का दार्शनिक एवं सामाजिक महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. यमराज द्वारा नचिकेता को दिए तत्वज्ञान की व्याख्या कीजिए।
5. कठोपनिषद् में निहित संदेश रेखांकित कीजिए।

## 3.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. कठोपनिषद्–सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित–गीताप्रेस गोरखपुर।
2. श्रीमद्भवद्गीता–सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित–गीताप्रेस गोरखपुर।

# इकाई 4 व्याकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)

टिप्पणी

## संरचना


4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 व्याकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)
  4.2.1 कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया
  4.2.2 अनीयर् प्रत्यय
  4.2.3 यत् प्रत्यय
  4.2.4 ण्यत् प्रत्यय
  4.2.5 अथ पूर्वकृदन्तप्रकरण
  4.2.6 क्त, क्तवतु, कत्वा, ल्यप्, शतृ–शानच्–प्रत्ययाः
4.3 तद्धित प्रत्यय (अण्, मतुप्, इनि, त्व, तल्, ढक्)
4.4 स्त्रीप्रत्ययौ (टाप् ङीप् च)
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री


## 4.0 परिचय

कृदन्त प्रत्ययों में से क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय से बनने वाले शब्द अव्यय कोटि में परिगणित होते हैं। इनके अन्य रूप नहीं बनते। इकाई में दिए गए अन्य सभी प्रत्ययों के विभिन्न रूपों का निर्माण करके वाक्य में प्रयोग किया जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही इन प्रत्ययों का अभ्यास करणीय है।

प्रस्तुत इकाई में निर्धारित प्रत्ययों की प्रक्रिया–सिद्धि के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी को आधार बनाया गया है। साथ ही प्रमुख कृदन्त, तद्धित प्रत्ययों के साथ–साथ दो स्त्री–प्रत्ययों को भी उपनिबद्ध किया गया है।

## 4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कृदन्त प्रत्ययों के अंतर्गत अनीयर्, यत् आदि प्रत्ययों के प्रयोग के लिए निर्धारित सूत्रों को वृत्तियों व उदाहरण सहित समझ पाएंगे;
- तद्धित प्रत्ययों के अंतर्गत अण्, मतुप्, इनि, त्व, तल्, ढक् प्रत्ययों के लिए निर्दिष्ट सूत्रों को वृत्तियों व उदाहरण सहित समझ पाएंगे;
- 'टाप्, ङीप्' नामक प्रत्ययों की भी सूत्रादि सहित जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

## 4.2 व्याकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)

टिप्पणी

लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनीयर्, यत् आदि प्रत्ययों के ज्ञानार्थ पूर्वकृदन्त प्रकरण के प्रारंभ में जिन सूत्रों की जानकारी आवश्यक है वे इस प्रकार हैं-

### 4.2.1 कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया

**धातोः 3.1.91**

**आतृतीयाध्यायसमाप्त्यन्तं ये प्रत्ययाः, ते धातोः परे स्युः। 'कृदतिङ्' इति 'कृत्' संज्ञा।**

**व्याख्या** - इस सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय की समाप्ति तक जो प्रत्यय कहे गए हैं वे धातु से परे हों। तिङ्-भिन्न उन प्रत्ययों को कृत् नाम से जाना जाए।

**वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94**

**अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्, स्त्र्यधिकारोक्तं विना।**

**व्याख्या** - इस धातु के अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का विकल्प (स्त्री अधिकार में उक्त प्रत्ययों को छोड़कर) बाधक होगा।

यह सूत्र परिभाषासूत्र है। 'अनियमे नियमकारिणी परिभाषा' यह लक्षण हैं। ज्ञातव्य है कि अपवाद नियम से उत्सर्ग (सामान्य) नियम का नित्य बाध होता है परंतु धातु के अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का विकल्प से बाध करेगा। किंतु जो प्रत्यय सरूप अपवाद होगा वह नित्यबाधक होगा। स्त्र्यधिकार में यह नियम लागू नहीं होता है। अतः स्त्री-अधिकारस्थ असरूप, अपवाद प्रत्यय भी उत्सर्ग को नित्य बाधित करेगा। जैसे-

'ण्वुल्तृचौ' यह सामान्य सूत्र (उत्सर्ग) है, इसका असरूप अपवाद प्रत्यय है - ''इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः''। यह विकल्प से ही ण्वुल् और तृच् को बाधित करता है। अत एव क्षिप् धातु से ण्वुल्, तृच् करने पर क्षेपकः, क्षेप्ता, भी बनता है, तथा क प्रत्यय करने पर 'क्षिपः' बनता है। जैसे - 'कर्मण्यण्' से होने वाला अण् उत्सर्ग है तथा आतोऽनुपसर्गे कः से होने वाला क 'अ' सरूप अपवाद है। अतएव गां ददाति इस अर्थ में अण् को नित्य बाधकर 'क' होता है, एवं 'गोदः' रूप ही बनता है। स्त्र्यधिकारस्थ 'स्त्रियां क्तिन्' इस उत्सर्ग का भी 'अ-प्रत्ययात्' से विहित अपवाद अ-प्रत्यय द्वारा बाध होने से 'चिकीर्षा' 'जिहीर्षा' में अ-प्रत्यय ही हुआ। क्तिन् नहीं।

**कृत्याः 7.1.95**

**ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः।**

**व्याख्या** - 'ण्वुल्तृचौ' सूत्र से पहले के प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा होती है।

**कर्तरि कृत् 3.4.67**

**'कृत्' प्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते-**

**व्याख्या** - कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में हों।

**तयोरेव कृत्य-क्त-खलर्थाः 3.4.70**

**एते भावकर्मणोरेव स्युः।**

टिप्पणी

**व्याख्या** - कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही होते हैं, कर्ता में नहीं।

कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्ययों के योग में भाववाच्य और कर्मवाच्य के समान अनुक्त होने से कर्ता में तृतीया विभक्ति आती है। जैसे - (कृत्य-मया पठितव्यम्, क्त-मया पठितम्, खलर्थ-मया सुकरम् इदं कार्यम् -यह कार्य मैं सरलता से कर सकता हूं।)

## 4.2.2 अनीयर् प्रत्यय

**तव्यत्-तव्यानीयरः 3.1.96**

**धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम् एधनीयं त्वया। भावे-औत्सर्गिकम् एकवचनं क्लीबत्वं च। चेतव्यः, चयनीयो वा धर्मस्त्वया।**

**व्याख्या** - धातु से तव्यत्, तव्य तथा अनीयर् प्रत्यय होते हैं। ये सभी प्रत्यय चाहिए अर्थ में होते हैं - तव्यत् का तव्य, तव्य का त तथा अनीयर् का अनीय शेष रहता है। अनीयर् का र् भी इत्संज्ञक है।

**एधितव्यम्, एधनीयम्** - यहां एध् धातु से भाव में तव्य और अनीयर् प्रत्यय हुए हैं। धातु से विहित होने से ये 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक हैं। वलादि आर्धधातुक होने से तव्य को इट् आगम हुआ।

भाव में ये इसलिए हुए कि एध् धातु अकर्मक है। कर्ता अनुक्त है - इस बात को दिखाने के लिए 'त्वया' यह तृतीयान्त कर्ता दिया है।

**भाव इति** - भाव में सामान्य एकवचन और नपुंसकलिङ्ग हुआ।

कर्म में ये प्रत्यय सकर्मक धातुओं से आते हैं और कर्म के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अतः लिङ्ग वचन कर्म के अनुसार होते हैं। जैसे -

**चेतव्यः, चयनीयो या धर्मस्त्वया** - 'चि' धातु सकर्मक है। इसलिए यहां कर्म में तव्य और अनीयर् प्रत्यय हुए। चयन का कर्म धर्म है, वह पुंल्लिङ्ग और एकवचन में है, इसलिए इनसे भी पुंल्लिङ्ग और एकवचन हुआ। 'त्वया' यह कर्तृपद है, इसमें अनुक्त होने से कर्ता में तृतीया विभक्ति हुई है।

**(वा) केलिमर उपसंख्यानम्। पचेलिमाः माषाः पक्तव्या इत्यर्थः। भिदेलिमाः सरलाः, भेत्तव्या इत्यर्थः। कर्मणि प्रत्ययः।**

**व्याख्या** - तव्यत् आदि के समान केलिमर् प्रत्यय भी भाव और कर्म में होता है।

**पचेलिमा माषाः** (पकाने योग्य माष) - यहां पच् धातु से इस वार्तिक के द्वारा केलिमर् प्रत्यय होकर 'पचेलिमाः' सिद्ध हुआ।

टिप्पणी

**भिदेलिमाः सरलाः** - यहां भिद् धातु से केलिमर् प्रत्यय हुआ है। कर्म से प्रथमा हुई और तदनुसार 'भिदेलिमाः' से पुंल्लिङ्ग और बहुवचन हुए।

**कर्मणीति** - 'पचेलिमाः' और 'भिदेलिमाः' में केलिमर् प्रत्यय कर्म में हुआ, क्योंकि ये दोनों धातु सकर्मक हैं।

**कृत्य-ल्युटो बहुलम् 3.3.113**

**क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।**

**विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥1॥**

**'स्नाति-अनेन' इति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः।**

**व्याख्या** - नियमों के नित्य न होने पर जब उनकी प्रवृत्ति स्वेच्छा से हो उसे बहुल कहते हैं। कृत् और ल्युट् प्रत्यय बहुल में प्रयुक्त होते हैं।

**क्वचिदिति** - कहीं प्रवृत्ति होना, कहीं प्रवृत्ति न होना, कहीं विकल्प से प्रवृत्ति होना और कहीं अन्य ही प्रकार होना - इस तरह बाहुलक को चार प्रकार का कहा जाता है।

**स्नानीयम्-स्नान्ति अनेन इति स्नानीयं चूर्णम्** - जिस चूर्ण से स्नान किया जाए उसे स्नानीय कहते हैं, यहां 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र से स्ना धातु से कारण अर्थ में बाहुलक अनीयर् कृत प्रत्यय हुआ। यहां बाहुलक का पहला प्रकार है अर्थात् अप्राप्त की प्रवृत्ति हो जाना।

**दानीयः** - दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः - इसे दिया जाता है, इस प्रकार दानीय हुआ, वह ब्राह्मण होता है। यहां बाहुलक से संप्रदान अर्थ में दा धातु से अनीयर् प्रत्यय हुआ। यह भी बाहुलक के पहले प्रकार का उदाहरण है।

### 4.2.3 यत् प्रत्यय

**अचो यत् 3.1.97**

**अजन्ताद् धातोर्यत् स्यात्। चेयम्।**

**व्याख्या** - अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो।

**चेयम्** - चिञ् धातु से अजन्त होने के कारण यत् प्रत्यय हुआ। तब यत् के आर्धधातुक होने से उसके परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होने पर 'चेय' शब्द बना। उससे सामान्य में नपुंसकलिङ्ग होने से स्वादि की उत्पत्ति हुई। प्रथमा के एकवचन में चेयम् बना।

**ईद् यति 6.4.35**

**यति परे आत ईत् स्यात्। देयम्। ग्लेयम्।**

**व्याख्या** - 'यत्' परे रहते आकार के स्थान में ईकार हो।

टिप्पणी

**देयम्** - दा धातु से ''अचो यत्'' से यत् प्रत्यय होकर, अनुबंधलोप कर दा + य बना। इसके बाद आर्धधातुक संज्ञा हुई। ''ईद्यति'' से दा के आ को ई कर दीय शब्द बना। ''सार्वधातुकार्ध'' सूत्र से गुण होकर देय शब्द बना। प्रातिपदिक संज्ञा हुई। सु आया। सु को ''अतोऽम्'' से अम् एवं ''अमि पूर्वः'' से पूर्वरूप कर देयम् रूप बना।

**ग्लेयम्** - ग्लै धातु के ऐ कोआदेच उपदेशेऽशिति सूत्र से आत्व कर ग्ला बना। अचो यत् सूत्र से कर्म में यत् प्रत्यय आया। आर्धधातुक संज्ञा हुई। ईद् यति से ग्ला के आ को ईत् कर ग्ली + य बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः से ई को गुण ए। ग्लेय की प्रातिपदिक संज्ञा हुई, सु का अम् पूर्वरूप होकर ग्लेयम् रूप बना।

**पोरदुपधात् 3.1.98**

**पवर्गान्ताद् अदुपधाद् यत् स्यात्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। लभ्यम्।**

**व्याख्या** - जो धातु पवर्गान्त हो तथा जिसकी उपधा में अत् हो उससे यत् प्रत्यय हो।

**ण्यत् इति** - यह यत् -ऋहलोर्ण्यत् से प्राप्त ण्यत् का बाधक है।

**शप्यम्-लभ्यम्** - शप् एवं लभ् धातु से प्राप्त ण्यत् को बाधकर 'पोरदुपधात्' से यत् प्रत्यय हुआ। शप्य, लभ्य बना। कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा, स्वादिकार्य कर शप्यम् एवं लभ्यम् बना।

### 4.2.4 ण्यत् प्रत्यय

**ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124**

**ऋवर्णान्ताद् हलन्ताच्च धातोर्ण्यत्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्।**

**व्याख्या** - ऋवर्णान्त और हलन्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो। इस प्रत्यय का य शेष रहता है क्योंकि णकार और तकार इत्संज्ञक है।

**कार्यम्, हार्यम्, धार्यम्** - कृ ह और धृ धातुओं के ऋकारान्त होने के कारण ऋहलोण्यत् सूत्र से ण्यत् प्रत्यय हुआ। ण्यत् के णित् होने से उसके परे रहते 'अचो ञ्णिति' से ऋकार को वृद्धि होने पर कार्यम्, हार्यम् तथा धार्यम् रूप बने।

**चजोः कु घिण्यतोः 7.3.52**

**चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे।**

**व्याख्या** - घित् और ण्यत् प्रत्यय परे रहने पर चकार तथा जकार को कुत्व होता है।

सूत्रस्थ 'घिण्' 'घित्' के त को 'यरोनुनासिकेनुनासिको वा' सूत्र से अनुनासिक णकार होने से बना है। 'मृजेर्विभाषा' सूत्र से जब क्यप् नहीं हुआ। उस पक्ष में हलन्त होने से ण्यत् प्रत्यय होता है। ण्यत् परे रहते यह सूत्र जकार को कवर्ग → गकार करता है।

टिप्पणी

**मृजेर्वृद्धि 7.2.114**

**मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः।**

**व्याख्या** - सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे रहने पर मृज् धातु के इक् को वृद्धि हो।

**मार्ग्यः** - यहां मृज् धातु से 'ण्यत् चः जोः कु घिण्यतोः' से जकार को कवर्ग गकार हुआ। तब प्रकृत सूत्र से ऋकार को वृद्धि 'आर्' होकर मार्ग्यः रूप बना।

**भोज्यं भक्ष्ये 7.3.69**

**भोग्यमन्यत्। इति कृत्यप्रक्रिया।**

**व्याख्या** - भक्ष्य-भक्षण करने योग्य - अर्थ में ण्यत् परे रहने पर चजोः कु घिण्यतोः' से प्राप्त कुत्व नहीं हुआ।

यह सूत्र कुत्व के अभाव का निपातन करता है।

भोग्यम् जब भक्षण करने योग्य अर्थ नहीं होगा तब कुत्व होकर भोग्यम् रूप बनेगा। हलन्त होने से 'भुज्' धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है।

## 4.2.5 अथ पूर्वकृदन्तप्रकरण

**सहे च 3.2.96**

**कर्मणीति निवृत्तम। सह यौधितवान्-सहयुध्वा। सहकृत्वा।**

**व्याख्या** - यहां अर्थ है-(सहेः) सह उपपद रहने पर (भूते) भूत अर्थ में (युधि कृञः) 'युध्' और 'कृ' (धातोः) धातु से क्वनिप् (वन्) प्रत्यय होता है।

**सहकृत्वा 'सहकृत्वान्' (जिसने साथ मिलकर किया हो)**- यहां सह उपपद रहते कृ धातु से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् से तुक् होने पर 'सहकृत्वन्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा विभक्ति के एकवचन में पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

**सप्तम्यां जनेर्डः 3.2.97**

**व्याख्या** - सप्तम्यन्त उपपद रहते जन् धातु से ड प्रत्यय हो।

ड प्रत्यय का डकार इत्संज्ञक है। ङित् होने से इसके परे रहते टि का लोप होता है।

**तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6.3.14**

**ङेरलुक् सरसि-जम्, सरोजम्।**

**व्याख्या** - तत्पुरुष समास में कृदन्त अर्थात जिसके अंत में कृत् प्रत्यय हो ऐसे उत्तर पद के परे रहते 'ङि' अर्थात् सप्तमी का लोप नहीं होता बहुल से।

**सरसिजम्, सरोजम्** -यहां 'सरस् ङि ज्' से 'सप्तम्यां जनेर्डः' से ड प्रत्यय हुआ। ङित् होने से टि अन् का लोप हुआ। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' से सप्तमी का बहुल अलुक् हुआ। जब लोप नहीं हुआ तब 'सरसिज' प्रातिपदिक बना और जब लोप हो गया तब

सकार के रु और उसे 'हशि च' से उकार होने पर गुण होकर 'सरोज' बना। इन दोनों के नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**उपसर्गे च संज्ञायाम् 3.2.99**

**प्रजा स्यात् सन्ततौ जने।**

टिप्पणी

**व्याख्या** - उपसर्ग उपपद रहते जन् धातु से ड प्रत्यय हो, यह संज्ञा में हो।

**प्रजा** - प्र उपसर्ग पूर्वक जन् धातु से संज्ञा में ड प्रत्यय हुआ। टि अन का लोप होने पर टाप् होकर 'प्रजा' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

## 4.2.6 क्त, क्तवतु, कत्वा, ल्यप्, शतृ–शानच्–प्रत्ययाः

**क्तक्तवतू निष्ठा 1.1.26**

**एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।**

**व्याख्या** - क्त और क्तवतु प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है। 'क्त' में 'क्' की तथा 'क्तवतु' में 'क' और 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप होकर 'त' और 'तवत' शेष बचता है।

**निष्ठा 3.2.102**

**भूतार्थवृत्तेधातोर्निष्ठा स्यात्। तत्र 'तयोरेव' इति भावकर्मणोः क्तः, 'कर्तरि कृद्' इति कर्तरि क्तवतु। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः (विश्व की रचना भगवान विष्णु ने की)।**

**व्याख्या** - भूतकाल में वर्तमान धातु से निष्ठा प्रत्यय हो। भूतकाल में विद्यमान (धातोः) धातु से (निष्ठा) 'क्त', 'क्तवतु' प्रत्यय होते हैं। 'तयोरेव.' (770) सूत्र से 'क्त' प्रत्यय का विधान भाव और कर्म में किया जाता है तथा 'क्तवतु' प्रत्यय का 'कर्तरि कृत्' (769) सूत्र से कर्ता में।

**स्नातं मया** - स्ना धातु से अकर्मक होने के कारण भाव में क्त प्रत्यय होकर 'स्नात' शब्द बना। कृदन्त होने से इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई। सामान्य में नपुंसकलिङ्ग और प्रथमा का एकवचन आया। इस प्रकार यह रूप सिद्ध हुआ।

कर्ता के अनुक्त होने से तृतीया हुई। धातु अकर्मक है, इसलिए भाव में निष्ठा प्रत्यय आया। 'मया' के प्रयोग से इसे स्पष्ट किया गया है।

**स्तुतस्त्वया विष्णुः** - यहां स्तु धातु से कर्म में निष्ठा प्रत्यय क्त के कित् होने से गुण और धातु के अनिट् होने से इट् नहीं हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

**विश्वं कृतवान् विष्णुः** - यहां कृ धातु से कर्ता में क्तवतु प्रत्यय होकर 'कृतवत्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में क्तवतु के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः' से नुम् हुआ और नान्त की उपधा को 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से दीर्घ तथा सकार का हल्ङ्यादिलोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

**रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः 8.2.42**

**रदाभ्यां परस्य निष्ठा तस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शॄ हिंसायाम्, ऋत इत् रपरः णत्वम्-शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।**

**व्याख्या** - रेफ और दकार से परे निष्ठा तकार को नकार आदेश हो तथा निष्ठा से पूर्व धातु के दकार को भी।

टिप्पणी

**शीर्णः** - शृ धातु से कर्म में निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। 'ऋत इद् धातोः' से ऋकार को इर् आदेश और इकार को 'हलि च' से दीर्घ होने पर 'शीर् त' इस दशा में प्रकृत सूत्र से रेफ से परे होने के कारण निष्ठा के त को न हुआ। तब णत्व होने पर 'शीर्ण' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**भिन्नः, छिन्नः** - भिद् और छिद् धातुओं से कर्म में निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। दकार से पर होने के कारण धातु के दकार को भी नकार प्रकृत सूत्र से होने पर 'भिन्न' और 'छिन्न' प्रातिपदिक बने। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुए।

**संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8.2.43**

**निष्ठा-तस्य न स्यात्। द्राणः। ग्लानः।**

**व्याख्या** - जो संयोगादि, आकारान्त और यण् वाली धातु हो उससे परे निष्ठात और क्तवतु के तकार को नकार हो।

**द्राणः** - द्रा धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। द्रा धातु संयोगादि भी है, आकारान्त भी है और रकार होने से यण् वाली भी है। इसलिए इस सूत्र से निष्ठा के तकार को रेफ होने पर उसे णत्व हुआ।

**ग्लानः** - ग्लै धातु से क्त प्रत्यय हुआ। यहां 'आदेच उपदेशेऽशिति' से ऐ को आ हुआ। यह संयोगादि भी है, यण्-युक्त भी है। इसलिए इससे परे निष्ठा के तकार को इस सूत्र से नकार हुआ।

**ल्वादिभ्यः 8.2.44**

**एकविंशतेर्लूआदिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या धातुः, 'ग्रहिज्या' इति संप्रसारणम्।**

**व्याख्या** - क्र्यादिगण की लूञ् आदि इक्कीस धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकार हो।

**लूनः** - लूञ् धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। अतः इस सूत्र से तकार को नकार हुआ।

**हलः 6.4.2**

**अङ्गावयवाद् लः परं यत् संप्रसारणम् तदन्तस्य दीर्घः। जीनः।**

**व्याख्या** - अङ्ग के अवयव हल् से परे जो संप्रसारण, तदन्त को दीर्घ हो।

**जीनः** - (जीर्ण हो चुका) ज्या धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। लू आदियों में होने से निष्ठा के तकार को नकार हुआ। 'ग्रहिज्या' से यकार को संप्रसारण और संप्रसारणाच्च से आकार का पूर्व रूप तथा प्रकृत सूत्र 'हलः' से इकार को दीर्घ होकर 'जीन' प्रातिपदिक बना, तब प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**ओदितश्च 8.2.45**

**भुजो-भुग्नः। टु ओ श्वि-उच्छूनः।**

**व्याख्या** - ओदित् धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश हुआ।

टिप्पणी

**भुग्नः** - भुजो धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। धातु के ओदित् होने से इस सूत्र से निष्ठा तकार को नकार हुआ। तब 'चोः कुः' से चवर्ग को कवर्ग गकार होने पर 'भुग्न' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ। इसी तरह -

**उच्छूनः** - उत् उपसर्ग पूर्वक टु - ओ - श्वि धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर ओदित् होने के कारण उसके तकार को नकार हुआ। यजादि होने से धातु के वकार को संप्रसारण उकार, इकार का 'संप्रसारणाच्च' से पूर्वरूप, 'हलः' से दीर्घ और 'श्वोदितो निष्ठायाम्' से इट् का निषेध होने पर 'उच्छून' प्रातिपदिक बनकर प्रथमा के एकवचन में उच्छूनः सिद्ध हुआ।

**शुषः कः 8.2.51**

**निष्ठा-तस्य कः। शुष्कः।**

**व्याख्या** - शुष् धातु से परे निष्ठा अर्थात् 'क्त' और 'क्तवतु' के तकार को ककार होता है।

**शुष्कः** - शुष् धातु के क्त प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से उसके तकार को ककार हुआ।

**पचो वः 8.2.52**

**पक्वः। क्षै क्षये।**

**व्याख्या** - पच् धातु से पर निष्ठा के तकार को वकार आदेश होता है।

**पक्वः** - पच् धातु से निष्ठा क्त प्रत्यय होने पर उसके तकार को पचो वः सूत्र से वकार होकर 'पक्वः' रूप बना।

**क्षायो मः 8.2.53**

**क्षामः।**

**व्याख्या** - क्षै धातु से पर निष्ठा के तकार को मकार आदेश हो।

**क्षामः** -क्षै धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर ऐकार को आकार हुआ। और 'क्षायो मः' सूत्र से निष्ठा तकार को मकार का रूप बना।

**निष्ठायां सेटि 6.4.52**

**णेर्लोपः। भावितः, भावितवान् दृह हिंसायाम्।**

**व्याख्या** - सेट् निष्ठा परे रहते णि का लोप हो। जैसे -

**भावितः, भावितवान्** - भू धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त और क्तवतु हुए। इट् आगम हुआ। निष्ठायां सेटि से णि का लोप हुआ। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुए।

टिप्पणी

**दृढः स्थूलबलयोः 7.2.20**

**स्थूले बलवति च निपात्यते।**

**व्याख्या** - स्थूल और बलवान् अर्थ में 'दृढ' शब्द का निपातन होता है।

दृह् धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर हकार को दकार 'झषस्त थोर्धोधः से तकार को धकार और फिर ष्टुत्व ढकार हुआ। पूर्व ढकार का 'ढो ढे लोपः' से लोप होने पर 'दृढ' प्रातिपदिक बना। प्रकृत सूत्र से पूर्वोक्त विशेष अर्थों में इसका निपातन होता है।

**दधातेर्हिः 7.4.42**

**तादौ कितिहितम्।**

**व्याख्या** - तकारादि कित् प्रत्यय परे हो तो धा धातु के स्थान पर 'हि' आदेश होता है।

**दो ददधोः 7.4.46**

**घुसंज्ञकस्य 'दा' इत्यस्य 'दद्' स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्-दत्तः।**

**व्याख्या** - घु-संज्ञक दा धातु को दद् आदेश हो तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

**दत्तः** - दा धातु से क्त होने पर प्रकृत सूत्र से दा को दद् आदेश हुआ, तब दकार को चर् तकार होने पर 'दत्त' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन पुल्लिंग में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**लिटः कानज्वा 3.2.106**

**व्याख्या** - लिट् के स्थान पर कानच् विकल्प से होता है।

**क्वसुश्च 3.2.107**

**लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः। तङानावात्मेनपदम् चक्राणः।**

**व्याख्या** - लिट् के स्थान में क्वसु आदेश भी विकल्प से होता है।

**चक्राणः** - कृ धातु से लिट् के स्थान में कानच् हुआ। लिट् के स्थान में होने के कारण कानच् के परे रहते धातु को द्वित्व और अभ्यासकार्य हुआ। इस प्रकार 'चकृआन' ऐसी स्थिति बन जाने पर यण् और णत्व होकर 'चक्राण' प्रातिपदिक बना, प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**म्वोश्च 8.2.65**

**मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः। जगन्वान्।**

**व्याख्या** - मकार और वकार परे रहते मान्त अर्थात् मकारान्त धातु को नकार आदेश हो।

टिप्पणी

**जगन्वान्** - गम् धातु से पर लिट् को क्वसु आदेश हुआ। द्वित्व और अभ्यासकार्य होने पर म्वोश्च सूत्र से सकार को नकार आदेश हुआ तब 'जगन्वस्' प्रातिपदिक बना। क्वसु के उगित होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् हुआ। 'सान्तमहतः संयोगस्य' से दीर्घ हुआ। सु के सकार का हल्ङ्यादि लोप और क्वसु के सकार का संयोगान्त लोप होने पर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**लटः शतृ-शानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3.2.124**

**अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। शबादि। पचन्तं चैत्रं पश्य।**

**व्याख्या** - प्रथमान्त से भिन्न से समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान में शतृ और शानच् होते हैं।

शतृ के शकार और ऋकार इत्संज्ञक है। अत् बचता है। ऋकार इत् होने से यह उगित् है और इसलिए स्त्रीलिङ्ग से ङीप् प्रत्यय होकर दीर्घ ईकारान्त शब्द बनते हैं। शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं से होता है।

**शानच्** - के शकार और चकार इत्संज्ञक है। 'आन' शेष रहता है, स्त्रीलिङ्ग में टाप् होकर आकारान्त हो जाता है। यह आत्मनेपदी धातुओं से ही होता है।

**शबादि** - शतृ और शानच् दोनों शित् हैं, अतः धातु से विहित होने के कारण ये सार्वधातुक हैं। इसलिए इनके परे रहते यथा प्राप्त शप् आदि विकरण होते हैं।

**पचन्तं चैत्रं पश्य** - पच् धातु से लट् के स्थान में शतृ हुआ। शप् प्रत्यय होने पर उसके आकार का 'अतो गुणे' से पररूप होकर 'पचत्' प्रातिपदिक बना। द्वितीया के एकवचन में नुम् होकर रूप सिद्ध हुआ।

**आने मुक् 7.2.82**

**अदन्ताऽङ्गस्य 'मुग्' आगमः स्याद् आने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। 'लट्' इत्यनुवर्तमाने पुनर्लङ्ग्रहणात् प्रथमा सामाधिकरण्येऽपि क्वचित् सन् द्विजः।**

**व्याख्या** - अदन्त अङ्ग को मुक् आगम हो आन परे रहते।

मुक् का मकार शेष रहता है, उक् इत्संज्ञक है।

**पचमानं चैत्रं पश्य** - यहां पच् धातु से परे लट् के स्थान में शानच् हुआ। शप् होने पर अदन्त अङ्ग से परे होने के कारण आन को मुक् आगम होकर 'पचमान' प्रातिपदिक बना। द्वितीया के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**सन् द्विजः** - यहां अस् धातु के प्रथमान्त के साथ समानाधिकरण होने पर भी लट् के स्थान में शत् हुआ। तब 'श्नसोरल्लोपः' से अकार का लोप होने पर सत् प्रातिपदिक बना। प्रथमा में एकवचन में नुम् हल्ङ्यादि लोप, संयोगान्त लोप होने पर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

**विदेः शतुर्वसुः 7.1.66**

**वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा। विदन्। विद्वान्।**

टिप्पणी

**व्याख्या** - विद् धातु से पर शत् के स्थान में 'वसु' आदेश विकल्प में हो।

**तौ सत् वा 3.2.127**

**तौ शतृ-शानचौ सत्संज्ञौ स्तः।**

**व्याख्या** - उन शतृ और शानच् की सत् संज्ञा हो।

वसु का उकार इत् है। उगित होने से नुम् होता है।

**विद्वान्, विदन्** - विद् धातु से परे लट् के स्थान में शतृ हुआ और उसके स्थान में प्रकृत सूत्र से वसु आदेश विकल्प से। तब विद्वस् प्रातिपदिक के प्रथमा के एकवचन में उगिद् होने से नुम् सान्तसंयोग होने से उपधादीर्घ, हल्ङ्यादिलोप और संयोगान्तलोप होने पर और अभावपक्ष में नुम्, हल्ङ्यादि लोप और संयोगान्त लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

**लृटः सद्वा 3.3.14**

**लृ शतृशानचौ वा स्तः व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाऽप्रथमानासामाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः संबोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्। करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य।**

**व्याख्या** - लट् के स्थान में सत् प्रत्यय विकल्प से हों।

**करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य** - यहां कृ धातु से लट् को शतृ और शानच् आदेश हुआ। स्य और इट् होकर 'करिष्यत्' और 'करिष्यमाण' प्रातिपदिक बने। द्वितीया एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुए।

**अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा 3.4.18।।**

**प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्व प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। अमैवाव्ययेनिति नियमान्नोपपदसमासः। दो दद्घोः–**

**व्याख्या**– प्रतिषेधार्थक अलं और खलु शब्द जब उपपद हों तब धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है, प्राचीन आचार्यों के मत से। इस सूत्र में 'प्राचां' का ग्रहण विकल्पार्थक है। 'क्त्वा' में 'क्' इत्संज्ञक है। अतः केवल 'त्वा' ही शेष रहता है।

'क्त्वा' प्रत्यय का ककार इत्संज्ञक है। कित् होने से गुण और वृद्धि का निषेध हो जाता है तथा सम्प्रसारण आदि कार्य होते हैं। सेट् धातुओं से परे क्त्वा को 'इट्' आगम भी होता है।

**अलं दत्त्वा** (मत दो)– यहां प्रतिषेधार्थक 'अल्म्' उपपद के पूर्व रहते 'दा' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ है। 'दो दद् घोः' से 'दा' को 'दद्' आदेश होकर 'चर्त्व' होने से दद् + क्त्वा = 'दत्त्वा' रूप सिद्ध हुआ।

**विशेष**– 'क्त्वा–तोसुन्–कसुन्' सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं।

**पीत्वा खलु** (मत पियो)– यहां निषेधार्थक खलु शब्द उपपद रहते क्त्वा प्रत्यय हुआ। 'क्त्वा' कित् है इसलिए 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि 6.4.66' से 'आकार' को ईकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

**अलंखल्वोरिति**– कहने का कारण यह है कि 'मा कार्षीत् (मत करो)' इस अर्थ में 'क्त्वा' की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यहां प्रतिषेधार्थ 'मा' पद है, 'अल' और 'खलु' नहीं।

टिप्पणी

**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21**

**समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद् धातोः क्त्वा स्यात्। भुक्त्वा व्रजति। द्वित्वम् अतन्त्रम्–भुक्त्वा पीत्वा व्रजति।**

**व्याख्या**– समान कर्ता के होने पर पूर्वकालिक धातु (क्रिया) में 'क्त्वा' प्रत्यय हो, अर्थात् क्रमशः दो क्रियाओं के होने पर पहली क्रिया में क्त्वा प्रत्यय का प्रयोग होता है।

**द्वित्वमिति**– सूत्र में 'दो क्रियाओं' का निर्देश नहीं है अतः दो से अधिक क्रियाएं होने पर भी पूर्व–पूर्व की अधिक क्रियाओं में भी क्त्वा प्रत्यय का विधान हो जाता है, जैसे–भुक्त्वा–पीत्वा व्रजति (खा–पीकर जाता है)।

**न क्त्वा सेट् 1.2.18**

**सेट् क्त्वा कित् न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम् कृत्वा।**

**व्याख्या**– सेट् क्त्वा कित् न हो। उदाहरण के लिए 'शी' धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ। सेट् धातु होने से प्रस्तुत सूत्र से कित् का निषेध हुआ। तत्पश्चात् 'क्ङिति च' सूत्र से निषेध बाधित होकर धातु के ईकार को गुण (शी–शे) होकर, अयादि संधि से 'शय्' होकर 'शयित्वा' रूप सिद्ध हुआ।

'सेट्' में 'कित्' निषेध का परिणाम यह हुआ कि 'कृत्वा' में यह निषेध नहीं प्रवृत्त हुआ। 'कृ' धातु का अनुदात्तोपदेश होने से 'इट्' न होने के कारण 'कृत्वा' रूप सिद्ध हुआ।

**रलो व्युपधाद् हलाऽऽदेः संश्च 1.2.26**

**इवर्णोपधात् हलादे रलन्तात् परौ क्त्वा सनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा, द्योतित्वा, लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात् किम् वर्तित्वा। रलः किम् सेवित्वा। हलादेः किम्–एषित्वा। सेट किम्– भुक्त्वा।**

**व्याख्या**– 'इ' और 'उ' वर्ण जहां उपधा (शब्द का प्रथम स्वर) हों उन धातुओं में से सेट् क्त्वा और 'सन्' प्रत्यय होते हैं। विकल्प से कित् पक्ष में गुण् का निषेध तथा सम्प्रसारण प्राप्त होता है। जब कि 'कित्' न होने के विकल्प में 'गुण' आदि होते हैं किंतु सम्प्रसारण नहीं होता। 'द्युत्' धातु में 'रल्न' तकार के अन्त में होने से दोनों विकल्प प्राप्त होने से गुण पक्ष में द्योतित्वा और गुणाभाव पक्ष में द्युतित्वा रूप सिद्ध हुए। इसी प्रकार लिख् धातु के लेखित्वा और लिखित्वा दोनों रूप प्राप्त होते हैं। 'रल', कहने का उद्देश्य यह था कि 'सेव्' धातु में इस सूत्र की प्रवृत्ति न हो। 'सेव्' का 'व्' रल् प्रत्याहार में नहीं है, अतः सम्प्रसारण का निषेध होकर 'सेवित्वा' एकमात्र रूप बना। हलादि धातु कहने से 'एषित्वा' धातु का क्त्वायुक्त रूप 'इष्' धातु से बना, अतः यहां कित् न होने से गुण होकर 'एषित्वा' रूप सिद्ध हुआ। क्त्वा का सेट् होना, इसलिए कहा गया ताकि अनिट् क्त्वा की स्थिति में भी विकल्प न होने से गुण नहीं होता और भुज् धातु से 'भुक्त्वा' में गुण का निषेध हो गया।

**उदितो वा 7.2.56**

**उदितः परस्य क्त्वा इड्वा। शमित्वा, शान्त्वा। देवित्वा, धूत्वा, दघातेर्हिः–हित्वा।**

टिप्पणी

**व्याख्या**– उदित् धातु से परे क्त्वा को विकल्प से 'इट्' होता है। शमु (उपशमे–शान्त होने के अर्थ में–यह दिवादिगणीय परस्मैपदी सेट् धातु है।) इस उदित् धातु में इट् अभाव का भी विकल्प होने से इट् पक्ष में शमित्वा और इट्–अभाव पक्ष में शान्त्वा रूप सिद्ध होते हैं। 'दिवु' धातु भी उदित् है। इट् पक्ष में जहां 'देवित्वा' रूप बनता है वही 'इट् अभाव पक्ष में 'च्छ्वोःशूडनुनासिके 6.4.19' सूत्र से 'वकार' को 'ऊठ्' आदेश होकर, तत्पश्चात 'यण् सन्धि' से यकार होकर 'द्यूत्वा' रूप सिद्ध होता है। 'धा' धातु से, क्त्वा प्रत्यय होने पर – 'दधातेर्हिः 7.4.42' सूत्र से 'धा' को 'हि' आदेश होकर 'हित्वा (धारण करके)' रूप सिद्ध हुआ।

**जहातेश्च क्त्वि 7.4.43**

**हित्वा। हाङ्स्तु–हात्वा।**

**व्याख्या**– त्याग अर्थ वाली 'ओहाक्' धातु को भी 'हि' आदेश होता है यदि 'क्त्वा' प्रत्यय परे हो। अतः 'हित्वा' रूप 'छोड़कर' अर्थ में भी सिद्ध होता है। 'ओहाङ्' गत्यर्थक धातु में 'हि' आदेश नहीं होता अतः 'हात्वा' (जाकर) रूप बनता है।

**समासेऽनञ्–पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37**

**अव्ययपूर्वपदेऽनञ्–समासे क्त्वो 'ल्यप्' आदेशः स्यात्। तुक्–प्रकृत्य। अनञ् किम् अकृत्वा।**

**व्याख्या**– अव्यय पूर्वपद समास में, परन्तु नञ् समास न हो तो 'क्त्वा' के स्थान पर ल्यप् प्रत्यय होता है। 'ल्यप्' के 'ल्' और 'प्' इत्संज्ञक होने से लोप को प्राप्त होते हैं। 'प्र' उपसर्ग अव्यय है अतः इस सूत्र से 'प्र+कृ+क्त्वा' में क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होकर 'प्र+कृ+य' स्थिति होने पर 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71' से तुक् आगम होकर 'प्रकृत्य' रूप सिद्ध हुआ। 'नञ्' समास में ल्यप् का निधेष होने से 'अकृत्वा' में ल्यबादेश नहीं हुआ।

## अपनी प्रगति जांचिए

1. तत्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय किस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं?
   (क) 'चाहिए' अर्थ में (ख) 'देना' अर्थ में
   (ग) 'कहना' अर्थ में (घ) 'सुनना' अर्थ में
2. 'अचो यत्' सूत्र किस प्रत्यय से संबंधित है?
   (क) शतृ (ख) शानच्
   (ग) क्त (घ) यत्

## 4.3 तद्धित प्रत्यय (अण्, मतुप्, इनि, त्व, तल्, ढक्)

टिप्पणी

संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण के अंत में लगने वाले प्रत्यय को **तद्धित प्रत्यय** कहते हैं। इस प्रत्यय के मेल से निर्मित शब्द **तद्धितांत** कहलाते हैं।

यथा–

लघु + त = लघुता

सुंदर + त = सुंदरता

बड़ा + आई = बड़ाई

### तद्धित प्रत्यय के भेद

तद्धित प्रत्यय के 8 भेद हैं : कर्तृवाचक, भाववाचक, ऊनवाचक, संबंधवाचक, अपत्यवाचक, गुणवाचक, स्थानवाचक और अव्ययवाचक।

1. **कर्तृवाचक तद्धित प्रत्यय**– इसमें संज्ञा के अंत में आर, आरी, इया, एरा आदि प्रत्यय के योग से कर्तृवाचक तद्धितांत संज्ञाएं बनती हैं।

   यथा–

   सोना + आर = सोनार

   जूआ + आरी = जुआरी

2. **भाववाचक तद्धित प्रत्यय**– संज्ञा या विशेषण में आई, त्व, पन आदि प्रत्यय लगने पर तद्धितांत संज्ञा–पद बनते हैं; तब भाववाचक तद्धित प्रत्यय होता है।

   यथा–

   देवता + त्व = देवत्व

   बच्चा + पन = बचपन

3. **ऊनवाचक तद्धित प्रत्यय**– संज्ञा पदों के अंत में आ, क, री, वा आदि प्रत्यय लगने पर उनवाचक तद्धितांत संज्ञाएं निर्मित होती हैं।

   यथा–

   ढोल + क = ढोलक

   छाता + री = छतरी

4. **संबंधवाचक तद्धित प्रत्यय**– संज्ञा के अंत में हाल, वाल, इया आदि प्रत्यय जोड़कर संबंधवाचक तद्धितांत संज्ञा बनाई जाती है।

   यथा–

   नाना + हाल = ननिहाल

   पटना + इया = पटनिया

टिप्पणी

5. **अपत्यवाचक तद्धित प्रत्यय**– जब व्यक्तिवाचक संज्ञा पदों के अंत में अ, आयन, एय आदि प्रत्यय लगकर तद्धितांत संज्ञाएं बनती हैं, तब अपत्यवाचक तद्धित प्रत्यय होता है।

यथा–

मनु + अ = मानव

नर + आयन = नारायण

6. **गुणवाचक तद्धित प्रत्यय**– संज्ञा पदों के अंत में अ, आ, इक, इम आदि प्रत्यय जुड़ने पर गुणवाचक तद्धितांत शब्द बनते हैं।

यथा–

भूख + आ = भूखा

पक्ष + ई = पक्षी

7. **स्थानवाचक तद्धित प्रत्यय**– इसमें संज्ञा पदों के अंत में आड़ी, त्र आदि प्रत्यय जुड़कर स्थानवाचक तद्धितांत शब्द बनाते हैं।

यथा–

आगा + आड़ी = अगाड़ी

यद् + त्र = यत्र

8. **अव्ययवाचक तद्धित प्रत्यय**– इसका प्रयोग प्रायः क्रियाविशेषण की भांति होता है। इसमें संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण पदों के अंत में आँ, ओं, भर आदि प्रत्यय जोड़कर तद्धितांत शब्द बनाए जाते हैं।

यथा–

यह + आँ = यहाँ

दिन + भर = दिनभर

**अण् प्रत्यय — सूत्राणि**

**अश्वपत्यादिभ्यश्च 4.1.84**

**(एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। अश्वपतेरपत्याऽऽदि आश्वपतम्, गाणपतम्।)**

**व्याख्या**– अश्वपति आदि शब्दों में 'अण्' प्रत्यय लगता है **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम् 4.4.2'** सूत्र से पहले आने वाले अपत्य आदि अर्थों में। इस सूत्र से पहले जिन अर्थों के प्रत्ययों का निर्देश किया गया वे 'प्राग्दीव्यतीय' कहे जाते हैं।

**अश्वपतेः अपत्यम्**– यह लौकिक विग्रह है। **'अश्वपति ङस् अपत्य सु'** यह अलौकिक विग्रह हुआ। प्रकृत सूत्र से अण् का विधान करने पर 'अश्वपति ङस् अण्' (अपत्यार्थ) में यह स्थिति बनी। **'कृत् तद्धित समासाश्च' सूत्र 1.2.46** से प्रातिपदिक संज्ञा होती है तत्पश्चात् **'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' 2.4.71** सूत्र से प्रातिपादिक के अवयव सुप् (ङस्) का लोप हुआ तब 'अश्वपति+अ' इस स्थिति में **'तद्धितेष्वचाम्'** से आदि अच् (अ) को वृद्धि होने पर **'यस्येति च 6.4.148** से अन्त्य इकार का लोप होकर

'आश्वपत' यह अकारान्त शब्द बना। अपत्य अर्थ में नपुंसकलिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'आश्वपतम्' रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'गणपतेः अपत्यम्' से 'गाणपतम्' बना।

(**विशेष**– विग्रह वाक्य में जिसके 'अपत्य' का बोध होता है उसमें तद्धित प्रत्यय होता है।)

टिप्पणी

**शिवादिभ्योऽण् 4.1.112**

**(अपत्ये, शैवः, गाङ्गः)**

**व्याख्या**– शिव आदि गण (शब्द समूह) में अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। 'शिव' शब्द में अण् प्रत्यय को जोड़ने पर 'तद्धितेष्वचामादेः 7.2.117' से आदि स्वर की वृद्धि होने पर 'शैव' शब्द बना। इसी प्रकार–गङ्गा शब्द में अण् जोड़ने पर आदिवृद्धि और अन्त्य अकार के लोप के द्वारा 'गाङ्ग शब्द की रचना हुई।

**ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च 4.1.114**

**(ऋषिभ्यः–वासिष्ठः, वैश्वामित्रः। अन्धकेभ्यः–श्वाफल्कः। वृष्णिभ्यः–वासुदेवः। कुरुभ्यः–नाकुलः, साहदेवः)**

**व्याख्या**– ऋषि (वसिष्ठ आदि) अन्धक (यादव) वृष्णि और कुरु–इन कुलों के अपत्य के अर्थ में इनके साथ 'अण् प्रत्यय जोड़ा जाता है। ऋष्यर्थ में क्रमशः 'वसिष्ठ' और 'विश्वामित्र' शब्दों में 'अण्' प्रत्यय के प्रयोग और पूर्ववत् आदिवृद्धि करने से वासिष्ठ और वैश्वामित्र शब्द सिद्ध हुए। अन्धक कुल के श्वफल्क से इसी प्रकार श्वाफल्क और वृष्णिवंश के वसुदेव से वासुदेव भी इसी प्रकार अण् प्रत्यय से बने, कुरुकुल के नकुल और सहदेव के अपत्यार्थ में प्रकृत सूत्र में 'अण्' संयोग व पूर्ववत् आदि वृद्धि से 'नाकुल':, 'साहदेवः' पदों की रचना हुई।

**मातुरुत्सङ्ख्यसम्भद्रपूर्वायाः 4.1.115**

**(सङ्ख्याऽऽदिपूर्वस्य मातृ शब्दस्य उद् आदेशः स्यात् अण् प्रत्ययश्च। द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। साम्मातुरः। भाद्रमातुरः।)**

**व्याख्या**– 'सङ्ख्या, सम् और भद्र पूर्व मातृ शब्द को उद् आदेश हो और अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय भी होता है। अलोऽन्त्य परिभाषा से उद् आदेश अन्त्य ऋकार को होता है जो कि 'उरण् रपरः' 1.1.5 से रपर होकर प्रवृत्त होता है। द्वैमातुरः–यहां दो माताओं के पुरुष पुत्र के अर्थ में 'द्विमातृ' शब्द में अन्त्य 'ऋ' को 'उद्' आदेश रपर होकर तथा आदि वृद्धि से 'द्वि' के स्थान पर 'द्वै' होने से 'द्वैमातुरः' शब्द बना। इसी प्रकार षट्–मातृ से–षट्मातुर से आदि वृद्धि के द्वारा 'षाण्मातुरः' बना। सम्+मातृ से 'साम्मातुरः' और भद्रमातृ से 'भाद्रमातुरः' शब्द भी इसी प्रकार सिद्ध हुए।

**रक्ताद्यर्थक अण्**

**तेन रक्तं रागात् 4.2.1**

**(अण् स्यात्। रज्यते अनेनेति–रागः। कषायेण रक्तं वस्त्रम्–काषायम्।)**

**व्याख्या**– 'उससे रंगा गया' इस अर्थ में तृतीयान्त अर्थ वाले रंग/वर्ण वाचक शब्द में अण् प्रत्यय हो। अतः 'रज्यते अनेन इति' 'रञ्ज्' धातु में करण अर्थ में '**अकर्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम् 3.3.19**' से घञ् प्रत्यय होने पर '**घञि च भावकरणयोः**

टिप्पणी

**6.4.27'** से नकार का लोप होकर 'रज्' और फिर, **'च जो कु घिञ्ण्यतोः 7.3.52'** से जकार को क्रमशः कुत्व, गकार तथा उपधावृद्धि होकर 'रागः' शब्द बना। इसी प्रकार तृतीयान्त अर्थ में कषायेण रक्तं वस्त्रम् (गेरुए रंग से रंगा हुआ वस्त्र), कषाय शब्द में प्रकृत सूत्र से 'अण्' प्रत्यय हुआ। फिर 'कषाय टा अण्' इस स्थिति में तद्धित होने से प्रातिपदिक संज्ञा हुई। **'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः 2.4.71'** से प्रातिपदिक के अवयव सुप् (टा) का लोप् तथा **'तद्धितेष्वचामादेः'** से आदिवृद्धि होकर 'काषायम्' रूप बना।

**नक्षत्रेण युक्तः कालः 4.2.3**

**(अण् स्यात्)**

**(वार्तिकम्) तिष्यपुष्योर्नक्षत्राऽणि यलोप इति वाच्यम्। पुष्येण युक्तम् पौषम् अहः।**

**व्याख्या**– उल्लिखित सूत्र और वार्तिक से क्रमशः पुष्य+अण् स्थिति होने पर अण् परे रहते 'य' लोप होकर पुष्+अण् होकर, 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि पूर्वक 'पौष' शब्द बना। **पौषम् अहः**– पुष्यनक्षत्र वाला दिन।

**अण् बाधक सूत्र**

**लुब् अविशेषे 4.2.4**

**(पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात्। षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्याऽवान्तरविशेषश्चेद् न गम्यते। अद्य पुष्यः।)**

**व्याख्या**– जब साठ घड़ी का नक्षत्र होता है, तब नक्षत्र को दिन या रात्रि के साथ विशेष/अलग रूप से नहीं बताया जा सकता। ऐसे में नक्षत्र वाची 'पुष्य' के साथ 'अण्' का लोप हो जाता है तथा आगे होने वाला 'यलोप' भी बाधित हो जाता है। अद्य पुष्यः (आज पुष्य है)।

**दृष्टं साम 4.2.7**

**(तेन इत्येव। वसिष्ठेन दृष्टं–वासिष्ठं साम।)**

**व्याख्या**– उसके द्वारा, इसी अर्थ में वसिष्ठ के द्वारा देखा गया साम (मन्त्र) को व्यक्त करने के लिए ऋषि के नाम में अण् प्रत्यय होता है।

वसिष्ठ + अण् इस स्थिति में आदिवृद्धि होकर 'वासिष्ठ' शब्द बना, **वासिष्ठं साम** (वसिष्ठ ऋषि के द्वारा देखा गया साम)।

**परिवृतो रथः 4.2.10**

**(अस्मिन्नर्थेऽण्प्रत्ययो भवति। वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो रथः।)**

**व्याख्या**– उससे घेरा/ढका गया रथ इस अर्थ में तृतीयार्थक अण् प्रत्यय होता है। 'वस्त्रेण परिवृतः' इस अर्थ में तृतीयान्त 'वस्त्र' शब्द में अण् होकर आदिवृद्धि 'तद्धितेष्वचामादेः' से हुई तबः 'वास्त्रः' शब्द सिद्ध हुआ।

**तत्रोद्धृतम् अमत्रेभ्यः 4.2.14**

**(शरावे उद्धृतः – शाराव ओदनः।)**

**व्याख्या**– उसमें निकाल कर रखा गया के अर्थ में पात्रवाचक शब्द में 'अण्' प्रत्यय होता है। शराव (थाली) में रखा गया ओदन (भात) इस तरह के भात के विशेषण के लिए शराव+अण् होने पर आदि वृद्धि होकर **शारावः** (ओदनः), शब्द सिद्ध हुआ।

टिप्पणी

**संस्कृतं भक्षाः 4.2.16**

**(सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे, यत् संस्कृतम् भक्षाश्चेत्ते स्युः। भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भ्राष्ट्रा यवाः।)**

**व्याख्या**– सप्तम्यन्त अर्थ वाले शब्द में जिस साधन में तैयार किए गए खाद्य का वर्णन होता है उस शब्द में अण् प्रत्यय होता है। भ्राष्ट्र (भट्ठी) में पकाए गए यव (जौ)–इस अर्थ में सप्तम्यन्त 'भ्राष्ट्र' में अण् प्रत्यय होने पर – पर्जन्यवल्लक्षण–न्याय (अर्थात् बादल सूखे और जलयुक्त स्थान नदी आदि सर्वत्र बरसते हैं) से आदि वृद्धि 'भ्राष्ट्र' के आकार को भी होकर भ्राष्ट्राः (यवाः) शब्द बना।

**साऽस्य देवता 4.2.24**

**(इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः। पाशुपतम्। बार्हस्पत्यम्।।)**

प्रथमार्थक देवतावाचक शब्द से जब 'इसका' इस विशेषण वाला अर्थ व्यक्त होता है तब देवतावाचक शब्द में 'अण्' प्रत्यय होता है 'इन्द्रो देवता अस्य हविषः' इस अर्थ में 'इन्द्र' शब्द में अण् प्रत्यय होकर तथा आदिवृद्धि होकर 'ऐन्द्रम्' हविः (हविस् प्रथमा एकवचनम्) शब्द सिद्ध हुआ।

**तस्य समूहः। 4.2.37**

**(काकानां समूहः काकम्)**

**व्याख्या**– काक आम् (षष्ठी बहुवचनस्य सुप्) से अण् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से हुआ। सुप् का लुक हुआ। आदि वृद्धि 'पर्जन्यवल्लक्षण' से हुई। समूह अर्थ में एकवचन में 'सु' और 'सु' को अम् आदेश होकर 'काकम्' पद सिद्ध हुआ।

**भिक्षादिभ्योऽण् 4.2.38**

**(भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्)**

**व्याख्या**– 'भिक्षाओं का समूह' इस अर्थ में 'भिक्षा आम् समूहः' इस अलौकिक विग्रह में 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' से 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधित कर 'भिक्षादिभ्योऽण्' से 'अण्' प्रत्यय होने पर 'भिक्षा आम् अण्' हुआ, आम् (सुप्) का लोप करके 'भिक्षा + अण्' स्थिति होने पर 'भिक्षा+अ' स्थिति में 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि और 'यस्येति च' से, आकार का लोप और वर्णसंयोजन करने पर 'भैक्ष' शब्द बना। स्वादिकार्य समूहार्थ में करने पर नपुंसक लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'भैक्षम्' बना।

**(वार्तिकम्–भस्याढे तद्धिते)**

**व्याख्या**– 'गर्भिणीनां समूहः' इस स्थिति में, **अनुदात्तादेरञ्** से 'अञ्' प्रत्यय का विधान था, भिक्षादिभ्योऽण् से उसे बाधित करके अण् प्रत्यय होने पर 'गर्भिणी आम अण्' स्थिति होने पर 'भस्याढे तद्धिते' इस वार्तिक के बल से 'भसंज्ञक अंग को पुंवद्भाव' होने

पर स्त्रीलिङ्–वाची ङीष् प्रत्यय का बाध होकर 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि होकर 'गार्भिणम्' बना।

**तदधीते तद्वेद 4.2.59**

टिप्पणी

**न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्याम् ऐच् 7.3.3**

**(पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमाद् ऐजावागमौ स्तः। व्याकरणम् अधीते वेद वा–वैयाकरणः)**

**व्याख्या**– उसे पढ़ता है या उसका ज्ञाता है, इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। पद के अन्तिम यकार और वकार से पूर्व क्रमशः 'ऐच्' और 'औ' का आगम होता है। इन दो सूत्रों में से प्रथम के द्वारा व्याकरण को पढ़ने वाला या व्याकरण का जानकार अर्थ में 'व्याकरण' अर्थ में 'व्याकरण' शब्द से अण् प्रत्यय हुआ। 'तद्धितेष्वचामादेः' से प्राप्त आदिवृद्धि का द्वितीय सूत्र से निषेध होकर 'य्' से पूर्व 'ऐच्' का आगम हुआ तब 'व् ऐ याकरण' से 'वैयाकरणः' पद बना।

**तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि 4.2.67**

**(उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे–औदुम्बरो देशः)**

**व्याख्या**– 'वह इस स्थान में है' इस अर्थ में स्थानवाची शब्द के अर्थ में 'अण्' प्रत्यय वस्तु विशेष में होता है। जिस स्थान में 'उदुम्बर' है/हैं, उसे व्यक्त करने के लिए उदुम्बर+अण् होने पर आदिवृद्ध से 'औदुम्बरः' स्थानवाची पद बना।

**तेन निर्वृत्तम् 4.2.68**

**(कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी)**

**व्याख्या**– 'उसके द्वारा बसाया/बसाई गई' इस तृतीया अर्थ में स्थानवाची शब्द को प्रकट करने के लिए, जिसके द्वारा बसाई गई, उस शब्द में अण् प्रत्यय का विधान हुआ प्रकृत सूत्र से, कुशाम्ब (नामक राजा) के द्वारा बसाई गई नगरी के अर्थ में कुशाम्ब+अण् होने पर आदि वृद्धि होकर 'कौशाम्ब', तत्पश्चात् स्त्रीत्व विवक्षा में 'कौशाम्ब+ङीप्' से कौशाम्बी पद बना।

**तस्य निवासः 4.2.69**

**(शिवीनां निवासो देशः शैवः)**

**व्याख्या**– षष्ठी से अन्त वाले शब्द का संबंध जब निवास स्थान से होता है तब उस शब्द में 'अण्' प्रत्यय हो, 'शिवि आम् निवासः' इस षष्ठीवाचक शिवि में प्रकृत सूत्र से अण् का प्रयोग करने पर अनुबंध लोप के पश्चात् 'शिवि+अण्' स्थिति हुई। आदि वृद्धि और अन्त्य इकार का लोप करने पर 'शैवः' (शिवियों का देश) पद बना।

**जनपदे लुप् 4.2.81**

**(जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप्)**

**व्याख्या**– जनपद अर्थ वाच्य होने पर चातुरर्थिक प्रत्यय का लोप हो।

**लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने 1.2.51**

**(लुपि मति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः, पञ्चालाः कुरवः, अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः)**

टिप्पणी

**व्याख्या**– जनपद अर्थ वाच्य हो तब (वह इसमें है ऐसा देश, उसके द्वारा बनाया गया/बनाई गई ऐसा देश/ऐसी नगरी, उसका निवास है ऐसा देश और जो उससे दूर नहीं होता–इन चार अर्थों से जुड़े) चातुरर्थिक प्रत्यय का लोप होता है। तत्पश्चात् 'लुपि...' सूत्र से निर्देश प्राप्त होता है कि प्रत्यय का लोप होने पर प्रकृति के समान ही लिङ्ग और वचन होते हैं। 'पञ्चाल' शब्द से 'तस्य निवासः' सूत्र से अण् प्राप्त होने पर, 'जनपदे लुप्' से अण् का लोप हो गया। तत्पश्चात् 'लुपि युक्त....' सूत्र से प्रकृतिवत् लिङ्ग वचन का निर्देश होने से क्षत्रियवाचक 'पञ्चाल' शब्द के स्वाभाविक पुल्लिंग और बहुवचन होने से जनपद अर्थ में भी वही लिङ्ग और वचन होने से 'पञ्चालाः' पद बना। 'कुरूणां निवासो जनपदः' अर्थ में इसी प्रकार, 'कुरवः', 'वङ्गानां निवासः' अर्थ में वङ्गाः और 'कलिङ्गानां निवासो जनपदः' इस अर्थ में 'कलिङ्गाः' पद इसी प्रकार अण् लोप और प्रकृतिवद् लिङ्ग–वचन नियम से बने।

**वरणाऽऽदिभ्यश्च 4.2.82**

**(अजनपदार्थः – आरम्भः। वरणानाम् अदूरभवं नगरं वरणाः)**

**व्याख्या**– जनपद से भिन्न अर्थ वाले शब्दों के संदर्भ में 'वरणा' आदि पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में जब होते हैं तब उनके परे चातुरर्थिक प्रत्यय का 'लुप्' होता है। वरणा नदी (स्त्री.) से अदूर (निकट) प्राचीन नगर के अर्थ में भी 'वरणा+अण्' की स्थिति में 'अण्' का लोप प्रकृत सूत्र से हुआ तथा 'लुपि युक्तवद्वचने' से प्रकृति के अनुसार स्त्रीलिङ्ग बहुवचन में 'वरणाः' पद बना।

**मतुप् प्रत्यय**

**कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् 4.2.87**

**झयः 8.2.10**

**(झयन्तान् मतोर्मस्य वः। कुमुद्वान्। नड्वान्।)**

**व्याख्या**– कुमुद, नड् और वेतस शब्दों में 'वह इसमें (तदस्मिन् इति)' इस अर्थ में ड्मतुप् प्रत्यय होता है, यदि प्रत्ययान्त शब्द देश का वाचक हो। 'ड्मतुप्' प्रत्यय में 'ड् और उप्' का लोप होकर 'मत्' शेष रहता। (यह डित् प्रत्यय है अतः इसके परे 'टि' का लोप होता है।) 'झय्' प्रत्याहार से अन्त होने वाले शब्द के बाद 'मतुप्' के 'मकार' को 'वकार' आदेश होता है।

कुमुद+मतुप् ('कुमुदाः सन्ति अस्मिन् देशे' अर्थ में), ड्मुतप् होने से 'टि' अर्थात् अन्तिम 'अ' का लोप हुआ तब कुमुद्+मत् स्थिति में 'झयः' सूत्र से मकार को वकार आदेश होने पर 'कुमुद्वत्' से प्रथमा एकवचन में 'कुमुद्वान्' बना। इसी प्रकार नड्+मतुप् से 'नड्वान्' बना।

**मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः 8.2.9**

**(मवर्णाऽवर्णान्ताम् मवर्णोपधाच्च यवादिर्वर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः)**

**व्याख्या**– 'म–वर्णान्त' और 'अवर्णान्त' तथा 'मवर्ण' उपधा वाले शब्द से परे मतुप् के मकार को 'वकार' हो।

टिप्पणी

वेतस (बेंत) जिस देश में अधिक हों, उस देश के अर्थ में 'वेतस' शब्द से 'ड्मतुप्' प्रत्यय होने पर 'टि' अकार का लोप होकर 'वेतस्+मतुप्' की स्थिति में 'अवर्ण' उपधा होने से प्रकृत सूत्र से मकार को वकार होकर 'वेतस्+वत्' से 'वेतस्वान्' बना। इसी से 'मवर्णान्त' किम् से किंवान्, अवर्णान्त में ज्ञानवान्, विद्यावान्, 'म वर्णोपधा' के उदाहरण में लक्ष्मीवान् और 'अवर्णोपध' में भास्वान् आदि पद बनते हैं।

**शेषे 4.2.92**

**(अपत्यादि चतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राऽणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टाः दार्षदाः सक्तवः। चतुर्भिरुह्यं चातुरं शकटम्। चतुर्दशं दृश्यते चातुर्दश रक्षः। 'तस्य विकारः' इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।)**

**व्याख्या**– अपत्यादि चातुरर्थिक से बचे हुए जो अर्थ हैं वे 'शेष' अर्थ में परिगणित होते हैं। उन शेष अर्थों में 'अण्' आदि प्रत्यय होते हैं। इस सूत्र से 'जिसके द्वारा ग्रहण किया जाता है' आदि अर्थों में इस अधिकार सूत्र की प्रवृत्ति है।

चक्षुषा (चक्षुस्+टाप्) गृह्यते इस अर्थ में 'चक्षुस्' शब्द में 'अण्' प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि से **चाक्षुष** शब्द बना। इसी प्रकार श्रवण (कान) द्वारा ग्रहण किया गया अर्थ में **'श्रावणः'** शब्दः।

उपनिषद्भिः प्रतिपादितः पुरुषः (उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित पुरुष/आत्मा) इस अर्थ में उपनिषद्+अण् में 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि के द्वारा 'औपनिषदः' पद बना।

पत्थर पर पीसे गए सत्तू (दृषदि पिष्टाः सक्तवः) इस अर्थ में दृषद्+अण् में आदिवृद्धि से **दार्षदाः।** (प्रथमा बहुवचन) पद बना।

चार (घोड़ों) द्वारा ले जाई जाने वाली शकट (गाड़ी) – इस अर्थ में 'चतुर्' शब्द में 'अण्' प्रत्यय, आदिवृद्धि में चातुरं (शकटम्) पद बना।

चतुर्दशी में दिखाई देने वाला राक्षस (चतुर्दश्यां दृश्यते रक्षः) इस अर्थ में 'चतुर्दशी' शब्द में 'अण्' लगने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि और 'यस्येति च' से अन्तिम ईकार लोप होकर 'चातुर्दशम्' पद बना। ('शेषे' इस सूत्र का अधिकार 'तस्य विकारः 4.3.134' सूत्र पर्यन्त है।)

**तस्मिन् अणि च युष्माकाऽस्माकौ 4.3.2**

**(युष्मद्–अस्मदोः एतावादेशौ स्तः खञि अणि च। यौष्माकः। आस्माकः।)**

**व्याख्या**– तुम दोनों का/तुम सबका इस अर्थ में 'प्रत्यय होने से बनने वाले युष्मदीयः और अस्मदीयः' के विकल्प में युष्मद् और अस्मद् से अण् प्रत्यय का भी विकल्प प्राप्त होता है तब आदिवृद्धि से 'यौष्माकः' और 'आस्माकः' पद बनते हैं।

**तवक–ममका एकवचने 4.3.3**

**(एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोः तवक–ममकौ स्तः, खञि अणि च। तावकीनः, तावकः, मामकीनः, मामकः।)**

**व्याख्या**– 'युष्मद् अस्मद् को एकवचन की विवक्षा में 'तुम्हारा, मेरा' अर्थ में 'तवक' और 'ममक' आदेश होकर 'खञ्' प्रत्यय होता है और विकल्प में अण् प्रत्यय होता है। 'खञ्' पक्ष में 'तावकीनः', 'मामकीनः' पद बनते हैं। 'खञ्' अभाव पक्ष में 'अण्' प्रत्यय होने पर 'तवक+अण्' और 'ममक+अण्' में आदि वृद्धि होकर 'तावकः', 'मामकः' पद बनते हैं।

टिप्पणी

**तत्र जातः 4.3.25**

**(सप्तमी–समर्थात् 'जाते' इत्यर्थे 'अण्' आदयो 'घ' आदयश्च स्युः। स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। उत्से जातः औत्सः। राष्ट्रे जातः–राष्ट्रियः। अवारपरे जातः–अवारपारीणः। इत्यादि।)**

'उत्पन्न हुआ' अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से 'अण्' आदि सामान्य प्रत्यय तथा 'घ' आदि विशेष विहित प्रत्यय होते हैं। 'स्रोघ्ने जातः'– यहां सप्तम्यन्त स्रुघ्न शब्द से 'अण्' प्रत्यय होकर 'स्रुघ्ने + अ में सुप् लोप्, अजादि वृद्धि, अन्त्य–लोप आदि होकर प्रथम एकवचन में 'स्रौघ्नः' रूप बनता है।

**सम्भूते 4.3.41**

**(स्रुघ्ने भवति स्रौघ्नः)**

**तत्र भवः 4.3.53**

**(स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः।)**

**तत आगतः 4.3.74**

**(स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः)**

**व्याख्या**– उल्लिखित तीनों सूत्र भिन्न–भिन्न अर्थों में 'अण्' प्रत्यय के विधायक हैं। सप्तमी अर्थ 'सम्भूते' सूत्र से संभव अर्थ में 'अण्' आदि प्रत्यय होते हैं। 'वहां होने पर' के अर्थ में तत्र भवः सूत्र से और 'वहां से आए हुए' के अर्थ में 'तत आगतः' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर पूर्ववत् 'स्रौघ्नः' तथा 'औत्सः' आदि पद बनते हैं। शब्द के रूप में अंतर नहीं आता, केवल सूत्र–भेद से अर्थ–भेद की प्राप्ति होती है।

**प्रभवति 4.3.83**

**(हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा।)**

**व्याख्या**– पञ्चम्यन्त **हिमवतः** (हिमवान्) से उत्पन्न होने वाली के अर्थ में हिमवत् से अण् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से हुआ। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि और स्त्रीत्व अर्थ में ङीप् होकर हैमवती पद प्रथमा विभक्ति एकवचन में बना। (अप् के अ का लोप 'यस्येति च' सूत्र से होने के पश्चात् ङीप्।)

**तद् गच्छति पथि–दूतयोः 4.3.85**

**(स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्थाः दूतो वा)**

**व्याख्या**– स्रुघ्न को जाने वाला (मार्ग या दूत) इस द्वितीयान्त अर्थ में अण् प्रत्यय लक्ष्य शब्द में होता है। 'पूर्ववत् स्रौघ्नः'।

**अभिनिष्क्रामति द्वारम् 4.3.86**

**(स्रुघ्नम् अभिनिष्क्रामति, स्रौघ्नम्/कान्यकुब्ज–द्वारम्)**

टिप्पणी

**व्याख्या**– उस ओर निकलने वाले द्वार के अर्थ में 'स्रुघ्न' आदि स्थानवाचक में अण् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से होता है। स्रुघ्न की ओर निकलने वाले कन्नौज के द्वार को बताने के लिए यहां स्रुघ्न + अण् होने पर पूर्ववत आदिवृद्धि होकर स्रौघ्नम् (नपुं. प्रथमा विभक्ति एकवचन) द्वार का विशेषण पद बना।

**अधिकृत्य कृते ग्रन्थे 4.3.87**

**(शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः)**

**व्याख्या**– शरीरकस्य अयम् इस अर्थ को बताने के लिए 'तस्येदम् 4.3.120' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर शारीरकम् (आत्मा), अथवा 'शरीरस्य अयम्' से शारीरम्।

**सोऽस्य निवासः 4.3.89**

**(स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः)**

**व्याख्या**– स्थानवाचक प्रथमान्त शब्द से स्थानवाची अर्थ में स्रुघ्न से अण् होकर 'स्रौघ्नः' प्रकृत सूत्र से बना।

**तस्येदम् 4.3.120**

**(उपगोरिदम्–औपगवम्)**

**व्याख्या**– यह उसका है इस अर्थ में अण् प्रत्यय इस सूत्र से होता है। यह 'उपगु' का है इस अर्थ में उपगु+अण् होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि होकर 'उपगवम्' पद बना।

**त्व और तल् प्रत्यय**

**तस्य भावस्त्वतलौ 5.1.119**

**(प्रकृतिजन्य–बोधे प्रकारो भावः। गोर्भाव गोत्वम्, गोता। त्वान्तं क्लीबम्। तलन्तं स्त्रियाम्)**

**व्याख्या**– षष्ठ्यर्थक पद से 'भाव' के अर्थ में 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय होते हैं। जिस शब्द में प्रत्यय लगता है, वह प्रकृति होता है, उसके भाव को बताने के लिए ये दोनों प्रत्यय होते हैं। गो (गाय/बैल) के भाव को व्यक्त करने के लिए 'गोत्व' और 'गोता' शब्द बनते हैं। 'त्व' प्रत्यय नपुंसकलिंग (फलवत् रूप) में होता है जबकि 'तल्' से स्त्रीलिंग पद का निर्माण होता है। तल् प्रत्ययान्त शब्द में 'अजाद्यतष्टाप्' से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

**परिमाणवाचक 'वतुप्' प्रत्यय**

**यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्**

**(यत्परिमाणम् अस्य यावान्, तावान्, एतावान्।)**

**व्याख्या**– परिमाण (जितना, उतना, इतना) वाचक अर्थ में प्रथमान्त यत् शब्द से वतुप् प्रत्यय हुआ–यत्+वतुप्। **आ सर्वनाम्नः 6.3.91 सूत्र** से सर्वनाम को आकारान्त

आदेश होकर 'यावत्' से पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'यावान्' बना। इसी प्रकार 'तत्' से 'तावान्' और 'एतत्' से 'एतावान्'।

**किमिदंभ्यां वो घः 5.2.40**

**(आभ्यां वतुप्, वकारस्य घश्च।)**

**इदंकिमोरीश्–की 6.3.90**

**(दृग्–दृश्–वतुषु इदम् ईश् किमः किः। कियान्, इयान्।)**

टिप्पणी

**व्याख्या**– प्रथमान्त अर्थ वाले किम् और इदम् सर्वनाम शब्दों से परिमाण अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है और 'वकार' को 'घकार' आदेश होता है। 'इदम् सु' इस अलौकिक विग्रह में 'किमिदंभ्यां वो घः' से 'इदम् सु वतुप्' और घ आदेश होने पर वकार के स्थान पर 'घ' हुआ, अनुबन्ध लोप सहित 'इदम् घ' इस परिस्थिति में 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् 7.1.2' से 'घ' के स्थान पर 'इम्' आदेश हुआ। इदम्+इयत् तत्पश्चात् 'इदंकिशोरीश्की' से 'ईश्' सर्वादेश हुआ, शकार का लोप करके 'ई+इयत्' तब 'यस्येति च' से 'ई' का लोप होकर 'इयत्' प्रातिपदिक बन गया। पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में सुप् आदि प्रक्रिया से 'इयान्'।

कितने परिणाम वाला अर्थ में 'कियान्' बनता है। 'किम् सु' इस तरह अलौकिक विग्रह की दशा में 'किमिद्भ्यां वो घः' से वतुप् प्रत्यय और 'व' के स्थान पर 'घ' आदेश 'किम् घ अत्', घ् के स्थान में आयेनेयीनीयियः.....7.1.2' से 'इय्' आदेश होकर, इदंकिमोरीश्–की से **कि** आदेश हुआ–तब 'कि इयत्' दशा में 'यस्येति च' सूत्र से **कि** के इकार का लोप हुआ तब वर्ण संयोग करके 'कियत्' बना, प्रथमा विभक्ति पुल्लिंग एकवचन में 'कियान्' पद बना।

**इनि (इन्) प्रत्यय**

**पूर्वादिनि 5.2.86**

**(पूर्वं कृतमनेन पूर्वी)**

क्रियाविशेषण वाले 'पूर्व' शब्द से इसके द्वारा (तृतीयान्त) कर्ता के अर्थ में इनि प्रत्यय हो। 'इनि' का अन्तिम इकार इत्संज्ञक है अतः 'इन्' बचता है।

'पूर्वं कृतम् अनेन' इस अर्थ में 'पूर्व अम्' में 'पूर्वादिनिः' से इनि प्रत्यय होने पर 'पूर्व+अम्+इनि' हुआ। अनुबन्ध लोप के पश्चात् प्रातिपादिक संज्ञा, सुप् (अम्) का लोप करके –'पूर्व+इनि' भसंज्ञक अकार का लोप करके पूर्व+इनि = 'पूर्विन्' बनने पर 'गुणिन्' वत् रूप में प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'पूर्वी' पद बना।

**इष्टादिभ्यश्च 5.2.88**

**(इष्टमनेन–इष्टी, अधीती)**

यज्ञ किया गया है इसके द्वारा इस प्रकार कृत कार्य (प्रथमान्त) के कर्ता को अभिव्यक्त करने के लिए कृत कार्य में 'इनि' हो। 'इष्ट+इनि' इस दशा में 'यस्येति च 6.7.148' से इष्ट के अन्तिम इकार का लोप होकर–'इष्टिन्' प्रथमा विभक्ति एकवचन (पुल्लिंग) रूप हुआ इष्टी। इसी प्रकार 'अधीतम् अनेन' के अर्थ में 'अधीत+इनि' में अधीत+इनि से 'अधीत्+इन्' अधीतिन् से 'अधीती'।

**अत इनिठनौ 5.2.115**

**(दण्डी। दण्डिकः)**

टिप्पणी

**व्याख्या**– प्रथमान्त शब्द में, 'मत्वर्थ (वाला अर्थ)' में 'इनि' और 'ठन्' प्रत्यय हों। ('अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति होने से इन दोनों के स्थान पर 'मतुप्' प्रत्यय का भी विकल्प है।) प्रथमान्त 'दण्ड' शब्द से 'इनि' प्रत्यय हुआ, दण्ड+इनि, 'यस्येति च' से 'दण्ड' के अन्तिम 'अकार' का लोप होने से दण्ड्+इन् से 'दण्डिन्' शब्द का प्रथमा विभक्ति एकवचन में दण्डी रूप हुआ। (ठन् प्रत्यय होने पर ठन् के 'ठ' को 'इक' आदेश हुआ 'दण्डिक' से 'दण्डिकः' बना।)

**व्रीह्यादिभ्यश्च 5.2.116**

**(व्रीही, व्रीहिकः)**

**व्याख्या**– व्रीहि आदि शब्द जो कि अदन्त नहीं हैं, उनसे भी 'इनि' और 'ठन्' प्रत्यय होते हैं। पूर्ववत् प्रक्रिया 'यस्येति' च से व्रीहि के अन्त्य इकार का लोप आदि होकर व्रीहिन् से 'व्रीही' और 'व्रीहिकः' शब्द बने।

**मतुप्/वतुप् प्रत्यय**

**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् 5.2.94**

**(गावोऽस्यास्मिन् वा सन्तीति गोमान्)**

**व्याख्या**– 'वह इसका है' अथवा 'इसमें है' इन दो अर्थों में मतुप् प्रत्यय कर्ता पद में होता है। अस्ति के अर्थ में होने वाला 'मतुप्' जिन छह विशेष अर्थों में होता है उन्हें निम्नलिखित श्लोक में एकत्र कहा गया है–

**भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।**

**संसर्गेऽति विवक्षायां भवन्ति मतुपादयः।।**

1. **भूमा**– बहुतायत/अधिकता– जिसके पास जो अधिक है उसकी विवक्षा में–गोमान्, धनवान् आदि।
2. **निन्दा**– ककुद्मती–(कूबड़ वाली स्त्री) यहां निंदा प्रतीत हो रही है।
3. **प्रशंसा**– रूपवान् प्रशंसनीय रूप वाले को ही रूपवान् कहा जाता है।
4. **नित्ययोग**– क्षीरवती धेनुः। जिस गाय से नित्य क्षीर का योग हो वही गाय क्षीरवती कही जाती है।
5. **अतिशयता**– **उदरिणी कन्या** (बड़े पेट वाली) अपेक्षित से अधिक 'अतिशय' होता है। यहां अतिशय को व्यक्त करने के लिए मत्वर्थीय (इन्) प्रत्यय है।

**गो+मतुप्** मतुप् में 'उप्' इत्संज्ञक है अतः 'गोमत्' प्रथमा विभक्ति एकवचन (पुल्लिंग) में 'गोमान्' पद हुआ।

**तसौ मत्वर्थे 1.4.19**

**(ताऽन्तसान्तौ भसञ्ज्ञौ स्तः, मत्वर्थे परे। गरुत्मान्। 'वसोः सम्प्रसारणम्' विदुष्मान्।)**

टिप्पणी

**व्याख्या**– मतुप् अर्थ वाले प्रत्यय के परे रहते 'तकारान्त' और 'सकारान्त' शब्दों की 'भ' संज्ञा होती है। **'आ काडारादेका सञ्ज्ञा' 1.41** से इस प्रकार इस स्थिति में इन दो प्रकार के शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा बाधित हो गई।

'गरुत्+मत्' इस दशा में 'गरुत्' भसंज्ञक है, प्रातिपदिक होकर 'पद' नहीं बना अतः 'झलां जशोऽन्ते' से इसके 'तकार' को दकार नहीं होगा और 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा 8.4.45' सूत्र के साथ लिखित 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्। तन्मात्रम्, चिन्मयम्' वार्तिकोदाहरणों के अनुसार तकार को नत्व भी नहीं हुआ।

'विद्वांसोऽस्य सन्ति' इस अर्थ में 'विद्वस्+मतुप्' की दशा में 'विद्वस्' के पदत्व अभाव में **'वसुस्रंसुध्वंसनडुहां दः 8.2.72'** से 'स्' को 'दत्व' बाधित हो गया। **'वसोः सम्प्रसारणम्'** से 'द्व' में स्थित 'व्' को सम्प्रसारण से विदुस्+मतुप् होने के पश्चात् 'आदेशप्रत्यययोः 8.3.59' से सकार को मूर्धन्य आदेश होकर 'विदुष्मत्', प्रथमा विभक्ति एकवचन (पुल्लिंग) में 'विदुष्मान्' पद सिद्ध हुआ।

**मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः 8.2.9**

**(मवर्णावर्णान्मवर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः – वेतस्वान्)**

**व्याख्या**– मकारान्त, अकारान्त, मकार उपधा वाले और अकार उपधा वाले प्रातिपदिकों से परे मतुप् के 'म्' को 'व्' हो। किन्तु यवादिगण में पठित शब्दों पर यह नियम नहीं लागू होता। अतः वेतस्+मतुप् से वेतस्+वतुप्, वेतस्वान्, शिखा+मतुप् से शिखावान्, लक्ष्मी+मतुप् से लक्ष्मीवान्।

**ढक् प्रत्ययः**

**व्रीहिशाल्योर्ढक् 5.2.2**

**(व्रैहेयम्/शालेयम्)**

**व्याख्या**– यह सूत्र अपने पूर्ववर्ती **'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् 5.2.1'** का अपवाद सूत्र है। इस अपवाद सूत्र से 'व्रीहि' और 'शालि' इन दो धान्यों से परे 'खञ्' प्रत्यय न होकर 'ढक्' प्रत्यय होता है। 'व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्' इस अर्थ में 'व्रीहि+आम्' अलौकिक विग्रह की दशा में अनुबन्ध लोप के पश्चात् 'व्रीहि+ढक्' प्रकृत सूत्र से हुआ, तत्पश्चात्–

**'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् 7.1.2'**

से 'ढ' के स्थान पर 'एय', आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके व्रीहि+एय से व्रैह्+एय बना, नपुसंक लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'व्रैहेयम्' पद सिद्ध हुआ।

शालि+ढक् से पूर्ववत् शाल्+एय् आदिवृद्धि आदि से 'शालेयम्' पद बना।

टिप्पणी

**अपनी प्रगति जांचिए**

3. 'अश्वपति' शब्द में कौन–सा प्रत्यय लगकर 'आश्वपतम्' शब्द बनता है?

(क) शतृ (ख) यत्

(ग) अण् (घ) ण्यत्

4. 'कुमुद' शब्द में कौन–सा प्रत्यय लगकर 'कुमुदवान्' शब्द बनता है?

(क) अण् (ख) मतुप्

(ग) यत् (घ) क्त

## 4.4 स्त्रीप्रत्ययौ (टाप् ङीप् च)

यहां पर स्त्री प्रत्ययों टाप् और ङीप् से संबंधित सूत्रों की व्याख्या की जा रही है–

**अजाद्यतष्टाप् 4.1.4**

**(अजादीनाम् अकारान्तस्य वाच्यं यत् स्त्रीत्वम्, तत्र द्योत्ये टाप् स्यात्। अजा, एडका, अश्वा, चटका, मूषिका, बाला, वत्सा, होडा, मन्दा, विलाता इत्यादि अजादिगण। सर्वा।)**

**व्याख्या**– अज आदि और अन्य अकारान्त शब्दों के स्त्रीलिङ्ग अभिव्यक्ति के लिए उन शब्दों में 'टाप् (आ)' प्रत्यय होता है। अजादिगण में पठित 'अज' शब्द से 'टाप्' प्रत्यय करने पर 'अजा' शब्द बना। प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप 'अजा' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार एडका, अश्वा आदि शब्द सिद्ध हुए।

**उगितश्च 4.1.6**

**(उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। भवन्ती, पचन्ती, दीव्यन्ती।)**

**व्याख्या**– जिस प्रातिपादिक के अन्त में उगित् प्रत्यय हों उनके स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। 'ईयसुन्' प्रत्यय भी 'उगित्' है, अतः 'ईयसुन्' प्रत्ययान्त शब्दों से भी ङीप् प्रत्यय होता है। 'भवत्' 'शतृ' प्रत्यय का 'ऋ' उक् प्रत्याहार में आता है, अतः ङीप् होकर, 'शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.8।' से नुम् आगम होकर 'भवन्ती' रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार दीव्यन्ती, पचन्ती आदि रूप बनते हैं। 'ङीप्' के ङ् और प् इत्संज्ञक हैं।

**टिड्–ढाऽण्–अञ्–द्वयसच्–दघ्नञ्–मात्रच्–तयप्–ठक्–ठञ्–कञ्–क्वरपः 4.1.15**

**(अनुपसर्जनं यत् टिद् आदि तदन्तं यद् अदन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात्, कुरुचरी। नदट्–नदी। देवट्–देवी। सौपर्णेयी, ऐन्द्री, औत्सी, ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री, पञ्चतयी, आक्षिकी, प्रास्थिकी, लावणिकी, यादृशी, इत्वरी।)**

**व्याख्या**– अनुपसर्जन (जो गौण नहीं है) आकारान्त, टिदन्त तथा ढ्, अण्, अञ, द्वयसच्, दघ्नञ, मात्रच्, तयय्, ठक्, ठञ, कञ, और क्वरप्–इन प्रत्ययों से अन्त होने वाले शब्दों की स्त्रीत्व विवक्षा में इनसे 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

'कुरुचर' शब्द 'चर्' धातु से 'चरेष्टः 3.2.16' सूत्र से 'ट्' प्रत्यय युक्त है अतः 'टित्' होने पर इसमें 'ङीप्' प्रत्यय उपस्थित सूत्र से हुआ 'यस्येति च 6.4.148' सूत्र से अकार का लोप होकर कुरुचर्+ङीप् (ई) = कुरुचरी रूप प्रथमा विभक्ति एकवचन में प्राप्त हुआ। इसी प्रकार नदट् और देवट् के टिदन्त होने से 'नदी' और 'देवी' आदि रूप बने।

टिप्पणी

**'ङीप्' प्रत्यय विधायक–वार्तिक**

**नञ**, स्नञ–ईकक्–ख्युन्–तरुण–तलुनानाम्–उपसङ्खानम्। स्त्रैणी, पौंस्नी, शक्तिकी, आढ्यङ्करणी, तरुणी, तलुनी।

**व्याख्या**– 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् 4.187' सूत्र से नञ् और स्नञ् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि होकर, णत्व विधान की प्रवृत्ति होने पर स्त्रैणी रूप सिद्ध होता है। ऐसे ही, शाक्तिकी इस वार्तिक से सिद्ध होते हैं।

**यञश्च 4.1.16**

**(यञन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। अकारलोपे कृते–)**

**व्याख्या**– यञ, प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) प्रत्यय हो।

**हलस्तद्धितस्य 6.4.150**

**(हलः परस्य तद्धित–यकारस्योपधा भूतस्य लोप ईकारे परे, गार्गी।)**

**व्याख्या**– यञन्त से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होने पर तद्धित यकार का लोप होता है। ईकार प्रत्यय परे रहते 'गर्गाऽऽदिभ्यो यञ् 4.1.105' सूत्र से 'गार्ग्य' शब्द के अकार का लोप होकर ङीप् (ई) होकर 'गार्गी' शब्द सिद्ध हुआ।

'आयन्–एय–ईन्–इयः फ–ढ–ख–छघां प्रत्ययादीनाम् 7.1.2' सूत्र से आयन आदेश होकर 'गार्ग्यायण' शब्द बनने पर–

**षिद्गौरादिभ्यश्च 4.1.41**

**(षिद्भयो गौरादिभ्यश्च ङीप् स्यात्।**

**गार्ग्ययिणी। नर्तकी। गौरी।)**

इस सूत्र से ङीप् होकर गार्ग्यायणी रूप बनता है। ऐसे ही नर्तकी, गौरी आदि शब्द निष्पन्न होते हैं। षित् प्रातिपदिक और गौरादिगण (गौर, मत्स्य, अनडुह आदि) में पठित 'गौर' आदि से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) प्रत्यय हो।

**(वार्तिक) आम् अनडुहः स्त्रियां वा। अनड्वाही, अनडुही। आकृतिगणोऽयम्।**

इस वार्तिक से 'ङीप्' प्रत्यय होकर अनड्वाही, अनडुही रूप बनते हैं। गौरादि आकृति गण हैं अतः इस प्रकार के अन्य शब्दों में भी 'ङीप्' प्रत्यय इस वार्तिक के बल पर विहित है।

**वयसि प्रथमे 4.1.20**

**(प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी।)**

**व्याख्या**–आयु की प्रारंभिक अवस्था के अकारान्त प्रातिपदिक वाचक शब्दों में इस सूत्र से ङीप् होकर कुमार+ङीप्–'कुमारी' शब्द सिद्ध हुआ।

**द्विगोः 4.1.21**

**(अदन्ताद् द्विगोः 'ङीप्' स्यात् त्रिलोकी। अजाऽऽदित्वात्–त्रिफला, त्र्यनीका सेन।)**

टिप्पणी

**व्याख्या**– अदन्त द्विगु–समास शब्द से ङीप् होता है–त्रिलोक्+ङीप् त्रिलोकी। अजाऽऽदिगण में आए शब्दों से 'टाप्' होता है–अतः त्रिफला और त्र्यनीका में ङीप् नहीं हुआ।

**वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् तो नः 4.1.39**

**(वर्णवाची योऽनुदात्तस्तोपधः तदन्तात् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद् वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। एनी, एता, रोहिणी, रोहिता।)**

**व्याख्या**– वर्णवाची जो अनुदात्त तकार उपधा वाले शब्द होते हैं ऐसे प्रातिपदिकों में ङीप् विकल्प से होता है तथा तकार को 'नकार' आदेश भी होता है। 'एनी, एता' में 'एत' वर्णवाची शब्द है और अनुदात्त भी है। विकल्प से ङीप् और नकारादेश होकर 'एनी' शब्द बनता है, अन्यथा 'अजाद्यतष्टाप्' से एता। ऐसे ही 'रोहिणी' और 'रोहिता' शब्द प्रकृत सूत्र से निष्पन्न होते हैं।

**वोतो गुणवचनात् 4.1.44**

**(उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीप् स्यात्, मृद्वी, मृदु।)**

**व्याख्या**– उकारान्त गुणवाचक शब्द में ङीप् विकल्प से होता है। उकारान्त 'मृदु' शब्द में वैकल्पिक ङीप् होने पर 'मृद्वी' बना अभाव पक्ष में 'मृदु' ही रहा।

**बह्वादिभ्यश्च 4.1.45**

**(एभ्यो वा ङीप् स्यात्। बह्वी, बहुः।)**

**व्याख्या**– बहु आदि गण में पठित शब्दों के स्त्रीत्व की विवक्षा में उकारान्त शब्दों से 'ङीप्' प्रत्यय विकल्प से जुड़ता है। बहु+ङीप् = बह्वी, विकल्प अभाव पक्ष में–मृदुः।

**(गणसूत्रम्) कृद् इकाराद् अक्तिनः। रात्रिः, रात्री।**

**व्याख्या**– कृत् प्रत्यय का जो इकार होता है, उससे अन्त होने वाले शब्द में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है, किन्तु क्तिन् प्रत्ययान्त से नहीं होता। 'रा' धातु में 'राशादिभ्यस्त्रिप्' इस उणादि–सूत्र में 'त्रिप्' प्रत्यय जुड़ने पर 'रात्रि' शब्द बना। यहां यह 'कृत् प्रत्यय' का इकार है अतः विकल्प से ङीप् प्रत्यय लगकर रात्री (नदीवत् रूप) बना। अभाव पक्ष में 'रात्रिः' ही रहा।

**(गणसूत्रम्) सर्वतोऽक्तिन्नर्थाद् इति एके, शकटी, शकटिः।**

**व्याख्या**– कुछ आचार्यों का मत है कि क्तिन् अर्थ में जिस प्रत्यय का विधान है, उसके अलावा सभी इकारान्त शब्दों में (कृदन्त हो या अकृदन्त उनमें) ङीप् प्रत्यय विकल्प से होता है अतः कृदन्त रहित 'शकटि' में विकल्प से ङीप् होकर 'शकटी' बना, अभाव पक्ष में 'शकटिः' ही रहा।

**पुंयोगाद् आख्यायाम् 4.1.48**

**(या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते, ततो ङीप्। गोपस्य स्त्री गोपी।)**

टिप्पणी

**व्याख्या**– पुरुष के योग के कारण स्त्रीविषय में पुरुषवाची शब्द में ङीप् प्रत्यय होता है। उदाहरण के लिए गोपालन करने वाले की पत्नी भले ही गोचारण कर्म नहीं करती तथापि पुरुषवाची 'गोप' शब्द में बताने के लिए 'ङीप्' प्रत्यय गोप की स्त्री के लिए जुड़ने से–गोप+ङीप् = गोपी।

**वार्तिकम्–पालकाऽन्तात् न। गोपालिका, अश्वपालिका।**

**व्याख्या**– पालकान्त शब्द को ङीप् न हो। 'पुम्' योग होने पर भी 'पालक' से अन्त होने वाले शब्द में 'ङीप्' का निषेध इस वार्तिक से प्राप्त है। अतः गोपालक के साथ टाप् प्रत्यय होने पर–

**प्रत्ययस्थात् कात्–पूर्वस्याऽत इद् आप्यसुपः 7.3.44**

**(प्रत्ययस्थात् कात्–पूर्वस्य अकारस्य इकारः स्याद् आपि, स आप् सुपः परो न चेत्। गोपालिका, अश्वपालिका, सर्विका, कारिका। अतः किम्–नौका। प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोति इति शका। असुपः किम्? बहुप्रव्राजिका नगरी।)**

**व्याख्या**– प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व के 'अकार' को 'इकार' आदेश हो, 'आप्' प्रत्यय परे रहते, यदि वह 'आप्' प्रत्यय 'सुप्' से परे न हो तो। गोपाल+आप् में इसी सूत्र से गोपाल+इक+टाप् होकर गोपालिका सिद्ध हुआ? इसी प्रकार 'अश्वपालिका' भी। 'सर्व' शब्द से स्वार्थ में **'अव्यय–सर्वनाम्नाम् अकच् प्राक् टेः 5.3.71'** सूत्र से टि के पूर्व 'अकच्' प्रत्यय होकर सर्वप्रथम 'सर्वक' शब्द बना तत्पश्चात् **'अजाद्यतष्टाप्'** से टाप्, 'यस्येति च' से अकार–लोप होकर 'सर्वका', तब 'अकच्' प्रत्यय का ककार होने से इस सूत्र से 'सर्विका' हुआ क्योंकि इस ककार से परे 'आप्' है जो कि 'सुप्' से परे नहीं है।

**कारिका**–कृ धातु से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल्' प्रत्यय हुआ **(ण्वुल्–तृचौ 3.1.133)** सूत्र से, वु को अक (युवोरनाकौ) और वृद्धि से कारक शब्द बना, तत्पश्चात् इस सूत्र से 'कारिका' सिद्ध हुआ।

'अकार' को 'इकार' क्यों कहा गया, इस प्रश्न का उत्तर यह है कि 'नौका' शब्द में प्रत्यय के पूर्ववती 'औकार' को इकार न हो। 'नौ' शब्द में स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होकर 'अजाद्यतष्टाप्' से 'टाप्' प्रत्यय से नौका शब्द सिद्ध होता है।

सुप् से परे आप् न हो, ऐसा इसलिए कहा गया ताकि 'बहुप्रव्राजका (बहुत से परिव्राजकों वाली नगरी के संदर्भ में, इस बहुव्रीहि समस्त पद में समास होने पर 'सुप्' का लोप हुआ है। तब अन्तर्वर्तिनी 'सुप्' के कारण 'परिव्राजक' के साथ टाप् लगने पर प्रकृत सूत्र से इकार प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। (वार्तिकम्) सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः (सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्?) (वार्तिकम्) सूर्याऽगस्त्ययोश्छे च ङ्यां च (यलोपः। सूरी–कुन्ती, मानुषीयम्)।

सूर्य+टाप् = सूर्या, यहां पुंयोग होने से स्त्री के अर्थ की विवक्षा में सूर्य शब्द से 'आप्' प्रत्यय हुआ, 'यस्येति च सूत्र से अकार का लोप होकर देवता अर्थ में 'सूर्या' यह रूप सिद्ध हुआ। देवता अर्थ में कहने का कारण यह है कि सामान्य मनुष्य अर्थ में ङीप् प्रत्यय होकर 'सूरी' (सूर्य की मानुषी पत्नी कुन्ती) शब्द बनता है।

टिप्पणी

**अपनी प्रगति जांचिए**

5. 'उगितश्च' सूत्र से किस प्रत्यय का विधान किया गया है?
   (क) ङीष्  (ख) टाप्
   (ग) मतुप्  (घ) ङीप्
6. 'कुमारी' शब्द की सिद्धि किस सूत्र से की गई है?
   (क) वयसि प्रथमे  (ख) द्विगोः
   (ग) उगितश्च  (घ) यञश्च

## 4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (ग)
4. (ख)
5. (घ)
6. (क)

## 4.6 सारांश

धातुओं में 'तिङ्' से भिन्न कृदन्त प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। धात्वर्थ में अभिवृद्धि करने वाले जिन प्रत्ययों से सम्बन्धित सूत्रों को इकाई में स्पष्ट किया गया उनमें अनीयर् क्त्वा/ल्यप् आदि प्रमुख हैं। इसी के अन्तर्गत यह भी जाना कि नञ् समास के अतिरिक्त यदि धातु से पूर्व अव्यय हो तो क्त्वा के स्थान पर 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाना चाहिए। तद्धित प्रत्ययों में आदिवृद्धि करने वाले दो प्रमुख सूत्र हैं, 'यस्येति च' और 'तद्धितेष्वचामादेः' अतः आदिवृद्धि को बताने के लिए इनमें से कौन–सा सूत्र किस शब्द में प्रयुक्त होगा, इसे इकाई के अध्ययन में विशेष रूप से समझ लेना चाहिए। स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् अथवा ङीप् में से कौन सा प्रत्यय किस शब्द के लिए उपयुक्त है, यह भी सूत्रों की व्याख्या से स्पष्ट हो गया। उदाहरण के लिए द्विगु समास में 'द्विगो' सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होकर 'त्रिलोक' से त्रिलोकी शब्द निष्पन्न होता है, परन्तु वहीं 'त्रिफल' में समाहित 'फल' शब्द चूंकि अजादिगण में पठित है अतः वहां ङीप् की प्रवृत्ति नहीं होती। वहां 'अजाद्यतष्टाप्' से 'टाप्' प्रत्यय की प्रवृत्तिपूर्वक 'त्रिफला' शब्द की ही निष्पत्ति होती है।

## 4.7 मुख्य शब्दावली

- **अतिङ**– 'तिङ्' तिङ् भिन्न कृदन्त प्रत्यय।
- **चयनीयः**– चुनने योग्य।

टिप्पणी

- **पचेलिमा**– पकाने योग्य।
- **धार्यम्**– धारण करने योग्य।
- **शैबः** – शिबियों द्वारा बसाया गया देश।
- **हेमवती** – हिमालय से उत्पन्न गङ्गा नदी।
- **अनड्वाही**– स्त्रीगवी/गाय ('गव' का स्त्रीलिङ्ग)

## 4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'कृत्याः' सूत्र से क्या अभिप्राय है?
2. 'मृजेर्वृद्धिः' सूत्र के विषय में लिखिए?
3. 'निष्ठा' सूत्र की व्याख्या कीजिए?
4. 'व्यसि प्रथमे' सूत्र को उदाहरण सहित समझाइए?

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'अनीयर्' प्रत्यय से सम्बन्धित सभी सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
2. अपत्ययार्थक तद्धित प्रत्ययों का सूत्रों सहित सविस्तार परिचय लिखिए।
3. 'टाप्' और 'ङीप' प्रत्ययों की प्रवृत्ति जिन सूत्रों से होती है, उन्हें वृत्ति व उदाहरण सहित लिखिए।
4. 'वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्' सूत्र की व्याख्या कीजिए?
5. यत् प्रत्यय की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए?
6. 'ओदितश्च' सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?

## 4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी – व्याख्याकार–गोविन्द प्रसाद शर्मा
   प्रकाशक– चौखम्भा सुरभारती–वाराणसी
2. लघुसिद्धान्तकौमुदी – गीताप्रेस गोरखपुर।

# इकाई 5 भाषा विज्ञान

टिप्पणी

## संरचना


5.0 परिचय

5.1 उद्देश्य

5.2 भाषा का स्वरूप

5.3 भाषा का महत्व तथा उपभाषा आदि अवांतर रूप

- 5.3.1 उपभाषा का स्वरूप एवं भारत की प्रमुख उपभाषाएं
- 5.3.2 उपभाषा और विभाषा (Dialect) में अंतर
- 5.3.3 भाषा के उद्भव के विभिन्न सिद्धांत

5.4 भाषा विज्ञान व उसकी शाखाएं

- 5.4.1 भाषा विज्ञान की परिभाषा
- 5.4.2 भाषा विज्ञान का स्वरूप
- 5.4.3 ध्वनि विज्ञान
- 5.4.4 रूप विज्ञान
- 5.4.5 अर्थ विज्ञान
- 5.4.6 वाक्य विज्ञान

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

5.6 सारांश

5.7 मुख्य शब्दावली

5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

5.9 सहायक पाठ्य सामग्री


## 5.0 परिचय

भाषा मनुष्य के विचारों के आदान-प्रदान का साधन है। अतः मनुष्य जीवन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। भाषा की उत्पत्ति का संबंध इस बात से है कि मानव ने सर्वप्रथम किस काल में अपने मुख से निसृत होने वाली ध्वनियों को, वस्तुओं-पदार्थों, भावों से जोड़ा। इतिहास के किस काल में मानव ने सामूहिक स्तर पर यह निश्चय किया कि किस शब्द का क्या अर्थ होगा।

'भाषा की उत्पत्ति' का प्रश्न भाषा विज्ञान की विचार-सीमा में नहीं आता। विज्ञान भाषा के गुण-दोषों की चर्चा कर सकता है पर उसके जन्म का प्रश्न दर्शनशास्त्र की सीमा में आता है। यद्यपि आजकल के भाषा वैज्ञानिक भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न को भाषा विज्ञान की सीमा में नहीं मानते फिर भी जिज्ञासावृत्ति को तृप्त करने के लिए प्रश्न पर भी हम इस इकाई में संक्षेप में विचार करेंगे।

पाठ्य इकाई में भाषा विज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप के साथ-साथ ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, अर्थ विज्ञान और वाक्य विज्ञान का गहन विवेचन किया गया है।

टिप्पणी

## 5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भाषा के स्वरूप के अन्तर्गत विभिन्न भाषा परिवारों को विस्तारपूर्वक समझ पाएंगे;
- भाषा के महत्त्व के अन्तर्गत भाषा के उद्‌भव के क्रम को भी जान पाएंगे;
- उपभाषा का तात्पर्य ग्रहण कर पाएंगे;
- ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, अर्थ विज्ञान एवं वाक्य विज्ञान को भी भली–भांति समझ पाएंगे।

## 5.2 भाषा का स्वरूप

यद्यपि विश्व की विभिन्न भाषाओं के विभिन्न स्वरूप हैं तथापि भाषा के स्वरूप को समझने से पूर्व उसकी उत्पत्ति व विकास क्रम को जान लेना आवश्यक है। अतः आइए भाषा के उद्‌भव के विभिन्न सिद्धान्तों पर एक नज़र डाली जाए। आज का युग वैज्ञानिक युग है। अतः भाषा के अध्ययन के लिए तदनुरूप तुलनात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपेक्षित है, क्योंकि आज प्रत्येक विषय के अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सर्वाधिक महत्व है अतः भाषा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। इस अध्ययन की सुविधा के लिए विश्व की भाषाओं का आकृति-प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। संपूर्ण विश्व में कुल कितनी भाषाएं बोली जाती हैं, उनकी संख्या के विषय में कुछ भी अनुमान करना अक्षरशः सत्य नहीं कहा जा सकता, परंतु सभी विद्वान इस तथ्य का समर्थन करते हैं कि विश्व में कुल लगभग 3000 भाषाएं बोली जाती हैं। भाषाविद् मेरियो पाई ने तो इन्हें ठीक-ठीक नपे-तुले शब्दों में 2796 बताने का कष्टसाध्य प्रयास किया है। हमें यह कहने में जरा भी संकोच अनुभव नहीं हो रहा है कि पाई का यह निष्कर्ष एक कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, क्योंकि शायद ही कोई 10-20 भाषाओं का ज्ञाता हो। ऐसी स्थिति में 2796 का ज्ञान रखना, अत्यंत सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंतरों के आधार पर एक को दूसरे से पृथक करना, इतना ही नहीं 3000 के स्थान पर 2796 बताकर मात्र 204 भाषाओं का सूक्ष्म अंतर स्वीकार करना किसी व्यक्ति-विशेष का कार्य नहीं हो सकता। वस्तुतः, यदि उपर्युक्त संख्या को आधार मान भी लिया जाए, तो भी अध्ययन की सुविधा के लिए भाषा के प्रकारों की अर्थात वर्गीकरण की आवश्यकता स्वाभाविक है, क्योंकि भेदों से किसी वस्तु विशेष के अध्ययन में सौकर्य आ जाता है। यही वर्गीकरण की व्यावहारिक उपयोगिता है। संसार की भाषाओं के प्रकारों के कई आधार हो सकते हैं; जैसे– महाद्वीप, देश, धर्म, काल, भाषाओं की आकृति, परिवार तथा प्रभाव आदि, किंतु भाषा विज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखित दो वर्गीकरण महत्वपूर्ण हैं– आकृतिमूलक वर्गीकरण तथा पारिवारिक वर्गीकरण। वस्तुतः इन उपर्युक्त आधारों में से आकृति, इतिहास तथा परिवार को आधार बनाकर जो वर्गीकरण किया गया है, वही तर्कसंगत एवं समीचीन है। भाषा विज्ञान में विश्व भाषाओं के दो प्रकार से वर्गीकरण किए गए हैं–

(1) आकृतिमूलक वर्गीकरण (Morphological Classification)

(2) पारिवारिक वर्गीकरण (Genealogical Classification)

## आकृतिमूलक वर्गीकरण

टिप्पणी

आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार है पदों तथा वाक्यों की रचना। पद किस प्रकार बनते हैं और वाक्यों की रचना किस प्रकार होती है, इस आधार पर किए जाने वाले वर्गीकरण को आकृतिमूलक वर्गीकरण कहते हैं। मार्फ पद (Morph) मार्फोलॉजी पद रचना (Morphology) पर आश्रित होने से इसे पद रचनात्मक वर्गीकरण (Morphological Classification) कहते हैं। इस वर्गीकरण को वाक्य रचना (Syntax) के आधार पर होने से वाक्य रचनात्मक (syntactical) और टाइप-रूप (Type) के आधार पर होने से टिपिकल रूपात्मक (Typical) भी कहते हैं। जिन भाषाओं में आकृति (आकार, पद रचना तथा वाक्य रचना) की दृष्टि से समानता होती है, उन्हें एक वर्ग में रखा जाता है। आकृतिमूलक वर्गीकरण में रचना तत्व की मुख्यता रहती है। इनमें शब्द के बाह्यरूप पर ध्यान दिया जाता है। भाषाओं के आकृतिमूलक वर्गीकरण के परिप्रेक्ष्य में प्रो. श्लेगल (F. Schlegel) को अत्यधिक श्रेय दिया जाता है, क्योंकि इन्होंने ही सर्वप्रथम आकृतिमूलक भाषाओं को दो वर्गों में विभक्त किया, जिसे आगे चलकर प्रो. बोप (F. Bopp), ग्रिम तथा श्लाइशर ने तीन वर्गों में वर्गीकृत करने का प्रयास किया। पॉट (A.F. Pott) ने इसे चार वर्गों में विभाजित किया, किंतु यथार्थतः प्रमुखता भाषाओं के दो ही वर्गों की प्राप्ति हुई– अयोगात्मक एवं योगात्मक।

### आकृतिमूलक वर्गीकरण का स्पष्टीकरण

1. **अयोगात्मक भाषाएं (Isolating or Root Language)**– अयोगात्मक उन भाषाओं को कहते हैं, जिनमें प्रकृति, प्रत्यय या अर्थ तत्व और संबंध-तत्व का संयोग नहीं होता। इस वर्ग की भाषाओं में योग नहीं रहता अर्थात संबंध-तत्वों (उपसर्ग, प्रत्यय) को जोड़कर शब्द नहीं बनाए जाते, अपितु सभी शब्द स्वतंत्र होते हैं, उनका अपना विशेष अस्तित्व और महत्व होता है, यथा– संस्कृत में 'राम' शब्द में 'टा' प्रत्यय जोड़कर 'रामेण' शब्द निष्पन्न होता है, किंतु हिंदी में 'राम से' दोनों शब्द भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन यह भी योगात्मक ही है, चलना का भूतकाल में चला हो जाता है, किंतु चीनी भाषा में Tsen (चलना) का भूत अर्थ लेने के लिए इसके आगे (lion) रख देते हैं- lion Tsen। कहने का तात्पर्य यह है कि इस वर्ग की भाषाओं का प्रत्येक शब्द स्वयंमेव प्रकृतितत्व एवं अर्थ तत्व को व्यक्त करने की शक्ति रखता है। इन शब्दों का परस्पर संबंध, वाक्य में उनके निश्चित स्थान से व्यक्त होता है अर्थात वाक्य में उनका स्थान बदलने से उनका अर्थ भी परिवर्तित हो जाता है; जैसे–

   (क) ता - जेन – (बड़ा आदमी, ता = बड़ा, जेन = आदमी)
   जेन-ता – (आदमी बड़ा है)

   (ख) वो - ता - नी (मैं मारता हूं तुझे, वो=मैं, ता=मारना, नी=तू)
   नी-ता-वो – (तू मारता है मुझे)

   वाक्य में उद्देश्य, विधेय आदि का संबंध स्थान और स्वर के द्वारा प्रकट होता है। ऐसी वाक्य रचना में प्रकृति व प्रत्यय का भेद नहीं रहता। परिणाम यह होता है कि वहां रचना, काल और कारक रचना का सर्वथा अभाव रहता है। यथा

टिप्पणी

चीनी भाषा में 'न्तगो त नि' का अर्थ है 'मैं मारता हूं तुझको' तथा इसका विपरीत करने पर "नितन्गो" का अर्थ प्रकट होता है– "तुम मारते हो मुझको"। कभी-कभी शब्दों के अर्थ में निपात भी भेद उत्पन्न करता है। चीनी भाषा में "वांग पाओ मिन" का अर्थ है– राजा लोगों की रक्षा करता है, किंतु "वांग पाओ ची मिन" का अर्थ है– राजा द्वारा रक्षित लोग। ची संबंधवाचक निपात है। स्वरभेद से भी अर्थपरिवर्तन हो जाता है– "क्वेईक्वोक" में उदात्त स्वर के आने पर इसका अर्थ मान्य या विशिष्ट देश हो जाएगा। इस वर्ग की भाषाओं में स्थान, निपात तथा सुर का विशेष महत्व होता है। इन भाषाओं का व्याकरण इन्हीं का विवेचन करता है। निपात (संबंधसूचक अव्यय) से शब्दरचना और वाक्य रचना में भी सहायता ली जाती है। इसमें संबंध-तत्व का बोध संबंध-तत्व-बोधक शब्दों को लगाकर या स्थानविशेष पर रखकर कराया जाता है। यद्यपि सामान्य रूप से इस वर्ग की सभी भाषाओं में इनका महत्व है, तथापि कुछ भाषाओं में इनमें से किसी एक का महत्व अपेक्षाकृत अधिक रहता है। यथा चीनी भाषा में स्थान तथा सुर का, सूडानी भाषा में स्थान का, अनामी में स्वर का तथा बर्मी, स्यामी व तिब्बती में निपात का सर्वाधिक महत्व है।

2. **योगात्मक भाषाएं (Agglutinative Languages)**– योगात्मक भाषाओं में प्रकृति तथा प्रत्यय के योग से शब्द की रचना होती है। इन भाषाओं का प्रत्येक शब्द स्वतंत्र होता है। विश्व में सर्वाधिक भाषाएं इसी वर्ग की हैं। इस वर्ग की भाषाओं का निर्माण अर्थ तत्व एवं संबंध-तत्व के योग से होता है। प्रत्येक शब्द प्रकृतिरूप न होकर प्रकृति प्रत्यय के संयोग का परिणाम होता है, यथा– संस्कृत भाषा में 'रामेण हतो बालि:' में राम के साथ तृतीया के 'एन्' का तथा हन् के साथ 'त:' प्रत्यय का और 'बालि' के साथ 'अ:' प्रत्यय का योग है। इस वर्ग की भाषाओं को अध्ययन की दृष्टि से अश्लिष्ट योगात्मक, प्रश्लिष्ट तथा श्लिष्ट योगात्मक इन तीन वर्गों में विभक्त किया गया है–

   **(क) अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं**– यदि भाषा में अर्थ तत्व और संबंध-तत्व का पारस्परिक योग हो, किंतु उसकी स्थिति स्पष्टत: परिलक्षित होती हो, तो ऐसी भाषा अश्लिष्ट योगात्मक कहलाती है। अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के वाक्यों में प्रत्ययों की प्रधानता रहती है, जिनकी सत्ता स्पष्टत: दृष्टिगत होती है। ऐसे वाक्यों में एक से अनेक प्रत्यय लगाकर विभिन्न अर्थ निकाले जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'जुलु' भाषा में 'तु चिल यवनोकल' के पूर्व प्रत्यय लगाने पर यह वाक्य बनता है– 'उमंतु-वेतु ओमुच्चले यवनोकल' अर्थात 'हमारा आदमी देखने में भला है'। इसी वाक्य का बहुवचन है 'अवंतु वेतु अवच्चले वयवनो कल' अर्थात 'हमारे आदमी देखने में भले हैं'। इसी प्रकार 'पर प्रत्यय-प्रधान' तुर्की भाषा में एव=घर, एवलेर=कई घर, एवलेरइम=मेरे घर। अश्लिष्ट योगात्मक (प्रत्यय-प्रधान) भाषा में व्याकरण संबंध पुर: प्रत्यय अंत: प्रत्यय, पर प्रत्यय के संयोग से सूचित किया जाता है। कुछ भाषाएं सर्व प्रत्यय प्रधान और कुछ ईषत् प्रत्यय प्रधान होती हैं। प्रत्यय-प्रधान अश्लिष्ट भाषाओं को विद्वानों ने चार भागों में विभक्त किया है-

टिप्पणी

1. पुरः प्रत्यय-प्रधान–पूर्व योगात्मक (prefix agglutinative)
2. मध्य प्रत्यय-प्रधान–मध्य योगात्मक (Infix agglutinative)
3. पर प्रत्यय-प्रधान–अंत योगात्मक (Suffix agglutinative)
4. सर्व प्रत्यय प्रधान या पूर्वांत योगात्मक (Prefix-Suffix agglutinative)

1. **पुरः प्रत्यय-प्रधान–पूर्व योगात्मक**– इन भाषाओं में 'बान्टू परिवार' की भाषाओं की गणना होती है। पूर्व योगात्मक भाषाओं में संबंध-तत्व आरंभ में लगता है। इस परिवार की भाषाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है– (1) पूर्वी (2) मध्यवर्ती (3) पश्चिमी। पूर्वी भाषाओं में काफिर और जुलू मुख्य हैं। काफिर भाषा में 'कु' उपसर्ग का अर्थ होता है– को । ति (हम) नि (उन) आदि सर्वनाम हैं। इसका परस्पर योग होने पर-

   कु-ति = हमको। कु-नि = उनको।

   कु-जे = उसको।

   जुलू भाषा के उदाहरण ऊपर दे चुके हैं। पूर्व प्रत्यय जोड़ने की प्रवृत्ति के दर्शन संस्कृत में भी हो जाते हैं, जैसे– गच्छति = जाता है और अवगच्छति = जानता है।

2. **मध्य प्रत्यय-प्रधान–मध्य योगात्मक**– मध्य योगात्मक भाषाओं में संबंध-तत्व की योजना मध्य में होती है। मलाया परिवार की मुख्य भाषा फिलीपींस की टगलॉग (Tagalog) भाषा मध्य योगात्मक भाषा का ही उदाहरण है; जैसे–

   सुलत् = लेख। सुमूलत् = (स+उम्+ऊलत्) लिखने वाला।

   सिनूलत = (स+इन+ऊलत्) लिखा गया।

   इस उदाहरण में 'उम्' और 'इन' मध्य प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। भारत की मुंडा परिवार की भाषाओं में भी मध्य प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है; जैसे– संथाली भाषा में 'मंझि' का अर्थ है मुखिया ओर 'मपंझि' का अर्थ है मुखियागण। इसी प्रकार स्पष्ट है कि 'प' मध्य प्रत्यय का प्रयोग बहुवचन में होता है। इस प्रकार तुर्की भाषा का एक उदाहरण भी उल्लेखनीय है– 'सेव्मेक' का अर्थ है 'प्यार करना' 'सेव् इन मेक' का अर्थ हुआ, 'अपने को प्यार करता है' और 'सेव् इल मेक' का अर्थ हुआ 'प्यार किया जाना'। यहां भी 'इन्' और 'इल' प्रत्ययों का प्रयोग मध्य में हुआ। इसी प्रकार 'दल्' का अर्थ है 'मारना' और 'दपल्' का अर्थ है 'परस्पर मारना'। इस क्रिया में 'प' प्रत्यय का प्रयोग मध्य में हुआ है।

   कुछ भाषाएं ईषत् प्रत्यय-प्रधान भी होती हैं, इनमें प्रत्यय के साथ कारक, समास और विभक्ति की भी योजना होती है।

टिप्पणी

3. **पर प्रत्यय-प्रधान–अंत योगात्मक**– अंत योगात्मक भाषाओं में प्रत्यय अंत में संयुक्त होता है। यूराल, अल्टाइक तथा द्रविड़ परिवार की भाषाओं में अंत योग के उदाहरण मिलते हैं। तुर्की भाषा अंत योगात्मकता के लिए प्रसिद्ध है –

'एव' का अर्थ है 'घर'

'एवलेर' का अर्थ हुआ 'कई घर'।

'एवलेर इम' का अर्थ हुआ 'मेरे घर'।

'यज' का अर्थ है 'लिख'।

'यज्मक्' का अर्थ है 'लिखना'।

यजिस्मक् (यज्+इस्+मक) = परस्पर लिखना।

यज्दिर्मक् (यज+दिर्+मक) = लिखवाना।

यजिल्मक (यज+इल्+मक) = लिखाया जाता।

भारतीय दक्षिणी भाषाओं कन्नड़, मलयालम आदि में भी अंत योगात्मकता दृष्टिगत होती है।

कन्नड़ भाषा– सेवक शब्द से सेवकरु (कर्त्ता), सेवक-रन्नु (कर्म), सेवक-रिन्द (करण), सेवक-रिगे (संप्रदान) सेवक-र (संबंध), सेवक-रल्लि (अधिकरण) आदि रूप बनते हैं।

इसी प्रकार मलयालम भाषा में बहुवचन के रूप इस प्रकार बनते हैं– सेवकन्-मार (कर्त्ता), सेकन्-मारे (कर्म), सेवकन्-माराल् (करण), सेवकनमारकु (संप्रदान), सेवकन्-मारुटे (संबंध), सेवकन्-मार-इल (अधिकरण)। आशय यह है कि कन्नड़-मलयालम में प्रत्यय अंत में संयुक्त होते हैं। इन भाषाओं को पर-प्रत्यय-प्रधान या 'अंत-योगात्मक' कहा जाता है।

4. **सर्व प्रत्यय-प्रधान या पूर्वांत-योगात्मक**– 'सर्व-प्रत्यय-प्रधान' भाषाओं के अर्थ तत्व के पूर्व तथा पश्चात दोनों ओर प्रत्यय जोड़े जाते हैं। सर्व-प्रत्यय-प्रधान भाषाओं में प्रशांत महासागर चक्र की 'पपुआई परिवार' की भाषाएं आती हैं। न्यूगिनी द्वीप की 'मफोर' भाषा में प्रकृति और प्रत्यय का संयोग शब्द में इस प्रकार होता है :

Eui+Q = सुनना।

tEui+Q = मैं सुनता हूं।

tEui+Qm = मैं तेरी बात सुनता हूं।

यहां 'ज' आदि में और 'उ' प्रत्यय अंत में संयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार:

Eui+Q = सुनना।

टिप्पणी

oEui+Q = तू सुनता है।

bEui+Q = वह सुनता है।

flEui+Q = वे सुनते हैं।

flEubi+Q = उसकी बात सुनते हैं।

**( ख ) प्रश्लिष्ट योगात्मक (Incorporative) समास-प्रधान**

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति-प्रत्यय इस प्रकार संश्लिष्ट होते हैं कि उन्हें अलग करना असंभव-सा लगता है। प्रश्लिष्ट-योगात्मक-भाषाओं की एक विशेषता यह भी है कि इस भाषा के वाक्यों में अनेक शब्द न आकर शब्दखंड संयुक्त होते हैं। परिणामस्वरूप, एक दीर्घ वाक्य बन जाता है। ग्रीनलैंड तथा दक्षिणी अमेरिका की भाषाएं इसी प्रकार की हैं। संस्कृत भाषा यद्यपि प्रधानत: श्लिष्ट-योगात्मक है, किंतु उसमें प्रश्लिष्ट-योगात्मकता के लक्षण दृष्टिगत होते हैं; जैसे–

**तैरभिप्रेतार्थसाधनेऽभिनवकौशलप्रदर्शनं कृतमासीत्,** अर्थात 'उन्होंने अपना अभिप्राय सिद्ध करने में नूतन कुशलता दिखाई'। यद्यपि अंग्रेजी भी समास-प्रधान भाषा नहीं है, तथापि यत्र-तत्र इस प्रकृति के दर्शन किए जा सकते हैं– United Nations Economical, Social and Cultural Organization इन सभी शब्दों के प्रथमाक्षरों के संयोग से यूनेस्को (UNESCO) शब्द बनता है।

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के संबंध-तत्व और अर्थ तत्व की दृष्टि से दो विभाग हो सकते हैं– (1) पूर्ण प्रश्लिष्ट (2) आंशिक प्रश्लिष्ट।

1. **पूर्ण प्रश्लिष्ट**– पूर्ण प्रश्लिष्ट भाषाएं अपेक्षाकृत अधिक जटिल होती हैं। अपनी प्रकृति के कारण इस भाषा के शब्दखंडों से पूरा वाक्य एक लंबा-सा शब्द बन जाता है। दक्षिणी अमेरिका की चैरोकी भाषा का एक उदाहरण–

   नातेन = लाओ। आमोखल = नाव। निन = हम।

   इन तीनों शब्दों के संयोग से 'नाधोलिनिन' शब्द का अर्थ है–'हमारे पास नाव लाओ।'

   ग्रीनलैंड की एस्किमो भाषा में भी पूर्ण प्रश्लिष्टावस्था के दर्शन होते हैं–

   vmfylj = मछली मारना।

   isvrksZj = किसी काम में लगना।

   fiUuslqviksZd = वह जल्दी करता है।

   इन तीनों से मिलकर– 'अउलिसरिअर्तोरसुर्पोक' (वह मछली मारने के लिए जाने की जल्दी करता है) एक शब्द से निर्मित वाक्य बन जाता है।

2. **आंशिक प्रश्लिष्ट**–आंशिक प्रश्लिष्ट भाषाओं में क्रियाओं और सर्वनाम का संयोग इस प्रकार से होता है कि क्रिया का अस्तित्व ही शेष नहीं रहता। बास्क भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

टिप्पणी

| | |
|---|---|
| वकार्क ओत | – मैं इसे उसके पास ले जाता हूं। |
| नकार्सु | – तुम मुझे ले जाते हो। |

इन दोनों ही वाक्यों में सर्वनाम और क्रियाओं के अतिरिक्त संज्ञा, विशेषण अव्यय आदि का योग नहीं होता है।

### (ग) श्लिष्ट योगात्मक (Inflactional) विभक्ति-प्रधान

श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के वाक्यों में विभक्ति की प्रधानता होती है, जिनमें वाक्य आदि का संबंध विभक्ति के द्वारा प्रकट होता है। विभक्ति-प्रधान वाक्य में प्रत्यय ही संबंध का ज्ञान कराते हैं। किंतु स्वयं से अस्तित्वहीन हो जाते हैं। "योगात्मक भाषाओं में प्रकृति-प्रत्यय का भेद-भाव स्पष्ट बना रहता है और उनका पूरी रीति से एकीभाव नहीं होने पाता। इसके विरुद्ध, विभक्तियुक्त भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय का प्रायः एकीभाव हो जाता है।"... जहां योगात्मक भाषाओं में प्रकृत्यंश सदा जैसा-का-तैसा रहता है और प्रत्ययांश में ही थोड़ा परिवर्तन होता है, वहां विभक्तियुक्त भाषाओं में प्रकृत्यंश भी परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार- "विभक्तियुक्त भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय–दोनों के परिवर्तित हो जाने से ही दोनों परस्पर इतने सट जाते हैं कि उनमें बिल्कुल एकीभाव हो जाता है।" डॉ. मंगलदेव ने आकृति के आधार पर भाषाओं के तीन वर्गीकरण किए हैं– अयोगात्मक, योगात्मक और विभक्ति-प्रधान। उनके वर्गीकरण का आधार यही है। पुनश्च वे लिखते हैं कि– "दोनों की शब्द-रचना का मूल सिद्धांत एक ही है; केवल भेद इतना है कि विभक्तियुक्त, भाषाओं में प्रकृति-प्रत्यय का परस्पर मेल योगात्मक भाषाओं की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा होता है। साथ ही, विभक्तियुक्त भाषाओं में भी यह घनिष्ठ संबंध सदा नहीं पाया जाता।"

श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में संबंध-तत्व को अर्थ तत्व से इस प्रकार संश्लिष्ट कर दिया जाता है कि अर्थ तत्व के अंश में विकृति आ जाती है। अर्थ तत्व यद्यपि अपना अस्तित्व खो देता है; फिर भी संबंध-तत्व की झलक स्पष्ट परिलक्षित होती रहती है। उदाहरणतः ईश्वर शब्द से ऐश्वर्य की निष्पत्ति होने पर 'य' प्रत्यय जोड़ा गया है, साथ ही ई का ऐ हो गया है। वेद से वैदिक, नीति से नैतिक आदि शब्द इसी प्रकार के हैं, जहां संबंध तथा अर्थ तत्व की प्रतीति स्पष्ट है। संस्कृत, अरबी आदि भाषाओं में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

विभक्तियां अंतर्मुखी हैं या बहिर्मुखी, इसी के आधार पर विद्वानों ने श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के दो विभाग किए हैं–

(1) अंतर्मुखी श्लिष्ट (विभक्ति-प्रधान भाषाएं),

(2) बहिर्मुखी श्लिष्ट (विभक्ति-प्रधान भाषाएं)।

इन भाषाओं के भी दो-दो उपभेद मिलते हैं -

(1) संयोगात्मक (Synthetic)

(2) वियोगात्मक (Analytic)

अंतर्मुखी भाषाओं में संबद्ध अंश अर्थ तत्व के बीच में मिल जाते हैं। सैमेटिक और हैमेटिक परिवार की भाषाएं इसी वर्ग में आती हैं। बहिर्मुखी भाषाओं में जोड़े हुए अंश अर्थ

तत्व के अंत में आते हैं। इस वर्ग में भारोपीय परिवार की संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाएं आती हैं।

टिप्पणी

अंतर्मुखी भाषाओं में अरबी भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

क़-त्-ल् धातु का अर्थ है मारना।

| | |
|---|---|
| क़तल | = खून। |
| क़ातिल | = मारने वाला। |
| कित्ल | = शत्रु। |
| यकतुल | = वह मारता है। |
| कितल | = प्रहार। |

इन उदाहरणों में संबंध-तत्व इस प्रकार मूल धातु से संबद्ध हैं कि उन्हें अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। अंतर्मुखी श्लिष्ट भाषा की संयोगात्मक भाषाओं का उदाहरण अरबी तथा वियोगात्मक भाषा का उदाहरण हिब्रू भाषा है।

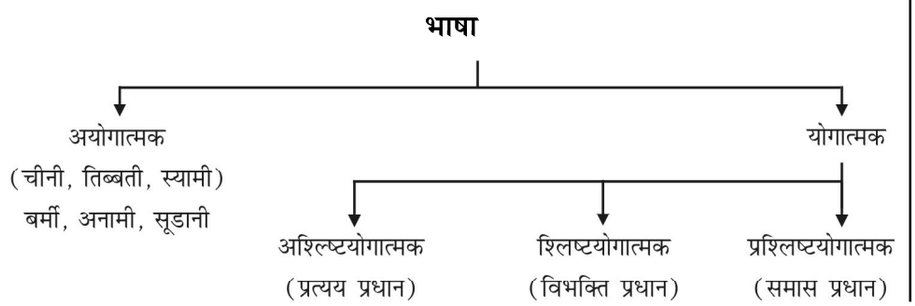
बहिर्मुखी भाषाओं में भारोपीय परिवार की भाषाएं आती हैं : इनमें सहायक क्रिया और परसर्ग आदि को संबद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। पूर्व से ही उनकी सत्ता विद्यमान रहती है। उदाहरणत: संस्कृत भाषा में स: गच्छति (वह जाता है)– 'स:' में प्रथमा विभक्ति और 'गच्छति' में ति प्रत्यय संयोगात्मक है।

संयोगात्मक-वियोगात्मक भाषाओं की दृष्टि से आज अधिकांश भाषाएं वियोगात्मक हो गई हैं। लिथुआनियन भाषा आज भी संयोगात्मक है। संयोगात्मक भाषाओं में ग्रीक, लैटिन, संस्कृत और अवेस्ता प्रधान हैं तथा वियोगात्मक भाषाओं में हिंदी, बांग्ला तथा अंग्रेजी प्रधान हैं।

## आकृतिमूलक-वर्गीकरण की समीक्षा

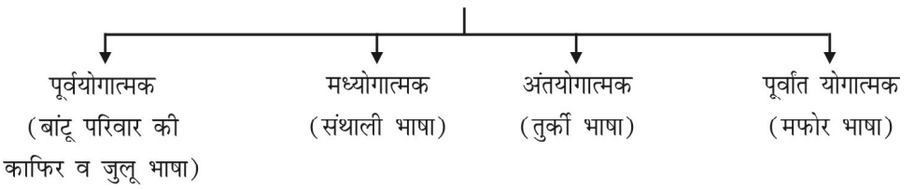
प्रारंभ में आकृतिमूलक-वर्गीकरण बहुत दिनों तक मान्य रहा है। भाषा विज्ञान का एक प्रमुख अंग भाषाओं का रूपविश्लेषण है। यह वर्गीकरण प्रधानत: रूप-विश्लेषण पर आधारित है अत: इसका महत्व स्वीकार्य है। इसीलिए डॉ. श्याम सुंदर दास ने लिखा है– "वाक्य और शब्दों की प्रकृति का सम्यक् विवेचन करने के लिए भाषाओं का आकृतिमूलक अथवा रूपात्मक वर्गीकरण अच्छा समझा जाता है।" आकृतिमूलक-वर्गीकरण भाषा के विकास-क्रम को स्पष्ट करता है।

### आकृतिमूलक भाषाओं का वर्गीकरण

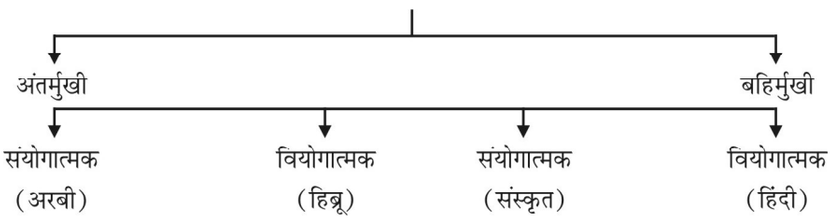


टिप्पणी

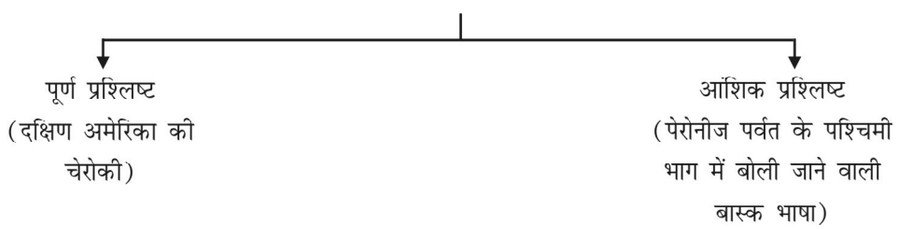
**अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं (प्रत्यय प्रधान)**




**श्लिष्ट योगात्मक भाषाएं (विभक्ति प्रधान)**




**प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं (समास प्रधान)**




किंतु आकृतिमूलक-वर्गीकरण में विश्व की भाषाओं का समुचित विभाजन नहीं हो पाता। इस वर्गीकरण में परस्पर किसी प्रकार का भी संबंध न रखने वाली भाषाओं को एक वर्ग में रख दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हिंदी को अश्लिष्ट योगात्मक मान लें, तो उसी वर्ग में तुर्की, अफ्रीका की काफ़िर, फिलीपींस की टगलॉग, न्यूगिनी की मफोर आदि भाषाएं हैं जिनका हिंदी से किसी प्रकार का संबंध नहीं है। योगात्मक, अयोगात्मक दो वर्गीकरण स्पष्ट होते हुए भी योगात्मक भाषाओं के उपसर्गों की सीमा-रेखा अत्यंत धूमिल है। परिणामस्वरूप एक ही भाषा अश्लिष्ट, श्लिष्ट और प्रश्लिष्ट हो सकती है। हिंदी, संस्कृत, तुर्की आदि भाषाएं विभिन्न वर्गों के लिए उदाहरण दे सकने में समर्थ हैं। इसके अतिरिक्त यह वर्गीकरण भाषा के बाह्य पक्ष का सूचक है। अतः अधिक वैज्ञानिक नहीं है। इस संबंध में देवेंद्रनाथ शर्मा ने लिखा है कि वर्गीकरण के इस आधार पर बहुत वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। इसके दो प्रमुख कारण हैं–

1. एक तो यह कि श्लिष्ट अथवा प्रश्लिष्ट में स्पष्ट विभाजक-रेखा खींचना कठिन है। प्रत्येक भाषा में कुछ अंश ऐसा है जो इन तीनों वर्णों में समाविष्ट हो जाता है। संस्कृत को ही ले लीजिए। उपसर्गों या क्रिया विभक्तियों का अस्तित्व अर्थ-तत्व से पृथक् झलकता रहता है। जैसे, प्रभवति, प्रहरति में उपसर्ग (प्र), धातु (भू एवं ह्व) और विभक्ति (ति) का रूप बिल्कुल स्पष्ट है। 'वैदिक', 'नैतिक' आदि

टिप्पणी

शब्द श्लिष्ट के उदाहरण हैं और 'जिगमिषति' आदि प्रयोग प्रश्लिष्ट के अत: आकृतिमूलक भेद स्थूल दृष्टि से ही ग्राह्य है; सूक्ष्मता से विचार करने पर उनमें परस्पर सौकर्य आ जाता है, जो वैज्ञानिकता का विरोधी है।

2. संसार की समस्त भाषाओं का अब तक अध्ययन नहीं हो पाया है। संभव है, उसका अध्ययन होने पर और भी आकृतिगत या रूपात्मक विशेषताओं का पता लगे। अभी संयोगात्मक भाषाओं की जितनी जानकारी है, वह भी अपर्याप्त है। जिस गहराई से भारत-यूरोपीय परिवार की भाषाओं का अध्ययन हुआ है, उस गहराई से चीनी, बर्मी आदि का नहीं। अत: अयोगात्मक भाषाओं के संबंध में जो निष्कर्ष निकलते हैं वे अखंडनीय हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसीलिए आकृतिमूलक वर्गीकरण का अब वह महत्व नहीं रह गया है जो पहले था। भाषा विज्ञानी आकृतिमूलक वर्गीकरण से पारिवारिक वर्गीकरण को अधिक महत्वपूर्ण मानने लगे हैं।"

## पारिवारिक वर्गीकरण

पारिवारिक वर्गीकरण में रचनातत्व के साथ ही अर्थ तत्व पर भी ध्यान दिया जाता है। इन भाषाओं के रचना साम्य के साथ ही अर्थसाम्य या अर्थ तत्व पर ध्यान रखना अनिवार्य है। इस प्रकार दोनों का भेद है–

(क) आकृतिमूलक वर्गीकरण = शब्द प्रधान, रचनातत्व मुख्य

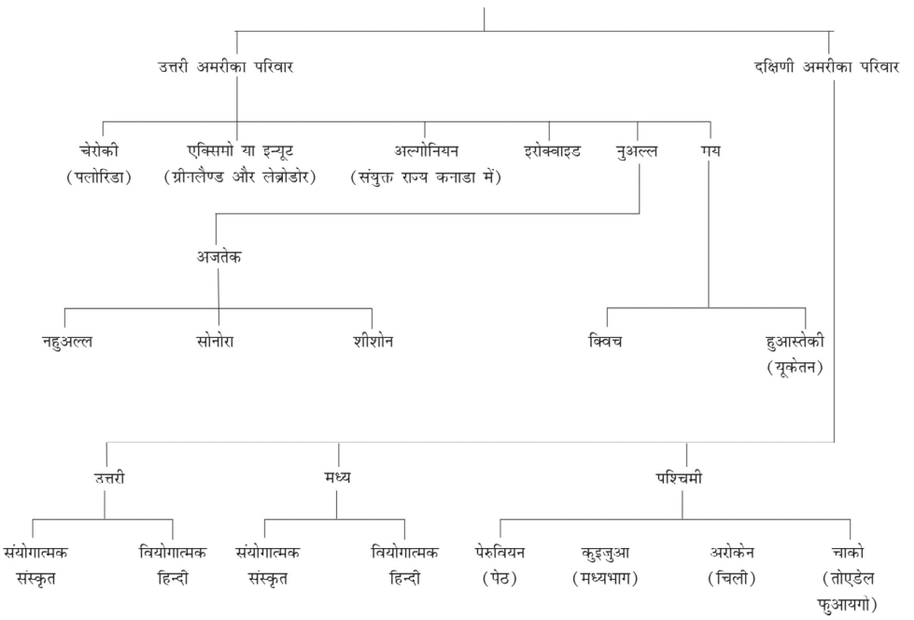
(ख) पारिवारिक वर्गीकरण = अर्थप्रधान, रचनातत्व + अर्थ तत्व

पारिवारिक वर्गीकरण को वंशानुक्रम पर आधारित होने से Genealogical (वंशानुक्रमिक) (Genea = वंश) तथा भूगोल एवं इतिहास पर निर्भर होने से Historical (ऐतिहासिक) कहते हैं। एक परिवार एक भौगोलिक क्षेत्र में व्याप्त होता है।

विश्व की समग्र भाषाओं को एक बड़ा कुल मानकर उनको विभिन्न परिवारों में विभक्त किया गया है। जैसा कि फैडरिक मूलर आदि विद्वानों का विचार है, समस्त विश्व की भाषाओं को सौ भाषा-परिवारों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ विद्वानों के अनुसार दो सौ पचास से कम भाषा-परिवार नहीं हैं। किंतु अद्यावधि उपलब्ध भाषाओं को अध्ययन की सुविधा के लिए भौगोलिक आधार पर चार भौगोलिक खंडों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक खंड की भाषाएं दूसरे खंडों की भाषाओं से पूर्णत: प्रभावित हैं। अत: इस दृष्टिकोण के आधार पर भाषा के चार खंड हैं–(1) अमेरिका खंड, (2) अफ्रीका खंड, (3) प्रशांत महासागर खंड, (4) यूरेशिया खंड।

टिप्पणी

## अमेरिका परिवार की भाषाएं




1. **अमेरिका खंड**–इस वर्ग के अंतर्गत उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में बोली जाने वाली लगभग चार सौ भाषाओं की गणना की जाती है। किंतु इस वर्ग की अधिकांश भाषाएं अनुसंधान एवं अध्ययन की प्रतीक्षा में हैं। अधिकांश भाषाएं साहित्य एवं लिपि-रहित हैं तथा अपनी अविकसित दशा में यात्रा पूरी कर रही हैं। मैक्सिको की 'मय' तथा 'नहुअल' भाषाओं की अपनी लिपि तथा साहित्य भी है।

   इस भूखंड की भाषाएं प्रश्लिष्ट योगात्मक समास-प्रधान हैं। वाक्य बनाने के लिए शब्दों के प्रधान अंश लेकर मिलाते जाते हैं और एक शब्दवाक्य बन जाता है। एक लंबे शब्द के रूप में एक वाक्य ही इन भाषाओं में कार्य में आता है। कभी-कभी इन भाषाओं में दस-बारह शब्द मिलकर एक शब्द-वाक्य की रचना करते हैं; उदाहरण के लिए– चैरोकी भाषा का पूर्व परिचित उदाहरण ही यहां द्रष्टव्य है– 'नाधोलिनिन' वाक्य में 'नेतन' 'आमोखल' तथा 'निन' शब्द हैं। 'नतेन' का अर्थ है लाओ, आमोखल का अर्थ नाव तथा 'निन' का अर्थ हमको। इस प्रकार नाधोलिनिन का अर्थ है– हमारे पास नाव लाओ।

   इस वर्ग की भाषाओं के अध्ययन व सामग्री के अभाव में विशेष वर्गीकरण व विवरण देना संभव नहीं है, फिर भी विद्वानों ने इस वर्ग की भाषाओं का एक स्थूल वर्गीकरण किया है, जो ऊपर प्रदर्शित है।

2. **अफ्रीका खंड**–इस भूखंड में अफ्रीका में बोली जाने वाली समस्त भाषाओं का समावेश होता है। इस खंड में प्रधानत: पांच भाषा-परिवार हैं–

(क) बुशमैन, (ख) बांटू, (ग) सूडान, (घ) हैमेटिक या हामी और (ङ) सैमेटिक या सामी।

टिप्पणी

(क) **बुशमैन भाषा-परिवार**– बुशमैन अफ्रीका के मूल निवासियों की एक जाति का नाम है। यह जाति ऑरेंज नदी से नगामी झील तक बसी हुई है। अफ्रीका के निवासियों की यह भाषा प्राचीनतम है तथा जंगली जातियों की भाषा के रूप में प्रसिद्ध है। इस भाषा में लोक-गीत एवं लोक-कथाओं के अतिरिक्त किसी प्रकार का साहित्य नहीं मिलता है। डॉ. ब्लाख के अनुसार इस परिवार की भाषाएं 'अश्लिष्ट-अंत-योगात्मक' थीं, किंतु क्रमशः अयोगात्मकता की ओर अग्रसर हैं। इन भाषाओं के लक्षण सूडान-परिवार तथा बांटू कुल की 'जुलू' भाषा से मिलते-जुलते हैं। इस परिवार की भाषाओं की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(i) इस परिवार की भाषाओं में एकवचन की पुनरावृत्ति कर बहुवचन बनाया जाता है।

(ii) इस परिवार की ध्वनियां कुछ विचित्र हैं। अतः विदेशियों के द्वारा उनका यथावत् उच्चारण दुस्साध्य है। इन्हें स्फोटात्मक क्लिक-ध्वनि कहा जाता है। ये ध्वनियां दंत्य, मूर्धन्य, पार्श्विक, तालव्य और ओष्ठ्य हैं।

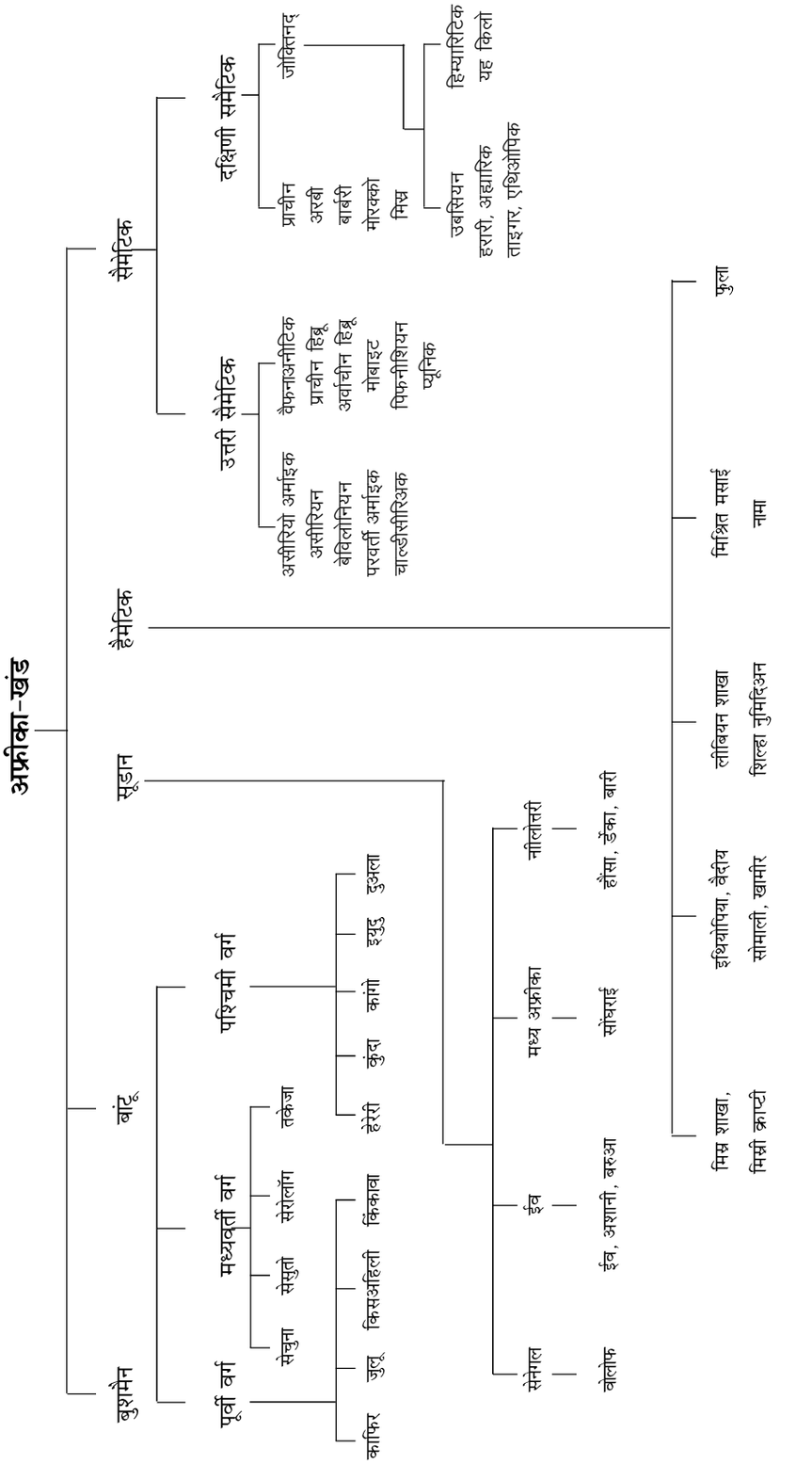
(iii) इन भाषाओं में लिंग के नियम पुरुषत्व या स्त्रीत्व पर आधारित न होकर चेतन-अचेतन पर अवलंबित हैं।

(iv) हुटंटाट इस परिवार की प्रमुख भाषा है।

(ख) **बांटू भाषा परिवार**– बांटू परिवार की भाषाएं मध्य और दक्षिणी अफ्रीका की भाषाएं हैं। इसके दक्षिण में बुशमैन परिवार की भाषाओं तथा उत्तर में सूडान परिवार की भाषाओं का प्रयोग होता है। इस परिवार में लगभग एक सौ पचास भाषाएं हैं, जिन्हें पूर्वी, मध्यवर्ती तथा पश्चिमी इन तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है।

(1) इन भाषाओं में साहित्य का अभाव है। (3) संयुक्त व्यंजनों का अल्प प्रयोग होता है, समस्त शब्द स्वरांत हैं, परिणामस्वरूप भाषाएं मधुर तथा संगीतात्मक हैं। (3) इस परिवार की भाषाएं पूर्व अश्लिष्ट योगात्मक अथवा पुरःप्रत्यय-प्रधान हैं। (4) पदों की रचना उपसर्ग जोड़कर अधिक होती है। (5) इन भाषाओं में लिंग विचार का अभाव तथा स्वरों की विभिन्नता से अर्थ की भिन्नता होती है।

टिप्पणी




(ग) **सूडान भाषा परिवार**– सूडान परिवार में भूमध्य रेखा के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक विस्तीर्ण भू-भाग में बोली जाने वाली भाषाओं का समावेश होता

टिप्पणी

है। इसके उत्तर भाग में हैमेटिक परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं। इस परिवार में लगभग चार सौ पैंतीस भाषाएं बोली जाती हैं, किंतु लिपियां पांच-छह के ही करीब हैं। इस परिवार की प्रमुख भाषाएं 'वाइ', 'मोम-, 'कनूरी हाउसा' तथा 'प्यूल' हैं।

(1) ये भाषाएं पढ़ने में सरस हैं। (2) इन भाषाओं में 'नूबी' भाषा के काप्टी लिपि में लेखबद्ध चतुर्थ शताब्दी तक के कुछ लेख उपलब्ध हैं। (3) इस परिवार की भाषाएं चीनी भाषा की तरह अयोगात्मक व्यास प्रधान हैं। (4) विभक्तियों का सर्वथा अभाव है। (5) प्रत्ययों के अभाव के कारण अर्थभेद स्वरों पर आधारित हैं। (6) इन भाषाओं में व्याकरण का अभाव है। (7) लिंग-बोधक कुछ शब्दों से लिंग की जानकारी होती है। (8) बहुवचन के नियम भी अस्पष्ट हैं। (9) वाक्य प्रायः छोटे-छोटे होते हैं। (10) इस परिवार को चार भागों में विभक्त कर उसकी भाषाओं का अध्ययन किया गया है– (क) सेनेगल भाषाएं, (ख) ईव भाषाएं (ग) मध्य अफ्रीका समूह, (घ) नील नदी के ऊपरी भाग की बोलियां। इन चारों वर्गों में प्रथम वर्ग की 'बोलोफ' तथा 'ईव' भाषाएं प्रमुख हैं।

(घ) **हैमेटिक भाषा परिवार**– हैमेटिक या हामी परिवार की भाषाएं संपूर्ण उत्तरी अफ्रीका में बोली जाती हैं। इंजील के आख्यान के अनुसार नौह के द्वितीय पुत्र हैम व अफ्रीका के कुछ भागों– मिस्र, फोनेशिया, इथोपिया में 'आदि पुरुष' के रूप में मान्य हैं। उन्हीं के नाम पर इस परिवार का हैमेटिक परिवार नामकरण हुआ है। इस परिवार की अनेक भाषाएं नष्ट होती जा रही हैं।

(1) इन भाषाओं में धार्मिक साहित्य और प्राचीन अभिलेख भी मिलते हैं। (2) इस परिवार की भाषाओं पर दूसरे परिवारों की भाषाओं का प्रभाव अधिक है। (3) इस परिवार की प्रमुख भाषा मिस्त्री तथा लिबियन है। (4) मिस्त्री भाषा-गठन में सरल धातुएं, एकाक्षर तथा अनेकाक्षर हैं, विभक्तियों के लिए प्रत्यय-योजना नहीं होती। (5) आदि, मध्य और अंत में धातुएं जोड़कर पदों की रचना होती है। (6) ये भाषाएं श्लिष्ट योगात्मक विभक्ति-प्रधान हैं, जो संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर उन्मुख हैं। (7) इन भाषाओं में स्वर-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन होता है। (8) विशेष बल देने के लिए पुनरुक्ति का प्रयोग होता है। (9) इन भाषाओं में क्रिया से काल का बोध नहीं होता, अपितु काल का बोध कराने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग होता है। (10) बहुवचन के रूप विभिन्न होते हैं।

(ङ) **सैमेटिक भाषा परिवार**– सैमेटिक या सामी अफ्रीका में इस परिवार की भाषा मोरक्को से स्वेज तक बोली जाती है। इस कुल की प्रधान भाषा अरबी है। यही अल्जीरिया और मोरक्को में राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। इस परिवार की भाषाओं में हिब्रू, आरमेनियन भी हैं। (1) भाषाएं श्लिष्ट योगात्मक विभक्ति प्रधान हैं। (2) विभक्तियां अंतर्मुखी हैं। धातु-रचना तीन व्यंजनों से होती है। (4) स्वर-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन होता है। (5) क्रिया द्वारा काल का बोध नहीं होता। (6) बहुवचन बनाने के लिए प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

टिप्पणी

3. **प्रशांत महासागर खंड–** इस खंड की भाषाएं प्रशांत-महासागर और हिंद-महासागर के द्वीपों में विस्तृत भूखंड में व्याप्त हैं। इस वर्ग में मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, न्यूगिनी, फिलिपींस, फारमोसा आदि न्यूजीलैंड की भाषाएं आती हैं। इस खंड के भाषा-परिवार को पालोनेशियाई-परिवार भी कहते हैं।

(1) इस परिवार के अंतर्गत आने वाली समस्त भाषाओं का मूल एक होने के कारण उनके पद-रचना और वाक्य रचना में पर्याप्त साम्य मिलता है। (2) इस परिवार की समस्त भाषाएं अश्लिष्ट योगात्मक प्रधान हैं। (3) धातुएं प्रायः दो अक्षरों की हैं, प्रथम अक्षर पर बलाघात होता है। (4) संज्ञा में लिंगभेद नहीं मिलता है, उनके रूप भी परिवर्तित नहीं होते हैं। (5) क्रियाओं में उपसर्ग, प्रत्यय, मध्य में संयुक्त होते हैं। (6) आदि, मध्य और अंत में शब्द संयुक्त कर पद निर्मित होते हैं। (7) समस्त भाषाएं क्रमशः संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर उन्मुख हैं। इस परिवार के अंतर्गत अनेक भाषाएं व बोलियां हैं, किंतु साहित्यिक भाषाएं अल्प ही हैं। इस खंड की समग्र भाषाएं पांच परिवारों में विभक्त की जा सकती हैं। (क) मलयन परिवार अथवा इंडोनेशियाई परिवार, (ख) मलेनेशियाई परिवार, (ग) पालीनेशियाई परिवार, (घ) पपुअन या पापुआई परिवार, (ङ) ऑस्ट्रेलियाई परिवार।

(क) **मलयन परिवार**– मलय प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा, फिलीपींस प्रायद्वीप के अंतर्गत बोली जाने वाली मलय, जावी, सुन्दियन, तगाल, लदोनीं, होता अथवा मलगासी आदि इस परिवार की मुख्य भाषाएं हैं।

(1) इन भाषाओं को बोलने वालों की संख्या लगभग पांच करोड़ है। (2) इनमें कुछ भाषाएं साहित्य-संपन्न भी हैं। (3) आदि, मध्य और अंत तीनों स्थानों पर उपसर्ग, परसर्ग जोड़कर पद-रचना की जाती है। (4) शब्द और धातु में कोई विशेष अंतर नहीं है। (5) एक ही शब्द संज्ञा, क्रिया, क्रिया-विशेषण सभी का कार्य कर सकता है। (6) बहुवचन के लिए पुनरावृत्ति का सहारा लिया जाता है। (7) इस भाषा-परिवार का क्षेत्र प्राचीनकाल में भारत का उपनिवेश था; फलतः संस्कृत के अनेक शब्द इन भाषाओं में मिल जाते हैं।

(ख) **मलेनेशियाई परिवार**– इस परिवार की भाषाओं का क्षेत्र प्रशांत महासागर के फीजी आदि लघुकाय द्वीपों में व्याप्त है। इस परिवार की फीजी-भाषा मुख्य है।

(1) इस भाषा का स्वरूप मलय जैसा अधिक है। (2) फीजी भाषा पर्याप्त समृद्ध है, साथ ही साहित्य-संपन्न भी है। (3) इसके अंतर्गत अनेक उपभाषाएं भी बोली जाती हैं। (4) इस वर्ग की भाषाओं में एकवचन और द्विवचन तथा बहुवचन भी पाया जाता है। (5) इस परिवार की भाषाएं मलयन परिवार से अधिक विकसित हैं। (6) अधिकांश भाषागत विशेषताएं मलयन परिवार से साम्य रखती हैं। (7) इस परिवार की भाषाओं का एक ही शब्द

संज्ञा, क्रिया और क्रिया-विशेषण बन जाता है। (8) शब्द पर बल देने के लिए उसकी पुनरावृत्ति भी की जाती है। (9) इस भाषा-परिवार में प्रत्यय और उपसर्गों का प्राधान्य है।

टिप्पणी

**मलेनेशियाई परिवार**

फिजियन केलीडोनी लायल्टी हैब्रिडी सोलोमोनी

(ग) **पालिनेशियाई परिवार**– ये भाषाएं मलेनेशिया के पूर्व-दक्षिण में बोली जाती हैं। (1) यह भाषा परिवार भाषाओं की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। (2) भाषाएं विकसित हैं। (3) व्यंजनों का प्रायः इसमें अभाव है। (4) संयुक्त-स्वर और संयुक्त-व्यंजनों की तो सत्ता ही नहीं है। (5) एकवचन, द्विवचन और बहुवचन का अस्तित्व है। अर्थ को प्रभावात्मक बनाने के लिए पुनरावृत्ति का सहारा लिया जाता है। क्रमशः इस परिवार की भाषाएं वियोगात्मकता की ओर बढ़ रही हैं।

**पालिनेशियाई परिवार**

| माओरी (न्यूजीलैंड) | टोंगी (टोंगा) | समोई (समोआ) | हवाई (हवाई) | ताहितो (ताहिती) | मराक्वीसन (मारक्वीसाज) |
|---|---|---|---|---|---|

(घ) **पापुआई परिवार**– इस परिवार की भाषाओं का क्षेत्र मलाया और पालिनेशिया के मध्य न्यूगिनी आदि अल्पकाय द्वीपों में हैं। (1) इस परिवार की भाषाएं प्रायः अश्लिष्ट योगात्मक हैं। (2) पद-रचना के लिए उपसर्ग और प्रत्यय की योजना होती है। (3) बहुवचन के लिए सी प्रत्यय का प्रयोग होता है। (4) इस परिवार की एकमात्र प्रसिद्ध एवं प्रधान भाषा 'मफोर' भाषा है। इसी का अध्ययन अभी तक हो सका है।

(ङ) **ऑस्ट्रेलियाई परिवार**– इस परिवार के अंतर्गत ऑस्ट्रेलिया तथा रस्सानियां द्वीपों के निवासियों की भाषाओं का समावेश होता है। (1) ये भाषाएं अश्लिष्ट योगात्मक तथा अंतः प्रत्यय-प्रधान हैं। (2) 'मैक्वारी' तथा 'कमिलरोई' इस परिवार की प्रधान भाषाएं हैं।

(4) **यूरोशिया खंड**– इस खंड की भाषाएं विश्व की संपन्न भाषाओं के अंतर्गत आती हैं। इन भाषाओं में विश्व की विकसित जातियों की सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास लेखबद्ध प्राप्त होता है। इस खंड की भाषाएं ही संसार की प्राचीनतम साहित्यनिधि की कुंजी हैं। इस खंड की भाषाओं का सविस्तार अध्ययन किया गया है। इसमें निम्नलिखित भाषा-परिवार आते हैं–(क) सैमेटिक परिवार– सामी परिवार (ख) काकेशस परिवार (ग) यूराल-अल्टाई परिवार (घ) चीनी परिवार– एकाक्षर परिवार

टिप्पणी

(ङ) द्रविड़ परिवार (च) ऑस्ट्रेलियाई परिवार– आग्नेय परिवार (छ) भारोपीय परिवार (ज) विविध भाषाओं का अनिश्चित परिवार।

(क) **सैमेटिक परिवार**– इस परिवार का संक्षिप्त विवेचन हम अफ्रीका खंड के अंतर्गत कर चुके हैं। 'नौह' के पुत्र 'मैम' को दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के 'आदिपुरुष' के रूप में मान्यता प्राप्त है। अत: उन्हीं के नाम पर इस परिवार का नामकरण हुआ है। (1) इस परिवार का साहित्य प्राचीन है। (2) लिपि-परंपरा भी संभवत: प्राचीनतम है। (3) इस परिवार की भाषाएं श्लिष्ट योगात्मक विभक्ति-प्रधान हैं। (4) धातुओं की रचना त्रिव्यंजनात्मक है। (5) विभक्तियां अंतर्मुखी हैं। (6) कर्त्ता, कर्म और संबंध तीन ही कारक इस परिवार की भाषाओं में मिलते हैं। (7) सर्वनाम क्रियाओं के अंत में संयुक्त किए जाते हैं। (8) इस परिवार की भाषाएं मोरक्को से स्वेज नहर तक बोली जाती हैं। प्रधान क्षेत्र एशिया ही है। (9) हिब्रू, आरमेनियन और अरबी इस परिवार की प्रधान भाषाएं हैं। (10) इस परिवार की भाषाओं में स्वर विकास ही भाषाओं के रूप में परिवर्तन करता है। (11) उसी के द्वारा मात्रा, संख्या, स्थान आदि का बोध होता है। (12) इस परिवार की भाषाओं में लिंग-भेद भी मिलता है। 'त्' या 'अत्' प्रत्यय स्त्रीलिंग बोधक है; अरबी भाषा में इबन् (बेटा) और बिन्त् (बेटी), असोरी में मलक् (राजा) और मलकत् (रानी)।

इस परिवार की भाषाओं को उत्तर सैमेटिक और दक्षिण सैमेटिक इन दो भागों में बांटकर इनका अध्ययन किया जा सकता है।

(ख) **काकेशस परिवार**– इस परिवार का क्षेत्र कृष्णसागर एवं केस्पियन सागर के मध्य काकेशस पर्वत पर है। इस क्षेत्र में दो भाषा-समूह प्राप्त होते हैं। एक को उत्तरी शाखा और दूसरे को दक्षिणी शाखा कहते हैं। इन दोनों ही शाखाओं के भाषा-भाषियों की संख्याएं क्रमश: पांच लाख और पंद्रह लाख के लगभग हैं। पर्वताच्छन्न इस भाग में अनेक बोलियां हैं, जो परस्पर पर्याप्त भिन्न लगती हैं।

(1) इस परिवार की भाषाएं अश्लिष्ट योगात्मक प्रत्यय-प्रधान हैं। (2) प्रत्यय पूर्व और पर दोनों ही प्रकार के हैं। (3) उत्तरी काकेशी परिवार में स्वरों का अभाव तथा व्यंजनों का बाहुल्य है। (4) पद-रचना जटिल है। (5) 'अवर' बोली में ही संज्ञा की तीस विभक्तियां तथा 'चेचेन' भाषा में संज्ञा में छह लिंग हैं। (6) क्रिया के रूप जटिल हैं। (7) फलत: मूल धातु का ज्ञान भी कभी-कभी कठिन हो जाता है। (8) इस परिवार की प्रमुख भाषा जार्जियन है, जिसमें शताब्दियों का साहित्य उपलब्ध होता है। (9) इसकी अपनी लिपि है किंतु अन्य भाषाएं साहित्य और लिपि शून्य हैं।

(ग) **यूराल-अल्टाई परिवार**– इस परिवार की भाषाओं का क्षेत्र यूराल और अल्टाई पर्वतों के मध्य में है। इसलिए इसका यह नाम सार्थक है। विद्वानों

टिप्पणी

ने सर्वप्रथम इस परिवार के नाम तूरानी, फिनोतातारिक, स्कीथियन आदि रखे थे। किंतु अब तुर्की भाषा से अधिक संबंध रखने वाले इस परिवार का नाम यूराल-अल्टाई ही अधिक प्रसिद्ध है। इस भाषा-परिवार की भाषाएं भारोपीय भाषा-परिवार के पश्चात विस्तृत भू-खंड की भाषाएं हैं जो "यूराल पर्वत के मध्य में टर्की, हंगरी और फिनलैंड से लेकर ओरबोत्सक सागर तक और भूमध्य-सागर से लेकर उत्तरी सागर तक फैली हुई हैं।" यह भाषा-परिवार पारस्परिक भाषा की समानता के कारण दो वर्गों में बांट दिया गया है– यूराल परिवार और अल्टाई परिवार। यूराल नामक उप-परिवार में फीनी-उग्री और समोयेदी तथा अल्टाई परिवार में तुर्की, मंगोली और तुगूजी नामक भाषा-समूहों की गणना की जाती है। इन दोनों ही उप-परिवारों में धातु, ध्वनि और शब्द समूह की दृष्टि से अल्प भेद होने पर भी पर्याप्त साम्य मिलता है। (1) इस परिवार की भाषाएं पर-प्रत्यय प्रधान अश्लिष्ट अंतः योगात्मक हैं। (2) दोनों ही उप-परिवारों की भाषाओं में स्वर की अनुरूपता भी मिलती है। (3) शब्दों में संबंधवाचक प्रत्यय संयुक्त किया जाता है। (4) इस परिवार की समग्र धातुएं अव्यय के समान हैं।

भाषाओं की अधिकता के कारण विद्वान भाषा-परिवार कहने की अपेक्षा भाषा-समुदाय कहना अधिक उचित समझते हैं। इस परिवार की फिनिश भाषा प्राचीनतम साहित्य-संपन्न भाषा है। मेग्यर बारहवीं सदी से प्राप्त भाषा है। इस भाषा के बोलने वाले लगभग एक करोड़ हैं। तुर्की भाषा भी काव्य तथा साहित्य संपन्न भाषा है। तुर्की की लिपि अब अरबी के स्थान पर रोमन स्वीकार कर ली गई है। तुर्की भाषा-भाषी लोग लगभग चार करोड़ हैं। इसका साहित्य चौदहवीं सदी से प्राप्त होता है।

(घ) **एकाक्षर चीनी परिवार**– एशिया के पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी भाग की ओर एक बड़े भू-खंड में एकाक्षर परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं। इस परिवार की भाषाओं के बोलने वालों की संख्या केवल भारोपीय परिवार के लोगों से कम है। इसकी प्रधान भाषा चीनी है। यह भाषा-परिवार चीन, स्याम, तिब्बत और बर्मा तक फैला हुआ है। इस परिवार की (1) भाषाएं अयोगात्मक हैं जो चीनी, स्यामी, तिब्बती, बर्मी आदि हैं। किंतु भाषाएं एकाक्षर हैं। (2) चीनी भाषा ही प्राचीनतम एवं साहित्य-संपन्न भाषा है। (3) स्थान-भेद से अर्थ-भेद इस भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है। (4) इस परिवार की भाषाओं में एक शब्द विभिन्न स्वरों से विभिन्न अर्थों की अभिव्यक्ति करता है। (5) चीनी भाषा में व्याकरण नामक तत्व का सर्वथा अभाव है। (6) अनुनासिक ध्वनियों का आधिक्य भी चीनी भाषा की अपनी विशिष्ट विशेषता है।

इस परिवार में चीनी भाषा के अलावा मंदारी, केंटूनी, पेकिंनी, हक्का, टोंकिनी, कोचीन-चीनी, कंबोडियाई, स्यामी आदि प्रधान बोलियां हैं। 'मेईथेई' प्राचीन साहित्य संपन्न भाषा है। इस भाषा में पंद्रहवीं शताब्दी के साहित्यिक

टिप्पणी

ग्रंथ मिलते हैं। बर्मी में धार्मिक साहित्य की प्रचुरता है। तिब्बती और बर्मी निरंतर अंत:प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं होती जा रही हैं।

(ङ) **द्रविड़ परिवार**– यह भाषा-परिवार भारत में नर्मदा और गोदावरी नदियों से कुमारी अंतरीप तक दक्षिण में फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त उत्तरी लंका, बलूचिस्तान, मध्यभारत, बिहार प्रदेश आदि में इन भाषाओं के बोलने वाले मिल जाते हैं। इस भाषा-परिवार को कभी-कभी तमिल परिवार भी कह दिया जाता है। यह भाषा-परिवार वाक्य तथा स्वर के कारण, यूराल-अल्टाई परिवार के निकट पहुंच जाता है। इस परिवार की भाषाएं– (1) तुर्की आदि की भांति अश्लिष्ट अंत:योगात्मक हैं। (2) मूल शब्द या धातु में प्रत्यय जुड़ते हैं। (3) प्रत्यय की सत्ता स्पष्ट रहती है। (4) प्रत्ययों के कारण प्रकृति में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है। (5) इस परिवार की भाषाओं में निर्जीव शब्द नपुंसक लिंग के माने जाते हैं तथा अन्य शब्दों में स्त्रीलिंग और पुल्लिग सूचक शब्द संयुक्त कर दिए जाते हैं। (6) भाषाओं में दो ही वचन होते हैं। बहुवचन प्रत्यय के संयोग से बनता है। संज्ञा, सर्वनाम और क्रियाओं में बहुवचन प्रत्यय एक जैसे ही होते हैं। (7) वास्तविक क्रिया का अभाव है। (8) इन भाषाओं में कर्मवाच्य का अभाव होने के कारण कर्मवाच्य का बोध सहायक क्रिया द्वारा कराया जाता है। (9) विशेषण के विभक्ति रूप नहीं होते हैं। (10) शब्द के अंतिम व्यंजन के उच्चारण के लिए एक विशिष्ट ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। (11) स्वर-अनुरूपता इस भाषा परिवार की विशेषता है। स्वरों के अनुसार ही प्रत्ययों का रूप परिवर्तन हो जाता है। (12) इस भाषा-परिवार में मूर्धन्य ध्वनियां, विशेषत: टवर्ग का प्राधान्य है। (13) गिनती दस पर आधारित है।

इस भाषा-परिवार में प्रधानत: चौदह भाषाएं हैं, जिनका चार उप-विभागों में विभाजन किया जाता है– (1) द्रविड़ वर्ग (2) आंध्र वर्ग (3) मध्यवर्ती वर्ग (4) ब्राहुई वर्ग। इस परिवार की भाषाएं इस प्रकार हैं– कन्नड़, तमिल, तुलू, कोडगु, टुडा, मलयालम, तेलुगु, ब्राहुई, गोंड, कोंड, कुई, कोलामी, कुरुख, माल्टी।

(च) **ऑस्ट्रेलियाई परिवार : आग्नेय परिवार**– इस परिवार को श्मिट ने ऑस्ट्रिक परिवार कहा है। यह भाषा-परिवार प्रशांत-महासागर के द्वीपों में फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त स्याम और बर्मा के वनप्रांत, निकोबार द्वीप, आसाम की कुछ पहाड़ियां, मध्यभारत के गोंड प्रदेश और मद्रास के गंजाम जिले में इस भाषा परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं। इस परिवार की भाषाओं के सामान्य लक्षण ये हैं– (1) भाषाएं प्रधानत: प्रत्यय-प्रधान अश्लिष्ट योगात्मक हैं, किंतु वे निरंतर वियोगात्मक हो रही हैं। (2) पद-रचना के लिए प्रत्यय आदि, मध्य और अंत तीनों ही स्थानों पर जुड़ते हैं। (3) धातुएं द्वयक्षरी हैं।

टिप्पणी

आग्नेय परिवार की भाषाएं मोन, रूमेर तथा बोलियां प्लोग 'बा' निकोबरी आदि हैं। मोन साहित्य-संपन्न परिष्कृत भाषा है। इस परिवार की प्रमुख भाषा मुंडा है। पश्चिमी बंगाल से लेकर बिहार और मध्य प्रदेश, मध्य भारत, उड़ीसा और मद्रास के गंजाम जिले तक यह भाषा तथा इसकी बोलियां बोली जाती हैं। मुंडा परिवार की भाषाएं (1) सामान्यत: सरल और स्पष्ट हैं। (2) अश्लिष्ट योगात्मक हैं। (3) इस भाषा के अन्तिम व्यंजनों के पश्चात श्रुति का अभाव है। (4) अर्द्धस्वरों और व्यंजनों के अतिरिक्त इस भाषा में विचित्र ध्वनि पाई जाती है, जिसे अर्द्धव्यंजना की संज्ञा विद्वानों ने दी है। (5) इनका उच्चारण क्लिक ध्वनियों की भांति और कभी-कभी अनुनासिकता से युक्त होता है। (6) लिंग पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग ये दो हैं जो सजीव और निर्जीव तत्वों के आधार पर माने जाते हैं। कभी-कभी यह लिंग हिंदी की भांति 'ई' और 'आ' से भी बन जाते हैं। (7) इस भाषा में वचन तीन हैं। द्विवचन तथा बहुवचन के लिए संज्ञाओं में प्रत्यय जोड़े जाते हैं। (8) मुंडा भाषा की वाक्य-रचना आर्य-भाषाओं से भिन्न है। इसमें शब्द भेद की यथार्थ कल्पना कठिन है। (9) संबंध-तत्व का बोध प्राय: अंत्ययोग और मध्ययोग से होता है। (10) उपसर्ग भी संयुक्त किए जाते हैं। (11) मूल शब्द द्वयक्षरात्मक हैं। (12) चीनी भाषा की भांति एक ही शब्द संज्ञा, क्रिया और विशेषण आदि का रूप ले लेता है। (13) संख्याएं दस तक तथा बीस भी हैं। इन्हीं के आधार पर संपूर्ण संख्याएं बन जाती हैं। (14) क्रिया के लिए अलग शब्द नहीं है। कभी कोई शब्द एक स्थान पर क्रिया है तो दूसरे पर वही संज्ञा है। (15) प्रभावात्मकता के लिए पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति है। (16) क्रिया-रूपों के आधार पर काल-ज्ञान होता है। (17) मुंडा परिवार की भाषाओं के अव्यय स्वतंत्र हैं।

(छ) **भारोपीय परिवार**– यह यूरेशिया ही नहीं विश्व का महान् भाषा-परिवार है, महत्वपूर्ण है, साहित्य-लिपि संपन्न है, प्राचीनतम है। अध्ययन की दृष्टि से भी इसका अध्ययन अधिकतम हुआ है। यह भाषा-परिवार सर्वाधिक विकसित भी है। अस्तु, इस परिवार की भाषाएं भारत, ईरान, आर्मीनिया, संपूर्ण यूरोप, अमेरिका, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया आदि में बोली जाती हैं। इस परिवार के भाषा-भाषी सर्वाधिक हैं।

इस परिवार का नामकरण एक विवादास्पद विषय रहा है। किंतु आज भारोपीय भाषा-परिवार नाम अधिक प्रसिद्धि-प्राप्त है। सर्वप्रथम इस परिवार का नाम इंडोजर्मनिक रखा गया था, किंतु इस परिवार में केल्टी शाखा की भाषाएं भी थीं, जो जर्मन भाषा नहीं थी; अत: यह नाम उचित न होने के कारण इसका नाम इंडोकैल्टिक रखा गया। इसके सांस्कृतिक, जैफाइट, काकेशियन आर्य, इंडो-यूरोपियन आदि नाम भी रखे गए हैं। किंतु आज भारोपीय नाम ही अधिक उपयुक्त होने के कारण प्रचलित है।

टिप्पणी

भारोपीय भाषा-परिवार की दो प्रधान शाखाएं हैं– (1) भारोपीय शाखा (2) भारत ईरानी शाखा। इन दोनों के अतिरिक्त इसके वर्गीकरण भी किए जा सकते हैं–

(क) कैल्टिक शाखा (ख) जर्मन शाखा (ग) इटालिक शाखा (ग) ग्रीक शाखा (घ) तोखारी शाखा (ङ) अल्बेनियन शाखा (च) लैटोस्लाह्विक शाखा (छ) आर्मेनियन शाखा (ज) आर्य या हिंदी-ईरानी शाखा।

इस भाषा-परिवार की भाषाओं की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(1) भाषाएं श्लिष्ट योगात्मक बहिर्मुखी विभक्ति-प्रधान हैं। किंतु आज ये भाषाएं भी निरंतर योगात्मकता की ओर उन्मुख हैं। (2) धातुएं एकाक्षर हैं। (3) प्रत्यय कृदंत एवं तद्धितांत हैं, जिनके कारण अनेक रूप एवं शब्द बनते हैं। (4) इस परिवार में विभिन्न संबंधों के द्योतन के लिए विभक्तियां अवश्य हैं। (5) समास इन भाषाओं का अद्‌भुत तत्व है। समास कर देने पर शब्दों की विभक्तियों का लोप हो जाता है। कभी-कभी समस्त शब्द का अर्थ भी परिवर्तित हो जाता है। (6) भारोपीय परिवार की भाषाएं प्रत्यय-बहुल हैं, क्योंकि ये विभिन्न स्थानों पर विकसित हुई हैं।

## भारोपीय भाषा परिवार

भारोपीय शब्द भारत + यूरोपीय का संक्षिप्त रूप है। यह Indo-European का अनुवाद है। भारोपीय भाषा परिवार में भारतवर्ष से यूरोप तक फैली हुई भाषाओं का समावेश है। इस परिवार की दस शाखाएं हैं–

**भारोपीय-परिवारे, ईरानी-भारती द्वयी।**

**बाल्टो-स्लाविकी चैव, आर्मीनी ग्रीक कैल्टिकी।।**

**जर्मानिकी च तोखारी, हित्ती अल्बानिकी तथा।**

**इटालिकी च दशमी, शाखाश्चैताः प्रकीर्तिताः।।**

भारोपीय भाषा परिवार संसार के अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। यह संसार की प्राचीनतम साहित्यिक निधियों एवं संस्कृतियों का क्षेत्र रहा है। इसका विस्तार बहुत बड़े क्षेत्र पर है। यह यूरोप से भारतवर्ष तक विस्तृत है। इस भाषा परिवार की भाषाओं का अध्ययन तथा विवेचन अन्य परिवारों की तुलना में अधिक हुआ है।

**नामकरण**– यूरोशिया खंड में सबसे महत्वपूर्ण इस भाषा परिवार के नामकरण की समस्या रही है। अनेक विद्वानों ने इसे अलग-अलग नामों से संबोधित किया है।

1. इस भाषा परिवार को पहले **'इंडो जर्मनिक'** नाम दिया गया, क्योंकि यह यूरोप में जर्मन भाषाओं से एशिया में भारत की भाषाओं तक फैला है। परंतु यूरोप में जर्मन भाषा की पश्चिम कैल्टिक भाषा भी इसी परिवार की भाषा है इसलिए आगे चलकर जर्मनी से बाहर के देशों ने इस नाम को त्याग सा दिया।

टिप्पणी

2. इस परिवार का दूसरा नाम **'इंडो कैल्टिक'** भाषा परिवार रखा गया, किंतु इसका भी अधिक प्रचलन नहीं हो सका है।
3. 'संस्कृत' भाषा से यूरोपीय विद्वानों का परिचय होने पर कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार को संस्कृत भाषा परिवार नाम दिया, क्योंकि उनका मत था कि इस परिवार की भाषाएं संस्कृत भाषा से निकली हैं किंतु यह नाम भी सर्वमान्य नहीं हो पाया।
4. भारोपीय परिवार को 'आर्य-परिवार' भी नाम दिया गया, क्योंकि विश्वास किया जाता था कि इस परिवार के बोलने वाले आर्य जाति के हैं। किंतु सभी व्यक्ति आर्य नहीं हैं, इसलिए यह नाम भी बाद में त्याग दिया गया।
5. कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार के लिए **'काकेशियन भाषा परिवार'** नाम दिया, किंतु यह भी अधिक ग्राह्य नहीं हो सका।
6. इस भाषा परिवार को हजरत के तीसरे बेटे जैफ के नाम पर **'जैफाइट'** या **'जफेटिक भाषा परिवार'** नाम दिया गया। यह नामकरण बहुत कुछ सेमेटिक या हैमेटिक नाम की समानता पर दिया गया था, किंतु अब यह नाम भी अप्रचलित है।

   इस परिवार को 'इंडो हिताइट' (Indo Hittite) नाम भी दिया गया तथा भारोपीय भाषा परिवार को इसका एक भाग माना गया है।
7. मूल भारोपीय भाषा के बोलने वाले लोगों को विरोस् (Wiros) नाम दिया गया है। इसलिए इस भाषा परिवार को **'विरोस भाषा परिवार'** भी कहा गया है। विरोस शब्द को संस्कृत आदि भाषाओं के 'वीर' शब्द का मूल माना गया है, जैसे संस्कृत में वीर, लैटिन में Vir या Uir प्राचीन आइरी में Fer तथा जर्मन भाषाओं में Wer शब्द पाया जाता है।

   ई.पू. 2400 में इंडो-हिट्टाइट भाषा की दो शाखाएं हो गई थीं– 'एनाटोलियन' तथा 'भारोपीय'। अत: इन दोनों भाषाओं के नाम से इस परिवार को भारोपीय एनाटोलियन नाम दिया जा सकता है।
8. इस परिवार के लिए सबसे अधिक प्रचलित नाम **'भारोपीय भाषा परिवार'** है। यद्यपि इस नामकरण का आधार भौगोलिक है, फिर भी इस परिवार की भाषाएं इस क्षेत्र (यूरोप से भारत तक) के बाहर अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका में भी बोली जाती हैं। अभी तक 'भारोपीय भाषा परिवार' नाम ही सर्वाधिक मान्य है। वैसे बहुत से विद्वान इसके 'इंडो-हिट्टाइट' नाम के समर्थक हैं।

## भारोपीय भाषा परिवार का महत्व

इस भाषा परिवार का अत्यधिक महत्व है। भाषा विज्ञान की आधारशिला इसी परिवार द्वारा डाली गई है। इस भाषा परिवार की भाषाओं की जितनी अधिक विवेचना एवं खोज हुई है तथा जितना अध्ययन किया गया है, उतना अन्य किसी भाषा परिवार का नहीं। इस भाषा परिवार में संसार की प्राचीनतम भाषाएं आती हैं, जिनमें विश्व की प्राचीनतम

टिप्पणी

साहित्यिक निधि सुरक्षित है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन जैसी प्राचीन एवं महत्वपूर्ण भाषाएं इसी परिवार की भाषाएं हैं। यह भाषा परिवार विश्व के बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। भारत, यूरोप, अमेरिका के दोनों महाद्वीपों, ऑस्ट्रेलिया एवं कुछ अफ्रीकी क्षेत्रों में इसी परिवार की भाषाओं का प्रयोग हो रहा है। भाषाओं के क्रमिक विकास को दिखाने वाला साहित्य इस परिवार में पाया जाता है। इस परिवार की प्राचीन भाषाओं के अध्ययन से यह सिद्ध किया जाता है कि कभी मानव का मूल स्थान मध्य एशिया रहा था तथा भाषाएं परस्पर संबंधित थीं। ग्रीक, लैटिन, संस्कृत के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन तीनों भाषाओं की जननी एवं मूल भाषा एक ही रही होगी। इस प्रकार विश्व की प्राचीनतम संस्कृति, साहित्यिक विकास, भाषा विकास, मानव की आदिभूमि, ध्वनि संबंधी तथ्यों की एकता, भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आदि दृष्टिकोणों से भारोपीय परिवार का अपना विशिष्ट इतिहास है। आज भी इस परिवार की भाषा बोलने वाले संसार में सबसे अधिक है तथा उनका विश्व राजनीति में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व को ज्ञान की ज्योति से आलोकित करने का श्रेय इसी भाषा परिवार को है। इस भाषा परिवार के लोग आज विज्ञान के क्षेत्र में भी विश्व के अन्य भाषा वर्गों की अपेक्षा आगे हैं। इस प्रकार भारोपीय भाषा परिवार का अत्यंत महत्व है।

## भारोपीय भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएं

भारोपीय भाषा परिवार की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. इस परिवार की भाषाएं श्लिष्ट-योगात्मक हैं।
2. इस परिवार की भाषाओं में अर्थ तत्व से संबंध तत्व का संयोग बहिर्मुखी होता है।
3. इसकी भाषाएं वियोगावस्था की ओर बढ़ रही हैं।
4. धातुएं एकाक्षरी होती हैं।
5. धातुओं में कृत् तथा तद्धित प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए जाते हैं।
6. उपसर्ग आदि का प्रयोग करने से धातुओं का अर्थ बदल जाता है।
7. इस परिवार की भाषाओं में समास रचना की जाती है। समास बनाते समय विभक्तियों का लोप हो जाता है।
8. इन भाषाओं में स्वर परिवर्तन से संबंध तत्व का परिवर्तन हो जाता है।
9. इनमें प्रत्यय पहले स्वतंत्र अर्थ प्रकट करते थे परंतु बाद में इनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गई।
10. इस परिवार की भाषाओं के बोलने वाले जनसंख्या में सबसे अधिक हैं।
11. इसकी भाषाएं संसार के बहुत बड़े क्षेत्र में फैली हैं तथा व्यापक हैं।
12. इसमें संसार का प्राचीनतम तथा श्रेष्ठ साहित्य पाया जाता है।
13. इसमें विश्व की उन्नत सभ्यताओं का विकास हुआ है।
14. इस भाषा परिवार में अत्यंत विकसित वैज्ञानिक साहित्य पाया जाता है।

15. इसे बोलने वाले विश्व के राजनैतिक क्षेत्र में सबसे आगे हैं।
16. इसकी भाषाओं का अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक अध्ययन किया गया है।
17. इस भाषा परिवार के अनुशीलन के परिणामस्वरूप ही 'भाषा विज्ञान' का विकास हुआ है।

टिप्पणी

## मूल भारोपीय ध्वनियां

मूल भारोपीय भाषा परिवार की ध्वनियों के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। सन् 1870 ई. में अस्कोली (Ascoli) ने इस दिशा में विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। ध्वनियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है–

**मूल स्वर (ह्रस्व)** अ एं ओ।

**मूल स्वर दीर्घ–**आ ई ऊ

**(मिश्र ह्रस्व)** अइ अऋ अलृ अउ अन् अम्

एइ ऍऋ एलृ ऍउ ऍन ऍम

ओइ ओऋ ओलृ ओउ ओन ओम

**स्वर (मिश्र दीर्घ)** आइ आऋ आलृ आउ आन आम

एइ एऋ एलृ एउ एन एम

ओइ ओऋ ओलृ ओउ ओन ओम

**अंतःस्थ (स्वर)** इ ऋ लृ उ न म

**अंतःस्थ (व्यंजन)** य् र् ल् व् न् म्

**व्यंजन**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **कवर्ग**– | (1) | क् | ख् | ग् | घ् |
| | (1) | क़् | ख़् | ग़् | घ़् |
| | (3) | क्व् | ख्व् | ग्व् | घ्व् |
| **तवर्ग**– | | त् | थ् | द् | ध् |
| **पवर्ग**– | | प् | फ् | ब् | भ् |
| **ऊष्म**– | | स् | (ज़्) | | |

मूल भारोपीय ध्वनियों के वर्गीकरण के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं, अतः ध्वनियों के वर्गीकरण में भिन्नता पाई जाती है।

इन ध्वनियों में कंठ्य-तालव्य कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्) ध्वनियां आगे चलकर अन्य भाषाओं में कंठ्य कवर्ग (क़्, ख़्, ग़्, घ़्) या कुछ भाषाओं में ऊष्म (श्, स्) हो गईं। इस प्रकार जिन भाषाओं में क् मूलतः बना रहा, उन्हें 'केंतुम वर्ग की भाषाएं तथा जिन भाषाओं में 'क्' बदल कर 'श्' या 'स' (ऊष्म) हो गया, उन्हें 'शतम्' वर्ग की भाषाएं कहा गया।

टिप्पणी

इस बात को सरलता से समझने योग्य बनाने के लिए भिन्न-भिन्न भारोपीय भाषा से 'सौ' के प्रतीक शब्दों को लिया गया है। विद्वानों का अनुमान है कि 'सौ' के लिए मूल भारोपीय भाषा में क्तोम (Kmtom) शब्द था जो बाद में 'शतम्' तथा 'केंतुम्' भाषाओं में इस प्रकार हो गया–

| 'शतम्' वर्ग | | | केंतुम' वर्ग | | |
|---|---|---|---|---|---|
| संस्कृत | – | शतम् | लैटिन | – | केंतुम |
| अवेस्ती | – | सतम् | ग्रीक | – | हेक्टोन (He-katon) |
| फारसी | – | सद | इटैलियन | – | केंतो |
| प्राकृत | – | सदं, सञ्ं | फ्रेंच | – | केंत |
| हिंदी | | सौ | स्पैनिश | – | क्लेत्नो (Cletno) |
| लिथुआनी | – | शिस्तन् (Szimtas) | प्राचीन आइरिश | – | केट् |
| | | या स्तिम्तास | वर्तमान आइरिश | – | क्यूड |
| प्राचीन बुल्गारी | – | सुतो | गेलिक | – | क्यूड (Ceud) |
| रूसी | – | स्तो | ब्रीटन | – | कैंट |
| | | | वेल्श | – | कैंट (Cant) |
| | | | तुखारियन | – | कंध (Kandh) |

इस प्रकार उपरलिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल भारोपीय भाषा की 'क्' ध्वनि 'केंतुम' वर्ग की भाषाओं में 'क्' ही बनी रही किंतु 'शतम्' वर्ग की भाषाओं में परिवर्तित होकर 'श्' या 'स' हो गई। केंतुम वर्ग में लैटिन, ग्रीक, इटैलियन, कैल्टिक, ट्यूटानिक, तोखारी, भारतीय हिट्टाइट आदि तथा शतम् या सतम् वर्ग की भारतीय भाषाएं, ईरानी, आर्मेनियन, बाल्टिक-स्लैवोनिक, वेल्वानियन आदि भाषाएं आती हैं। इस विभाजन को कुछ विद्वान क्रमशः पश्चिमी वर्ग (केंतुम्) तथा पूर्वी वर्ग (शतम्) कहते हैं, किंतु यह वर्गीकरण उचित नहीं माना गया है।

मूल भारोपीय भाषा की 'न्' अथवा 'म्' ध्वनियों के साथ 'शतम्' वर्ग में मात्र एक स्वर आता है। किंतु ध्वनियां (न् व म्) लुप्त हो जाती हैं तथा केंतुम् वर्ग में एक अतिरिक्त स्वर का और समावेश हो जाता है।

उदाहरणार्थ–

मूल भारोपीय भाषा– dekom (देवम्=देक्+म्)

लैटिन = देकेम (decem)

गाथिक = तैखुम (taihum)

संस्कृत = दश

इसी प्रकार–

मूल भारोपीय = 'क्म्तोम्' \(kmtom)

लैटिन = सेंटम् (centum)

संस्कृत = शतम्

मूल भारोपीय = सेप्त्न (septon)

लैटिन = सेप्तम् (septum)

संस्कृत = सप्त

टिप्पणी

मूल भारोपीय भाषा की कंठ्योष्ठ कवर्ग ध्वनियां केंतुम वर्ग की भाषाओं में उसी प्रकार पाई जाती हैं, किंतु 'शतम्' वर्ग की भाषाओं में कंठ्यत्व को ही प्राप्त हो जाती हैं, ओष्ठ्यत्व का लोप हो जाता है। अर्थात मूल भारोपीय भाषा की 'क्व्' ध्वनि लैटिन भाषा में 'क्व्' ही बनी रही किंतु संस्कृत आदि में क् हो गई तथा ओष्ठ्य ध्वनि व् का लोप हो गया।

भारोपीय भाषाओं को 'केंतुम्' तथा 'शतम्' वर्गों में बांटा गया है। इन वर्गों को दो भागों में विभाजित किया गया है–1. केंतुम और 2. शतम् वर्ग।

1. **केंतुम वर्ग**- इस वर्ग की भाषाओं को पांच शाखाओं में विभाजित किया गया है– (क) कैल्टिक, (ख) ट्यूटानिक (जर्मन), (ग) लैटिन, (इटैलियन), (घ) हेलेनिक या ग्रीक, (ङ) हिट्टाइट (हित्ती), (च) तोखारी (तुखी)।

(क) **कैल्टिक**– इस शाखा के बोलने वाले प्राचीन काल में समस्त पश्चिमी तथा मध्य यूरोप एवं एशिया माइनर में रहते थे। आजकल इसे बोलने वाले यूरेशिया के पश्चिमी भाग के कुछ क्षेत्रों में रहते हैं। ये लोग आयरलैंड, वेल्स, स्कॉटलैंड, मानद्वीप एवं ब्रिटेनी व कार्नवाल में रहते हैं। इस शाखा की भाषाएं हैं– स्कॉटलैंड की स्कॉच या स्कॉटिश भाषा (Scotch or Scottish), आयरलैंड की आइरिश (Irish), वेल्स की वेल्श (Welsh) तथा फ्रांस के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा ब्रेटन (Breton) जो ब्रिटनी प्रांत की भाषा है। कैल्टिक भाषा लैटिन भाषा से बहुत समानता रखती है।

लैटिन तथा कैल्टिक दोनों भाषाओं में पुल्लिग तथा नपुंसक लिंग ओकारांत संज्ञाओं में संबंध कारक हेतु 'ई' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों भाषाओं में क्रियार्थक संज्ञा बनाते समय शन (Tion) प्रत्यय प्रयुक्त किया जाता है। दोनों भाषाओं में कर्म वाच्य की रचना समान रूप से होती है। कैल्टिक तथा लैटिन दोनों भाषाओं में दो प्रकार के उच्चारण भेद पाए जाते हैं। प्रथम 'क' वर्ग तथा दूसरा 'प' वर्ग। 'क' वर्ग गायलिक कहलाता है, जिसमें आयरिश, स्कॉच तथा मैक्स भाषाएं आती हैं। 'प' वर्ग ब्रिटानिक कहलाता है, जिसमें वेल्स, कार्निश तथा ब्रिटन भाषाएं आती हैं।

(ख) **ट्यूटानिक (जर्मन)**– यह शाखा भारोपीय परिवार की महत्वपूर्ण तथा श्रेष्ठ शाखा है। अंग्रेजी भी इसी शाखा की एक भाषा है, जो विश्व की अत्यंत

टिप्पणी

महत्वपूर्ण भाषा है। ये भाषाएं संयोगात्मक से वियोगात्मक हो रही हैं। इन भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन प्रधानतया होता है। इन भषाओं में बलात्मक स्वराघात का विकास हुआ है। इनमें ध्वनि परिवर्तन दो बार हुआ। पहला वर्ण परिवर्तन प्रागैतिहासिक काल में हुआ था। फलस्वरूप ये भाषाएं यूरोपीय भाषाओं से कुछ दूर सी हो गईं। दूसरा वर्ण परिवर्तन सातवीं शताब्दी में घटित हुआ। इस शाखा को तीन भागों में बांटा गया है– (अ) पूर्वी उपशाखा, (ब) उत्तरी उपशाखा, (स) पश्चिम उपशाखा।

(अ) **पूर्वी उपशाखा**– इसके अंतर्गत प्राचीन 'गॉथिक' भाषा आती है, जो अब लुप्त प्राय हो गई है।

(ब) **उत्तरी उपशाखा**– इसके अंतर्गत प्राचीन नार्स (Norse) या आइलैंडी भाषा आती है। इसमें सातवीं सदी से साहित्य पाया जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी में यह पश्चिमी तथा पूर्वी दो भागों में बंट गई। पश्चिमी के अंतर्गत आइसलैंडी तथा नार्वेजी (नार्वे की भाषा) तथा पूर्वी के अंतर्गत स्वीडी (स्वीडन की भाषा) तथा डेनमार्क की डेनिश भाषा है।

(स) **पश्चिमी उपशाखा**– इसके अंतर्गत दो भाग हैं– उच्च जर्मन तथा निम्न जर्मन। उच्च जर्मन का क्षेत्र जर्मनी का दक्षिणी पर्वतीय तथा निम्न जर्मन का क्षेत्र उत्तरी मैदानी भाग है। निम्न जर्मन भाषा से डच भाषा (हॉलैंड की), बेल्जियम की फ्लेमी तथा अंग्रेजी का विकास हुआ है। अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है, जिसमें सातवीं शताब्दी से साहित्य पाया जाता है।

(ग) **लैटिन (इटैलिक)**– इस भाषा का प्रधान क्षेत्र इटली देश था। इस शाखा की दो प्राचीन भाषाएं भी थीं– (1) 'ओस्कन' (Oscan) तथा (2) 'अम्ब्रियन' (Umbrian)। इन दोनों भाषाओं का लोप ई.पू. 500 में हो गया था। बाद में इसी क्षेत्र पर लैटिन का विस्तार हो गया। यह प्राचीन रोम साम्राज्य की भाषा रही है। रोम नगर के समीप के क्षेत्रों की भाषा लैटिन थी। इस भाषा के दो रूप पाए जाते हैं– (1) साहित्यिक या लिखित तथा (2) कथित। लैटिन भाषा में रोमन कैथॉलिक संप्रदाय वालों का धार्मिक साहित्य सुरक्षित है। लैटिन भाषा (बोलचाल) से वर्तमान फ्रेंच, इटैलिक, स्पेनिश, पुर्तगाली तथा रूमानी भाषाओं का विकास हुआ है। फ्रेंच भाषा संसार की उन्नत, श्रेष्ठ एवं समृद्ध भाषाओं में मानी जाती है। रोम के समीप की लैटिन को 'रोमांस' नाम दिया जाता है। रूमानी भाषा रूमानिया में बोली जाती है। यूरोपीय भाषाओं पर लैटिन का उसी प्रकार प्रभाव था जैसे भारतीय आर्य भाषाओं पर संस्कृत का है। यह भाषा वियोगात्मक है। कैल्टिक तथा इटैलिक भाषाओं में बहुत समानता पाई जाती है।

(घ) **ग्रीक या हेलेनिक**– ग्रीक शाखा में प्राचीन काल में अनेक बोलियां थीं। यह भारोपीय परिवार की प्राचीनतम शाखाओं में से एक है। इसमें लिखे गए होमर कृत इलियड और ओडिसी महाकाव्यों में भाषा का प्राचीन रूप पाया जाता है, जो 100 ई.पू. का है। सुकरात तथा अरस्तू द्वारा लिखे गए ग्रंथ ग्रीक भाषा की निधि हैं। ग्रीक

टिप्पणी

की प्राचीन बोलियों में दो बोलियां प्रमुख थीं– (1) एटिक (Atic) एवं (2) डेरिक (Doric)। 400 वर्ष ई.पू. से एटिक भाषा प्रमुख रूप से प्रचलित हो गई तथा इसी से आधुनिक ग्रीक भाषा का विकास हुआ है। ग्रीक भाषा तथा संस्कृत परस्पर समीप हैं। इनमें प्रमुख समानताएं इस प्रकार हैं– (1) ग्रीक तथा संस्कृत भाषाओं में संगीतात्मक स्वराघात की प्रधानता है। (2) दोनों भाषाएं संयोगात्मक हैं। (3) दोनों में शब्दों के बहुत अधिक रूप पाए जाते हैं। (4) संस्कृत में परस्मैपद तथा आत्मनेपद होते हैं उसी प्रकार ग्रीक में एक्टिव तथा मिडिल वॉयस होते हैं। (5) संस्कृत भाषा में संज्ञा और सर्वनाम के रूपों की अधिकता है तो ग्रीक में क्रिया तथा अव्यय रूपों की। (6) संस्कृत में व्यंजन अधिक पाए जाते हैं लेकिन ग्रीक में स्वर अधिकता से पाए जाते हैं। (7) संस्कृत तथा ग्रीक भाषाओं में द्विवचन, समास, निपात आदि की समानताएं पाई जाती हैं।

ग्रीक भाषा का क्षेत्र अब संकुचित हो गया है। रोमन साम्राज्य के समय भूमध्य सागर के चारों ओर के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता था। ग्रीक शाखा की मुख्य भाषाएं रोकानियम, मेस्सेनियन, कैरिबियन, मेगारन, क्रीटन, फोक्सिन, लोक्रिमन, एलिसन, थेसालेनियन, एओलिमन, बोइओटिअन, इओनिक, एट्रिक आदि हैं।

(ङ) **हिट्टाइक (हित्ती)**– इस भाषा का पता उस समय चला जब सन् 1906-7 में उत्तरी एशिया माइनर के बोगाज (कोई स्थान) पर हुई खुदाई में कुछ कीलाक्षर लेख प्राप्त हुए। यह भाषा एशिया माइनर में 1900 से 1300 ई.पू. बोली जाती थी। प्राप्त लेखों में प्रथम हित्ती साम्राज्य की जानकारी मिलती है तथा तत्कालीन भाषा एवं इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। हित्ती भाषा को कुछ विद्वान अनिश्चित वर्ग की भाषा मानते हैं, किंतु अध्यापक हांजी के अनुसार यह भारोपीय परिवार की ही भाषा है। हित्ती भाषा की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(1) हित्ती भाषा की विभक्तियों तथा सर्वनाम की संस्कृत तथा लैटिन से बहुत समानता पाई जाती है। (2) कारक तथा क्रिया रचनाएं भारोपीय भाषाओं के समान हैं। (3) संस्कृत तत् (वह) का रूप भी हित्ती में 'तत्' ही मिलता है, लेकिन संस्कृत कः (कौन) के लिए हित्ती भाषा में 'कुइस' रूप प्राप्त होता है। हित्ती भाषा के कुछ लक्षण सेमेटिक भाषाओं से भी मिलते हैं।

(च) **तोखारी (तुखी) भाषा**– यह मध्य एशिया के तुरफान की भाषा है। इसका पता सन् 1904 ई. में मध्य एशिया के चीनी तुर्किस्तान (सिक्यांग प्रदेश) में तोखारी भाषा के लेख प्राप्त होने पर चला। यह शकों की भाषा है तथा 700 ई. तक यह लुप्त हो गई थी। तोखारी भाषा यूराल-अल्टाई से प्रभावित है। तोखारी की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(1) इस भाषा में स्वरों संबंधी जटिलता अल्प है। (2) संख्या पद तथा सर्वनाम भारोपीय परिवार की तरह है। (3) शब्द भंडार संस्कृत से बहुत समानता रखता है। (4) तोखारी में संस्कृत की भांति आठ विभक्तियां पाई जाती हैं। (5) क्रिया रूप भी सरल है। (6) 'सौ' शब्द के लिए तोखारी में 'कंध' शब्द पाया जाता है, यही

कारण है कि इसकी गणना 'केंतुम्' वर्ग में की गई है। (7) इस भाषा में संस्कृत की तरह ही संधि नियम पाए जाते हैं। संस्कृत से इसकी समानता इस प्रकार देखी जा सकती है–

टिप्पणी

| | |
|---|---|
| संस्कृत | तोखारी |
| पितृ | पाचर |
| मातृ | माचर |
| भ्रातृ | प्राचर |
| वीर | वीर (wir) |

**शतम् वर्ग**

इस वर्ग को भी निम्न पांच शाखाओं में बांटा गया है–

(क) अल्बानी (अल्बेनियन) या इलीरियन, (ख) बाल्टिक, (ग) स्लैवोनिक, (घ) आर्मीनी (आर्मेनियन), (ङ) आर्य (हिंद-ईरानी)।

(क) **अल्बेनियन या इलीरियन**– इस भाषा का क्षेत्र एडियॉटिक सागर के तटीय क्षेत्र में कैरेवियन की खाड़ी से दक्षिण-पूर्व इटली तक था। इसकी अन्य भाषाएं लुप्त हो चुकी हैं केवल अल्बानी भाषा मात्र शेष है। यह अल्बानिया के पहाड़ी क्षेत्र में बोली जाती है तथा इनके बोलने वाले लगभग 15 लाख हैं। अल्बानी की दो प्रधान बोलियां हैं– (1) घेघ तथा (2) टॉस्क। घेघ उत्तरी भाग में तथा टॉस्क दक्षिणी भाग में बोली जाती है। अल्बानी में पंद्रहवीं शताब्दी से लेख मिलते हैं। इस भाषा में ग्रीक, लैटिन, तुर्की, स्लावोनिक भाषाओं के शब्द अधिक मात्रा में मिल गए हैं।

(ख) **बाल्टिक**– बाल्टिक शाखा के अंतर्गत तीन भाषाएं सम्मिलित हैं– (1) प्राचीन प्रशन (प्राशियाई) (Old Prussian), (2) लिथुआनी एवं (3) लेटी (Lettic)। इनमें प्राचीन प्रशन जर्मनी देश के प्राशिया प्रदेश की भाषा थी, जो अब लुप्त हो चुकी है। इस भाषा का साहित्य सोलहवीं शताब्दी तक पाया जाता है। लिथुआनी क्षेत्र की भाषा है, जो प्रशिया क्षेत्र के उत्तर पूर्व में स्थित है। इस भाषा में सोलहवीं शताब्दी से साहित्य प्राप्त होता है। इस भाषा का विकास अत्यंत मंद गति से हुआ है। इसीलिए भाषा संबंधी परिवर्तन बहुत कम हुए हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस भाषा का अत्यधिक महत्व है। यह भाषा ग्रीक तथा संस्कृत के बहुत समीप है। इसमें संस्कृत और ग्रीक की भांति संगीतात्मक स्वराघात तथा द्विवचन भी पाए जाते हैं। लेटी या लेटिक (Lettic) भाषा, लैटविया (Latuia) राज्य की भाषा है। इसमें भी 16वीं शताब्दी के बाद से साहित्य पाया जाता है। यह राज्य अब रूस में है।

(ग) **स्लैवोनिक (स्लावी)**– यह भाषा काले सागर के उत्तर में पूर्वी यूरोप के बहुत बड़े क्षेत्र में फैली है। इसमें रूस, पौलेंड, गलसिया, ऑस्ट्रिया, हेमिया, सर्विया,

टिप्पणी

मोराविया, बल्गारिया तथा स्लावोनिया क्षेत्र आते हैं। इसमें 900 ई. से साहित्य प्राप्त होता है। स्लावी के तीन उपविभाग हैं– (1) दक्षिणी (2) पश्चिमी तथा (3) पूर्वी। दक्षिणी स्लावी भाषाओं में सबसे महत्वपूर्ण तथा प्राचीन भाषा बल्गेरियन है। इसमें 900 ई. का बाइबिल का अनुवाद प्राप्त होता है। यह संस्कृत और ग्रीक के बहुत समीप है तथा इसमें संस्कृत की तरह तीन वचन पाए जाते हैं। वर्तमान बल्गेरियन पूरी तरह वियोगात्मक हो गई है तथा बहुत से विदेशी शब्द (ग्रीक, रूमानी, अल्बानी तथा तुर्की भाषाओं के) इसमें घुल-मिल गए हैं। दक्षिणी स्लावी भाषाओं में दूसरी प्रमुख भाषा सर्बो-क्रोटी (Serbo-Croatian) है, जो यूगोस्लाविया में बोली जाती है। पश्चिमी स्लावी भाषाओं में चेक (Czech) तथा पोलिश (Polish) भाषाएं प्रमुख हैं। चेक भाषा चेकोस्लोवाकिया की भाषा है। पोलिश भाषा पोलैंड में बोली जाती है। इस भाषा में 13वीं शताब्दी से साहित्य प्राप्त होता है। अब यह अत्यंत विकसित भाषा है। पूर्वी स्लावी भाषाओं में 1900 ई. से साहित्य पाया जाता है। इसमें महारूसी, श्वेत रूसी, लघुरूसी भाषाएं प्रमुख हैं। इनमें महारूसी भाषा सबसे प्रधान है। यह मास्को के आसपास बोली जाती है और 18वीं शताब्दी से यह टकसाली तथा राजभाषा के रूप में स्थापित हो गई है। इसके बोलने वालों की संख्या 10 करोड़ से अधिक है तथा अब यह विश्व की महत्वपूर्ण भाषाओं में से एक है।

श्वेत रूसी रूस के दक्षिणी भागों में बोली जाती है। लघु रूसी यूक्रेन प्रांत की भाषा है। इसे रूथियन (Ruthenian) भी कहते हैं। लघु रूसी के बोलने वाले ऑस्ट्रिया के गलीसिया प्रांत में पाए जाते हैं। इसे बोलने वाले 3 करोड़ व्यक्ति हैं।

(घ) **आर्मीनी (आर्मेनियन)**– आर्मेनियन भाषाएं आर्मीनिया में बोली जाती हैं। ये 800 ई. से यहां प्रचलित हैं। इनमें ईरानी शब्द अधिक पाए जाते हैं। इस शाखा की वर्तमान भाषाएं अपने प्राचीन रूप से बहुत परिवर्तित हो गई हैं। इन भाषाओं में काकेशी तथा सामी भाषाओं के शब्द भी पाए जाते हैं। प्राचीन आर्मीनी का साहित्य 400 ई. से 1100 ई. तक पाया जाता है। इसमें लिखा अधिकांश साहित्य धार्मिक है, जिसका प्रयोग धार्मिक कार्यों में संस्कृत तथा लैटिन की तरह होता है। इस शाखा की भाषाएं बाल्टिक, स्लैवोनिक एवं भारत-ईरानी भाषाओं के बीच स्थित हैं। यह शाखा काला सागर तथा काकेशस पर्वत के दक्षिणी भागों में बोली जाती है। अनुमानतः इसके बोलने वाले 50 लाख हैं। यूरोप तथा एशिया की सीमा पर बोली जाने वाली भाषा 'फ्रीजियन' इसी शाखा की भाषा है। आधुनिक आर्मेनियन के दो मुख्य रूप हैं। एक बोली यूरोपीय क्षेत्र में बोली जाती है, जिसे स्तुबुल कहते हैं तथा दूसरी एशियाई क्षेत्र में बोली जाती है जिसे अराराट कहते हैं। स्वरों की दृष्टि से आर्मीनी शाखा यूरोपीय भाषाओं के समीप है किंतु व्यंजनों की दृष्टि से भारत-ईरानी भाषाओं के पास है।

(ङ) **आर्य (हिंदू-ईरानी)**– इस शाखा को 'भारत-ईरानी' भी कहते हैं। यह भारोपीय परिवार की अत्यंत महत्वपूर्ण शाखा है। इसमें विश्व का प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ

टिप्पणी

साहित्य पाया जाता है। ऋग्वेद के समान पारसियों का धार्मिक 'अवेस्ता' भी प्राचीन है जो 700 ई.पू. का है। भाषा विज्ञान के अध्ययन हेतु इस शाखा की सामग्री का बहुत महत्व है। वस्तुत: भाषा विज्ञान का प्रारंभ पाश्चात्य विद्वानों के इस शाखा से परिचित होने के बाद हुआ। इस शाखा के आर्यों में से कुछ ईरान में तथा कुछ भारतवर्ष में आकर बस गए। इसी आधार पर आर्य शाखा के दो भाग हो गए– भारतीय तथा ईरानी। इसी से आर्य शाखा को 'भारत-ईरानी' भाषा कुल कहते हैं। भारत-ईरानी 'परिवार' की तीन शाखाएं हैं– (अ) ईरानी, (ब) दरद, (स) भारतीय आर्य भाषा।

(अ) **ईरानी**– इसमें साहित्य रचना अत्यंत प्राचीन समय से प्रारंभ हो गई थी, किंतु इसका अधिकांश प्राचीन साहित्य यूनानी तथा अरब आक्रमणकारियों ने जलाकर नष्ट कर डाला। आधुनिक समय में इसमें प्राचीन साहित्य अवेस्ता के रूप में कुछ शिलालेखों में पाया जाता है, जो 600 ई.पू. तक का माना जाता है। ईरानी की दो शाखाएं प्राचीन समय से ही हैं– (1) फारसी तथा (2) अवेस्ती। फारसी भाषा ईरान के पश्चिमी भाग में बोली जाती है तथा अवेस्ती भाषा का क्षेत्र ईरान का पूर्वी भाग है।

1. **फारसी**– इस भाषा में डेरियस प्रथम (ई.पू. 521-485) तथा अन्य एकेमेनियन राजाओं द्वारा उत्कीर्ण शिलालेखों में इसका प्राचीन रूप पाया जाता है। ससानी (Sassanian) राजाओं के समय (226 ई. से 651 ई.) फारसी के दूसरे रूप का उदय हुआ, जिसे पहलवी कहते हैं। मध्य कालीन फारसी या पहलवी को दो भागों में बांटा गया है–

   **(अ) हुज्वारेश–** इसकी लिपि तथा शब्द सेमिटिक परिवार से प्रभावित हैं। इसमें पारसियों का धार्मिक साहित्य भी पाया जाता है।

   **(आ) पारसी या पाजंद–** यह सेमिटिक प्रभाव से मुक्त है। यह भारतीय पारसियों की भाषा थी। यह आधुनिक फारसी मुसलमानों के प्रभाव के कारण अरबी शब्दों से बोझिल है। 'शाहनामा' (फिरदौसी कृत) इस भाषा की प्रमुख साहित्यिक रचना है। इसमें अब अरबी शब्दों के स्थान पर फारसी शब्दों के प्रयोग को प्रमुखता दी जाती है। इसमें आधुनिक फारसी की कई बोलियां पाई जाती हैं। ओसेटिक, कुर्दिश, दिलोदी, पुश्तो, पामीरी आदि इसकी बोलियां हैं।

2. **अवेस्ती**– ईरान के पूर्वी भाग की भाषा थी। इसका प्राचीन रूप पारसियों के धार्मिक ग्रंथ 'अवेस्ता' में पाया जाता है, जो एक प्राचीन कृति है। पूर्वी ईरानी (अवेस्ती) का मध्य काल का रूप 'सोग्दी' है। इसमें ईसाई तथा बौद्ध धर्म की पुस्तकें पाई गई हैं जो ईस्वी के प्रारंभ से 800 ई. तक की हैं। अफगानी (पुश्तो), बिलोची एवं पामीरी आधुनिक ईरानी से विकसित हुई हैं।

टिप्पणी

(ब) **दरद**– दरद भाषाओं का विस्तार पामीर तथा पश्चिमोत्तर पंजाब के बीच हुआ है। गठन की दृष्टि से दरद भाषा का स्थान ईरानी एवं भारतीय भाषाओं के बीच आता है। यह भारतीय भाषाओं से अधिक प्रभावित है। भारत में इसे 'पैशाची प्राकृत' कहा गया है। इसका प्रभाव मराठी, सिंधी, पंजाबी पर भी पड़ा है। दरद शाखा की तीन उपभाषाएं हैं– दरद, काफिर तथा खोवार। काफिर भाषा खोवार भाषा के पश्चिम में बोली जाती है। खोवार भाषा दर्दिस्तान तथा ईरान के बीच बोली जाती है। इसकी प्रधान बोली 'चित्राली' है। इन भाषाओं में साहित्य नहीं पाया जाता है। दरद शाखा की भाषाएं एवं बोलियां ये हैं– शीन: (गिलगिटी, ब्रोक्या); कश्मीरी (कष्टवारी) कोहिस्तानी-मैया, तोखारी, गार्वी आदि।

(स) **भारतीय आर्य भाषा**– भारतीय आर्य-भाषाओं को तीन भागों में बांट कर सुविधानुसार अध्ययन किया जा सकता है–

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल (2000 ई. पू. से 500 ई.पू. तक)
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल (500 ई.पू. से 1000 ई. तक)
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल (1000 ई. से आधुनिक समय तक)

1. **प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल** (लगभग 2000 ई.पू. से 500 ई.पू. तक)– प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का रूप वैदिक साहित्य में सुरक्षित रूप से पाया जाता है। 'ऋग्वेद' इसका सबसे प्राचीन साहित्य है। वेदों के अतिरिक्त अन्य कृतियों जैसे ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् आदि की भाषा वैदिक सस्कृत (छंदस्) है। संस्कृत के दो रूप माने जाते हैं– वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत। लौकिक संस्कृत में रामायण, महाभारत तथा संस्कृत के अन्य ग्रंथ और शिला-लेख सम्मिलित हैं। आगे चल कर संस्कृत में साहित्य रचना होती रही लेकिन जनभाषा का रूप परिवर्तित होने लगा और पालि तथा प्राकृतों का विकास हो गया।

2. **मध्यकालीन आर्य भाषा काल** (500 ई.पू. - 1000 ई.)– इस समय का साहित्य तत्कालीन जनभाषाओं में (पालि तथा प्राकृतों में) पाया जाता है। इस काल की भाषाओं में उच्चारण तथा व्याकरण की दृष्टि से अंतर हो गया था तथा वे संस्कृत से भिन्न हो गई थीं। (1) पालि भाषा में बौद्धधर्म का साहित्य तथा अशोक के शिलालेख पाए जाते हैं। पालि भाषा को प्राचीन प्राकृत कहा जाता है। (2) दूसरा भेद मध्य प्राकृत नाम का है। (इसका काल 500 ई.पू. से 500 ई. तक है)। मध्य प्राकृत में जैन प्राकृत तथा अन्य प्राकृतों– मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, पैशाची तथा महराष्ट्री को सम्मिलित किया जाता है। (3) प्राकृतों का तीसरा भेद अंत्य प्राकृत या अपभ्रंश है। अपभ्रंश साहित्य का रचना काल 500 ई. से

टिप्पणी

1000 ई. तक माना जाता है। अपभ्रंश से ही आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ है।

3. **आधुनिक आर्य भाषाकाल** (1000 ई. से अब तक)–अपभ्रंश या अवहट्ट के विभिन्न रूपों से 1000 ई. के बाद से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी, गुजराती, सिंधी, बंगला, असमिया, उड़िया तथा मराठी सम्मिलित हैं। राजस्थानी तथा बिहारी हिंदी की भाषाएं हैं। उत्पत्ति के अनुसार इन भाषाओं को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है–

1. **शौरसेनी अपभ्रंश**– हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती एवं पहाड़ी इस अपभ्रंश से निकली भाषाएं हैं।
2. **मागधी अपभ्रंश**– इससे निकली भाषाएं बिहारी, उड़िया, बंगला एवं असमिया हैं।
3. **अर्धमागधी**– इससे पूर्वी हिंदी विकसित हुई है।
4. **महाराष्ट्री**– इससे मराठी का विकास हुआ है।
5. **बाचड़ अपभ्रंश**– इससे सिंधी विकसित हुई है।
6. **केकय अपभ्रंश**– इससे लहंदा भाषा का विकास हुआ है।

सुनीति कुमार चटर्जी ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को इस प्रकार विभाजित किया है–

(क) **उदीच्य (उत्तरी) वर्ग**- (1) सिंधी, (2) लहंदा, (3) पंजाबी।

(ख) **प्रतीच्य (पश्चिमी) वर्ग**- (4) गुजराती, (5) राजस्थानी।

(ग) **मध्यदेशीय वर्ग**- (6) पश्चिमी हिंदी।

(घ) **प्राच्य (पूर्वी) वर्ग**- (7) पूर्वी हिंदी, (8) बिहारी, (9) उड़िया, (10) बांगला, (11) असमिया।

(ङ) **दक्षिणात्य (दक्षिणी) वर्ग**- (12) मराठी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के भाषा परिवारों में भारोपीय परिवार अत्यंत विस्तृत एवं समृद्ध है। भारोपीय परिवार की आर्य शाखा (भारत-ईरानी) का भी विशेष महत्व है। संसार का प्राचीनतम साहित्य इसी शाखा की निधि है।

## संस्कृतभाषा (वैदिकी लौकिकी च)

**परिचय**- संस्कृत भाषा का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है क्योंकि विश्व का प्राचीनतम लिखित ग्रन्थ ऋग्वेद है जो संस्कृत का भी प्राचीनतम उपलब्ध लिखित ग्रन्थ है जो लिखित रूप के साथ-साथ मौखिक परंपरा से भी हमें आज प्राप्त है। ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद भी आज हमें उपलब्ध हैं। इन सबकी भाषा में हमें कुछ भेद दिखाई पड़ता है। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भी हमें प्राप्त

टिप्पणी

हैं। संहिता (चारों वेद) से लेकर उपनिषद् तक का विकास केवल चिन्तन की दृष्टि से ही नहीं अपितु भाषा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। वेद और उपनिषद के मन्त्रों की तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों की भाषा में भेद है। यह भेद गद्य और पद्य की दृष्टि से भी है। इन भेदों के होने पर भी संहिता से लेकर उपनिषद् तक का वैदिक साहित्य एक जैसी भाषिक विशेषताओं से युक्त है। अतः इस भाषा को संस्कृत मानते हुए भी परवर्ती संस्कृत से भिन्न करने के लिए वैदिक संस्कृत कहा जाता है। पाणिनि ने इसे छन्दस् कहा है। उपनिषदों के बाद वेदांगसाहित्य का प्रणयन हुआ। यद्यपि यह लौकिक संस्कृत में माना जाता है तथापि इसमें वैदिक संस्कृत की कुछ प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। इसीलिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष में रचित सूत्रों में भी कुछ स्थलों की व्याख्या करने के लिए यह कह दिया जाता है कि सूत्र भी वैदिक भाषा के समान होते हैं। इसके लिए महाभाष्यकार पतंजलि ने कहा है- छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति। इन सबके बाद जब लौकिक संस्कृत में आदिकाव्य (रामायण) का प्रणयन हुआ तब इसे लौकिक संस्कृत में निबद्ध माना गया। यद्यपि रामायण में भी कुछ अपाणिनीय प्रयोग तथा प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं जिन्हें आर्ष प्रयोग कहकर समाहित किया जाता है। इसी प्रकार महाभारत तथा पुराणों में भी ऐसे प्रयोगों के वैदिक संस्कृत के समान होने पर भी इसे वैदिक संस्कृत नहीं कहा जाता अपितु ऐसे प्रयोगों को आर्ष मानकर समाधान किया जाता है।

अतः यह समझना चाहिए कि चारों वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद वैदिक संस्कृत में है। इसके बाद वेदांगसाहित्य, लौकिक संस्कृत में निबद्ध है, यद्यपि इसमें वैदिक संस्कृत की प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। रामायण, महाभारत तथा पुराण लौकिक संस्कृत में रचित हैं। इसी प्रकार इनके बाद उपलब्ध समस्त संस्कृत वाङ्मय लौकिक संस्कृत में ग्रथित है। कालिदास, बाणभट्ट, सुबन्धु, भास, शूद्रक, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, दण्डी से लेकर अम्बिकादत्तव्यास, क्षमाराव, मथुराप्रसाद दीक्षित, त्र्यम्बक शर्मा भण्डारकर, श्रीधर भास्करवर्णेकर तथा डॉ. रमाकान्त शुक्ल आदि तक प्रवाहमान संस्कृत रचना परंपरा लौकिक संस्कृत में ही निबद्ध है। एक संस्कृत ही किसलिए दो नामों से कही जाती है, इस तथ्य के अधिगम के लिए वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत की कुछ सामान्य विशेषताओं पर दृष्टिपात करना उपयोगी होगा।

## (क) वैदिक संस्कृत की विशेषताएं

वैदिक संस्कृत की निम्न विशेषताएं हैं-

1. **पदक्रम की अपरिवर्तनीयता**- पदों का क्रम बदलने से वेदों का वेदत्व भंग होता है। इसीलिए महाभाष्यकार पतंजलि ने लौकिक शब्दों का उदाहरण देते समय परस्पर निरपेक्ष शब्दों की सूची प्रस्तुत की है किन्तु वैदिक शब्दों का उदाहरण देते समय परस्पर सापेक्ष रूप में मन्त्रांश के रूप में एक क्रमविशेष में निबद्ध पदसमुदाय को प्रस्तुत किया है। शब्दानुशासन का आरंभ करते हुए पतंजलि कहते हैं- केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानाञ्च। तत्र लौकिकास्तावद् गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि-शन्नो देवी-रभिष्टये। इषे त्वोर्जे त्वा। अग्निमीळे पुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतये। इति।

टिप्पणी

2. **स्वर में परिवर्तन**- वैदिक संस्कृत में क्रम के परिवर्तन से स्वर में परिवर्तन होता है और स्वर के परिवर्तन से अर्थ में परिवर्तन होता है। यह स्वर वैदिक परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा एकश्रुति (प्रचय) - ये चार स्वर वैदिक संस्कृत की अनन्यसाधारण विशेषता है। यद्यपि पाणिनि ने स्वरों का व्यवस्थापन केवल छन्दस् में नही किया अपितु संपूर्ण संस्कृत को ध्यान में रखकर किया किन्तु व्यावहारिक स्थिति यही है कि लौकिक संस्कृत में उच्चारण तथा लेखन- दोनों रूपों में ही स्वर (उदात्त, अनुदात्त व स्वरित) का व्यवहार नहीं होता।

3. **रूपों का बाहुल्य**- वैदिक संस्कृत में रूपों का बाहुल्य लौकिक संस्कृत की अपेक्षा अत्यधिक स्पष्ट है। यह बाहुल्य शब्दरूपों तथा क्रियारूपों- दोनों में ही है। उदाहरणार्थ, प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में देवशब्द के 'देवाः' और 'देवासः' दोनों रूप मिलते हैं। इसी तरह तृतीया के बहुवचन में 'देवैः' और 'देवेभिः' दोनों रूप मिलते हैं। इनके स्थान पर लौकिक संस्कृत में रूपों की बहुलता में कमी हो गई और प्रथमा में 'देवाः' और तृतीया में 'देवैः' रूपों को ही मान्यता मिली। इसी प्रकार क्रियारूपों में भी वैदिक संस्कृत में पर्याप्त बहुलता प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ, संस्कृत में तुमुन् प्रत्यय के स्थान पर वैदिक प्रत्ययों की संख्या 19 है (से, सेन आदि) लौकिक संस्कृत में केवल तुमुन् से ही इस अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

4. **व्यत्ययों की बहुलता**- वैदिक संस्कृत में पुरुष, वचन, लिंग, आत्मनेपद आदि काल, आदि का व्यत्यय बहुलता से प्राप्त होता है। इसके कारण वैदिक संस्कृत रूप तथा अर्थबोध - दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त जटिल है। लुङ्, लङ् तथा लिट् (तीनों भूतकाल के लकार) का प्रयोग सभी कालों में होना, अट् तथा आट् आगम का क्रियारूपों में वैकल्पिक रूप से प्रयोग, आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद तथा परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद होना आदि अनेक विशेषताएं इसे लौकिक संस्कृत से पृथक् करती हैं।

5. **उपसर्गों का अनियमित प्रयोग**- वैदिक संस्कृत में जिस उपसर्ग का जिस धातुरूप से संबंध है उसके साथ प्रयोग कभी ठीक पहले, कभी ठीक बाद में तथा कभी अत्यंत दूर होता है। लौकिक संस्कृत में उपसर्ग का प्रयोग अनिवार्य रूप से धातु के पूर्व ही होता है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद का यह मन्त्र द्रष्टव्य है-

   **परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः। - ऋग्वेद 1-4-3**

   इस चरण में परि उपसर्ग यन्ति से सम्बद्ध है लेकिन वह उससे अत्यंत दूर प्रयुक्त हुआ है। व्याख्या करते समय 'परियन्ति' कहकर ही अर्थ किया जाएगा।

## (ख) लौकिक संस्कृत की विशेषताएं

लौकिक संस्कृत की विशेषताएं निम्न हैं-

1. इसमें पदक्रम परिवर्तनीय होता है। पदक्रम बदलने से किसी रचना के विन्यास में या अर्थ में कोई न्यूनता नहीं होती।

टिप्पणी

2. उदात्त, अनुदात्त स्वरों (स्वरित, प्रचय आदि भी) का प्रयोग व्यवहार में लुप्त हो गया।
3. शब्दरूपों में अपवादों तथा भेदों में कमी आई। धातुरूप भी अधिक व्यवस्थित हो गई बहुलता के साथ प्राप्त होते हैं।
4. वैदिक संस्कृत की अपेक्षा लौकिक संस्कृत में पुरुष, वचन, पद (आत्मनेपद आदि), लिंग आदि का व्यत्यय नगण्य है और यदि है भी तो उसमें भी एक व्यवस्था के दर्शन होते हैं।
5. उपसर्गों का प्रयोग सदैव धातु के पूर्व ही होता है। ये कभी धातु के बाद या धातु से दूर होने से व्यवधानयुक्त नहीं होते।
6. लौकिक संस्कृत में छन्दों की बहुलता होती है। वेदों में केवल गायत्री आदि सात छन्द प्रमुख हैं जबकि लौकिक संस्कृत में शिखरिणी, स्रग्विणी, शालिनी, हरिणी, आर्या, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित और मालिनी आदि सैकड़ों छन्द हैं।

**समानता**

1. दोनों में उत्तम, मध्यम तथा प्रथम- ये तीन पुरुष होते हैं यथा स्त्री, नपुंसक तथा पुंल्लिंग- ये तीनों लिंग होते हैं।
2. वचन भी तीन होते हैं- एकवचन, द्विवचन, बहुवचन।
3. विभक्तियां सात होती हैं।
4. लकार दश ही होते हैं। केवल लट् लकार ऐसा है जो लिङ् के अर्थ में प्रयुक्त होता है। व्यवहार में यह केवल वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होता है।
5. दोनों में शब्दों के अर्थ समान हैं फिर भी तात्पर्य के भेद से लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत में भी अर्थों में भेद उपस्थित होता है।
6. स्वर के भेद से अर्थभेद समान है लेकिन लौकिक संस्कृत में स्वर का प्रयोग न होने से स्वर पर आधारित अर्थभेद की व्यवस्था व्यावहारिक रूप से प्रयोजनवती नहीं है।

## भाषा का उद्भव

भाषा विज्ञान का अध्ययन करते समय यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यह तथ्य निर्विवाद है कि कोई बच्चा मां के गर्भ से भाषा सीख कर नहीं आता अपितु वह अनुकरण आदि के द्वारा अपने प्रयत्नों से आसपास के वातावरण में व्यवहृत भाषा को सीखता है। कुछ भाषा विज्ञानी भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न को भाषा विज्ञान का क्षेत्र स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि भाषा की उत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित रूप से नहीं बता सकता है। अत: जिसका समाधान कठिन तथा असंभव है, उस प्रश्न पर विचार करने से लाभ ही क्या होगा? प्रसिद्ध विद्वान मेरियो पाई (Mario Pai) ने भाषा की उत्पत्ति के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–"अगर कोई वस्तु है जिस पर सभी भाषा विज्ञानी सहमत हैं, तो वह

टिप्पणी

है मनुष्य के भाषण की उत्पत्ति की समस्या, जो अब तक अनसुलझी है।" (If there is one thing on which all linguistics are fully agreed, it's that the problem of the origin of human speech is still unsolved.) प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान भी इस समस्या का संतोषजनक हल नहीं ढूंढ़ पाए। अतः वे कहते हैं–"The Problem of the origin of language does not admit of any satisfactory solution."

### अपनी प्रगति जांचिए

1. वाक्य में उद्देश्य, विधेय आदि का संबंध किसके द्वारा प्रकट होता है?
   (क) शब्द के (ख) स्थान और स्वर के
   (ग) बोली के (घ) व्यक्ति के
2. योगात्मक भाषाओं में प्रकृति तथा प्रत्यय के योग से किसकी रचना होती है?
   (क) अर्थ की (ख) अनर्थ की
   (ग) शब्द की (घ) विचार की

## 5.3 भाषा का महत्व तथा उपभाषा आदि अवांतर रूप

भाषा का मानव जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य अपने हृदयस्थ विचारों को भाषा के माध्यम से ही अन्य व्यक्ति तक पहुंचाने की चेष्टा करता है, यद्यपि अन्य साधन भी प्रयोक्तव्य हैं। यथा मूक बधिर मनुष्य हाथों के संकेतों के द्वारा अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करता है। गार्ड भी लाल या हरी झंडी के माध्यम से ट्रेन के रोकने या चलने का संकेत प्रदान करता है। पशु एवं पक्षी भी अपनी भाषा के द्वारा अपने विचारों को परस्पर प्रकट करते हैं। परंतु हमारा प्रयोजन भाषा के व्यापक अर्थ से न होकर मानव के द्वारा प्रयुक्त सार्थक वाणी से है, जिसके माध्यम से वह अपने भावों तथा विचारों को प्रकट कर सके इसमें न तो हम मानवेतर प्राणियों की भाषा का अध्ययन करते हैं और न ही मनुष्य के सांकेतिक व्यवहारों का, अपितु भाषा विज्ञान में हम केवल मौखिक भाषा, मानव कंठ से निःसृत भाषा तथा ऐसी ध्वनियों का, जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने विचार बताता है, अध्ययन करते हैं। हमें वे ध्वनियां अभिप्रेत हैं, जिनमें आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि विद्यमान हो। वस्तुतः भाषा विज्ञान में जो भाषा अभीष्ट है, वह सांकेतिक आदि से अलग मनुष्य की व्यक्त वाणी है। भाषा शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान देने से इस अर्थ की पुष्टि होती है। भाषा शब्द संस्कृत की भाष् (भ्वादिगणी) धातु से निष्पन्न हुआ है। भाष् धातु का अर्थ है व्यक्त वाणी (भाष् व्यक्तायां वाचि)। 'भाष्यते व्यक्तवाग् रूपेण अभिव्यंज्यते इति भाषा' अर्थात व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते हैं। वस्तुतः पशु आदि की बोली व सांकेतिक अर्थों में भाषा शब्द का प्रयोग गौण रूप में होता है, मुख्य रूप में भाषा शब्द का तात्पर्य मनुष्य की व्यक्त वाणी से है, क्योंकि इस व्यक्त भाषा के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानवीय भावों को प्रकट किया जा सकता है।

कपिलदेव द्विवेदी के मत में भाषा से तात्पर्य है–

**स्फुटवाक्करणोपात्तो भावाभिव्यक्तिसाधकः।**
**संकेतितो ध्वनिव्रातः सा भाषेत्युच्यते बुधैः॥**

टिप्पणी

भाषा विज्ञान की दृष्टि से हम भाषा की परिभाषा इस प्रकार करते हैं– भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है। भाषा को इस प्रकार व्याख्यायित किया जा सकता है–

1. **भाषा एक पद्धति है**– भाषा एक सुसंबद्ध तथा सुव्यवस्थित योजना अथवा संघटना है जिसमें कर्त्ता, कर्म, क्रिया आदि व्यवस्थित रूप में आ सकते हैं। सुव्यवस्थित पद्धति होने के कारण पद रचना तथा वाक्य रचना के विभिन्न नियम हैं, जिनका पालन करना अनिवार्य होता है। किन शब्द रूपों में तृतीया एकवचन में न् का ण् होगा, किन में नहीं, किन शब्दों में तृतीया एकवचन में आ लगेगा, कहां ना लगेगा, इन लगेगा – इस व्यवस्था का ही फल है कि किसी भी भाषा का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन और विश्लेषण किया जाता है और विभिन्न नियम बनाए जाते हैं।
2. **भाषा संकेतात्मक है–** प्रत्येक भाषा में जो ध्वनियां उच्चरित होती हैं, उनका किसी वस्तु या क्रिया या कार्य से संबंध होता है। ये ध्वनियां प्रतीकात्मक होती हैं। कोई ध्वनि किसी भाषा में किसी एक वस्तु का बोध कराती है और वही ध्वनि दूसरी भाषा में दूसरे अर्थ को बताती है। वस्तुतः भाषा की ध्वनियां केवल संकेतात्मक या प्रतीकात्मक होती हैं।
3. **भाषा वाचिक ध्वनि-संकेत है–** मनुष्य अपनी वागेंद्रियों की सहायता से जिन संकेतों का उच्चारण करता है, वे ही भाषा के अंतर्गत आते हैं। अन्य प्रकार के संकेत–इंगित आदि, लाल-पीली झंडियां आदि, तार और वायरलेस के विभिन्न संकेत भाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं। वाचिक ध्वनि संकेत सूक्ष्मातिसूक्ष्म मूर्त-अमूर्त, दृश्य-अदृश्य, निर्वचनीय और अनिर्वचनीय सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतया समर्थ हैं। इन ध्वनियों की एक विशिष्ट प्रक्रिया है, जिसका सूक्ष्म विश्लेषण संभव है और इसके आधार पर ही 'ध्वनि-विज्ञान' नाम की एक शाखा प्रचलित है।

   लिपि या लेखन पद्धति भी यद्यपि भाषा का कार्य करती है, परंतु यह मूल ध्वनियों का केवल संकेतात्मक चित्रण है। अतः लिपि को गौण रूप से भाषा कहा जाता है। इसी आधार पर उच्चरित ध्वनियों को लिपिबद्ध किया जाता है और लिपिबद्ध ध्वनियों का तात्त्विक रूप से उच्चारण करना संभव होता है। यहां पर यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि वागेंद्रियों से उत्पन्न सभी ध्वनियां सार्थक नहीं होतीं; जैसे- छींकना, खांसना, थूकना, चिल्लाना आदि। इनका भाषाशास्त्र की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है और न ही इनका विवेचन किया जाता है।
4. **भाषा यादृच्छिक संकेत है**– भाषा में जिन ध्वनि-संकेतों का उपयोग किया जाता है, वे पूर्णतया यादृच्छिक हैं। प्रत्येक भाषा में किसी विशेष ध्वनि को किसी विशेष अर्थ का वाचक मान लिया जाता है और वह परंपरा के अनुसार उसी अर्थ का वाचक हो जाता है। दूसरी भाषा में अन्य शब्द उस अर्थ का बोध कराता है।

टिप्पणी

यदि हम बालक की भाषा शिक्षण पद्धति को ध्यान में रखकर विचार करते हैं, तो ज्ञात होता है कि बालक अपने माता-पिता तथा संबंधियों के द्वारा उच्चारित ध्वनि संकेतों का अनुकरण करता है। वे जिसे माता-पिता-भाई-बहन, बिल्ली, मेज़, कुर्सी, शेर आदि कहते हैं, वह भी उन्हें उसी प्रकार उन्हीं नामों से पुकारता है। बिल्ली को बिल्ली तथा शेर को शेर क्यों कहते हैं, इसका विश्लेषण नहीं करता। इस प्रकार एक समाज में कुछ विशिष्ट शब्द प्रचलित होते हैं और वह समाज उन विशेष अर्थों को ग्रहण करता है। दूसरे समाज में उत्पन्न व्यक्ति उन्हीं अर्थों को व्यक्त करने हेतु पूर्णतया भिन्न शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे अंग्रेज परिवार में पला हुआ बालक उपर्युक्त अर्थों को व्यक्त करने के लिए बचपन से ही मदर, फादर, ब्रदर, सिस्टर, कैट आदि शब्दों का प्रयोग करता है। इसी प्रकार जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी आदि भाषाओं में इन अर्थों के लिए अलग-अलग शब्द हैं। यदि किसी विशेष अर्थ के लिए किसी विशेष ध्वनि का ही नियंत्रण होता तो वह परिवर्तन संभव न होता। इससे स्पष्ट है कि भाषा में प्रयुक्त सभी संकेत यादृच्छिक हैं। जिस भाषा में जिस अर्थ के लिए जो संकेत स्वीकृत है, वही अर्थ उस भाषा में लिया जाता है। किंतु यह संकेत पूर्णतया यादृच्छिक नहीं है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार नए ध्वनि संकेत का किसी विशेष अर्थ में प्रयोग तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसको सामाजिक स्वीकृति प्राप्त न हो जाए।

इस विवेचन से ज्ञात होता है कि भाषा एक व्यवस्थित पद्धति है। इसमें संकेतों के आधार पर भावों की अभिव्यक्ति की जाती है। ये संकेत वागिंद्रियों द्वारा ही उत्पन्न होने चाहिए और इन संकेतों का आधार यदृच्छा या मानवीय कल्पना हो।

भाषा अपनी प्रकृति में अत्यंत जटिल और बहुस्तरीय होने के साथ-साथ अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है। यह व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है, साथ ही सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति का उपकरण भी है। यह एक ओर मनुष्य के मानसिक व्यापार का आधार है तो दूसरी ओर हमारे सामाजिक व्यापार (संप्रेषण प्रक्रिया) का एक साधन भी। इसी आधार पर भाषा के दो पक्ष माने गए हैं– (1) मानसिक (2) भौतिक। मानसिक पक्ष उसका अमूर्त रूप है और भौतिक मूर्त। वक्ता के मन में भाव और विचार अमूर्त रूप से विद्यमान रहते हैं, जब वह उन्हें प्रकट करना चाहता है तब उसे वागिंद्रिय से सहायता लेनी पड़ती है और भाषा मूर्त रूप ग्रहण कर लेती है। श्रोता के मन में भी वह अमूर्त रूप में विद्यमान रहती है। इसलिए जब वक्ता द्वारा उच्चरित भाषा श्रवणेंद्रिय के माध्यम से श्रोता तक पहुंचती है, तो वह वक्ता के कथन का अभिप्राय तुरंत समझ लेता है।

इस प्रक्रिया में वक्ता और श्रोता के बीच सामंजस्य होना जरूरी होता है, अन्यथा संप्रेषण बाधित होता है। कई बार वक्ता और श्रोता के बीच बौद्धिक स्तर की भिन्नता के कारण भी अर्थ संप्रेषण संभव नहीं हो पाता। भाषिक संप्रेषण की दृष्टि से भाषा के तीन पक्ष माने गए हैं– 1. उच्चारण पक्ष 2. संवहन पक्ष 3. ग्रहण पक्ष।

भाषा के प्रयोजन की विविधता के कारण ही हम भाषा को विभिन्न संदर्भों में देखते हैं। कुछ विद्वान इसे मानव मन की सर्जनात्मक शक्ति के रूप में देखते हैं, तो कुछ मानव

व्यवहार की सामाजिक शक्ति के रूप में। भाषा के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से विचार किया है एवं विभिन्न भाषाविदों ने भाषा की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं, जिनमें से मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. **डॉ. श्यामसुंदर दास** के अनुसार– "विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।"
2. **डॉ. बाबू राम सक्सेना** के अनुसार– "जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है, उनके समष्टि रूप को 'भाषा' कहते हैं।
3. **हेनरी स्वीट** के शब्दों में– "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।"
4. **प्लेटो** के अनुसार, "विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है। विचार, आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है, तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"
5. **वेंद्रिय** के शब्दों में– "भाषा एक तरह का संकेत है। संकेत का आशय, उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे– नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य और स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।"
6. **महर्षि पतञ्जलि** के अनुसार- "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां ते इमे व्यक्तवाचः।" अर्थात भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों के समक्ष भली-भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्वयं स्पष्ट रूप से समझ सकता है। (महाभाष्य-1.3.38)
7. **चॉम्स्की** के शब्दों में– "I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed of a finite set of elements."
8. **ब्लॉक** तथा **ट्रेगर** के शब्दों में– "A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group cooperates."
9. **डॉ. पी.डी. गुणे** के अनुसार- "भाषा का व्यापकतम रूप में अर्थ है कि हमारे विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने वाले ऐसे संकेतों का कुल योग जो देखे या सुने जा सकें और जो इच्छानुसार उत्पन्न किए एवं दोहराए जा सकें।"
10. **ए. एच. गार्डीनर** के अनुसार– "विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेत ही भाषा है।" (The common definition of speech is the use of articulate sound-symbols for the expression of thought.)
11. **मारियो ऐपी** तथा **फ्रैंक गेहर** के अनुसार- "भाषा उन सार्थक और विश्लेषण समर्थ मानवोच्चारित ध्वनियों को कहते हैं, जिनका प्रयोग मानव, विचारों और भावों को व्यक्त करने के लिए करता है।"
12. **डॉ. भोलानाथ तिवारी** के अनुसार– "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित अध्ययन विश्लेषणीय यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोग परस्पर भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

टिप्पणी

13. **डॉ. मंगलदेव** के शब्दों में– "भाषा मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे वे अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चरित शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

14. **सपीर** के शब्दों में– "Language is a purely human and non-instinctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of voluntarily produced symbols.

15. **जेस्परसन** के अनुसार, "मनुष्य ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा अपने विचार प्रकट करता है। मानव मस्तिष्क वस्तुतः विचार प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दों का निरंतर उपयोग करता है। इस प्रकार के कार्य-कलाप को ही भाषा की संज्ञा दी जाती है।"

16. **इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका** में कहा गया है– "Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which human beings, as members of a social group and participants in culture interact and communicate."

17. **मैक्समूलर** के अनुसार– "भाषा और कुछ नहीं है, केवल हमारी चतुरबुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है, जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता से दूसरों के समक्ष प्रकट कर सकते हैं। इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"

18. संस्कृत विद्वानों ने भी भाषा की परिभाषा की है। उन्होंने भाषा की परिभाषा करते समय अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोषों से बचने की सलाह दी है। **न्यायशास्त्र** के अनुसार-

**तदेव हि लक्षणं यद्व्याप्ति-अतिव्याप्ति**

**असंभवरूपदोषत्रय शून्यम्।**

**आचार्य कपिल** ने भाषा के लिए कहा है–

**स्फुटवाक्करणोपात्तो, भावाभिव्यक्तिसाधकः**

**संकेतितो ध्वनिव्रातः सा भाषेत्युच्यते बुधैः।।**

**महर्षि पतंजलि** के अनुसार–

**"व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः"**

**भर्तृहरि** के अनुसार–

**"शब्द कारणमर्थस्य स हि तेनोपजायते"**

तथा

**"च बुद्धिविषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते।"**

**"बुद्ध्यर्थादेव बुद्ध्यर्थे जाते तदानीं दृश्यते।"**

**अमरकोष** में कहा गया है–

**"ब्रह्मा तु भारती भाषा गीर् वाक् वाणी सरस्वती।"**

**सुकुमार सेन** के अनुसार–

**"अर्थवान कंठोद्गीर्ण ध्वनि-समष्टि ही भाषा है।"**

टिप्पणी

**पं. कामताप्रसाद गुरु** के अनुसार– "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों के समक्ष भली-भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।"

**आचार्य किशोरीदास बाजपेयी** के अनुसार– "विभिन्न अर्थों में संकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।"

**आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा** के अनुसार– "उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।"

**डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल** के अनुसार– "भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छंद प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है, जिससे लोग समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक दूसरे को सहयोग देते हैं।"

**डॉ. देवीशंकर द्विवेदी** के अनुसार– "भाषा यादृच्छिक वाक्यप्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"

**पी.डी. गुणे** के अनुसार- "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण भाषा है।"

**डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव** के अनुसार- "भाषा वागिन्द्रिय द्वारा निस्सृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है, जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिसके द्वारा किसी भाषा समुदाय के लोग अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर्वैयक्तिक संबंधों को सूचित करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अपनी प्रकृति में भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है।

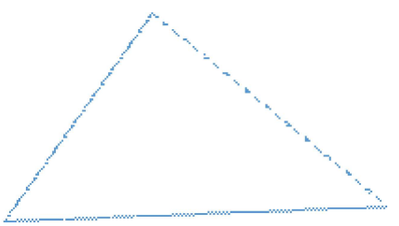
## प्रतीक

प्रतीक वह वस्तु है, जो किसी के लिए कही अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं जिसके बारे में **सी.एस. पीयर्स** ने कहा है– "A sign is something that stands to some body for something else in some respect or capacity." जब हम 'घोड़ा' शब्द के रूप में विचार करते हैं, तब उसको भी प्रतीकवत् प्रयुक्त पाते हैं। उच्चरित या लिखित रूप में शब्द घोड़ा, स्वयं घोड़ा नहीं होता। वह तो घोड़ा-वस्तु के लिए प्रयुक्त प्रतीकजन्य वह भाषिक वस्तु है, जिसे उसके प्रयोगकर्त्ता वास्तविक घोड़े के स्थान पर व्यवहार में लाते हैं।

टिप्पणी

प्रतीक की धारणा त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों पर आधारित है। इन संबंधों का निर्माण तीन इकाइयों का आधार है, जिन्हें हम 'संकेतित वस्तु', 'संकेतार्थ' और 'संकेत प्रतीक' कह सकते हैं। संकेतित वस्तु बाह्य जगत में स्थिर इकाई है; जैसे घोड़ा, पुस्तक, फोन आदि। प्रयोगकर्त्ता के मन में स्थित उस इकाई की संकल्पना ही 'संकेतार्थ' है। इस संकेतार्थ को अभिव्यक्त करने वाली इकाई 'प्रतीक' है, जो संकेतित वस्तु के स्थान पर कुछ विशेष संदर्भों में प्रयुक्त होती है।

संकेतित वस्तु (बाह्य जंगल में स्थित घोड़ा)



संकेतार्थ (प्रयोगकर्त्ता के मन में स्थित घोड़ा)

प्रतीक (-शब्द रूप में प्रयुक्त घोड़ा)

यह ध्यातव्य है कि संकेतित वस्तु और संकेतार्थ में सीधा संबंध है, संकेतार्थ और प्रतीक के बीच का भी संबंध सीधा है, लेकिन संकेतित वस्तु और प्रतीक का संबंध सहज और सीधा नहीं है। प्रतीक सीधे वस्तु की ओर संकेतित नहीं करता, बल्कि उसको संकेतित करने के लिए उसे संकेतार्थ का रास्ता चुनना पड़ता है। संकेतित वस्तु और प्रतीक का संबंध आरोपित होता है। उपर्युक्त आरेख में संकेतार्थ और संकेतित वस्तु का सीधा संबंध और संकेतित वस्तु और प्रतीक का संबंध आरोपित है। संकेतार्थ के निर्माण में केवल बाह्य जगत की वस्तुएं ही अपना योग नहीं देतीं, अपितु व्याख्याता या प्रयोगकर्त्ता का जातीय इतिहास, उसकी सभ्यता और संस्कृति भी अपना योग देती है। इसीलिए भाषिक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त शब्दों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अर्थ भी हुआ करता है। जैसे 'देवी' शब्द हिंदू समाज और हिंदू संस्कृति का बोधक है जबकि 'मल्लिका' शब्द जिस संस्कृति का द्योतक है वह 'देवी' के सामाजिक अर्थ से भिन्न है।

सस्यूर के अनुसार भाषा की प्रत्येक सार्थक इकाई एक भाषिक प्रतीक है। वह भाषिक प्रतीक को कथ्य और अभिव्यक्ति की संश्लिष्ट इकाई के रूप में मानते हैं। प्रतीक का संकेतार्थ काव्य से है और अभिव्यक्त इस संकेतार्थ को व्यक्त करने वाले ध्वनि समूह से। यदि घोड़ा शब्द एक भाषिक प्रतीक है, तब कथ्य इस शब्द का संकेतार्थ माना जाएगा जबकि अभिव्यक्त इस शब्द का ध्वनि संयोजन- घ+ओ+ड़+आ। यह कथ्य और अभिव्यक्ति का एकीकरण ही होता है कि अभिव्यक्ति के अभाव में कथ्य पक्ष, प्रतीक रूप में सिद्ध नहीं माना जा सकता। एक के बिना दूसरे की संकल्पना नहीं की जा सकती। मन में किसी प्रतीक के अभिव्यक्ति पक्ष के आने के साथ ही उसका कथ्य पक्ष भी तुरंत उत्पन्न होता है; जैसे घोड़ा या पुस्तक शब्द सुनते ही श्रोता की कल्पना में उसके कथ्य यथा घोड़ा या पुस्तक की संकल्पना उसी समय उभर आती है।

टिप्पणी

भाषिक प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में ध्वनिपरक होता है। अपने अभिव्यक्ति पक्ष के लिए भाषिक प्रतीक जिस माध्यम को अपनाता है, उसका आधार वागिन्द्रिय होता है। वक्ता भाषिक प्रतीक का सहारा लेकर वक्ता के रूप में शब्दों का उच्चारण करता है, श्रोता के रूप में दूसरा व्यक्ति उसे सुनता है। अपने विचारों को दूसरे तक संप्रेषित करने के लिए मनुष्य अनेक संकेतों; जैसे झंडा दिखाकर, सीटी बजाकर, हाथ हिलाकर– का सहारा ले सकता है, पर उसे सही अर्थों में न तो भाषिक प्रतीक कहा जा सकता है न भाषा।

भाषिक प्रतीक का अभिव्यक्ति माध्यम मनुष्यों की वागिन्द्रिय से निस्सृत ध्वनियां हैं। भाषिक प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में ध्वनिपरक होता है, परंतु प्रत्येक ध्वनि प्रतीक, भाषिक नहीं होता। ताली, चुटकी बजाकर हम अपने मनोभावों को व्यक्त कर सकते हैं, परंतु ये ध्वनि प्रतीक भाषिक प्रतीकों के अंतर्गत नहीं आते। भाषिक प्रतीक जिस ध्वनि को अपना अभिव्यक्ति माध्यम बनाता है, वह वागिन्द्रिय द्वारा निस्सृत होना चाहिए।

भाषिक प्रतीक कथन और अभिव्यक्ति के संबंधों की प्रकृति पर आधारित होते हैं। ये सामान्यत: तीन प्रकार के होते हैं– (1) प्रतिमापरक (2) संकेतपरक (3) सामान्य।

1. जिन प्रतीकों में कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंधों का आधार सादृश्य होता है, वे प्रतिमापरक होते हैं। किसी देश का चित्र सादृश्य तत्व के आधार पर संकेतार्थ को व्यक्त करता है।
2. सूचनापरक या संकेतपरक प्रतीक होते हैं, जिनमें कथ्य और अभिव्यक्ति के बीच के संबंधों का आधार कार्य-कारण का सहज और प्राकृतिक संबंध रहता है। बादलों का गर्जन-तर्जन वर्षा एवं तूफान की सूचना देता है, धुआं आग का प्रतीक है।
3. सामान्य प्रतीक में काव्य और अभिव्यक्ति में कोई प्राकृतिक संबंध नहीं होता। इन प्रतीकों में कथ्य और प्रतीक के बीच संबंधों की प्रकृति यादृच्छिक और रूढ़िपरक होती है।

भाषिक प्रतीक अपनी प्रकृति में मूलत: सामान्य (यादृच्छिक और रूढ़िपरक) होता है। इसीलिए एक ही कथ्य के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तिरूप मिलते हैं। अभिव्यक्ति और कथ्य में यादृच्छिक संबंधों के परिणामस्वरूप अभिव्यक्ति पक्ष में परिवर्तन के बिना ही भाषिक प्रतीकों के संकेतार्थ में परिवर्तन आ जाता है। भाषिक प्रतीकों में पाए जाने वाले अर्थ विस्तार एवं अर्थ संकोच इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

### प्रतीकों की व्यवस्था

भाषा प्रतीकों की सार्थक व्यवस्था है। भाषा वाक्य या भाषिक प्रतीकों की शृंखला तो होती है पर भाषिक प्रतीकों की हर कड़ी भाषा या वाक्य का दर्जा नहीं पाती। प्रत्येक मातृभाषी अपनी भाषा में प्रयुक्त प्रतीकों की व्यवस्था को ज्ञात या अज्ञात रूप में पहचानता है और उसके आधार पर उन भाषिक प्रतीकों को पहचानने में सक्षम होता है, जो मान्य होते हैं।

प्रतीक भाषा की वह व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत किसी शब्द विशेष का एक निश्चित अर्थ होता है। यह अर्थ शब्द के गुण से नितांत भिन्न होता है। प्रतीक शब्द के

टिप्पणी

अनिवार्य गुण या धर्म से भिन्न अपनी सत्ता स्वतंत्र रखता है। प्रतीक मूल नहीं होता, वह किसी अन्य पदार्थ (भाव आदि) के लिए प्रयुक्त होता है। प्रतीक में मूल पदार्थ को अनुभव करने की शक्ति होती है। प्रतीक पद्धति का प्रयोग करने वाले लोगों के बीच एक ऐसा आंतरिक समझौता होता है, जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति जिस आशय से किसी प्रतीक का प्रयोग करता है, दूसरा व्यक्ति उस प्रतीक से वही आशय ग्रहण करता है। घोड़ा, पुस्तक आदि शब्द रचनात्मक प्रतीक हैं जो एक मान्यक्रम में प्रयुक्त होकर एक निश्चित अर्थ देते हैं, जिन्हें भाषा के प्रयोक्ता उसी अर्थ में बोलते और सुनते हैं। अतः भाषाई ध्वनियां वे प्रतीक हैं, जो अपने द्वारा किसी दूसरे आशय को अभिव्यक्त करती हैं।

भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था सापेक्ष होती है और हर व्यवस्था की तरह कुछ संरचनात्मक नियमों की अपेक्षा रखती है। अर्थात प्रत्येक भाषा के अपने नियम होते हैं, जिन नियमों के अनुसार भाषिक प्रतीक कड़ी के रूप में व्यवस्थित होते हैं जैसे हिंदी में कर्त्ता + कर्म + क्रिया (मैं आम खा रहा हूं) के क्रम का निर्वाह करते हुए हिंदी भाषी बोलता है तो अंग्रेजी में कर्त्ता+क्रिया+कर्म (I am eating mango) की व्यवस्था का निर्वाह किया जाता है। भाषिक प्रतीकों के क्रम का नियम हिंदी में कर्म को 'क्रिया' के पहले रखता है, जबकि अंग्रेजी में उसे क्रिया के बाद लाता है।

### 5.3.1 उपभाषा का स्वरूप एवं भारत की प्रमुख उपभाषाएं

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की वाक्प्रवृत्ति पूर्णतः समान नहीं होती, तथापि इतनी असमान भी नहीं होती कि, वे एक-दूसरे की बात न समझ सकें। वाक्प्रवृत्तियों के समन्वित रूप को व्यक्ति-बोली, व्यक्ति-बोलियों के समन्वित रूप को उपबोली, उपबोलियों के समन्वित रूप को बोली अथवा उपभाषा कहा जाता है। कई बोलियों अथवा उपभाषाओं की समन्वित इकाई भाषा का रूप ले लेती है।

उपभाषा का अपना एक विज्ञान है। उपभाषा विज्ञान (Dialectology) भाषा विज्ञान की वह शाखा है जो बोलियों को भौगोलिक वितरण और व्याकरण की दृष्टि से अपने अध्ययन का विषय बनाती है।

बोलियों के विधिवत अध्ययन का सूत्रपात 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में श्मेलर के माध्यम से हुआ और सन् 1873 में स्कीट ने 'इंग्लिश डायलेक्टोलॉजी सोसायटी' का गठन किया। भारत में ग्रियर्सन द्वारा किए गए भाषा-सर्वेक्षण से उपभाषा-अध्ययन में गतिशीलता आई।

### भारत की प्रमुख उपभाषाएं

- **बांगरू**

यह शब्द 'बांगर' से निकलता है जिसका अर्थ- ऊबड़-खाबड़ या ऊंची-नीची भूमि से है। दिल्ली के उत्तर-पश्चिम की भूमि इसी प्रकार की है। यह प्रदेश सतलुज-सिंधु तथा गंगा-यमुना के बीच की उच्च भूमि है। इसका प्राचीन नाम 'सारस्वत' देश था। हिसार जिले में 'हरियाणा' एक स्थान का नाम है, जिसके कारण इसको 'हरियानी' भी कहते हैं।

टिप्पणी

यह उपभाषा दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्र- रोहतक, करनाल, नाभा, पटियाला के पूर्वी भाग तथा हिसार जिले के पूर्वी भाग में बोली जाती है। जाटों का प्रदेश होने के कारण इसे 'जाटू' भी कहते हैं। दिल्ली में चमड़े का काम करने वाले आस-पास के गांवों से आ गए हैं जो इसी भाषा का प्रयोग करते हैं, अत: दिल्ली में यह 'चमरुवा' भी कहलाती है। ग्रामीण खड़ी बोली के समान ही बांगरू में पौरुष और कठोरता है।

साहित्यिक न होने से इस उपभाषा के स्वरों का उच्चारण अस्थिर है। 'जवाब' और 'जुबाब' 'बहुत' और 'बौहत' समान रूप से बोले जाते हैं। 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग ग्रामीण खड़ी बोली से भी अधिक है। जैसे- होणा (होना), चल्लाणा (चलाना)। खड़ी बोली में केवल वत्सर्यल है किंतु बांगरू में 'ल' की मूर्धन्य ध्वनि 'ल' भी है, जैसे- काल। ग्रामीण खड़ी बोली के समान ही ड़, ढ़ के स्थान पर ड, ढ पाया जाता है तथा द्वित्व की भी प्रवृत्ति अधिक है– जैसे- राज्जी (राजी), भित्तर (भीतर)।

- **ब्रज**

ब्रजप्रदेश की उपभाषा आदर्श ब्रजभाषा है। ब्रज का क्षेत्र विस्तृत है। उत्तर प्रदेश के आगरा, अलीगढ़, एटा, मथुरा, मैनपुरी, बुलंदशहर, बदायूं, बरेली, हरियाणा का गुड़गांव, राजस्थान के धौलपुर, भरतपुर तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्यप्रदेश का ग्वालियर ब्रज भाषा-भाषी क्षेत्र हैं। इसकी क्षेत्रीय बोलियों का अंतर भूतकृदंत के रूपों पर यौ, यो, औ, ओ प्रत्ययों द्वारा ज्ञात हो जाता है, जैसे- चल्यो, चल्यौ, चलौ, चलो। शौरसेनी प्राकृत की वास्तविक प्रतिनिधि ब्रज उपभाषा ही है।

खड़ी बोली के अकारांत शब्द इस उपभाषा में आकारांत या ओकारांत हो जाते हैं, जैसे खड़ी बोली का 'भला' ब्रज में 'भलौ' या 'भलो', खड़ी बोली में 'का' ब्रज में 'को' या 'कौ', खड़ी बोली का 'करना' ब्रज 'करनो' या 'करनौ'। आकारांत संज्ञा शब्द ब्रज की कुछ बोलियों में, जिनका क्षेत्र खड़ी बोली के क्षेत्र से मिला हुआ है, आकारांत ही रहता है, जैसे- ढौटा।

बहुवचन का विकारी रूप खड़ी बोली में 'ओ' प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। इसके विपरीत ब्रज में 'न' प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे खड़ी बोली 'घोड़ों' ब्रज में 'घोड़न'। बहुवचन के प्रत्यय की दृष्टि से ब्रजभाषा अवधी से मिलती है।

सहायक क्रिया में भी अंतर पाया जाता है। खड़ी बोली के 'था, थे, थी' ब्रज में प्राय: 'हो, हे, ही' हो जाते हैं। 'हुआ' के स्थान पर 'भयौ' और 'हुई' के स्थान पर 'भई' का प्रयोग होता है। पालि और प्राकृत में संस्कृत- 'भू' धातु के 'भू' और 'हू' दोनों शब्द पाए जाते हैं। भूतकृदंत के लिए खड़ी बोली ने 'हूं' को और ब्रज ने 'भू' को अपनाया है।

- **कन्नौजी**

उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद जिले में कन्नौज एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। यह शब्द 'कान्यकुब्ज' का तद्भव रूप है। कन्नौजी 'कन्नौज' शब्द से बना है, कन्नौजी का उद्भव शौरसेनी प्राकृत की एक शाखा पांचाली अपभ्रंश से माना जाता है। कुछ लोग इसे ब्रज की

टिप्पणी

ही एक बोली मानते हैं। यह उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद, इटावा, शाहजहांपुर, पीलीभीत, हरदोई के पश्चिमी भाग तथा कानपुर जिलों में बोली जाती है। इसमें और ब्रज में बहुत कम अंतर होने के कारण कन्नौजी का साहित्य ब्रज के अंतर्गत ही गिना जाता है।

जो शब्द खड़ी बोली में 'आ' से समाप्त होते हैं, वे ब्रज में 'औ' या 'यौ' से और कन्नौजी में ओकारांत हो जाते हैं। खड़ी बोली का 'चला' ब्रज में 'चल्यौ' तथा कन्नौजी में 'चलो' हो जाता है।

कन्नौजी में अकारांत शब्दों को उकारांत करने की प्रवृत्ति ब्रज से अधिक है; जैसे- मालू, बांटु, चलतु, खातु, धारू। भूतकालिक सहायक तथा स्थिति सूचक क्रिया 'था, थे, थी' के स्थान पर 'हतो, हते, हती' का प्रयोग होता है।

- **बुंदेली**

बुंदेलखंड की उपभाषा बुंदेली है। बुंदेला राजपूतों के कारण इस भूखंड का नाम बुंदेल खंड पड़ा। किंतु वर्तमान काल में बुंदेली का क्षेत्र विस्तृत है। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर, जालौन, झांसी जिलों तथा मध्य प्रदेश के भोपाल, ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद जिलों में यह अपने मूल रूप में बोली जाती है। दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट, छिन्दवाड़ा आदि स्थानों पर इसका मिश्रित रूप मिलता है।

बुंदेली साहित्य को भी ब्रज के ही अंतर्गत गिना जाता है, क्योंकि बुंदेली को भी कन्नौजी के समान ब्रज की ही एक बोली माना जाता है। बुंदेली कवियों ने क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग बहुत किया है, जिनका प्रयोग सामान्यतः साहित्य भाषा में नहीं होता। केशवदास की रचनाओं में इस प्रकार के शब्द पाए जाते हैं। बुंदेली की कई उपबोलियां भी हैं, जैसे- राठौरी, लौघंती, बनाफरी आदि। ब्रज के 'ए' और 'औ' बुंदेली में 'ए' और 'ओ' हो जाते हैं, जैसे- और-ओर, जैसा-जेसो।

कन्नौजी के ही समान खड़ी बोली के अकारांत शब्द बुंदेली में ओकारांत हो जाते हैं, जैसे- घोड़ा - घोरो। गया - गयो। खड़ी बोली का 'ड़' बुंदेली में 'र' में परिणत हो जाता है। 'वह', 'वो' जैसे सर्वनाम प्रायः खड़ी बोली के समान होते हैं। किंतु खड़ी बोली के परसर्ग बुंदेली में- को - कों या खों, से-सें, सों, में-मैं, रूपों में पाए जाते हैं। भविष्यत् काल के रूप खड़ी बोलियों के समान गा, गे, गी लगाकर ब्रज के समान हो, है, हैं से भी समाप्त होते हैं।

- **अवधी**

अवध प्रांत के आधार पर इसका नामकरण हुआ। प्राचीन काल में इसका केंद्र अयोध्या नगर था, किंतु अब लखनऊ अवधी का केंद्र है क्योंकि अवधी का क्षेत्र कुछ पश्चिम को हट गया है। गंगा के दक्षिण में भी यह फतेहपुर, इलाहाबाद, बांदा, मिर्जापुर जिलों में बोली जाती है। अवधी के बोलने वालों की संख्या 2 करोड़ से अधिक है। अवधी के पश्चिमी भाग उन्नाव, फतेहपुर आदि जिलों में इसे 'बैसवाड़ी' भी कहते हैं। बैसवाड़ी मूल अवधी से कुछ कर्णकटु है।

टिप्पणी

अवधी के साहित्य को प्रेमाख्यानकार जायसी आदि तथा 'श्री रामचरितमानस' के रचयिता तुलसी द्वारा अमरत्व प्रदान किया गया है। पूर्वी हिंदी बोलियों के समूह की प्रमुख उपभाषा अवधी है। यह पूर्वी हिंदी की सबसे महत्वपूर्ण बोली है। ब्रज के उपरांत जिस प्राचीन उपभाषा को साहित्यिक होने का गौरव प्राप्त हुआ, वह अवधी है। अवधी में हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास ने अपने सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य एवं पुराण काव्य 'रामचरितमानस' की रचना की है। कुछ विद्वान इसे कौशली एवं बैसवाड़ी बोली भी कहते हैं।

- **बघेली**

यह बघेलखंड की उपभाषा है, जिसका नामकरण बघेले राजपूतों के कारण हुआ। रीवा बघेलखंड का केंद्र है। यह पश्चिमी बांदा तथा मध्यप्रदेश के दमोह, जबलपुर, मंडला तथा बालाघाट जिलों में भी बोली जाती है। कुछ विद्वान इसे अवधी की ही एक बोली मानते हैं।

- **छत्तीसगढ़ी**

यह छत्तीसगढ़ की बोली है, किंतु कुछ भागों में इसे खलोटी और लरिया भी कहा जाता है। यह जबलपुर से लेकर छोटा नागपुर तक और उत्तर में रीवा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक बोली जाती है। इसकी कई क्षेत्रीय बोलियां हैं, क्योंकि यह उत्तर में अवधी, पूर्व में मुंडा और उड़िया, दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में मराठी और पश्चिम में बघेली और बुंदेली से घिरी हुई है। इसमें साहित्य का प्रायः अभाव है।

- **भोजपुरी**

भोजपुरी मुख्य रूप से पश्चिम बिहार, पूर्वी-उत्तर प्रदेश और झारखंड के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यावहारिक रूप से भोजपुरी हिंदी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपनी शब्दावली के लिए मुख्यतः संस्कृत एवं हिंदी पर निर्भर है। कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं। भारत के जनगणना आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है।

पुरबिया उपभाषाओं में मैथिली, मगही और भोजपुरी- ये तीनों बोलियां मानी जाती हैं। क्षेत्र विस्तार और भाषा-भाषियों की संख्या के आधार पर भोजपुरी अपनी बहनों मैथिली और मगही में सबसे बड़ी है।

- **मगही या मागधी**

यह भाषा भारत के मध्य-पूर्व में बोली जाने वाली एक मुख्य भाषा है। इसका निकट का संबंध भोजपुरी और मैथिली भाषा से है और अक्सर ये भाषाएं एक ही साथ बिहारी भाषा के रूप में रख दी जाती हैं। इसे देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। मगही बोलने वालों की संख्या (2002) लगभग 1 करोड़ 30 लाख है। मुख्य रूप से यह बिहार के गया, पटना, राजगीर और नालंदा के इलाकों में बोली जाती है।

टिप्पणी

• **मैथिली**

हिंदी प्रदेश की उपभाषा 'बिहारी' की एक बोली है। 'मैथिली' नाम उस क्षेत्र के नाम 'मिथिला' से संबद्ध है। 'मिथिला' शब्द भारतीय साहित्य में बहुत पहले से है। मैथिली मुख्य रूप से भारत में बिहार के दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, पूर्णिया आदि क्षेत्रों तथा नेपाल के तराई के इलाकों में बोली जाने वाली भाषा है। यह प्राचीन भाषा हिंदी आर्य परिवार की सदस्य है और भाषाई तौर पर हिंदी (जिससे इसकी लगभग 65 प्रतिशत शब्दावली आती है), बांग्ला, असमिया, उड़िया और नेपाली से इसका काफी निकट का संबंध है।

• **मारवाड़ी**

शुद्ध मारवाड़ी जोधपुर और उसके आसपास बोली जाती है। इसकी लगभग 12 उपबोलियां हैं। यह राजस्थान की सबसे बड़ी बोली है। बोलने वाले लगभग 78 लाख हैं। यह प्राचीन डिंगल का विकसित रूप है। इसमें चंद दुरसाजी, मुरारीदान, पृथ्वीराज, सूर्यमल्ल, मोरा, दादू, चरणदास-हरिदास, गद्य साहित्य में बचनिकाओं, प्रसिद्धियों या यश गाथाओं की अपनी विमल परंपरा प्राप्त होती है। यही आज के राजस्थान की आदर्श बोली है।

इसमें दो क्लिक ध्वनियां हैं - घृ, स।

घृ का उच्चारण द-धा के बीच में होता है - धावो (पशु)

स का स-ह के बीच में - जास्यो

स < श में उच्चारित

• **मालवी**

मालवा की बोली मालवी है। इसके अंतर्गत पश्चिम में प्रतापगढ़, रतलाम, इंदौर, भोपाल, होशंगाबाद, गुना, झालावाड़, टोंक तथा चित्तौड़गढ़ के कुछ भाग आते हैं। शुद्ध मालवी उज्जैन, इंदौर और देवास में बोली जाती है। लगभग 65 लाख लोग इसे बोलते हैं।

इसकी स्थिति बुंदेली और मारवाड़ी के बीच की है।

ड़ > ड

ऐ > ए

औ झ ओ

• **जयपुरी**

इसको ढूंढाड़ी भी कहते हैं। इसको पश्चिमी सीमा पर ढूंढ़ा या पाया गया है, जहां किसी युग में बड़े-बड़े यज्ञ हुए थे। इसी ढूंढाड़ से इसका नाम पड़ा। इसको जंगली बोली भी कहा गया है। इसे बोलने वालों की संख्या 40 लाख के लगभग है। जयपुर नगर के 50 मील के क्षेत्र में इसे बोला जाता है।

टिप्पणी

- **मेवाती**

मेओ जाति के नाम पर क्षेत्र का नाम मेवात और बोली का नाम मेवाती पड़ा है। इस पर अब जयपुरी का प्रभाव अधिकाधिक पड़ता जा रहा है।

- **कुमाऊंनी**

कुमाऊं का पुराना नाम कूर्मांचल था। इसके अंतर्गत नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ के जिले सम्मिलित हैं। ग्रियर्सन ने इसकी 12 बोलियों की गिनती की है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 10 लाख है। लोककवियों में गुमानी पंत और कृष्ण पांडेय का नाम प्रसिद्ध है।

इस पर दरद, खस, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि के अतिरिक्त किरात और मोटा आदि तिब्बती चीनी परिवार की भाषाओं का प्रभाव रहा है।

- **गढ़वाली**

ठाकुरों के बावन गढ़ियों में विभक्त हो जाने के कारण इसका नाम गढ़वाल या बावनी पड़ा। यहां की बोली होने के कारण ही इसे गढ़वाली कहते हैं। आज इस क्षेत्र का नाम उत्तराखंड है। इसमें गढ़वाल, टिहरी, चमोली, उत्तरकाशी का दक्षिणी भाग आता है। इसके लगभग 11 लाख बोलने वाले हैं। लोकगीतों के कई संग्रह प्रकशित हुए हैं। लेखकों में चंद्रमोहन रतूड़ी, गैरोला, बहुगुणा आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

### 5.3.2 उपभाषा और विभाषा (Dialect) में अंतर

विभाषा (Dialect) का क्षेत्र बोली की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। विभाषा का रूप परिमार्जित, शिष्ट एवं साहित्य संपन्न होता है। एक विभाषा में कई बोलियां होती हैं। विभाषा का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली, भोजपुरी, गढ़वाली आदि विभाषाओं के अंतर्गत कई बोलियां पाई जाती हैं। डॉ. श्याम सुंदर दास के अनुसार विभाषा की परिभाषा इस प्रकार है– "प्रांत तथा उपप्रांत की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा विभाषा कहलाती है।" ऋषि गोपाल ने विभाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है– "विभाषा भाषा का वह स्वरूप है, जो विशेष प्रदेश में बोला जाता है और उच्चारण, व्याकरणिक रूप और शब्द प्रयोगों की दृष्टि से अन्य विभाषाओं से भिन्न होता है, परंतु इतना भिन्न नहीं कि उसे एक भाषा के क्षेत्र के अंतर्गत न रखा जा सके।" बोलियां धीरे-धीरे विकसित होकर विभाषा अथवा साहित्यिक भाषा बन जाती हैं। बोलियां निम्न कारणों से महत्वपूर्ण होकर साहित्यिक भाषा बन जाती हैं–

(क) जब कई बोलियों में से कोई बोली अन्य बोलियों के लुप्त होने के कारण शेष रह जाती है, तो उसका महत्व अधिक हो जाता है और उसे भाषा का नाम दे दिया जाता है। मुंडा वर्ग की 'ब्राह्मी' इसी प्रकार की भाषा है।

(ख) उत्तम साहित्य-सृजन होने से कुछ बोलियां अधिक प्रचलित हो जाती हैं तथा लोकप्रियता के कारण भाषा बन जाती हैं। ब्रजभाषा इसी प्रकार की बोली है।

टिप्पणी

(ग) कुछ बोलियां राजाओं के दरबारों में आश्रय पाकर विकसित हुईं। खड़ी बोली का क्षेत्र राजनीतिक केंद्र रहा। दिल्ली के समीप स्थित होने से यह अन्य बोलियों को पीछे छोड़ती हुई राष्ट्रभाषा बन गई तथा हिंदी क्षेत्रों की प्रमुख संपर्क भाषा के रूप में विकसित हो गई।

(घ) धार्मिक विशेषता के कारण भी कुछ बोलियां महत्वपूर्ण हो गईं। कृष्ण संबंधी साहित्य का प्रणयन विशेषकर सूरदास की रचनाएं ब्रज में होने से ब्रजभाषा की महत्ता बढ़ गई। इसी प्रकार अयोध्या का संबंध भगवान श्रीराम से होने तथा 'रामचरित' की रचना अवधी में होने से अवधी का भी महत्व अधिक हो गया। खड़ी बोली के प्रचार में ईसाई मिशनरियों तथा आर्यसमाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

(ङ) बोलने वालों के महत्व के कारण भी कोई बोली विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है। अंग्रेजी का क्रमशः विकास होकर अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनना कुछ इसी प्रकार है।

जिन कारणों से कोई बोली विभाषा के रूप में परिवतित हो जाती है, उनके न होने पर पुनः उसका महत्व कम हो जाता है। ब्रजभाषा हिंदी क्षेत्र के बड़े भाग में, यहां तक कि गुजरात तथा बंगाल तक में, व्यवहृत होकर ही रह गई। कभी-कभी पड़ोसी प्रभावशाली बोलियों के प्रभाव से अन्य बोलियां अप्रचलित होकर नष्ट या मृत हो जाती हैं। आयरलैंड की गोथिक भाषा अंग्रेजी के कारण मृत हो गई। लैटिन के कारण रोम के समीप की अन्य भाषाएं नष्ट हो गईं। विकेंद्रित होने पर विभाषा स्थानीय प्रभावों के कारण पुनः अनेक बोलियों में बदल जाती है।

**टकसाली भाषा, आदर्श या परिनिष्ठित भाषा (Standard Language)**– जब एक भाषा क्षेत्र की कोई एक बोली आदर्श मान ली जाती है तथा उसका उपयोग संपूर्ण क्षेत्र के कार्यों, शिक्षित वर्ग के लोगों की शिक्षा, पत्र-व्यवहार, समाचार पत्रों तथा शिष्ट लोगों की पारस्परिक बातचीत के लिए किया जाता है, तो उसे टकसाली या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। टकसाली या आदर्श भाषा का प्रभाव समीप की अन्य बोलियों पर पड़ता है, हिंदी क्षेत्र में खड़ी बोली को भाषा का पद मिलने के बाद उसका प्रभाव हिंदी क्षेत्र की अन्य बोलियों जैसे अवधी, ब्रज, बुंदेली, कन्नौजी, भोजपुरी आदि पर पड़ा है। आदर्श भाषा पर समीप की अन्य बोलियों का भी प्रभाव उच्चारण, शब्द भंडार तथा व्याकरण आदि पर दिखाई देता है। आदर्श भाषा के लिखित तथा मौखिक रूप पाए जाते हैं। संस्कृत तथा लैटिन भाषा के लिखित रूप हैं। इनके बोलने वाले अत्यल्प हैं। ये पुस्तकों तक ही सीमित हैं। मौखिक रूप में किसी क्षेत्र की बोलचाल की भाषा आती है। खड़ी बोली का मौखिक रूप हिंदी, मेरठ के समीप के क्षेत्रों में ग्रामीण बोलियों में मिलता है। मौखिक भाषा के वाक्य छोटे छोटे तथा भाषा के सही रूप को प्रदर्शित करने वाले होते हैं। खड़ी बोली हिंदी का आदर्श रूप पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्यिक रचनाओं में पाया जाता है। भाषा का मौखिक रूप जनसाधारण द्वारा

प्रयुक्त किया जाता है तथा यह रूप परिवर्तनशील होता है, जबकि साहित्यिक रचनाओं में प्रयुक्त लिखित रूप साहित्य के प्रभाव से अधिक समय तक सुरक्षित रहता है। भाषा का लिखित रूप अधिक शुद्ध होता है।

टिप्पणी

आदर्श या टकसाली भाषा की परिभाषा डॉ. श्याम सुंदर दास ने इस प्रकार की है– 'कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट परिगृहीत विभाषा ही भाषा (या टकसाली भाषा) कहलाती है।'

'भाषा विज्ञान कोश' में टकसाली या आदर्श भाषा की परिभाषा इन शब्दों में की गई है– 'टकसाली भाषा किसी भाषा की उस विभाषा को कहते हैं, जो अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक श्रेष्ठता अन्य विभाषाओं पर स्थापित करके उन विभाषाओं के बोलने वालों द्वारा उस भाषा के सर्वाधिक उपयुक्त समझी जाए।'

### 5.3.3 भाषा के उद्भव के विभिन्न सिद्धांत

भाषा के उद्भव के संदर्भ में विविध सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

1. **दैवी उत्पत्तिवाद सिद्धांत** (Divine Origin theory)– इस मत के अनुसार यह माना जाता है कि भाषा की उत्पत्ति दैवी शक्ति के द्वारा हुई है। भगवान सभी वस्तुओं का कर्त्ता है, उसी ने भाषा की उत्पत्ति की है। जब भाषा की उत्पत्ति भगवान ने की है, तो प्रश्न यह है कि किस भाषा विशेष की उत्पत्ति भगवान ने की है? अथवा क्या सभी भाषाएं ईश्वर द्वारा निर्मित हैं? एक भाषा से कई भाषाएं कैसे बन गईं? प्राय: संसार के भिन्न-भिन्न धर्मावलंबी अपने धर्म ग्रंथों की भाषा को सबसे प्राचीन एवं ईश्वर द्वारा उत्पन्न मानते हैं। हिंदू लोग संस्कृत भाषा को 'देववाणी' कहकर सारी भाषाओं की जननी घोषित करते हैं। ऋग्वेद का एक मंत्र है–

   **देवीं वाचमजनयन्त देवा:**
   **तां विश्वरूपा: पश्वो वदन्ति॥** **(ऋ.-100.11)**

   वाग्देवी (वाणी) को देवों ने उत्पन्न किया और उसे सभी प्राणी बोलते हैं।

   इस मंत्र में वाणी की दिव्य-उत्पत्ति असंदिग्ध शब्दों में कही गई है। महर्षि पाणिनि द्वारा उद्धृत चौदह प्रत्याहार सूत्रों को शिव के डमरू निनाद से उत्पन्न मानना दिव्योत्पत्ति का ही रूपांतर कहा जा सकता है। बौद्ध लोगों का विश्वास है कि पालि ही ईश्वर द्वारा उत्पन्न पवित्र तथा प्राचीन भाषा है, जिसमें स्वयं भगवान बुद्ध ने मानव जाति को संदेश प्रदान किए हैं। इसी प्रकार जैन लोग महावीर स्वामी द्वारा दिए गए उपदेशों की भाषा अर्धमागधी को संसार के प्राणियों की एकमात्र प्राचीन भाषा मानते हैं। कैथोलिक ईसाई 'हिब्रू' को ईश्वर द्वारा उत्पन्न भाषा मानते हैं। इसी से संसार की अन्य भाषाएं बनी हैं। इस्लाम धर्मावलंबी अरबी को, जो कुरान की भाषा है, ईश्वर (खुदा) द्वारा उत्पन्न मानते हैं। मिस्रवासी भी अपनी भाषा को देवभाषा के रूप में संबोधित करते हैं। इसी प्रकार पारसी लोग अपनी प्राचीन अवेस्ता भाषा को संसार की मूलभाषा एवं ईश्वरीय भाषा मानते हैं। यूरोप के कई विद्वानों ने 'हिब्रू' से

टिप्पणी

तथा भारतीय विद्वानों ने वैदिक संस्कृत से अन्य भाषाओं की उत्पत्ति मानी है। श्री भगवद्दत्त ने अपने 'भाषा का इतिहास' ग्रंथ में कहा है कि संस्कृत ही सबसे प्राचीन भाषा है तथा उसका प्राचीनतम रूप, जो अज्ञात है, कभी संसार को ज्ञात हुआ, तो अनेक समस्याओं का समाधान निकल आएगा। उन्होंने 'ह्रास सिद्धांत' को दर्शाया है अर्थात प्राचीनतम रूप में संस्कृत अत्यंत समृद्ध भाषा थी बाद में उसमें ह्रास हुआ। यूरोप के विद्वान इसके विपरीत 'विकासवाद' का समर्थन करते हैं। इसके अनुसार भाषा प्राचीन अविकसित दशा से विकास की ओर बढ़ती है।

- **समीक्षा**–इस सिद्धांत के विरोध में निम्न तर्क उपस्थित किए जाते हैं–

(क) यदि भाषा ईश्वर द्वारा उत्पन्न होती, तो सभी बच्चे जन्म से ही उसी को बोलते तथा उन्हें भाषा सीखनी नहीं पड़ती। परंतु बच्चे जन्म से किसी भाषा को नहीं बोल सकते। वे समाज द्वारा बोली जानी वाली भाषा को सीख कर बोलने लगते हैं। जिन बच्चों को समाज से अलग रखा गया, वे कोई भी भाषा बोलने में असमर्थ थे। अतः भाषा ईश्वर प्रदत्त नहीं है।

(ख) यदि भाषा ईश्वरनिर्मित होती, तो सब लोग एक ही भाषा का प्रयोग करते। संसार में भिन्न-भिन्न भाषाएं न पाई जातीं।

(ग) यदि भाषा ईश्वरनिर्मित होती तो, उसमें वर्तमान काल में प्राप्त अनियमितताएं, असंगतियां एवं अपवाद न मिलते।

(घ) सभ्य तथा असभ्य लोगों की भाषा में भेद न होते।

(ङ) हर्डर ने कहा है कि भाषा यदि ईश्वर ने बनाई होती, तो वह सब तरह से पूर्ण, युक्तिसंगत होती तथा भाषा की उत्पत्ति संज्ञा शब्दों से होती। इसके विपरीत अधिकांश भाषाओं में धातुओं से संज्ञा शब्द बने हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा मानना अंधविश्वास एवं तर्कहीनता का प्रतीक है। नास्तिक लोग भाषा की उत्पत्ति ईश्वर से स्वीकार नहीं कर सकते। वर्तमान काल की भाषाओं का अब भी निरंतर विकास हो रहा है। भाषा में नवीन शब्दों का प्रवेश होता रहता है तथा अनेक प्राचीन शब्द प्रचलित होकर लुप्त हो जाते हैं। भाषा में अनेक परिवर्तन तथा परिष्कार होते रहते हैं। अतः भाषा की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती, उसे सीखकर ही बोला जा सकता है।

2. **सांकेतिक उत्पत्तिवाद सिद्धांत** (Symbolical Origin Theory)– इस सिद्धांत को स्वीकारवाद, प्रतीकवाद, संकेतवाद भी कहते हैं। इस मत के समर्थकों का कहना है कि आरंभ में मनुष्य भी पशुओं के समान सिर, आंख, हाथ-पैर आदि अंगों को चलाकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया करता था, किंतु इससे उसका अभिप्राय पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाता था। इस असुविधा को दूर करने और अपने मनोभाव को पूर्णता तथा स्पष्टता से व्यक्त करने की भावना से प्रेरित होकर मनुष्य ने पारस्परिक विचार-विनिमय द्वारा ध्वन्यात्मक भाषा को जन्म दिया अर्थात आंगिक संकेत की असुविधा और अपूर्णता को दूर करने के लिए विचार-विमर्श कर उसने भाषा जैसे समर्थ, पूर्ण और सुविधाजनक संकेत को प्रस्तुत किया।

टिप्पणी

● **समीक्षा**– इस सिद्धांत में भी अनेक असंगतियां हैं–

(क) यह सिद्धांत स्वीकार करता है कि एक समय ऐसा था जब मनुष्य को भाषा प्राप्त नहीं थी, पर यदि भाषा थी ही नहीं तो उसकी आवश्यकता का अनुभव मनुष्य को कैसे हुआ? आज भी पशुओं को उसकी आवश्यकता का अनुभव कहां हो रहा है? यदि होता तो वे कोई महासभा करके अपने लिए एक भाषा बना लेते और अपने विचारों को अधिक पूर्णता से व्यक्त कर पाते।

(ख) भाषा के अभाव में उस मानव-महासभा में विचार-विमर्श किस माध्यम से हुआ, यह दूसरी असंगति है। जब हजारों या लाखों की संख्या में वाणी-विहीन मनुष्य एकत्रित हुए होंगे, तो ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर तर्क-वितर्क करने का कोई माध्यम तो होना ही चाहिए? वह क्या था?

(ग) उस महासभा में विभिन्न अर्थों के वाचक विभिन्न शब्द (संकेत) किसने बनाए और किस आधार पर बनाए? संभव है, विभिन्न व्यक्तियों ने एक ही वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न शब्द सुझाए हों फिर। उस अनेक शब्दों में से एक को किस आधार पर स्वीकार किया गया? आज भी दस जनों की सभा में कोई बात सरलतापूर्वक और एकमत से स्वीकृत नहीं हो पाती। सभ्यता की आदिम व्यवस्था में यह आश्चर्यजनक एकता कैसे संभव हो गई?

(घ) यदि बिना भाषा के इतना महत्वपूर्ण विचार-विमर्श और निर्णय हो सकता था, तो भाषा की आवश्यकता क्यों थी? उस समय भाषा स्थानापन्न का जो भी माध्यम रहा हो, वह पर्याप्त समर्थ था और उससे आगे भी काम लिया जा सकता था। यह सिद्धांत भामह ने ऐसे उपस्थित किया है–

**इयन्त ईदृशा वर्णा ईदृगर्थाभिधायिनः।**

**व्यवहाराय लोकस्य प्रागित्थं समयः कृतः॥**

इतने और इस प्रकार के ऐसे वर्ण ऐसे अर्थ को बोध कराएं, इस प्रकार पहले (सृष्टि के प्रारंभ) में लोक-व्यवहार के लिए संकेत किया गया।

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् से प्रकाशित भामह विरचित काव्यालंकार के भाष्य में भामह ने इस कारिका की जो व्याख्या की है वह प्रस्तुत है– "सृष्टि के आरंभ में ही यह संकेत निश्चित कर लिया गया कि इतने वर्ण इस क्रम से उच्चरित होने पर अमुक अर्थ का बोध कराएंगे। जैसे– क के बाद म और म के बाद ल रहे (कमल), तो उससे पुष्प विशेष का बोध होगा, यह प्रारंभ में ही निश्चित हो गया। इसी तरह अनंत संकेत बना लिए गए, जिनसे आज तक काम चल रहा है।"

"सृष्टि के आरंभ में इस प्रकार का संकेत कर लिया गया पर यह संकेत किसने किया? और, जब तक संकेत स्थिर नहीं हुआ था, तब तक लोक-व्यवहार कैसे संपन्न होता था। आखिर कुछ लोगों ने मिलकर यह निर्णय किया होगा कि अमुक क्रम से अमुक वर्ण उच्चरित होकर अमुक अर्थ के बोधक हों। जिस दिन यह निर्णय हुआ उसके पहले कैसे काम चलता था? जिस प्रकार पहले चलता था, उसी प्रकार बाद में भी चल सकता था। फिर,

टिप्पणी

एकाएक यह कैसे अनुभव हुआ कि हमें सुनिश्चित संकेतों की आवश्यकता है? अनुभव हुआ भी तो संकेतों का निर्धारण किस माध्यम के द्वारा किया गया? जो संकेत निर्धारित हुए वे आगे चलकर बदले क्यों गए? बदले गए तो किसकी सम्मति से। आज वही भाषा तो नहीं बोली जा रही जो सृष्टि के आरंभ में बोली जाती थी? न जाने कितनी बार उसका रूप परिवर्तन हुआ। इस तरह की अनेक शंकाएं हैं, जिनका समाधान इस सिद्धांत से नहीं होता।

3. **धातु सिद्धांत** (Root Theory)– इस सिद्धांत की प्रेरणा जर्मन विद्वान हेज (Heyes) ने दी तथा मैक्समूलर ने इसका प्रतिपादन किया। आदिमानव के पास ऐसी शक्ति थी कि उसके मन पर जब किसी वस्तु का प्रभाव पड़ता, तो उसके मुख से अपने आप उस वस्तु के अनुरूप ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति होती थी। इस प्रकार आदि मानव ने 400-500 धातुओं की उत्पत्ति की, जिनके सहारे बाद में भाषा की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार की शक्ति आवश्यक धातुओं के निर्मित होने के बाद स्वत: समाप्त हो गई। इन्हीं धातुओं से विभिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हुई।

- **समीक्षा**– इस सिद्धांत द्वारा भाषा की उत्पत्ति को भलीभांति सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस मत के विरुद्ध निम्न तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं–

(क) मनुष्य में जिस विशेष शक्ति की कल्पना की गई है, वह कहां से आई, किस प्रकार उत्पन्न हुई तथा बाद में समाप्त क्यों हो गई?

(ख) आदिमानव ने धातुओं की किसी प्रकार की कल्पना नहीं की थी। यह एक कल्पित विचार है।

(ग) धातुओं से भाषा की उत्पत्ति मानी गई है, परंतु संसार में कई भाषाएं इस प्रकार की हैं, जिनमें धातुएं नहीं पाई जातीं; जैसे चीनी इसी प्रकार की भाषा है। अथवस्कन भी इसी प्रकार की भाषा है।

(घ) चार सौ या पांच सौ धातुओं की कल्पना भाषा की उत्पत्ति के लिए थोड़ी है, केवल संस्कृत में 1970 धातुएं पाई जाती हैं।

(ङ) भाषा के निर्माण में धातुओं, प्रत्ययों एवं उपसर्गों का प्रयोग किया जाता है। केवल धातुओं से भाषा का निर्माण संभव नहीं है।

4. **अनुकरणमूलकतावाद सिद्धांत** (Bow-Bow Theory)– इस सिद्धांत के अनुकरण सिद्धांत, शब्दानुकरणवाद, शब्दानुकरणमूलकतावाद, भों भों वाद आदि अन्य नाम हैं। अंग्रेजी में इसे Onomatopoeic एवं Choic Theory कहा गया है। इस सिद्धांत के अनुसार वस्तुओं का नामकरण उनसे उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक ध्वनियों के आधार पर हुआ है, अर्थात जिस वस्तु से जैसी ध्वनि उत्पन्न होती सुनी गई, उसका उसी के अनुकरण पर नाम रख दिया गया। जैसे का-का रटने वाले को काक, कू-कू, कूकने वाली को कोकिल, दर्-दर् ध्वनि करने वाले को दर्दुर, झर झर करने वाले जलप्रवाह को निर्झर या झरना कहा जाने लगा। इसी प्रकार चीनी में मियाउं (बिल्ली) तथा हिंदी में म्यांऊ शब्द ध्वनि अनुकरण पर बने हैं। इसी भांति मर्मर, गर्जन, झन-झन, कल-कल, चटपट, झमाझम, धमाधम, गड़गड़ाहट, घरघराहट, सनसनाहट, घिघियाना, मिमियाना, किकियाना, तड़तड़ाना, फड़फड़ाना, कड़कड़ाना, बड़बड़ाना, खटखटाना तथा हिनहिनाना जैसे शब्द ध्वनिसाम्य के आधार पर प्रयोग

में आए। ध्वनि के समान चाक्षुष प्रभाव के आधार पर भी अनेक शब्द उत्पन्न हुए। जैसे– चकचक, चकमक, जगमग, झकझक आदि। सुमित्रानंदन पंत की कविता का निम्नलिखित अंश ऐसे शब्दों से भरा है–

टिप्पणी

जीवन का उल्लास
यह सिहर-सिहर
यह लहर लहर

यह फूल फूल करता विलास
रे फैल-फैल फेनिल हिलोल
उठती हिलोल पर लोल-लोल

शतयुग के शत बुदबुद विलीन
बनते पल-पल शत-शत नवीन
जीवन का जलनिधि डोल-डोल
कल-कल, छल-छल करता किलोल।

हर्डर, ह्विटनी, पाल आदि भाषाविज्ञानियों ने इस सिद्धांत का समर्थन किया है। भाषाओं में इस प्रकार के बने शब्द अब थोड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। परंतु यह निश्चित है कि प्रारंभिक समय में ध्वनि के अनुकरण पर बने शब्द भाषा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आटो यस्पर्सन ने सिद्ध किया है कि ध्वनि के अनुकरण पर अनेक शब्द बन सकते हैं, जैसे– कूक्कू Cuckoo से कुकोल्ड (Cuckold) फ्रेंच Cocu काकू बने हैं। Cock कॉक से फ्रेंच के कॉक (Coquet), काकेतरी (Coquetterie), कोकार (Cocart), कोकार्द (Cocarde) आदि शब्द बने हैं। इस प्रकार अन्य भाषाओं में भी विभिन्न शब्दों को देखा जा सकता है, जिनका निर्माण ध्वन्यात्मक अनुकरण पर हुआ है।

**● समीक्षा**

(क) यह सिद्धांत मनुष्य को वाणी-विहीन मान लेता है और उसकी भाषा का आरंभ पशु-पक्षियों या प्राकृतिक वस्तुओं की ध्वनियों के अनुकरण पर सिद्ध करता है। परिणामतः भाषा की दृष्टि से मनुष्य पशु-पक्षियों से भी हीन कोटि का जीव सिद्ध होता है। यह कल्पना दो दृष्टियों से अग्राह्य है – एक तो यह कि मनुष्य से पहले पशु-पक्षियों को भाषा मिली और उसने उनके अनुकरण से भाषा सीखी। दूसरी यह कि जब मनुष्य को बोलने की शक्ति थी ही नहीं, तो उसे ध्वन्यात्मक अनुकरण करना कैसे आया? जिसमें ध्वनिक संभावनाएं नहीं होंगी, वह ध्वन्यात्मक अनुकरण करने में समर्थ हो कैसे सकता है?

(ख) इस सिद्धांत को स्वीकार कर लेने पर भी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न हल नहीं होता, क्योंकि अनुकरणात्मक शब्दों की संख्या भी किसी भाषा में अत्यल्प है। अथवस्की (अमेरिका की एक भाषा) जैसी भाषा में तो अनुकरणात्मक शब्द हैं ही नहीं। फिर, उसकी उत्पत्ति की समस्या का समाधान क्या होगा?

(ग) अनुकरणात्मक शब्दों के रूप भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में विभिन्न हैं। इससे स्पष्ट है कि अनुकरण की एकरूपता भी सभी भाषाओं में नहीं रहती है।

टिप्पणी

| संस्कृत | हिंदी | अंग्रेजी | जर्मन | रूसी | फ्रांसीसी |
|---|---|---|---|---|---|
| निर्झर | झरना | स्ट्रीम | स्ट्रोम | रुचेइ | रि्वसो |
| दर्दुर | मेढक | फ्रॉग | फ्रोश | ल्यागूश्का | ग्रेनूइ |

(घ) अनुकरणमूलक या ध्वन्यर्थव्यंजक शब्द मुख्यत: भाषा के अलंकरण पक्ष में आते हैं, वे भाषा का आधार नहीं प्रस्तुत करते, जैसा कि पंत के उद्धृत उदाहरण से स्पष्ट है।

(ङ) यह सिद्धांत किसी भी भाषा की शब्दावली के एक सीमित अंश के विकास की व्याख्या करता है, संपूर्ण भाषा की उत्पत्ति का नहीं।

(च) मैक्समूलर ने इस मत की हंसी उड़ाई तथा इस सिद्धांत को बाउ-वाऊ (Bow-wow) कुत्ते की बोली कहा है। उनका कहना था कि 'इस प्रकार के शब्द' कृत्रिम फूलों की तरह आधार रहित हैं, वे अनुर्वर हैं, क्योंकि जिस वस्तु के ध्वन्यनुकरण पर वे बने हैं, उस वस्तु को छोड़ वे अन्य किसी वस्तु का निर्देश नहीं कर सकते। (Words of this kind are like artificial flowers, without a root, they are sterile and unfit to express anything beyond the one object which they imitate).

वस्तुत: इस सिद्धांत का सार इतना ही है कि अन्य प्राणियों की जो ध्वनि अर्थहीन, किंतु उसके किसी वैशिष्ट्य से संबद्ध थी, वह मनुष्य के द्वारा सार्थक बना दी गई। दूसरों की निरर्थक ध्वनि को सार्थक शब्द में परिणत कर देने की क्षमता वाले बौद्धिक प्राणी को पशु-पक्षी या अचेतन पदार्थों की अर्थहीन ध्वनियों का ऋणी मानने की कल्पना कितनी निस्सार है, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

5. **मनोभावाभिव्यंजकतावाद सिद्धांत (Pooh-Pooh Theory or Interjectional Theory)**– इस सिद्धांत को आवेग सिद्धांत, मनोभावाभिव्यक्तिवाद, मनोरागव्यंजक, शब्दमूलकवाद, पूह पूहवाद आदि अन्य नामों से भी संबोधित करते हैं। इस सिद्धांत का जन्म अनुकरणमूलकतावाद सिद्धांत के आधार पर हुआ।

इस सिद्धांतानुसार हर्ष, शोक, विस्मय, क्षोभ, क्रोध, घृणा आदि मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति से जो ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, उन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई है। संवेदन या भाव की तीव्रता होने पर अपने आप ही ध्वनियां निकल पड़ती हैं। जैसे हर्ष में वाह, वाह-वाह, आहा, शोक या कष्ट में आह, ओह, हाय, विस्मय में ऐं, हैं, ओहो, तिरस्कार में छि:, धिक्, दुत् आदि। जब भाषा का विकास नहीं हुआ था, तो मनुष्य मनोभावों को व्यक्त करता था। धीरे-धीरे उसकी भाषण शक्ति का विकास हुआ और बाद में भाषा निर्मित हुई।

● **समीक्षा**– इस सिद्धांत में अनेक दोष हैं–

(क) सबसे पहली बात तो यह है कि ये शब्द आवेगात्मक तीव्रता के ही बोधक हैं, इनका संबंध स्वाभाविक अभिव्यंजना से नहीं है। अत: ये संप्रेषण प्रधान भाषा के सहज अंग नहीं कहे जा सकते।

टिप्पणी

(ख) इस प्रकार के बने शब्दों में भाषा के संपूर्ण शब्दों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता, अतः इन शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों की उत्पत्ति कैसे हुई, यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है।

(ग) इन शब्दों का मानसिक से अधिक शारीरिक प्रतिक्रियाओं से साहचर्य है। ये शब्द सोच-विचार कर नहीं बोले जाते। आवेग के अतिरेक की स्थिति में अपने आप ही मुख से निस्सृत हो जाते हैं।

(घ) कभी-कभी आवेगों की अभिव्यक्ति केवल उच्छ्वास या हुंकार द्वारा ही हो जाती है। आवेग की तीव्रता के समय मुख विवर खुला होने से यों भी आ, ओ, ऐं आदि ध्वनियां निकल पड़ती हैं। भाषा का चिंतन से घनिष्ठ संबंध है और इन आवेग-व्यंजक शब्दों में चिंतन का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

(ङ) आवेग-बोधक शब्दों की संख्या किसी भी भाषा में अत्यंत अल्प है। साथ ही, वे भाषा के अनिवार्य अंग भी नहीं हैं। उनका वाक्य में प्रयोग शायद ही होता हो।

(च) विभिन्न भाषाओं में इस वर्ग के शब्दों में एकरूपता भी नहीं है। उदाहरणार्थ हर्ष के लिए अंग्रेजी में हुर्रा (Hurrah), शोक के लिए एलास (Alas), तिरस्कार के लिए फाइ (Fie), अनुमोदन के लिए ब्रेवो (Bravo) आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए जर्मन में आउ (Au), फ्रांसीसी में आहि (Ahi) तथा अंग्रेजी में ओह (Oh) आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। इससे स्पष्ट है कि आवेगात्मक स्थितियों में भी विभिन्न भाषा-भाषियों की एक प्रकार की शाब्दिक प्रतिक्रिया नहीं होती।

(छ) इन शब्दों का प्रयोग प्रायः वहीं होता है जहां भावावेग के कारण सामान्य भाषा मूक हो जाती है अर्थात मनुष्य बोलना चाहते हुए भी बोल नहीं पाता और तब किसी प्रकार अपने मन का भाव व्यक्त कर मन हल्का कर लेना चाहता है। इस दृष्टि से भी इन्हें सामान्य, स्वाभाविक भाषा का अंग मानना दुष्कर कार्य है।

(ज) प्रत्येक भाषा में देखा जाता है कि एक मूल शब्द से अनेक शब्द निष्पन्न हो जाते हैं। आवेगबोधक शब्द इस दृष्टि से भी अनुपयोगी हैं। वे किसी आवेग को व्यक्त भले ही कर दें, अन्य शब्दों को निष्पन्न नहीं कर सकते। दूसरा तथ्य यह भी है कि आवेगों की भी उनसे पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती। आह या ओह कहने से केवल इतना ही पता चलता है कि वक्ता को कोई कष्ट या शोक है, पर वह कब से है, किस कारण से है, कितना तीव्र है आदि का ज्ञान नहीं हो पाता।

(झ) इन ध्वनियों को यथावत् लिपिबद्ध करना भी असंभव है; जैसे किसी पर दया करते समय या खेद व्यक्त करते समय जो ध्वनि निकलती है, उसे हम च-च लिखकर व्यक्त करते हैं, पर वस्तुतः वह न तो च-च है, न त-त। उसको लिपिबद्ध करने का कोई संकेत है ही नहीं। यह स्थिति अनेक उच्च आवेगबोधक ध्वनियों की है।

सारांश यह है कि आवेग सिद्धांत भी भाषोत्पत्ति विषयक समस्या का समाधान करने में असमर्थ हैं।

टिप्पणी

6. **श्रमपरिहरणमूलकतावाद सिद्धांत** (Yo he-ho Theory)– इस सिद्धांत को श्रमध्वनिसिद्धांत के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस सिद्धांत के प्रवर्तक न्वायर (Noire) नामक विद्वान थे। उनका मंतव्य था कि मनुष्य जब कठोर परिश्रम करता है, तो उसके कारण श्वास तीव्रता से चलने लगती है तथा स्वरतंत्रियां भिन्न-भिन्न प्रकार से कंपित होने लगती हैं। उस समय मानव के मुख से कुछ ध्वनियों की उत्पत्ति होती है तथा उसे अपार शांति का अनुभव होता है। इसी तरह, मल्लाह हैया हैया, धोबी हियो हियो या छियो छियो तथा अन्य श्रमिक हो हो हूं हूं आदि इसी प्रकार की कुछ ध्वनियों का उच्चारण करके अपने शारीरिक श्रम का परिहार करते हैं। इस सिद्धांत के आधार पर यह बताया गया है कि स्वत: निकली ध्वनियां ही आदिम दशा में उन कार्यों की प्रतीक हो गईं, जिन कार्यों को करते समय वे उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार भाषा के कुछ शब्दों की उत्पत्ति हुई। अंग्रेजी में yo he ho ऐसी ही ध्वनि है। ऐसी अन्य ध्वनियों से अंग्रेजी में हीव (Heave) तथा हॉल (Haul) क्रियाओं का निर्माण हुआ होगा। प्रत्येक भाषा के कुछ शब्द इस प्रकार बने होंगे।

- **समीक्षा**– इस सिद्धांत के विरुद्ध निम्न तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं–

(क) इस प्रकार के शब्द किसी भी भाषा में अत्यल्प मात्रा में प्राप्त होते हैं। अत: इनसे अतिरिक्त विशाल शब्द समूह की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका समाधान इस सिद्धांत से नहीं किया जा सकता।

(ख) इस प्रकार की ध्वनियों का भाषा में कोई स्थान नहीं है।

(ग) संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में ये शब्द एक ही प्रकार से नहीं पाए जाते। एक अंग्रेज श्रमिक एवं एक भारतीय श्रमिक की ध्वनियों में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है।

(घ) कुछ भाषाओं में इस प्रकार के बने शब्दों का अस्तित्व नहीं है।

(ङ) ये शब्द भाषा के प्रमुख अंग नहीं हैं।

7. **अनुरणन सिद्धांत** (Ding dong Theory)– इस सिद्धांत को रणन सिद्धांत, अनुकरण या अनुकरणात्मक सिद्धांत भी कहते हैं। इस सिद्धांत की ओर सर्वप्रथम संकेत प्लेटो ने ही किया था, किंतु इसे पल्लवित मैक्समूलर ने किया था। इसके अनुसार, शब्द एवं अर्थ में एक प्रकार का रहस्यात्मक नैसर्गिक संबंध है। संसार में प्रत्येक वस्तु की अपनी विशिष्ट ध्वनि हुआ करती है जो किसी वस्तु से टकराने पर व्यक्त हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि हथौड़े से किसी धातु, लकड़ी, ईंट, पत्थर, शीशे आदि पर आघात करें, तो उनसे विभिन्न प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न होंगी और उन ध्वनियों को सुनकर ही कोई पहचान सकता है कि वे किस धातु से उत्पन्न हुईं। परोक्ष में कोई वस्तु गिर जाने पर केवल उसकी आवाज से ही हम पहचान लेते हैं कि क्या गिरा है। शीशे के गिलास की आवाज कांसे के गिलास की आवाज से भिन्न होती है। लकड़ी टूटने की आवाज मिट्टी का गमला फूटने जैसी नहीं होती। तात्पर्य है कि प्रत्येक वस्तु की अपनी विशिष्ट ध्वनि होती

टिप्पणी

है, जो आघात पड़ने पर सुनाई देती है। इस ध्वनि को अनुरणन कहते हैं। सृष्टि के आरंभ में मानव वाणी-विहीन था, किंतु जब वह संसार की विभिन्न वस्तुओं के संपर्क में आया तो तत्तत् वस्तुओं का उसके ऊपर जो प्रभाव पड़ा, उससे अनायास तत्तत् वस्तुओं के बोधक शब्द उसके मुख से निकल पड़े। जैसे विस्तृत जल-प्रवाह को देखने पर उसके मुख से एकाएक 'नदी' शब्द निकल पड़ा। तीव्रगामी पशु विशेष को देखते ही 'अश्व' शब्द उत्पन्न हो गया। इसी तरह संसार की समग्र वस्तुओं के लिए शब्द निर्मित हो गए। भाषा का निर्माण हो जाने के बाद मनुष्य की यह सहज शक्ति समाप्त हो गई। जैसे एक वस्तु से दूसरी वस्तु की आवाज़ भिन्न होती है, वैसे ही एक वस्तु के वाचक शब्द से दूसरी वस्तु का वाचक शब्द भी स्वभावतः भिन्न हो गया। नदी वाचक शब्द पर्वत वाचक शब्द से भिन्न, तो अश्व वाचक शब्द गज वाचक से भिन्न।

- **समीक्षा**– यह सिद्धांत शब्द तथा अर्थ में नैसर्गिक संबंध मानता है जो तर्कसंगत से अधिक रहस्यात्मक है। इस सिद्धांत में वैज्ञानिकता का सर्वथा अभाव है। बाह्य वस्तु की ऐसी प्रतिक्रिया कभी नहीं होती। यह कल्पना सर्वथा यादृच्छिक है। इसका कोई सुसंगत आधार नहीं है। जैसे जादूगर अपनी जादू की छड़ी से पलक मारते कुछ का कुछ कर दिखाता है, वैसे ही बाह्य वस्तुओं से संपर्क होते ही मनुष्य शब्द बनाता चला गया और जैसे ही सारे शब्द निष्पन्न हो गए, वैसे ही उसकी शक्ति भी समाप्त हो गई। आगे चलकर यह सिद्धांत स्वयं मैक्समूलर को इतना दोषपूर्ण प्रतीत हुआ कि उन्होंने इसे छोड़ दिया। आज इसका उल्लेख केवल इस दृष्टि से किया जाता है कि भाषोत्पत्ति-विषयक सिद्धांतों की कल्पना के प्रसंग में कैसे-कैसे विलक्षण सिद्धांत उपस्थित किए गए थे।

8. **प्रतीकवाद या इंगित सिद्धांत** (Gesture Theory)– प्रतीक का अर्थ 'चिह्न' है। जब किसी छोटी वस्तु या भाव को बनाने के लिए स्थूल वस्तु का आश्रय लिया जाता है, तो उसे प्रतीकवाद कहते हैं। जैसे युवावस्था की तुलना सौंदर्य, ताजगी, उत्साह एवं विकास से युक्त फूल से की जाती है। कली को बाल्यावस्था का, संध्याकाल को वृद्धावस्था का तथा रात्रि को मृत्यु का प्रतीक कहा जाता है। पीने की क्रिया का प्रतीक 'पी' से जाना जाता है। 'मामा' शब्द अंग्रेजी में 'मां' का प्रतीक है, तो हिंदी में मां के भाई (मामा) का। तमिल में श्वसुर के लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। अतः मामा शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ प्रतीकस्वरूप आरोपित कर दिए गए हैं।

- **समीक्षा**

  (क) इस प्रकार के शब्द अत्यल्प पाए जाते हैं। इनसे भाषा का निर्माण संभव नहीं है।

  (ख) प्रतीक की विधि स्पष्ट नहीं है।

  (ग) यदि पहले भाषा नहीं थी, तो प्रतीक किस प्रकार नियत हुआ।

9. **टा-टा सिद्धांत** (Ta-Ta-Theory)– इस सिद्धांत में बताया गया है कि भाषा की उत्पत्ति उन शब्दों के द्वारा हुई है, जिनका आदिमानव कार्य करते समय जाने-अनजाने (कुछ ध्वनियों या शब्दों का) उच्चारण करता था। इस सिद्धांत से भाषा की उत्पत्ति

पूर्णतया सिद्ध नहीं की जा सकती है। आदि मानव द्वारा उच्चरित ध्वनि या शब्द निरर्थक थे, फिर इनसे भाषा का विकास कैसे संभव है?

टिप्पणी

10. **संगीत सिद्धांत** (Sing Song Theory)– इस सिद्धांत के अनुसार आदि मनुष्य में संगीत द्वारा भाषा की उत्पत्ति स्वीकार की गई है। आदि मानव अवकाश के क्षणों में प्रेम या दु:ख के कारण अर्थहीन गीत गाता था। बाद में इन्हीं गीतों के शब्दों से विशेष दशाओं में अर्थ के संबंधित होने से भाषा का विकास हुआ। डार्विन, स्पेंसर तथा येस्पर्सन ने इसी प्रकार का मत प्रकट किया है। संगीत के प्रेम से संबंधित होने के कारण इसे प्रेम सिद्धांत (Woo-woo Theory) भी कहा गया है।

11. **संपर्क सिद्धांत**– इस सिद्धांत का प्रतिपादन प्रो. जी. रेवेज ने किया था। उन्होंने पशु-मनोविज्ञान, बाल-मनोविज्ञान एवं आदि मानव के मनोविज्ञान के आधार पर इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनका कथन था कि सामाजिक प्राणियों में पारस्परिक संबंध बनाने की प्रवृत्ति होती है, इसी को 'संपर्क' कहा गया है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को बताने में अनेक प्रकार से संपर्क स्थापित करता था। स्पर्श तथा ध्वनि उच्चारण के द्वारा संपर्क होता था। धीरे-धीरे इनसे भाषा का विकास हुआ। जैसे-जैसे भावों तथा विचारों का संपर्क अधिक होता गया, उसी प्रकार भाषा भी विकसित होती गई। इस सिद्धांत के द्वारा भी भाषा की उत्पत्ति भलीभांति सिद्ध नहीं की जा सकती है।

12. **समन्वय सिद्धांत**– कुछ भाषा-विज्ञानियों ने इन सिद्धातों की अव्याप्ति और परिसीमा देखकर सब के समन्वय को भाषा की उत्पत्ति का आधार माना है। तात्पर्य यह है कि किसी एक सिद्धांत को भाषा का आरंभ मानने के बदले सभी सिद्धांतों को स्वीकार करना अधिक तर्कसंगत एवं समीचीन है। जैसा कि हमने विश्लेषण किया, कुछ शब्द अनुकरण से उत्पन्न हुए, तो कुछ आवेग की तीव्रता से और कुछ श्रम के साहचर्य से। इस तरह एक-एक सिद्धांत को पृथक्-पृथक् मानने की अपेक्षा उनके समन्वय को भाषा की उत्पत्ति का कारण मानना निश्चिय ही अधिक व्यापक है।

- **समीक्षा**

(क) सभी सिद्धांतों को समन्वित कर देने पर भी भाषा के अत्यंत साधारण अंश की उत्पत्ति का समाधान हो पाता है। उदाहरणार्थ–

'भाषा और विकास की उत्पत्ति का प्रश्न मानव समाज के विकास के प्रश्न के साथ अनिवार्य रूप से संयुक्त है।'

इस लघु वाक्य में एक शब्द भी ऐसा नहीं है, जो उपर्युक्त सिद्धांतों के समन्वित रूप से भी निष्पन्न किया जा सके भाषा की असीम व्यापकता और गंभीरता को देखते हुए ये सभी सिद्धांत केवल कल्पना-विलास मात्र प्रतीत होते हैं।

(ख) ये सभी सिद्धांत यह मानकर चलते हैं कि आरंभ में मानव मूक था, पर यह बात शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से अस्वीकार्य है। जो प्राणी वाणी संपन्न थे वे तो जहां के तहां रह गए और मूक मानव भाषा जैसे समृद्ध-समर्थ अभिव्यंजना-माध्यम का अधिकारी बन गया।

(ग) सूक्ष्म, अमूर्त भावों के अभिव्यंजक शब्दों की उत्पत्ति की व्याख्या इनमें किसी सिद्धांत से नहीं होती। केवल स्थूल अर्थों के बोधक शब्दों को लेकर न तो किसी भाषा का आरंभ हो सकता है और न भाषा की असीम शक्ति और व्यापकता की व्याख्या।

टिप्पणी

### औपचारिक शब्द

भाषा का विकास निरंतर होता रहा है। ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ उसको व्यक्त करने के लिए नये नये शब्दों का निर्माण किया जाता है। पहले से चले आ रहे शब्दों को आधार बनाकर नवीन शब्दों का निर्माण औपचारिक शब्द कहा जाता है। संस्कृत भाषा का 'या' से 'जाना' अर्थ ग्रहण किया जाता है, इसको आधार मानकर अनेक शब्द बनाए गए हैं; जैसे यान, अभियान, वायुयान, जलयान, वाष्पयान, प्रयाण, हीनयान, महायान, आदि।

दक्षिणी अफ्रीका की सासुतो भाषा में मक्खी को 'नत्सी नत्सी' कहते हैं, जिसमें भिनभिनाने का भाव छिपा रहता है। इसका प्रयोग चाटुकारिता एवं चूसने के लिए भी किया जाता है। ऑस्ट्रेलिया के आदिवासी स्नायु को अपनी बोली में 'मूयूम' कहते हैं। स्नायु की तरह खुलने बंद होने से वे लोग पुस्तक को भी 'मयूम' कहने लगे। अंग्रेजी बाजे पाइप (Pipe) की सादृश्यता के कारण 'नल' के लिए 'पाइप' शब्द का प्रयोग होने लगा। ईरान के पहाड़ी क्षेत्र के सुमेरी लोग कुत्तों तथा गधों से परिचित थे किंतु जब वे दक्षिण ईराक में बसे, तो शेर तथा घोड़े से परिचित हुए, अतः ये लोग शेर को 'नुग मग' (बड़ा कुत्ता) तथा घोड़े को 'पर्वतीय गधा' कहने लगे। 'रम्' धातु का प्राचीन अर्थ 'स्थिर होना' था। कालांतर में इसका अर्थ 'आनंद मनाना' हो गया। इसी प्रकार रमण तथा मनोरम का अर्थ भी औपचारिक है, मूलार्थ नहीं। 'कुप' (चलना) तथा 'व्यय' (कांपना) धातुओं का अर्थ बदलकर औपचारिक होकर क्रमशः क्रोध तथा पीड़ा हो गया।

इस प्रकार जिन शब्दों की उत्पत्ति अनुकरणात्मक, मनोभावाभिव्यंजक एवं प्रतीकात्मक शब्दों द्वारा सिद्ध नहीं होती, उन शब्दों की उत्पत्ति सादृश्य के आधार पर निश्चित की जा सकती है।

### भाषा के उद्‌भव का अप्रत्यक्ष मार्ग

भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए प्रत्यक्ष मार्ग के अतिरिक्त कुछ विद्वान अप्रत्यक्ष मार्ग का भी आश्रय लेते हैं। अप्रत्यक्ष मार्ग को आगमन पद्धति भी कहते हैं। इस विधि में भाषा की उत्पत्ति जानने के लिए निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है–

1. बच्चों की भाषा के द्वारा मूल भाषा की प्रकृति का ज्ञान करना।
2. प्राचीन असभ्य जातियों की भाषा का अध्ययन।
3. भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन।

1. **बच्चों की भाषा**- बच्चा प्रारंभ में कोई भाषा नहीं जानता है। वह अपने भावों को हंसकर, प्रसन्न होकर अथवा रोकर प्रकट करता है। कालांतर में थोड़ा बड़ा होने पर बालक अनुकरण करके अपने माता-पिता तथा आस-पास के व्यक्तियों की भाषा को सीख लेता है। वर्तमान काल में बच्चे के लिए भाषा उपस्थित होती है, जिसे वह सीखता है किंतु आदि मानव के पास पहले कोई भाषा नहीं थी वह अपने भावों

टिप्पणी

को उसी प्रकार व्यक्त करता होगा, जिस प्रकार भाषा सीखने के पहले बच्चा अपने भाव प्रकट करता है। इन बालप्रयत्नों का सूक्ष्मता से अध्ययन करके अथवा बालकों की भाषा का सहारा लेकर भाषा के प्रारंभिक रूप को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

2. **असभ्य जातियों की भाषा–** असभ्य लोगों की भाषाएं विकसित भाषाओं की तुलना में कम विकसित हैं। उनका प्राचीन रूप अधिक परिवर्तित नहीं हुआ है, क्योंकि असभ्य आदिवासी सभ्य संसार के संपर्क से दूर वनों, पहाड़ों में निवास करते हैं। इस प्रकार इन लोगों की भाषाओं की विकसित भाषाओं से तुलना की जाए, तो यह जाना जा सकता है कि विकसित भाषाओं में कितना परिवर्तन हुआ है। यद्यपि असभ्य लोगों की भाषाएं मूल रूप में नहीं हैं, उनमें भी निरंतर थोड़ी बहुत मात्रा में परिवर्तन होते रहे हैं, किंतु विकसित भाषाओं की तुलना में ये परिवर्तन अपेक्षाकृत कम हुए हैं। इस प्रकार असभ्य लोगों की भाषा से मूल रूप की ओर पहुंचने में सहायता प्राप्त हो सकती है।

3. **भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन–** इस पद्धति द्वारा मूल भाषा की उत्पत्ति पर विश्वसनीय तथा महत्वपूर्ण प्रयत्न किए जा सकते हैं। किसी वर्तमान भाषा के सहारे आगे बढ़कर उसके भिन्न रूपों का अध्ययन करके मूल रूप तक पहुंचा जा सकता है। जैसे वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में से किसी भाषा को लेकर उस भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन किया जा सकता है। हिंदी की उत्पत्ति को अपभ्रंश, प्राकृत, पालि, संस्कृत, वैदिक आदि का अध्ययन करके जाना जा सकता है कि हिंदी की उत्पत्ति वैदिक संस्कृत अथवा उसके प्राचीन रूप से हुई है। इस प्रकार ऐतिहासिक अध्ययन के सहारे मूल भाषा की उत्पत्ति तक पहुंचा जा सकता है। इसी प्रकार वर्तमान यूरोपीय भाषाओं की उत्पत्ति लैटिन एवं ग्रीक तथा उनसे प्राचीन भाषाओं से हुई है, इस बात को ऐतिहासिक अध्ययन द्वारा जाना जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषाओं की उत्पत्ति को इन बातों द्वारा जानने का प्रयास किया जा सकता है। वस्तुतः भाषा की उत्पत्ति की समस्या का हल निकालना अत्यंत दुष्कर कार्य है। कोई भी विद्वान भाषा के मूल को निश्चित रूप से नहीं बता सकता है, यद्यपि इस दिशा में विद्वान कार्य कर रहे हैं तथा उनके प्रयत्नों से बहुत सी प्राचीन बातों का ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं।

## अपनी प्रगति जांचिए

3. 'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।''– यह किसका कथन है?

(क) हेनरी स्वीट का (ख) प्लेटो का

(ग) ट्रेगर का (घ) ब्लॉक का

4. किसकी धारणा त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों पर आधारित है?

(क) प्रयुक्त की (ख) संकेत की

(ग) आधार की (घ) प्रतीक की

## 5.4 भाषाविज्ञान व उसकी शाखाएं

टिप्पणी

### भाषा विज्ञान की शाखाएं

भाषा विज्ञान की तीन शाखाएं हैं– (1) वर्णनात्मक (2) ऐतिहासिक तथा (3) तुलनात्मक।

1. **वर्णनात्मक भाषा विज्ञान**– किसी भाषा के कालविशेष के स्वरूप का अध्ययन और विश्लेषण कर कुछ नियमों का निर्धारण करना वर्णनात्मक भाषा विज्ञान के अंतर्गत आता है। जैसा कि वर्णनात्मक नाम से ही स्पष्ट है, इसमें भाषा के स्वरूप का वर्णन या विश्लेषण रहता है। वर्णनात्मक भाषा विज्ञान को ही दूसरे शब्दों में व्याकरण के नाम से अभिहित किया जाता है। इस शाखा के संबंध में इतना ध्यान में रखना चाहिए कि यह किसी भाषा के कालविशेष से ही संबद्ध होती है। हम ध्वनि का वर्णन करें या पद का या वाक्य का, ये सारे तत्व किसी एक काल के ही होंगे। वर्णनात्मक भाषा विज्ञानी का लक्ष्य भाषा के विकास को दिखाना नहीं होता और न किसी अन्य भाषा से उसकी तुलना करना होता है। इसलिए विभिन्न विद्वानों ने वर्णनात्मक भाषा विज्ञान को स्थित्यात्मक भी कहा है, जिसका सर्वोत्तम उदाहरण पाणिनीय व्याकरण है। पाणिनि की विश्लेषणात्मक क्षमता पर विदेशी भी मुग्ध रह गए हैं और उन्होंने स्वीकार किया है कि भाषा के वर्णनात्मक अध्ययन का इससे उत्कृष्ट उदाहरण संसार के इतिहास में अलभ्य है।

   आधुनिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन में वर्णनात्मक प्रणाली का रूप अत्यधिक प्रमुख हो गया है और वह स्वतंत्र विज्ञान के रूप में ग्रहीत होने लगा है। इस प्रणाली के अनुगामी भाषा विज्ञान के अध्ययन में किसी दूसरे शास्त्र की सहायता लेना अभीष्ट नहीं मानते। यहां तक कि अर्थविज्ञान को भी उन्होंने अपने अध्ययन की सीमा से बहिष्कृत कर रखा है। उनका लक्ष्य केवल भाषा के उच्चरित रूप का अध्ययन करना है। उनके अनुसार अर्थ दूसरे शास्त्रों का प्रतिपाद्य है। भाषा विज्ञान को केवल भाषा के उच्चरित रूप पर ही विचार करना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह दृष्टि बड़ी ही एकांगी है। यदि अर्थ निरपेक्ष उच्चारण ही भाषा विज्ञान का विषय है, तो फिर मनुष्य की भाषा और पशु की भाषा में अंतर क्या रहा? ध्वनि वाला अंश तो उभयनिष्ठ है। जैसी ध्वनि मनुष्य की वैसी पशु की। मनुष्य की ध्वनि की विशिष्टता यही है कि उसमें अर्थवत्ता का योग रहता है जो पशु की ध्वनि में नहीं रहता। अर्थवाला अंश हटा देने पर मनुष्य और पशु की भाषा का प्रमुख भेद तिरोहित हो जाता है। दूसरी बात यह है कि अर्थ को छोड़ देने पर भाषा के प्रयोग का उद्देश्य क्या रह जाएगा? हमने पहले देखा है कि वैयक्तिक या सामाजिक रूप में भाषा सार्थक संकेत है। उसका जब भी प्रयोग होता है तो अर्थ की प्रतीति के लिए। उसके अभाव में ध्वनियां निरर्थक हो जाएंगी और निरर्थक ध्वनियों के अध्ययन का प्रयोजन महत्वहीन होगा। यह एक प्रकार से भाषा संबंधी देहवादी दृष्टिकोण है, जिसमें अर्थ तत्व, जो भाषा का आत्म तत्व है, उपेक्षित हो गया है। यह संभवत: अमेरिका की भौतिकतावादी या देहवादी सभ्यता का प्रभाव है। एक समय काव्यशास्त्र में भी देहवादी संप्रदाय चल रहे थे। अलंकारवादियों या रीतिवादियों ने काव्य के बाह्य रूप पर ही ध्यान दिया और उसके आत्म तत्व की चिंता नहीं

टिप्पणी

की। परिवर्ती आलोचकों को इस भूल का परिमार्जन करना पड़ा। ठीक वही स्थिति आज भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उत्पन्न हो गई है। भाषा विज्ञान की सीमा से अर्थविज्ञान का बहिष्कार वैज्ञानिक दृष्टि से न तो वांछनीय है, न संगत और न उससे भाषा का अध्ययन पूर्ण हो सकता है। सार्थकता ही मानव भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है। उसे छोड़ना दृष्टि-विभ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

इसके अतिरिक्त तथ्य यह भी है कि भाषा के दो पक्ष हैं – ध्वनन तथा श्रवण। ध्वनन भाषा का केवल आधा भाग है। उसकी पूर्णता के लिए श्रवण उतना ही आवश्यक है जितना ध्वनन। ऐसी स्थिति में भाषा के अध्ययन को केवल ध्वनन तक सीमित रखना उसका अपूर्ण अध्ययन ही माना जाएगा। जिसे श्रवण कहते हैं वह भाषा का अर्थसापेक्ष अंश है। श्रवण तब तक संभव नहीं है या संभव होने पर भी निरुपयोगी है, जब तक उससे अर्थबोध नहीं होता। भाषा का प्रयोग ही किस काम का यदि श्रोता उससे कुछ समझ नहीं सके? इस दृष्टि से भी भाषा के अर्थपक्ष की उपेक्षा उचित प्रतीत नहीं होती।

2. **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान**– वर्णनात्मक भाषा विज्ञान में किसी भाषा के काल विशेष के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। इसके प्रतिकूल भाषा विज्ञान में एक ही भाषा के विभिन्न कालों के स्वरूप का अध्ययन होता है। किसी भाषा के पुराने रूपों से नए रूपों का विकास किस प्रकार हुआ, यह दिखाना इस प्रणाली का कार्य है। अतः द सोसूर ने ऐतिहासिक प्रणाली को गत्यात्मक या विकासात्मक प्रणाली कहा है। उदाहरणार्थ, वैदिक युग से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश सोपानों से होते हुए आधुनिक भाषाओं का ध्वनि, पद या अर्थ की दृष्टि से कैसे विकास हुआ है, यह दिखाना इस प्रणाली के अंतर्गत आएगा। उस विकास के क्या कारण थे, उन कारणों के क्या परिणाम हुए, इत्यादि बातें भी इस प्रणाली की सीमा में आती हैं। भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन में वर्णनात्मक अध्ययन अनायास आ जाता है, क्योंकि विकास दिखाते समय भी काल-विशेष की स्थिति को दिखाना आवश्यक होता है। भाषा सिद्धांततः प्रतिपल परिवर्तित होती रहती है किंतु वह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि इसे ग्रहण करना असंभव है। वह जब कालांतर में पुंजीभूत हो जाता है तभी अनुभव का विषय बनता है। इसलिए विकास के भी अनेक सोपान होते हैं और उन सोपानों की चर्चा ही ऐतिहासिक विकास के अंतर्गत आती है।

3. **तुलनात्मक भाषा विज्ञान**– तुलनात्मक प्रणाली में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक प्रणालियों का अंतर्भाव हो जाता है। जहां वर्णनात्मक या ऐतिहासिक अध्ययन में किसी एक भाषा को आधार बनाया जाता है, वहां तुलनात्मक अध्ययन में अनेक भाषाओं को अध्ययन का आधार बनाना पड़ता है। बिना उनके तुलना हो ही नहीं सकती। तुलना के लिए दो या दो से अधिक भाषाओं के काल-विशेष के स्वरूपों को लिया जाता है। स्वभावतः उसमें वर्णनात्मक अंश आ जाता है। यदि काल-विशेष तक सीमित न रहकर भिन्न कालों के स्वरूपों को अध्ययन का विषय बनाया गया और उनकी परस्पर तुलना की गई तो वह ऐतिहासिक प्रणाली हो गई। इसीलिए वर्णनात्मक और ऐतिहासिक प्रणालियों के समन्वय से तुलनात्मक प्रणाली संभव हो पाती है। वस्तुतः भाषा विज्ञान का जन्म ही तुलनात्मक प्रणाली से हुआ। अठारहवीं शताब्दी में संस्कृत, ग्रीक और लैटिन की तुलना से यह बात सिद्ध हुई है कि ये

टिप्पणी

तीनों भाषाएं एक ही परिवार की हैं और इनका साम्य उसी का परिणाम है। इसीलिए बहुत समय तक भाषा विज्ञान को सदा तुलनात्मक भाषा विज्ञान (कम्पेरेटिव फिलॉलॉजी) ही कहा जाता था। अब तुलनात्मक शब्द हटा दिया गया है, चूंकि बिना तुलना के भी भाषा विज्ञान की स्थिति संभव है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वर्णनात्मक या ऐतिहासिक भाषा विज्ञान में तुलना की आवश्यकता नहीं होती। तुलना भाषा के किसी तत्व- ध्वनि, पद, वाक्य, अर्थ को लेकर हो सकती है।

आज अंग्रेज़ी में लिंग्विस्टिक्स और फिलॉलॉजी दो शब्द चल रहे हैं। दोनों के अर्थ में अंतर है। लिंग्विस्टिक्स मुख्यतः भाषा के उच्चरित रूप से संबद्ध है, साथ ही उसमें भाषा का अध्ययन साध्य रूप में होता है। अर्थात भाषा का अध्ययन किसी दूसरे लक्ष्य के लिए नहीं, स्वयं भाषा की विशेषताओं के उद्घाटन और विवेचन के लिए किया जाता है। इसके विपरीत फिलॉलॉजी साहित्यिक, सांस्कृतिक या सामाजिक महत्व के विभिन्न लेखों से संबद्ध है। उदाहरण के लिए, अशोक के अभिलेखों को ले लीजिए। उन अभिलेखों की लिपि या भाषा के अध्ययन से इतिहास के निर्माण में जो सहायता मिलती है, उसका निरूपण फिलॉलॉजी के अंतर्गत आएगा। किंतु वैदिक युग में कितनी ध्वनियों का प्रयोग होता था, यह लिंग्विस्टिक्स बताएगा। भाषिक इतिहास के आलोक में प्राचीन ग्रंथों, पांडुलिपियों आदि का अध्ययन और उनके द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक तत्व की व्याख्या फिलॉलॉजी का उद्देश्य है। एक प्रकार से फिलॉलॉजी भाषा विज्ञान (लिंग्विस्टिक्स) और मानविकी (ह्युमेनिटीज) के बीच की संयोजक कड़ी है। और भी स्पष्टता से कहें तो कह सकते हैं कि लिंग्विस्टिक्स में भाषा के उच्चरित रूप का अध्ययन होता है तो फिलॉलॉजी में उसके लिखित रूप का।

इस प्रकार हमने देखा कि भाषा विज्ञान का वैज्ञानिक व विश्लेषणात्मक अध्ययन करने हेतु उसकी शाखाओं से भी भलीभांति परिचित होना आवश्यक है, क्योंकि इन उपर्युक्त शाखाओं को जाने बिना भाषा विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना असंभव है। वस्तुतः भाषा विज्ञान की उपर्युक्त तीन शाखाओं का भाषा विज्ञान में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उपादेयता की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान है।

प्राणियों के परस्पर विचार-विनिमय के माध्यम का नाम भाषा है। अपने विचार, भाव अथवा इच्छा को हम जिस माध्यम से दूसरे तक सफलतापूर्वक संप्रेषित करते हैं, उसका नाम भाषा है। आचार्य दंडी ने भाषा की इस प्रकाशशीलता को ध्यान में रखते हुए कहा है कि यदि शब्दरूपी ज्योति संसार में प्रज्वलित न होती, तो संसार में सर्वत्र अंधकार व्याप्त हो जाता।

**इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।**
**यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।** **(काव्यादर्श-1-4)**

वैदिक ऋषियों ने सर्वप्रथम ऋग्वेद में वाक्-सूक्त के आठ मंत्रों में इस विषय को प्रतिपादित किया है कि 'वाक् तत्व=भाषा ही वह दिव्य ज्योति है, जो मानव को ऋषि, देवता अथवा विद्वान बनाती है।' वस्तुतः मानव अपने भावों को प्रकट करने हेतु जिस सार्थक मौखिक माध्यम का आश्रय लेता है वही 'भाषा' कहलाती है। यद्यपि संकेत आदि के द्वारा भी भावों की अभिव्यक्ति संभव है, किंतु भावों तथा विचारों को स्पष्ट करने का माध्यम भाषा ही है। भाषा ही वह सर्वोत्तम साधन है, जिसके द्वारा सभी लौकिक कार्य

टिप्पणी

सिद्ध हो जाते हैं। यह ज्ञान का मूलभूत साधन है। मानव के आंतरिक तथा बाह्य कार्य, चिंतन-मनन-अभिव्यंजन, वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों के लिए भाषा की सहायता ली जाती है। ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन, आचार-विचार, हेय-उपादेय का विवेक, सभी का आधार भाषा है। अतः भाषा सर्वत्र अनुस्यूत है। इस तथ्य को स्पष्ट एवं उसकी सर्वोत्कृष्टता का उल्लेख करते हुए वाक्यपदीयकार भर्तृहरि कहते हैं कि–

**न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाद् ऋते।**
**अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥ (वाक्यपदीय-1.124)**

इससे ज्ञात होता है कि व्यावहारिक दृष्टि से भाषा की कितनी उपयोगिता है। भाषा के महत्व को स्वीकार करते हुए अनेक जिज्ञासाएं प्रकट होती हैं कि भाषा क्या है? भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई? इसका निर्माण किस प्रकार होता है? इसका प्रयोग किस प्रकार होता है? इसके कौन-कौन से अवयव हैं, इसको किस प्रकार उच्चारित किया जाता है? आदि। इन समस्त प्रश्नों के उत्तरों को भाषा विज्ञान और उसके स्वरूप के अन्तर्गत जाना जा सकता है अतएव सर्वप्रथम भाषा विज्ञान की परिभाषा को जान लेना समुचित होगा।

### 5.4.1 भाषा विज्ञान की परिभाषा

वस्तुतः भाषा विज्ञान एक यौगिक शब्द है, जो 'भाषा' और 'विज्ञान' इन दो शब्दों के योग से बना है। इनमें से भाषा उस वाणी को कहते हैं, जिसके नियमों में विकल्प और विप्रतिपत्ति के लिए तनिक भी अवकाश नहीं होता, जो अकाट्य एवं अतर्क्य होते हैं। अर्थात 'भाषा विज्ञान' वह विज्ञान है जिसमें भाषा एवं भाषा तत्वों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक आधार पर वैज्ञानिक-अध्ययन किया जाता है।

अंग्रेज़ी में 'भाषा विज्ञान' के लिए प्रायः दो शब्द प्रचलित हैं–'Philology' तथा 'Linguistics'। भाषा के मर्मज्ञ ब्लूमफील्ड (Bloomfield) का मंतव्य है कि जिसमें लिखित भाषा का अध्ययन किया जाता है उसे 'Philology' कहते हैं तथा जिसमें बोलचाल की भाषा का अध्ययन किया जाता है उसे 'Linguistics' कहते हैं। वहीं, डॉ. अंबा प्रसाद 'सुमन' ने अपने ग्रंथ भाषा विज्ञान में लिखा है कि– "जिसमें भाषाओं की आंतरिक रचना का अध्ययन किया जाता है, उसे 'Linguistics' तथा जिसमें भाषाओं के आंतरिक एवं बाह्य सभी रूपों का अध्ययन किया जाता है 'Philology' कहते हैं। इसी तरह 'Philology' का वही अर्थ है, जो 'Linguistics' का है।

भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन ही भाषा विज्ञान है। प्राचीन काल में भाषा विषयक विभिन्न अंगों के अध्ययन के लिए शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण, प्रातिशाख्य जैसे शब्द प्रचलित थे– इनमें से प्रत्येक का संबंध भाषा के किसी अंग विशेष से रहता था। पश्चिम में इसे Comparative Philology, Comparative grammar, Elossalogy कहा गया। आगे चलकर अंग्रेज़ी में इसे Science of language कहा गया, जो Linguistics के रूप में प्रचलित हुआ। हिंदी के भाषाविदों ने इसे 'भाषाशास्त्र', 'भाषा लोचन' और भाषिकी कहा है, लेकिन इसका नाम 'भाषा विज्ञान' ही सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। यह भाषा के विभिन्न अवयवों और पहलुओं का विवेचन करने वाली विद्याशाखा है, जिसमें उसकी संरचना, प्रकृति और विकास की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

टिप्पणी

वस्तुतः भाषा विज्ञान की परिभाषाएं विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

1. **डॉ. पी.डी. गुणे** ने भाषा विज्ञान को 'Science of Language' माना है। उनके अनुसार, 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' या केवल 'भाषा विज्ञान' भाषा का विज्ञान है। यथार्थतः फिलॉलॉजी शब्द का अर्थ किसी भाषा का साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन है। जर्मनी में यूरोप के अन्य देशों की भांति ही, फिलॉलॉजी का अर्थ अब भी किसी साहित्य का अध्ययन है। संप्रति भाषाओं में किसी विशेष वर्ग के तुलनात्मक भाषा विज्ञान का उद्देश्य है, उनकी पारस्परिक समानता का अन्वेषण एवं उनकी व्याख्या। इस प्रकार गुणे के अनुसार भाषा विज्ञान भाषाओं के विशिष्ट अध्ययन, साहित्यिक दृष्टि से भाषाओं का अध्ययन एवं विभिन्न वर्गों की भाषाओं की वर्गीय समानता तथा असमानता का अध्ययन है।
2. **डॉ. श्यामसुंदरदास** ने अपनी पुस्तक 'भाषा रहस्य' में भाषा विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की है– "भाषा विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।"
3. **डॉ. मंगलदेव शास्त्री** भाषा विज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखते हैं–

   भाषा विज्ञान उसे कहते हैं, जिसमें–

   i. सामान्य रूप से मानवीय भाषा का
   ii. किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अंततः
   iii. भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं पर तुलनात्मक विचार किया जाता है।
4. **डॉ. भोलानाथ तिवारी** के अनुसार- "जिस विज्ञान के अंतर्गत समकालीन, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति और विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए उन सभी के विषय में सिद्धांतों का निर्धारण हो, उसे भाषा विज्ञान कहते हैं।"
5. **डॉ. देवीशंकर द्विवेदी** के अनुसार- भाषा विज्ञान को अर्थात भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।
6. **आर.एच. रोबिन्स** के अनुसार- General linguistics may be defined as the science of language. *—R.H. Robins, General Linguistics, p. 1*
7. **जॉन लायंस** के अनुसार- "भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा विज्ञान कहा जा सकता है। (Introduction to theoretical linguistics)
8. **डॉ. मनमोहन गौतम** ने 'सरल भाषा विज्ञान में' भाषा विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की है– "भाषा विज्ञान वह शास्त्र है जिसमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा की उत्पत्ति, बनावट, प्रकृति, विकास एवं ह्रास आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की जाती है।"
9. **डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा** के अनुसार- "भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान ही भाषा विज्ञान कहलाएगा।"

10. **डॉ. बाबूराम सक्सेना** ने भाषा विज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखा है कि, "भाषा तत्वों का अध्ययन भाषा विज्ञान है।"

टिप्पणी

उपर्युक्त परिभाषाओं का अनुशीलन कर हम कह सकते हैं कि भाषा विज्ञान में भिन्न-भिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन होता है। यह अध्ययन ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक रीति से किया जाता है। ऐतिहासिक रीति से भाषाओं की उत्पत्ति, विकास और भाषा में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक रीति से विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक विवेचन किया जाता है। भाषा में परिवर्तन होता है, जो साधारण लोगों की बोलचाल में अधिक दिखाई देता है। अत: भाषा विज्ञान में बोलियों का भी विस्तृत विवेचन किया जाता है। भाषा विज्ञान में भी विज्ञान की भांति सिद्धांत या नियम होते हैं।

## 5.4.2 भाषा विज्ञान का स्वरूप

भाषा विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाला विज्ञान है। भाषा मानव मात्र के लिए अनिवार्य तत्व है, उसकी व्यवहार साधिका है। अत: भाषा विज्ञान का विषय क्षेत्र व्यापक है। कहा गया है कि "भाषा विज्ञान का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितनी कि संपूर्ण मानवता, क्योंकि इसका संबंध विश्व के मनुष्यों की भाषा से है।" यह भाषा विज्ञान तथा उसके विभिन्न अंगों का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत जिन विषयों का हम अध्ययन करते हैं, उन्हें सुविधा की दृष्टि से प्रधान विषय तथा गौण विषय, इन दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

प्रधान विषयों के अंतर्गत वाक्य विज्ञान, रूप विज्ञान, ध्वनि विज्ञान तथा अर्थ विज्ञान की गणना होती है। गौण विषयों के अंतर्गत भाषा की उत्पत्ति, भाषाओं का वर्गीकरण, व्युत्पत्तिशास्त्र, शब्दसमूह, लिपि, प्रागैतिहासिक खोज तथा भाषा विज्ञान का इतिहास आदि विषय सन्निविष्ट होते हैं।

## 5.4.3 ध्वनि विज्ञान

### ध्वनि की परिभाषा

भाषा विज्ञान में ध्वनि शब्द को सामान्य ध्वनियों से भिन्न बताने के लिए भाषा ध्वनि (Speech-sound) कहा जाता है। विभिन्न विद्वानों ने इस ध्वनि की परिभाषाएं इस प्रकार की हैं–

**प्रो. डेनियल** जोन्स के शब्दों में– "ध्वनि मनुष्य के विकल्प परिहीन नियत स्थान और निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रोत्रेंद्रिय द्वारा अविकल्प रूप से गृहीत शब्द लहरी है।" इस प्रकार ध्वनि शब्द से भाषा-विज्ञान में मानव मुख से निस्सृत ध्वनियों को ही ग्रहण किया जाता है। अन्य अव्यक्त, अस्पष्ट ध्वनियों को नहीं। इस ध्वनि में वर्ण, शब्द और भाषा का अंतर्भाव हो जाता है।

**डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी** ने ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है– "A speech sound is a sound of definite acoustic quality pronounced by the organs of speech. A given speech sound is incapable of valiations." अर्थात मानव के ध्वनियंत्र के द्वारा उत्पादित और निश्चित श्रावक गुणों से युक्त ध्वनि को ही भाषा-ध्वनि या भाषण ध्वनि कहा जाता है।

**डॉ. भोलानाथ तिवारी** भाषा ध्वनि (Speech-Sound) की परिभाषा इस प्रकार से करते हैं– "भाषा ध्वनि वह ध्वनि है, जिसे मनुष्य अपने मुख के नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे और श्रोता जिसे उसी अर्थ में ग्रहण करे।"

टिप्पणी

## ध्वनिग्राम, ध्वनिश्रेणी अथवा ध्वनिमात्रा, ध्वनितत्व

उपर्युक्त समस्त शब्द एक ही भाव के द्योतक हैं। "ध्वनितत्व (Phoneme) मिलती-जुलती अनेक भाषा ध्वनियों की प्रतीक वह ध्वनि है, जिसका खंड न हो सके। इस प्रकार भाषा विशेष में कुछ ध्वनियों का अपना परिवार होता है। जो अपनी विशिष्ट विशेषताओं के कारण परस्पर संबद्ध रहती हैं, उन्हें ध्वनिग्राम कहते हैं। ध्वनिग्राम में अनेक ध्वनियां होती हैं। उदाहरण के लिए कमरा, काल, कपड़ा, कूप, कोण, कृषि, कमल, कुसुम, कीड़ा, कुत्ता आदि की प्रारंभिक ध्वनि 'क' है। प्रत्येक शब्द में 'क्' की अपनी एक विशिष्ट ध्वनि है तथा प्रत्येक 'क्' के श्रावक गुण (Acoustic quality) भी अपने-अपने हैं। किंतु समस्त ध्वनियों के लिए केवल एक ध्वनिग्राम है, एक परिवार है। जिस प्रकार परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व होता है, किंतु वह अपने परिवार से बंधा रहता है, उसी प्रकार एक ध्वनिग्राम में भी अनेक भाषा-ध्वनियों का अस्तित्व होता है। इन समस्त ध्वनियों का अध्ययन ध्वनिग्राम में किया जाता है। पाइक ने समीचीन ही लिखा है कि– "ध्वनिविज्ञान कच्चा माल एकत्र करता है और ध्वनिग्राम उसे पकाता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा की न्यूनतम इकाई ध्वनिग्राम है। एच.ए. ग्लीसन के अनुसार– "ध्वनिग्राम भाषा के उच्चरित स्वरूप की वह न्यूनतम विशेषता है, जिसके द्वारा एक कही गई बात का कही जाने वाली किसी अन्य बात से अंतर स्पष्ट किया जा सकता है।" (We may define a phoneme as a minimum feature of the expression system of a spoken language by which one thing that may by said is distinguished from any other thing which might have been said.)

*(An Introduction to Descriptive Language, p. 9)*

ब्लूमफील्ड का कथन है कि ध्वनिग्राम विशिष्ट ध्वनि-रूप की लघुतम इकाई है "A minimum unit of distinctive sound feature of Phoneme," किंतु मेरियापाई एवं फ्रेंक ग्यानोर के अनुसार, ध्वनिग्राम प्रासंगिक ध्वनि विशेषताओं का न्यूनतम संघात है। डेनियल जोंस के अनुसार, "ध्वनिग्राम किसी भाषा में उन ध्वनियों का परिवार है, जो अपनी आधारभूत विशेषता के कारण संबद्ध हैं और उनमें से प्रत्येक की स्थिति शब्द में इस ढंग से होती है कि कोई अन्य ध्वनि दूसरी ध्वनि का स्थान नहीं ले सकती।"

**K.L. Pike** के अनुसार- "ध्वनिग्राम किसी भाषा-विशेष की ध्वनियों में विश्लेषण करने के उपरांत प्राप्त की हुई सार्थक इकाई है।" (The Phoneme is one of the significant units of sounds arrived at for a particular language by the analytical procedures developed from the basic premises previously presented.)

ध्वनिविज्ञान में ध्वनियों के उच्चारण, रचना और अर्थ पर विचार किया जाता है। इसलिए ध्वनिविज्ञान के दो प्रमुख भेद किए जा सकते हैं– ध्वनिशिक्षा (Phonology) और ध्वन्यालोचन ध्वनिविकास (Phonetics)। ध्वनिशिक्षा में ध्वनियों का विवेचन, वर्गीकरण,

इतिहास और ध्वनिसिद्धांत की शिक्षा होती है तथा ध्वन्यालोचन में ध्वनिविकारों और परिवर्तनों के सिद्धांतों का विवेचन, परीक्षण तथा उनका इतिहास समाविष्ट होता है।

टिप्पणी

## ध्वनियंत्र

ध्वनि के प्रधान अंग उच्चारण-स्थान तथा प्रयत्न हैं। स्थान एवं प्रयत्नों का उच्चारणावयवों से विशेष संबंध होता है। अतः ध्वनि के आवश्यक एवं अपरिहार्य उपकरण उच्चारण के अवयव होते हैं। इन उच्चारणावयवों को ध्वनि यंत्र भी कहा जाता है। ध्वनियंत्र को सुविधा की दृष्टि से चार भागों में विभक्त किया जा सकता है– (1) आस्य अथवा वाग्यंत्र (Mouth Cavity) (2) नासिका विवर (Nasal Cavity) (3) कंठमार्ग (Pharynx) (4) स्वरयंत्र (Larynx)।

इन अंगों के अतिरिक्त फेफड़ों (Lungs) और श्वासनली (Wind-Pipe) का भी ध्वनिशिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है।

ध्वनियां श्वास क्रिया पर निर्भर रहती हैं। हम मुख या नासिका के द्वारा श्वास को अंदर फेफड़ों तक ले जाते हैं और उसके बाद उसे निकाल देते हैं। इसी श्वास (Inhalation) और प्रश्वास (Exhalation) क्रिया से ध्वनि उच्चरित होती है। हमारे शरीर के अंदर तत्वों के जाने के दो मार्ग हैं– श्वास नली (Wind pipe) और भोजन नली (Food passage)।

1. श्वास नली का कार्य श्वास को फेफड़ों तक ले जाना है तथा उसे मुख-नासिका विवर से पुनः बाहर निकाल देना है। भोजन नलिका से भोजन, जल आदि हमारे उदर तक पहुंचता है।
2. ये दोनों ही अवयव श्वास-प्रश्वास क्रिया में सहायक हैं और इन्हीं की सहायता से ध्वनि-उच्चारण-क्रिया होती है।

**अभिकाकल या स्वरतंत्र मुखावरण** (Epiglottis)– यह भोजन नलिका के विवर के साथ श्वास नलिका की ओर झुकी हुई एक छोटी सी जीभ है। भोजनादि के समय नीचे की ओर झुककर श्वास-नलिका को बंद कर देती है।

**स्वरयंत्र** (Larynx)– यह ध्वनि उत्पन्न करने वाला प्रधान अवयव है। इसकी स्थिति श्वास नलिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल के अधोभाग में होती है। यहां पर श्वास नलिका कुछ मोटी हो जाती है और गर्दन के बाहर उसका कुछ अंश निकला रहता है। इसे कंठपिटक भी कहते हैं।

**स्वरतंत्री** (Vocal Chords)– स्वरतंत्री में पतली झिल्ली के दो पर्दे से होते हैं, जिनमें बहुत महीन-महीन तंत्रियां सी होती हैं। इन्हें स्वरतंत्री कहते हैं। झिल्लियां भीतर की हल्की-सी श्वास प्रक्रिया से हटकर अलग हो जाती हैं और फिर मिल जाती हैं। स्वरतंत्रियों की चार स्थितियां हो सकती हैं–

(क) दोनों पर्दे एक-दूसरे से अलग पड़े रहते हैं और मध्य में श्वास के आने-जाने का मार्ग खुला रहता है।

(ख) दोनों पर्दे एक-दूसरे के साथ टक्कर खाकर श्वास में स्पंदन सा पैदा कर देते हैं, जिससे घोष या नाद की सृष्टि होती है। कंठपिटक पर हाथ रखकर इस कंपन का अनुभव किया जा सकता है।

(ग) दोनों पर्दे एक क्षण के लिए एक-दूसरे के साथ जुड़कर खड़े हो जाते हैं। जिससे श्वास निकलने में थोड़ी देर के लिए बाधा उपस्थित हो जाती है। यह स्थिति अधिक देर तक नहीं रह सकती, क्योंकि इससे दम घुटने लगेगा।

टिप्पणी

(घ) दोनों पर्दे एक-दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं, परंतु श्वास के आने-जाने के लिए थोड़ा-सा मार्ग खुला रहता है। इन चार स्थितियों में मानवीय ध्वनियों के भिन्न-भिन्न स्वरूप हो जाते हैं। स्वरतंत्रियों के मध्य जो खुला मार्ग है, उसे काकल या स्वरयंत्र मुख कहते हैं। इसे अंग्रेजी में Glottis कहते हैं।

**अलिजिह्वा-कौआ घंटी** (Uvula)– यह जिह्वा के आकार का मांस का एक छोटा-सा भाग है। यह मुखविवर तथा नासिकाविवर के संधि स्थल पर होता है। यह नासिका विवर में जाने वाली वायु पर नियंत्रण रखता है। इस अलिजिह्व की तीन अवस्थाएं होती हैं–

(क) तन जाने से नासिका विवर का मार्ग बिल्कुल बंद कर देता है, जिससे श्वास-वायु मुख से आती जाती है।

(ख) बिल्कुल शिथिल पड़ जाता है और मुखविवर को बंद कर देता है जिससे श्वास-वायु नासिका विवर से आती जाती है। सांस लेने की स्वाभाविक अवस्था में अलिजिह्व की यही स्थिति रहती है।

(ग) इस स्थिति में अलिजिह्व न बिल्कुल तनकर खड़ा होता है और न ढीला पड़कर नीचे गिर जाता है। यह उसकी मध्यम स्थिति है, जिसके कारण श्वास-वायु मुखविवर और नासिका विवर दोनों से आती-जाती है।

**नासिकाविवर-मुखविवर**– ये दोनों प्रत्यक्षतः दृष्टिगत होते हैं और श्वास प्रश्वास वायु के प्रमुख स्थान एवं साधन हैं। मुख विवर के अंदर ध्वनि-उत्पादन के महत्वपूर्ण अवयव हैं। उन सभी अवयवों का सामूहिक नाम वाग्यंत्र (Mouth Cavity) है।

**तालु** (Palate)– मुखविवर में ऊपर की ओर इसकी स्थिति है। इसके कंठ-स्थान और दांतों के मध्य चार भाग हैं– वर्त्स, कठोर तालु, कोमल तालु एवं मूर्धा। कोमल तालु कंठ के साथ जुड़ा हुआ कोमल भाग है– कभी-कभी इसी को कंठ का नाम भी दिया जाता है।

तालु में ऊपर का भाग मूर्धा कहलाता है तथा नीचे की ओर मसूढ़ों के ऊपर का भाग तालु है। तालु के नीचे का मांस जो दांतों के साथ संबद्ध है, वर्त्स या वर्स्व (Alveole, Teeth ridge) कहा जाता है। इसके नीचे का भाग दांत है।

**जिह्वा** (Tongue)– मुख में नीचे की ओर महत्वपूर्ण अवयव जिह्वा है। यह अत्यंत कोमल और गतिशील अवयव है। जिह्वा के विभिन्न रूपों के कारण यह अनेक प्रकार की ध्वनियां करने में समर्थ है। जिह्वा के पांच भाग किए जा सकते हैं– (1) जिह्वा मूल (Root dorsum) (2) जिह्वा-पश्च (Back-dorsum) (3) जिह्वा-मध्य (Middle dorsum) (4) जिह्वा-अग्र (Front dorsum) (5) जिह्वा-नोक (Tip, apex dorsum)।

**ओष्ठ** (Lips)–ओष्ठ भाषण क्रिया का सहायक, किंतु महत्वपूर्ण अंग है। यह दो प्रकार का है– (1) अधरोष्ठ, (2) उपर्योष्ठ।

टिप्पणी

इनकी भी तीन अवस्थाएं बन सकती हैं। एक अवस्था में दोनों ओष्ठ मिलकर एक-दूसरे से संबद्ध होकर जुड़ जाते हैं। दूसरी अवस्था में अधरोष्ठ ऊपर वाली दंतपंक्ति से मिल जाता है। तीसरी अवस्था में दोनों ओष्ठ गोलाकार रूप धारण कर आगे की ओर उभर आते हैं।

## ध्वनियों का वर्गीकरण

भारतीय व्याकरण विदों ने ध्वनियों का स्वर एवं व्यंजन नामक एक वर्गीकरण किया है। उनके अनुसार स्वरों के अभाव में व्यंजनों का उच्चारण संभव नहीं है, किंतु कभी-कभी कात्स्र्यन्, धार्ष्टय, ताक्ष्र्य आदि ध्वनि समूह भी मिल जाते हैं, जिनमें स्वरों की अपेक्षा नहीं है। इस प्रकार के व्यंजन, जिनमें स्वर नहीं है, परस्पर संयुक्त हो संयुक्त ध्वनियों का निर्माण करते हैं। पाणिनि मुनि ने संपूर्ण ध्वनि-समूह को 14 सूत्रों में आबद्ध कर दिया है, इन्हें माहेश्वर सूत्र कहते हैं– (1) अइउण् (2) ऋलृक् (3) एओङ् (4) ऐऔच् (5) हयवरट् (6) लण् (7) ञमङणनम् (8) झभञ् (9) घढधष् (10) जबगडदश् (11) खफछठथचटतव् (12) कपय् (13) शषसर् (14) हल्।

इन सूत्रों में अंतिम व्यंजन हलन्त अर्थात स्वर रहित होता है। इन सूत्रों से प्रत्याहार बनाकर संपूर्ण ध्वनि-समूह का वर्गीकरण किया गया है।

सामान्यत: ध्वनियों का एक वर्गीकरण- स्वर (Vowels) एवं व्यंजन (Consonants) के आधार पर किया जाता है। इन दोनों का अंतर क्या है? स्वर बिना किसी सहायता के उच्चरित होकर अक्षर बना रह सकता है, किंतु व्यंजन के उच्चारण के लिए स्वर की अपेक्षा रहती है। व्यंजन स्वर के अभाव में अक्षर भी बना नहीं रह सकता। यह प्राचीन मान्यता है। किंतु इस मान्यता के परिष्कार-सुधार की आवश्यकता है, क्योंकि सामान्यत: व्यंजनों का भी स्वतंत्र उच्चारण संभव है। जैसे– स्, श्, ल् आदि। इसलिए आधुनिक ध्वनि-विज्ञान में स्वर एवं व्यंजन की परिभाषा इस प्रकार है– "स्वर वह ध्वनि है, जिसकी उत्पत्ति के समय मुखविवर खुला रहता है, जिससे श्वास वायु बिना बाधा के बाहर निकल जाती है।"

"व्यंजन वह ध्वनि है जिसकी उत्पत्ति में श्वासवायु के नि:सरण में किसी न किसी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न किया जा सकता है।"

वस्तुत: ध्वनि का तात्पर्य 'स्वन' से है। संपूर्ण सृष्टि में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसके कंठ में अनंत ध्वनियों की उत्पत्ति का सामर्थ्य है, जिससे प्राय: सभी लोग परिचित ही हैं। वर्गीकरण के तीन मुख्य आधार माने गए हैं– (1) स्थान (2) प्रयत्न तथा (3) करण (इंद्रिय)।

1. **स्थान**– 'नि:श्वास' वायु को जहां अवरुद्ध अथवा बाधित करते हैं, वह 'स्थान' है। ओष्ठ से कंठच्छद पर्यंत अनेक स्थान हैं, जिनमें से कुछ मुख्य स्थान निम्नलिखित हैं– काकल, कंठ, तालु, मूर्धा, वर्त्स, दंत, ओष्ठ तथा जिह्वामूलीय। पाणिनि के अनुसार विभिन्न वर्णों व स्वरों के उच्चारण स्थान निम्नलिखित हैं–

| | |
|---|---|
| अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ: | (कंठ्य– अ, क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, ह्, विसर्ग) |
| इचुयशानां तालु: | (तालव्य– इ, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, य् तथा श्) |
| ऋटुरषाणां मूर्धा | (मूर्धन्य– ऋ, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, र्, ष्) |

| | |
|---|---|
| लृतुलसानां दन्ताः | (दन्त्य– लृ, त्, थ्, द्, ध्, न्, ल्, स्) |
| उपूपध्मानीयानामोष्ठौ | (ओष्ठ्य– उ, प्, फ्, ब्, भ्, म् उपध्मानीय) |
| ञमङणनानां नासिका | (अनुनासिक– ञ्, म्, ङ्, ण्, न्) |
| एदैतोः कण्ठतालुः | (कण्ठतालव्य– ए, ऐ) |
| ओदौतोः कण्ठोष्ठम् | (कण्ठोष्ठ– ओ, औ) |
| वकारस्य दन्तोष्ठम् | (दन्तोष्ठ्य– व्) |
| जिह्वामूलीस्य जिह्वामूलम् | (जिह्वामूलीय– ꣳ ) |

टिप्पणी

2. **प्रयत्न**– किसी भी ध्वनि के उच्चारण में मुखविवर से कंठपर्यंत तक जो प्रयास करना पड़ता है, उसे प्रयत्न के नाम से जाना जाता है। यह प्रयत्न दो प्रकार का होता है– (क) आभ्यंतर (ख) बाह्य प्रयत्न।

   (क) **आभ्यंतर प्रयत्न**– आभ्यंतर प्रयत्न पांच प्रकार का होता है– स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत्, विवृत तथा संवृत।

   | | |
   |---|---|
   | (1) स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् | (स्पृष्ट– क् से म् तक) |
   | (2) ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम् | (ईषत्स्पृष्ट– य्, र्, ल्, व्) |
   | (3) ईषद्विवृतमूष्माणाम् | (ईषद्विवृत– श्, ष्, स्, ह्) |
   | (4) विवृतं स्वराणाम् | (विवृत– सभी स्वर) |
   | (5) ह्रस्वस्य अवर्णस्य प्रयोगे संवृतम् | (संवृत– ह्रस्व आकार) |

   (ख) **बाह्य प्रयत्न**– बाह्य प्रयत्न-विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित भेद से ग्यारह प्रकार का होता है–

   (1) खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च (विवार, श्वास, अघोष- ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स)

   (2) हशः संवारा नादा घोषाश्च (संवार, नाद, घोष- ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, द, ध, ज, ब, ग, ड, द)

   (3) वर्गाणां प्रथम-तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः (अल्पप्राण- क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म)

   (4) वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः (महाप्राण- ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह)

   (5) उच्चैरुदात्तः (उदात्त- ऊपर उठा हुआ या आरोही स्वर)

   (6) नीचैरनुदात्तः (अनुदात्त– नीचे की ओर-अवरोही स्वर)

   (7) समाहारस्वरितः (स्वरित-सम अर्थात आरोही व अवरोही के बीच का स्वर)

3. **करण**– 'करण' उन इंद्रियों को कहते हैं, जो सतत गतिशील रहकर ध्वनियों के उच्चारण में सहायता पहुंचाती हैं। स्थान व करण में मात्र क्रमशः स्थिरता व गतिशीलता का अंतर है। इस दृष्टि से अधरोष्ठ, जिह्वा, कोमल-तालु तथा स्वरतंत्री को करण कहा जाता है।

टिप्पणी

## ध्वनियों के भेद

'स्वर' और 'व्यंजन' के भेद से ध्वनियां दो प्रकार की पाई जाती हैं। इनमें 'स्वर' वे ध्वनियां हैं, जिनका उच्चारण करते समय नि:श्वास में कहीं कोई अवरोध नहीं उत्पन्न होता, जबकि व्यंजनों के उच्चारण में नि:श्वास में कहीं न कहीं अवरोध पाया जाता है।

### स्वरों का वर्गीकरण

स्वर-स्वनों (ध्वनियों) के मुख्यत: चार आधार दृष्टिगोचर होते हैं– (1) जिह्वा की ऊंचाई की दृष्टि से (2) जिह्वा के उत्थापित भाग की दृष्टि से (3) ओष्ठों की स्थिति के आधार पर (4) मात्रा की दृष्टि से।

1. **जिह्वा की ऊंचाई के अनुसार**– प्रत्येक स्वर के उच्चारण में, जिह्वा एक निश्चित सीमा तक उठकर नि:श्वास के निर्गम-मार्ग को कुछ संकीर्ण कर देती है, जो कहीं कम व कहीं ज्यादा होता है। इस दृष्टि से स्वरों के चार विभाग हो जाते हैं– विवृत (खुला हुआ), अर्धविवृत (आधा खुला हुआ), संवृत (अत्यंत संकीर्ण) तथा अर्धसंवृत (कम संकीर्ण)। उदाहरणार्थ– आ–विवृत स्वर, ऐ-औ–अर्धविवृत, इ-ई-उ-ऊ–संवृत, ए-ओ–अर्धसंवृत।
2. **जिह्वा के उत्थापित भाग की दृष्टि से**– जिह्वा के अग्र, मध्य व पश्च भागों की सक्रियता के आधार पर मुख्यत: तीन स्थितियां उत्पन्न होती हैं–
   (क) **अग्रस्वर**– जिह्वा के अग्रभाग को उठाकर जिन स्वरों का उच्चारण किया जाता है, जैसे– इ, ई, ए, तथा ऐ।
   (ख) **मध्यस्वर**– जिह्वा के मध्य या केंद्रीय भाग से उच्चरित स्वर, जैसे– 'अ'।
   (ग) **पश्चस्वर**– वे स्वर, जो जिह्वा के पश्चभाग के सहयोग से उच्चरित होते हैं, जैसे– उ, ऊ, ओ, औ तथा आ।
3. **ओष्ठों की स्थिति के अनुसार**– विभिन्न स्वरों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति का भी अपना विशेष महत्व है। ओष्ठों की यह स्थिति मुख्यतया तीन प्रकार की होती है–
   (क) **प्रसृत**– इस स्थिति में ओष्ठ, स्वाभाविक रूप में स्थिर रहते हुए खुले रहते हैं। उदाहरणतया– इ, ई, ए तथा ऐ के उच्चारण के समय की स्थिति।
   (ख) **वर्तुल**– ओष्ठों को थोड़ा आगे निकालकर जब गोलाकार कर देते हैं, तो यह वर्तुल स्थिति होती है और उ, ऊ, ओ तथा औ वर्णों का उच्चारण होता है।
   (ग) **अर्धवर्तुल**– जब ओष्ठ पूर्ण गोलाकार न होकर आधे गोलाकार हो जाते हैं, जैसे दीर्घ आकार के उच्चारण की स्थिति।
4. **मात्रा की दृष्टि से**– स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। एकमात्रिक स्वर को ह्रस्व, द्विमात्रिक को दीर्घ तथा त्रिमात्रिक को प्लुत कहा जाता है– **'एकमात्रो भवेद्ह्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु तु प्लुतो ज्ञेय:'।**

### व्यंजनों का वर्गीकरण

स्थान एवं प्रयत्न भेद से व्यंजनों के वर्गीकरण के दो प्रमुख आधार हैं। इनमें स्थान के आधार पर पूर्वकथित काकल्य, कंठ्य, तालव्य आदि भेद से व्यंजन ध्वनियों के आठ

प्रकार हैं तथा प्रयत्न के आधार पर बाह्य प्रयत्न भेद से पूर्वकथित विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्पप्राण, महाप्राण हैं, जबकि आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजन आठ प्रकार के हैं, जो निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. **स्पर्श**– जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा कंठ से लेकर ओष्ठ संबंधित स्थानों का स्पर्श करती है, उन्हें स्पर्श व्यंजन कहते हैं। इस दृष्टि से कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तथा पवर्ग स्पर्श व्यंजन ध्वनियां हैं।
2. **स्पर्श-संघर्षी**– जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्पर्श के साथ-साथ नि:श्वास के निकालने में हल्का सा संघर्षण भी होता है, उन्हें स्पर्श संघर्षी व्यंजन कहते हैं, जैसे– च, छ, ज, झ स्पर्श संघर्षी व्यंजन ध्वनियां हैं।
3. **संघर्षी**– 'संघर्षी' ध्वनियों में नि:श्वास वायु के निर्गम का मार्ग जिह्वा के द्वारा अत्यंत संकीर्ण कर दिया जाता है और वायु रगड़ खाती हुई बाहर की ओर निकलती है। रगड़ या संघर्ष की प्रधानता के कारण ही इन ध्वनियों को संघर्षी कहा जाता है। उदाहरणतया– श, ष, स, ज इत्यादि।
4. **पार्श्विक**– पार्श्विक ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा की नोक मूर्धा का स्पर्श करती है और नि:श्वास वायु दोनों पार्श्वों से बाहर निकलती है। जैसे– 'ल'।
5. **लुंठित या लोड़ित**– जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा की नोक बेलन की तरह लपेट खाकर तालु का स्पर्श करती है और वर्त्स पर बार-बार ठोकर मारती है, वे लुंठित कहलाते हैं, जैसे– 'र'।
6. **उत्क्षिप्त**– जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा, तालु के किसी भाग को झटके से छूकर हट जाती है, उन्हें 'उत्क्षिप्त व्यंजन' कहते हैं, जैसे– 'ड़' और 'ढ़' उत्क्षिप्त व्यंजन हैं।
7. **अंत:स्थ या अर्धस्वर**– इन वर्णों के उच्चारण में जिह्वा से न तो पूरी तरह स्पर्श ही होता है और न स्वरों के उच्चारण के समान पार्थक्य ही रहता है। उदाहरणतया– य, व, इन दोनों वर्णों में स्वर व व्यंजन दोनों का वैशिष्ट्य रहने से इन्हें अंतस्थ या अर्धस्वर कहते हैं।
8. **अनुनासिक**– जिन व्यंजनों के उच्चारण में नि:श्वास वायु मुखविवर के साथ-साथ नासिकाविवर से भी निकला करती है, उन्हें अनुनासिक व्यंजन कहते हैं, जैसे– ङ, ञ, ण, न तथा म।

## ध्वनि परिवर्तन के कारण

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। विश्व की प्रत्येक वस्तु में निरंतर परिवर्तन होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। इसे ही वैदिक ऋषियों ने **'यत् किंच जगत्यां जगत्' ( यजु. 40. 1 )** कहा है। संसार की प्रत्येक वस्तु संसरणशील, परिवर्तनशील है। प्रत्येक भाषा की ध्वनियों में भी निरंतर परिवर्तन होता रहा है। इसी परिवर्तन के कारण एक-एक शब्द के अनेक अपभ्रंश हो जाते हैं। जैसे– मनुष्य, मानुष, मानस, मनुस आदि। अतएव महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है–

**"एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा'। ( महा.-प्रथम आह्निक )**

टिप्पणी

भाषा का प्रमुख तत्व 'ध्वनि' है। वक्ता इसका उच्चारण करता है और श्रोता इसे सुनता है। वक्ता की ध्वनियों पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ता है– आभ्यंतर और बाह्य। वक्ता और श्रोता से संबद्ध कारणों को आभ्यंतर कारण कहते हैं, जैसे– प्रयत्नलाघव, अज्ञान, शीघ्र भाषण, नवीनीकरण की प्रवृत्ति आदि। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों को बाह्य कारण कहते हैं। ये कारण बाहर अर्थात आसपास के वातावरण से 'ध्वनि' को प्रभावित करते हैं, जैसे– सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक आदि।

इस प्रकार ध्वनि-परिवर्तन के कारणों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– आभ्यंतर कारण एवं बाह्य कारण।

## आभ्यंतर कारण

1. **प्रयत्नलाघव या मुख सुख**– इसे उच्चारण सुविधा या उच्चारण-सौकर्य भी कहते हैं। यह ध्वनि-परिवर्तन का सबसे प्रमुख कारण है। मनुष्य स्वभाव से ही कम प्रयत्न करके अधिक लाभ उठाना चाहता है। कम प्रयत्न से ही अपने भावों को स्पष्ट करने की चेष्टा करता है। मुख की सुविधा के कारण इसे मुख-सुख और उच्चारण की सरलता के कारण उच्चारण सुविधा आदि कहते हैं। मुख-सुख के लिए कठिन शब्द को सरल बनाया जाता है और क्लिष्ट उच्चारणों को आदि स्वरागम, मध्य स्वरागम आदि के द्वारा सरल बनाया जाता है, जैसे– सत्य > सच, कर्म > काम, चक्र > चक्कर, प्रचार > परचार, स्टेशन > इस्टेशन, हॉस्पिटल > अस्पताल, टेलिफोन > फोन, पोस्टकार्ड > कार्ड इत्यादि।

   प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। शिलालेखों में शुक्लपक्ष दिवस को शुदि > सुदी, बहुल पक्ष दिवस को बदि > बदी लिखा गया है। इससे सुदी और बदी शब्द प्रचलित हुए हैं।

   संस्कृत व्याकरण में प्रत्याहार इसी प्रक्रिया के परिचायक हैं; जैसे– अच् – पूरे स्वरों का, हल् – संपूर्ण व्यंजनों का, अल् – पूरी वर्णमाला। इसी प्रकार इक्, यण्, एच्, खर्, जश् आदि जानने चाहिए।

   प्रयत्नलाघव के कारण अनेक प्रकार के ध्वनिपरिवर्तन होते हैं; जैसे समीकरण, विषमीकरण, आगम, लोप वर्णविकार, वर्ण-विपर्यय, मध्याक्षर लोप, स्वरभक्ति आदि।

2. **अशिक्षा**– शिक्षा के अभाव के कारण ग्रामीणजन एवं अशिक्षित व्यक्ति ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते। उनका उच्चारण सदा अस्पष्ट एवं दोषयुक्त होता है। इससे ध्वनियों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। अशिक्षा के कारण ब को व, व को ब, श को स, ष को स, क्ष को च्छ, ण को न आदि उच्चारण किया जाता है; जैसे देश > देस, शरीर > सरीर, कृष्ण > किसन, कक्षा > कच्छा, क्षत्रिय > छत्रिय, गुण > गुन, सगुण > सगुन, निर्गुण > निरगुन आदि। विदेशी भाषा के शब्दों के अनुकरण में अशिक्षा के कारण असाधारण परिवर्तन हो जाते हैं, लार्ड > लाट, गार्ड > गाड, टाइम > टेम, आर्ट्स कॉलेज > आठ कॉलेज, पोस्टकार्ड > पोसकाड, लाइन > लैन, रिपोर्ट > रपट आदि।

3. **लिपि की अपूर्णता**– प्रत्येक भाषा में कुछ विशिष्ट ध्वनियां हैं, जिनका शुद्ध और स्पष्ट लेखन दूसरी भाषा में संभव नहीं है। फलस्वरूप संस्कृत की टवर्ग ध्वनियां,

टिप्पणी

अंग्रेजी जेड (z), अरबी की काकल्य ध्वनियां, जर्मन, फ्रेंच और रूसी भाषा की विभिन्न ध्वनियां अन्य भाषाओं में सम्यक् रूप से नहीं लिखी जा सकती हैं। विभिन्न संस्कृतियों के मिलने पर मूल भाषा की ध्वनियों में बहुत अंतर आ जाता है। अंग्रेजी में शुद्ध राम, कृष्ण, आर्य, शुक्ल, मिश्र, गुप्त आदि शब्द Rama, Krishna, Arya, Shukla, Mishra, Gupta आदि लिखे जाने के कारण अब रामा, कृष्णा, आर्या, शुक्ला, मिश्रा, गुप्ता आदि प्रचलित हो गए हैं।

4. **शीघ्र भाषण**– शीघ्र बोलने के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। इसमें मध्यगत ध्वनियों का प्रायः लोप हो जाता है। इसके साथ लघुकरण की प्रवृत्ति भी देखी जाती है; जैसे– उन्होंने > उन्ने, किसने > किन्ने, अब ही > अभी, तब ही > तभी, किस ही > किसी अंग्रेजी में Don not > Don't, will not > won't, I am > I'm, Cannot > Can't आदि इसके उदाहरण हैं।

5. **भावावेश**– प्रेम, क्रोध, शोक आदि भावों के अतिरेक के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन आ जाता है, जैसे– अधिक प्रेम प्रदर्शनार्थ भाई > भइया, बाबू > बबुआ, बच्चा > बाचा या बचवा, राजेंद्र > रज्जु, दादा > दादू, जीजा > जीजू हो जाता है। क्रोधावेश में राम > रामू या रमुआ, चमार > चमरवा हो जाता है। शोकावेग में कर्म > करमवा फूट गइल (कर्म नष्ट हो गए), पुत्र > पुतवा का मुंह देख लेती (पुत्र का मुख देख लेती) आदि।

6. **बलाघात**– ध्वनि परिवर्तन में बलाघात का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस ध्वनि पर बल दिया जाता है, वह शेष रहती है, अन्य निर्बल ध्वनियां क्षीण हो जाती हैं। प्राकृत, अपभ्रंश आदि के काल में निर्बल ध्वनियों का लोप हो जाता है। संस्कृत में जिन स्वरों पर उदात्त होता है, उनमें गुण या वृद्धि होती है। यदि उन पर उदात्त नहीं होता, तो उनमें गुण नहीं होता है; जैसे– कृ > कारक, करण, कृति। प्रथम में दो वृद्धि या गुण है और तृतीय में गुण का अभाव है। चतुर् + ईय = तुरीय। य का 'अ' उदात्त होने से 'च' निर्बल हो गया है, अतः उसका लोप होकर तुरीय रूप बनता है। इसी प्रकार आभ्यंतर > भीतर, उपरि > पर, एकादश > ग्यारह, द्वादश > बारह, स्वर्णकार > सुनार, चर्मकार > चमार आदि।

7. **काव्यात्मकता**– छंद के नियमों के अनुसार आरोह-अवरोह का ध्यान रखते हुए कहीं ह्रस्व को दीर्घ, कहीं दीर्घ को ह्रस्व, कहीं वर्णलोप किया जाता है। संस्कृत छंद शास्त्र का नियम है कि **'अपि माषं मषं कुर्यात्, छन्दोभङ्गं न कारयेत्'**– माष को मष कर दें, पर छन्दोभङ्ग न करें, जैसे– रामायण के एक दोहे में–

**बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ विराग बिनु।**
**गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥**

**(रामचरितमानस–उत्तरकांड)**

इसमें छंद की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बिना > बिनु, क्या > कि, ज्ञान > ग्यान, वैराग्य > विराग, पुराण > पुरान, भक्ति > भगति, स्वरात्मक लय के लिए भक्त > भगत, योग्य > जोग, युक्ति > जुगति, मे > मुंह हो जाते हैं।

8. **नवीनीकरण की प्रवृत्ति**– मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह प्रत्येक वस्तु में नयापन लाना चाहता है, अतः जान-बूझकर अन्य भाषाओं के शब्दों को संस्कृतनिष्ठ या

हिंदीनिष्ठ आदि कर दिया जाता है। यह प्रवृत्ति अधिकांशतः प्रबुद्ध वर्ग में पाई जाती है, जैसे– मैक्समूलर को > मोक्षमूलर, ऑक्सीजन > ओषजन, नाइट्रोजन > नेत्रजन, एकेडमी > अकादमी, तुर्क > तुरक, चश्मा > चक्ष्मा, अलेक्जेंडर > अलक्षेंद्र आदि।

टिप्पणी

9. **अनुकरण की अपूर्णता**– जब कोई व्यक्ति किसी ध्वनि का उच्चारण करता है, तो दूसरा व्यक्ति उसका अनुकरण करके उसे सीख लेता है। परंतु अनुकरण में त्रुटियां हो जाती हैं। सही अनुकरण नहीं हो पाता या उच्चारण में कुछ न कुछ कमी रह जाती है। इस प्रकार अनुकरण अपूर्ण रह जाता है। अतः ध्वनियों में परिवर्तन आता जाता है जिनका शनैः शनैः समाज में प्रचलन हो जाता है। बन्द्योपाध्याय से बनर्जी, उपाध्याय से 'झा' 'ओम नमः सिद्धम्' का 'ओनामासीधम' बनना अनुकरण की अपूर्णता के सूचक हैं। बच्चों की बोली में अनुकरण की अपूर्णता स्पष्ट दिखाई पड़ती है; जैसे रोटी को 'लोटी', रुपया को 'लुपया' सुना जा सकता है परंतु बाद में वे दोष दूर हो जाते हैं। ब्राह्मण का 'ब्राह्मन' आदि अनुकरण की अपूर्णता से हो जाते हैं।

10. **भ्रामक व्युत्पत्ति**– जब व्यक्ति किसी अपरिचित शब्द के संसर्ग में आते हैं तथा उस शब्द से साम्य रखता हुआ कोई शब्द भाषा में पहले से ही होता है, तब वे अपरिचित शब्द के स्थान पर अपनी भाषा के पूर्व परिचित शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन की क्रिया चलने लगती है, जैसे– अंग्रेजी शब्द 'लाइब्रेरी' को अशिक्षित लोग भ्रमवश 'रायबरेली' तथा अरबी शब्द 'इंतकाल' को 'अंतकाल' कह देते हैं। इसी प्रकार 'चार्ज शीट' को 'चारसीट', 'क्वार्टर' को 'कातल' या 'काटर', 'गार्ड' को 'गारद', 'कोर्ट' को 'कोरट', 'कार्ड' को 'कारड' जैसे शब्द भ्रमवश प्रयोग किए जाने लगते हैं।

11. **वाग्यंत्र की विभिन्नता**– हर व्यक्ति के वाग्यंत्र की बनावट पूर्णतः एक सी नहीं होती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का ध्वनि उच्चारण भी समान नहीं होता है। वाग्यंत्र की भिन्नता के कारण ध्वनि उच्चारण में भिन्नता आ जाती है जैसे कि हर व्यक्ति अब श, ष, स इन तीनों ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर सकता है। संस्कृत की 'स' ध्वनि 'फारसी' में 'ह' बन जाती है जैसे 'सिंधु' का 'हिंदु', 'सप्त' का 'हफ्त' आदि। 'ऋ' ध्वनि का उच्चारण भी अब 'रि' या 'रु' किया जाता है। सही उच्चारण संभव नहीं है।

12. **यदृच्छा शब्द**– बोलते समय लोग अपने आप शब्द बना कर बोलते हैं, जिन्हें यदृच्छा शब्द कहते हैं। कभी-कभी एक शब्द की समानता पर जोड़ा शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है। खाना-बाना, रोटी-ओटी, पानी-बानी आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। युग्मक रूप बनाते समय ध्वनिपरिवर्तन कर लिया जाता है।

13. **आत्मप्रदर्शन**– आत्मपद्रर्शन के कारण भी लोग बोलते समय ध्वनि परिवर्तन कर लेते हैं; जैसे 'खालिस' (शुद्ध) को निखालिस (अशुद्ध), 'इच्छा' को 'इक्षा', 'छात्र' को 'क्षात्र', 'क्षत्रिय' को 'छत्रिय', 'सेवक' को 'शेवक' आदि प्रकार से परिवर्तित कर लिया जाता है। इसी प्रकार 'उपर्युक्त' को 'उपरोक्त' तथा 'अंतराष्ट्रिय' को 'अंतर्राष्ट्रीय' बनाकर प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों का प्रचलन अत्यधिक हो चुका है तथा भाषा में ये रूप स्वीकृत हो चुके हैं।

## बाह्य कारण

टिप्पणी

1. **भौगोलिक कारण**– भौगोलिक कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। फारसी में 'स' का 'ह' हो जाता है, जैसे– सिंधु > हिंदु, सप्ताह > हफ्ता, पहाड़ी क्षेत्रों में स को श बोलते हैं। समाचार > शमाचार, संदेश > शन्देश, सीट > शीट, सिर > शिर। उच्च जर्मन और निम्न जर्मन में भौगोलिक कारणों से ही ध्वनि-परितर्वन हुआ है। जैसे उच्च जर्मन में–

| ध्वनि परिवर्तन | अंग्रेजी शब्द (निम्न जर्मन) | उच्च जर्मन शब्द |
|---|---|---|
| द् को त् | Drink | Trinken |
| थ् को द् | North | Nord |
| प् को फ् | Up | Aut |
| फ् को ब् | Wife | weib |
| ट् को त्स् | Two | Zwei |
| क् को ख् | Book | Buch |

2. **सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां**– सामाजिक या राजनीतिक उन्नति या अवनति के कारण शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। उन्नति की अवस्था में शब्दों के शुद्ध रूप पर बल दिया जाता है और अवनति के समय अपभ्रंश रूपों की अधिकता होती है; जैसे पंडित > पंडा, यजमान > जजमान, दिल्ली > देहली, मुंबई > बंबई, रिपोर्ट > रपट, गुरु > गुरू, सत्य > सच, घृत > घी, वाराणसी > बनारस, कर्म > करम आदि।

3. **अन्य भाषाओं का प्रभाव**– अन्य भाषाओं के प्रभाव के कारण ध्वनियों में परिवर्तन देखा जाता है। फारसी और अरबी के प्रभाव के कारण हिंदी में भी क़ ग़ ज़ आदि ध्वनियां फारसी और उर्दू के शब्दों में लिखी और बोली जाती हैं। द्रविड़ परिवार की भाषाओं के संपर्क से संस्कृत आदि में टवर्ग ध्वनियां आई हैं; जैसे प्रकृत > प्रकट, संस्कृत > संकट, विकृत > विकट आदि।

4. **सादृश्य**– समानता के आधार पर कुछ ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है; जैसे द्वादश के सादृश्य पर एकादश, करिणा के सादृश्य पर अग्निना, भानुना आदि शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं। मालीय, शालीय, भवदीय आदि के साम्य पर राष्ट्र > राष्ट्रीय शब्द का प्रचलन है, जबकि शुद्ध शब्द 'राष्ट्रिय' है। पंचम, सप्तम, अष्टम के साम्य पर 'षष्ठम' भी प्रयुक्त होने लगा है।

5. **विदेशी ध्वनियों का प्रभाव**– विदेशी ध्वनियां भी किसी भाषा के जीवन में ध्वनि विकार का कारण बनती हैं, क्योंकि किसी भी भाषा में दूसरी भाषा की ध्वनियां उसी रूप में स्वीकार नहीं की जाती हैं। परिणामस्वरूप ध्वनि परिवर्तन स्वाभाविक है। भारतीय भाषाओं में अरबी, फारसी ध्वनियां फ़, ज़, क़, ख़, ग़ आदि के नीचे नुक्ते का प्रयोग होता है, जबकि हिंदी में ऐसा नहीं होता है। इसी प्रकार अंग्रेजी की अनेक ध्वनियां भी हिंदी में परिवर्तित कर ली गई हैं अथवा ध्वनियों के प्रभाव से हिंदी ध्वनियों के उच्चारण में अंतर कर लिया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त अनेक कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन होता है।

## ध्वनि-गुण

टिप्पणी

ध्वनियों के उच्चारण में अनेक विविधताएं पाई जाती हैं। किसी ध्वनि का उच्चारण कम समय में तथा किसी ध्वनि का उच्चारण अधिक समय में होता है। किसी ध्वनि पर बोलते समय अधिक बल दिया जाता है तथा किसी ध्वनि पर कम। किसी ध्वनि को ऊंचे स्वर में बोलते हैं तो किसी ध्वनि को निम्न स्वर में। इस प्रकार ध्वनियों में भिन्नता पाई जाती है। इन्हें ध्वनियों के गुण कहते हैं। ये गुण होते हैं– मात्रा या परिमाण, सुर तथा बलाघात।

**मात्रा ( परिमाण )**– ध्वनि उच्चारण में लगने वाली कालावधि (समय) को ध्वनि की मात्रा कहते हैं। इस गुण का संबंध काल से है। जहां काल कम लगता है, वहां ह्रस्व और जहां काल अधिक लगता है वहां दीर्घ मात्रा मानी जाती है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार मात्रा काल तीन प्रकार के होते हैं– ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत। 'उ' के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे उसकी एक मात्रा अथवा ह्रस्व कहते हैं। उ + उ = ऊ के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे उसकी दो मात्रा अर्थात दीर्घ तथा उ + उ + उ = ऊ तीन उ के उच्चारण के बराबर जिसमें समय लगता है, उसे प्लुत ध्वनि कहते हैं। इस प्रकार ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत का आधार उच्चारण का समय ही है। ह्रस्व मात्रा का चिह्न "हलन्त का लोप" दीर्घ मात्रा का चिह्न "ा" एवं प्लुत का चिह्न "३" होता है। प्लुत ध्वनियों का प्रयोग किसी को दूर से पुकारने में किया जाता है। 'ओ३म' में 'ओ' की ध्वनि प्लुत् है। ए, ओ, ऐ, औ– ये संयुक्त ध्वनियां हैं। ये मात्रा वाली ध्वनियां हैं। संगीत में मात्राओं की गणना संभव नहीं है। गायक आवश्यकतानुसार एक मात्रा को छह, सात, दस, बारह और बीस तक अपने आलाप में प्रस्तुत कर सकता है। वैदिक मंत्रों में तो 1/4, 1/2, 3/4 आदि मात्राओं की ध्वनियां भी पाई जाती हैं और सामवेद में वामदेव्यगान में तो किसी-किसी ध्वनि में 4, 5, 6 मात्राओं का भी समय लगता है। इस प्रकार हमारी ध्वनियां ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत के भेद से भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। वैदिक मंत्रों का गान इन्हीं उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित सुरों में होता है। महाभाष्यकार ने सुर या वर्ण के द्वारा दुष्ट शब्द को उच्चारण करने वाले का दुष्ट शब्द ही संहार करता है, ऐसा भी कहा है–

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

**बलाघात**– किसी ध्वनि पर शक्ति या बल देकर उच्चारण करना बलाघात कहलाता है। बलाघात युक्त ध्वनि का उच्चारण ऊंचे सुर से किया जाता है। वायु फेफड़ों से अधिक तेजी से निकलती है। ध्वनि पर बल पड़ने से उच्चारण ऊंचे सुर से होता है। बलाघात ध्वनि बोलते समय प्रयोग की जाती है। लिखते समय इसका प्रयोग नहीं होता है। मात्रा एवं बलाघात में सामान्य अंतर यह है कि मात्रा में समय अधिक लगता है, उसमें जोर से बोलने का प्रश्न ही नहीं उठता। बलाघात में समय उतना ही लगता है, किंतु ध्वनि पर जोर पड़ने से आवाज कुछ ऊंची हो जाती है। बलाघात युक्त ध्वनि पर (।) यह चिह्न लगाया जाता है। बलाघात तीन प्रकार का होता है– सबल (Strong), संबल (Medium), निर्बल (Weak)। बोलते समय जब सबसे अधिक शक्ति लगाई जाए, तो उसे सबल बलाघात कहते हैं। जब बोलते समय सबल से कम बल लगाया जाए, तो उसे संबल तथा जब सबसे कम शक्ति का प्रयोग किया जाए, तो उसे निर्बल बलाघात कहते हैं। बलाघात वर्णों पर या वाक्यों में

टिप्पणी

पाए जाते हैं। बलाघात वाली ध्वनि की यही स्थिति होती है एवं उसके पास की दीर्घ ध्वनि ह्रस्व हो जाती है या निर्बल होकर समाप्त हो जाती है। अघोष ध्वनियों पर बलाघात अधिक पाया जाता है, क्योंकि वायु बिना अवरुद्ध हुए तेजी से बाहर निकलती है। किंतु सघोष ध्वनियों पर बलाघात कम होता है, क्योंकि वायु अवरुद्ध होकर धीरे-धीरे बाहर निकलती है। हिंदी भाषा में शब्दों की उपांत ध्वनि पर बलाघात होता है, जिसके कारण अकारांत शब्दों के अंतिम अक्षरों का रूप हलंत जैसा हो जाता है; जैसे आम् (आम), कल् (कल), कमल् (कमल) आदि।

**संगीतात्मक स्वराघात (Pitchaccent)**– सुर स्वरतंत्रियों से संबंध रखते हैं। स्वरतंत्रियों में खिंचाव आने से अनेक सुर उत्पन्न होते हैं। स्वरतंत्रियों में कंपन होने से इनकी उत्पत्ति सघोष ध्वनियों में ही होती है, अघोष में नहीं। संगीतात्मक स्वराघात पर ही संगीत के सातों स्वर– सा, रे, गा, मा, प, ध, नि, एवं तीन सप्तक मंद्र, मध्य तथा तार आधारित होते हैं। वैदिक काल में तीन सुर थे– उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। उदात्त ऊंचे सुर (Tone) को, अनुदात्त नीचे सुर को तथा दोनों गुणों से समन्वित सुर को स्वरित कहते थे। उदात्त सुर को अचिह्नित रखा जाता था। अनुदात्त के नीचे लेटी रेखा (–) तथा स्वरित स्वर के ऊपर खड़ी रेखा (।) का प्रयोग किया जाता था। संसार की अनेक भाषाओं में सुरों की संख्या भिन्न-भिन्न है। चीनी भाषा की मंदारिन बोली में चार सुर होते हैं। चीनी भाषा के कुछ शब्दों के अर्थ सुर भेद के कारण अट्ठानवे तक हो सकते हैं। अफ्रीका की दुआला तथा होटंटाट भाषाओं में भी तीन सुर पाए जाते हैं।

**रूपात्मक स्वराघात**– प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के स्वर की अपनी विशिष्टता होती है। कभी-कभी बिना देखे व्यक्ति की बोली सुनकर ही हम पहचान लेते हैं कि वह अमुक व्यक्ति है। यह व्यक्ति की ध्वनि उच्चारण विशिष्टता के कारण संभव होता है। प्रत्येक व्यक्ति के कंठस्वरों में कुछ न कुछ सूक्ष्म अंतर विद्यमान रहता है। व्यक्तिगत कंठस्वरों की विशेषता को ही रूपात्मक स्वराघात कहते हैं। व्यक्तियों की ध्वनियों की विशेषता स्वरतंत्रियों की रचना के आधार पर होती है। भाषा विज्ञान में कुछ विद्वान रूपात्मक स्वराघात के भेद को स्वीकार नहीं करते और न कोई महत्व प्रदान करते हैं। इसका कोई निश्चित आधार नहीं है।

ध्वनि गुण के वस्तुतः तीन ही प्रमुख भेद हैं– मात्रा, बलाघात तथा सुर। ये ध्वनिगुण संसार की विभिन्न भाषाओं में न्यूनाधिक रूप में अवश्य पाए जाते हैं।

## ध्वनि परिवर्तन की दिशाएं

ध्वनि परिवर्तन के प्रयत्न-लाघव आदि विभिन्न कारणों का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि विशिष्ट भाषाओं में इसके विशिष्ट रूप मिलते हैं। इन कारणों की कुछ दिशाएं इस प्रकार निर्दिष्ट की जा सकती हैं। प्राचीन संस्कृत वैयाकरणों ने भी इन दिशाओं का निर्देश किया है। उनके अनुसार ध्वनि (वर्ण) परिवर्तन के कारण वर्ण-व्यत्यय, वर्णापाय, वर्णोपजन तथा वर्णविकार हैं–

वर्णव्यत्ययापायोपजनविकारेषु...।

वर्णव्यत्यते कृतेस्तर्कः कसेः सिकताः, हिंसेः सिंहः...।

अपायोलोपः घ्नन्ति, घ्नन्तु, अघ्नन्।...

उपजन-आगमः। लविता लवितुम्।

विकारः आदेशः। घातयति घातकः।

टिप्पणी

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने वर्णव्यत्यय के उदाहरणस्वरूप– 'कृते' से तर्कः, 'कसेः' से सिकताः, 'हिंस' से 'सिंह'। लोप के उदाहरणस्वरूप घ्नन्ति, घ्नन्तु और अघ्नन्, आगम के उदाहरण में 'लविता' से लवितुम्, आदेश के उदाहरण के रूप में घातयति से घातकः प्रस्तुत किए हैं। काशिका में **"वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ"** के रूप में वर्ण-परिवर्तन के नियमों का उल्लेख किया गया है। पतञ्जलि के पूर्ववर्ती (संभवतः ईसा पूर्व सप्तमशतक) निरुक्तकार यास्क ने भी इन वर्णध्वनि परिवर्तन की दिशाओं का इन शब्दों में सोदाहरण उल्लेख किया है–

"अथाप्यस्तेर्निवृत्तिस्थानेषु आदि लोपो भवति स्तः संतीतित्यथाप्यन्तलोपी भवति गत्वा गतमित्यथाप्युपधालोपो भवति जग्मतुर्जग्मुरितियथाप्युपधाविकारो भवति राजा दण्डीत्यथापि वर्णलोपो भवति तत्वा यामित्यथापि द्विवर्णलोपस्तृच इत्यथाप्यादि विपर्य्ययो भवति ज्योतिर्घनो विन्दुवाटय इत्यथाप्याद्यन्त विपर्य्ययो भवति स्तोका रज्जुः सिकता स्तविवत्यथाप्यन्त व्यापत्तिर्भवति।'।

इस प्रकार निरुक्तकार ने आदिलोप, अंतलोप, उपधालोप आदि विपर्यय, अंत विपर्यय, वर्णोपजन (आगम) आदि वर्ण परिवर्तन की दिशाओं का उल्लेख किया है। संस्कृत वैयाकरण जिसे उपधालोप कहते हैं, आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक उसे Syncope कहते हैं। संस्कृत वैयाकरण जिसे आदिविपर्यय कहते हैं, भाषा वैज्ञानिकों के मत में वह अंशतः Assimilation और Dissimilation है। संस्कृत वैयाकरणों का आद्यन्त-विपर्यय ही भाषा-वैज्ञानिकों का Anaptyxis है। आशय यह है कि 700 ई.पू. भाषा के संबंध में जो अध्ययन हो रहा था, उसका विकसित रूप आधुनिक भाषा विज्ञान में सुरक्षित है।

**परस्पर विनिमय, वर्ण विपर्यय, वर्ण व्यत्यय** (Metathesis)– वर्ण विपर्यय के हिंदी में कई नामांतर परस्पर विनिमय, वर्ण-व्यत्यय आदि मिलते हैं। किसी शब्द के स्वर-व्यंजन या ध्वनियां जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती हैं और उस स्थान से प्रथम स्थान पर आ जाती हैं, तो इस पारस्परिक परिवर्तन को विपर्यय कहा जाता है– Transposition in words or letter। डॉ पी.डी. गुणे वर्णव्यत्यय पर विचार करते हुए लिखते हैं– "ध्वनि परिवर्तन में विपर्यय अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करता है। विपर्यय वहां होता है, जहां शब्द की दो ध्वनियां स्थान परिवर्तन करती हैं। यह किसी शब्द की ध्वनियों अथवा उसके वर्णों का क्रम परिवर्तन है– Metathesis plays a considerable part in phonetic change. This is when two sounds in a word change places. It's transposition of sounds or letters in word। अध्ययन करते समय इस Metathesis का सर्वप्रथम निर्देश आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक पिशेल ने सन् 1871 में किया था। यद्यपि इसके अनेक उदाहरणों का निर्देश संस्कृत वैयाकरणों ने भी किया है। उदाहरण के लिए– 'निरुक्त' में 'स्तोक', 'रज्जु', 'सिकता'। तुर्क शब्दों को इसी प्रकार वर्णों के आद्यंत विपर्यय द्वारा क्रमशः श्च्युतिर क्षरणे (च्युत), "सृजविसर्गे" 'कसविकसने' और 'कृतिछेदने' (=कृत्) इन धातुओं से बनाया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (2.14) आदि वैदिक ग्रंथों में 'शल्क' शब्द टुकड़े के अर्थ में आता है। पीछे से वर्ण-व्यत्यय और स्वरभक्ति से इसी का दूसरा रूप 'शकल' हो गया, जो संस्कृत में बराबर प्रयुक्त होता है।'

टिप्पणी

हिंदी में वर्ण-व्यत्यय के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। वर्ण व्यत्यय के दो भेद किए जा सकते हैं–

(1) स्वर विनिमय– अग्लिका से इमली अ और इ का परस्पर विनिमय हुआ है।

(2) व्यंजन विनिमय– चाकू से काचू में च और क का व्यंजन विपर्यय हुआ है।

इसके भी पार्श्ववर्ती तथा दूरवर्ती दो भेद और किए जा सकते हैं–

**पार्श्ववर्ती विपर्यय**– बिल्कुल निकट के या पार्श्व में होने वाला विपर्यय; जैसे जलेबी से जबेली, यहां पर 'ल' और 'ब' दोनों समीप व्यंजनों के में परिवर्तन हुआ है।

**दूरवर्ती विपर्यय**– दूर की ध्वनियों में जो विपर्यय होता है, उसे दूरवर्ती विपर्यय कहते हैं; जैसे लखनऊ का नखलऊ, अमरूद का अरमूद।

**स्वर विपर्यय**– कुछ = कछु, जानवर = जनावर, खुजली = खजुली, बिंदु = बूंदि इत्यादि।

**दूरवर्ती स्वर विपर्यय**– फाटक = फटका, टाटक = टटका।

**पार्श्ववर्ती व्यंजन विपर्यय**– चिन्ह = चिह्न, ब्राह्मण = ब्राम्हन, डूबना = बूड़ना, वाराणसी = बनारस, जलेबी = जबेली।

**दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय–** नरिकेल = नालिकेर, लखनऊ = नखलऊ, मुकलचा = मुचलका।

कभी-कभी इस प्रकार के विपर्यय भी दृष्टिगत होते हैं, जिनमें स्वर, व्यंजन या अक्षर अपना स्थान तो छोड़ देते हैं, किंतु उनके स्थान पर दूसरी ध्वनि, वर्ण आदि नहीं आते हैं। उदाहरण के लिए पुर्तगाली शब्द Festra = Fersta. वेंद्रिये ने इस प्रकार के परिवर्तन को विपर्यय मानते हुए इसे 'एकांगी विपर्यय कहा है। कभी-कभी शब्दांश विपर्यय के उदाहरण भी मिलते हैं। इस शब्दांश विपर्यय में कभी-कभी दो साथ के शब्दों का आरंभ के अंशों में विपर्यय हो जाता है; जैसे– घोड़ा गाड़ी = गाड़ी घोड़ा, पूजा सेठ = सूजा पेठ।

ऑक्सफोर्ड के डॉ. स्पूनर साहब से ऐसी त्रुटियां प्रायः हो जाती थीं। अतः उन्हीं के नाम पर इस विपर्यय को स्पूनरिज्म भी कहा जाता है।

It is called spoonerism, when occurring in a phrase or sentence, boiled icicle for oiled bicycle is given of Oxford Dictionary.

आधुनिक भाषा विज्ञान विशारदों के विचार से सामान्यतः ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएं इस प्रकार हैं–

**लोप अभिनिधान (Elision)**– कभी-कभी ध्वनियों का उच्चारण करते समय प्रयत्नलाघव, मुख-सुख या स्वराघात के कारण कुछ ध्वनियां लुप्त हो जाती हैं। लोप के स्वर, व्यंजन तथा अक्षर से संबंधित होने के कारण इसे तीन प्रकार का माना गया है– (1) स्वरलोप (2) आदि व्यंजनलोप और (3) आदि अक्षरलोप।

उपर्युक्त तीनों के आदि, मध्य और अंत्य ये तीन भेद किए गए हैं–

1. **स्वरलोप** (Syncope)– शब्दों में दो व्यंजनों के मध्य आने वाले स्वर का प्रायः लोप हो जाता है; जैसे – राजन् + अस् = राज्ञः

टिप्पणी

**आदि स्वर लोप**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अनाज | = नाज | अहाता | = हाता | | |
| आभ्यंतर | = भीतर | अरण्य | = रण्य | | |

**मध्य स्वर लोप**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अरथी | = अर्थी | बरतन | = बर्तन | उलटा | = उल्टा |
| गलती | = गल्ती | Do not | = Don't | नरक | = नर्क |

**अन्त्य स्वर लोप**

| | | | |
|---|---|---|---|
| आम्र | = आम | बाहु | = बांह |
| पार्श्व | = पास | भगिनी | = बहन |
| परीक्षा | = परख | वार्ता | = बात |

स्वर लोप की भांति व्यंजन लोप भी दृष्टिगत होते हैं, इनके भी आदि, मध्य व अंत्य तीन भेद प्राप्त होते हैं–

2. **आदि व्यंजनलोप**– उच्चारण की कठिनाई के कारण अंग्रेजी आदि भाषाओं में आदि व्यंजनों का लोप हो जाता है। यह लोप लिखित अवस्था में भी पाया जाता है; जैसे–

| | | | |
|---|---|---|---|
| Knife | = nife | write | = Rite |
| Know | = now | स्थान | = थान |
| Knight | = night | प्रिय | = पिय |
| श्मशान | = मसान | स्थाली | = थाली |

**मध्य व्यंजनलोप**– संस्कृत शब्दों के मध्य आने वाले क, ग, च, ज, त, द, न, प, फ, य, र, ल, व, ष तथा विसर्ग (:) का प्रायः हिंदी में लोप हो जाता है।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| उष्ट्र | = उंट | अर्द्ध | = आधा | दुग्ध | = दूध |
| कोकिल | = कोईल | पिप्पल | = पीपल | सूची | = सुई |
| लज्जा | = लाज | फाल्गुन | = फागुन | कुक्कुर | = कूकर |
| उत्पत्ति | = उपज | दुःख | = दुख | शृगाल | = सियार |

प्राकृत भाषा में इसके अनेक उदाहरण दृष्टि में आते हैं–

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| सागर | = साअर | भोजन | = भोअण | प्रिय | = पिय |

हिंदी की बोलियों में भी इस तरह की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, जैसे–

| | | | |
|---|---|---|---|
| ज्वार | = जर | ब्राह्मण | = बाम्हन |
| बुद्ध | = बुध | कार्तिक | = कातिक |
| कायस्थ | = कायथ | उपवास | = उपास |

इसी प्रकार अंग्रेजी में तो उच्चारण का लोप हो गया है, यद्यपि लिखितावस्था में वे अभी मिलते हैं–

टिप्पणी

Talk = टाक Walk = वाक

Right = राइट Daughter = डॉटर

**अन्त्य व्यंजनलोप**

सत्य = सच निम्ब = नीम पश्चात् = पश्चा (प्राकृत)

चरित्र = चरित कुंकुम = कुम्मो आम्र = आम

उष्ट्र = ऊंट यावत् = जाव

3. **आदि अक्षरलोप**– इसके चार भेद किए जाते हैं–

(क) आदि अक्षरलोप (ख) मध्य अक्षरलोप

(ग) अन्त्य अक्षरलोप (घ) समाक्षरलोप

**आदि अक्षरलोप** (apheresis)

University = versity त्रिशूल = शूल शहतूत = तूत

Defence = fence अध्यापक = झा

Necktie = Tie व्याकुल = आकुल

**मध्य अक्षरलोप**

भंडागार = भंडार दस्तखत = दस्खत वरुजीवी = वरई

राज्यकुल = राउर गेहूं जव = गोजई

**अन्त्य अक्षरलोप**

माता = मां निम्बुक = नींबू दीपवर्तिका = दीवट

यज्ञोपवीत = जनेऊ भ्रातृजाया = भावज मौक्तिक = मोती

सपाद = सवा जीव = जी

**समाक्षर लोप** (Haplology)– जब किसी एक ही शब्द में अक्षर या अक्षर समूह साथ-साथ दो बार प्रयुक्त किए जाते हैं, तो उच्चारण की सुविधा के कारण उनमें से एक का लोप हो जाता है, तब उसे समाक्षर लोप कहा जाता है। समाक्षर लोप के लिए यह आवश्यक है कि एक साथ आने वाले दो अक्षरों में एक ध्वनि समान हो। हेप्लोलॉजी शब्द का प्रयोग ब्लूमफील्ड ने किया है–

Haplology is a name given by Bloomfield to the Phenomenon where of too similar syllables following each other, one is dropped. The condition for haplology is that one sound, at any rate on the two consecutive syllables must be common.

उदाहरण के लिए संस्कृत में हा धातु के लोट् लकार पुरुष के एक-वचन में 'जहीहि' और 'जहि' में आज 'जहि' अवशिष्ट है। इसी प्रकार वैदिक शब्द शेवृध (प्रिय-अमूल्य) भी शेव + वृध से शेष रह जाता है।

खरीददार = खरीदार त्रि + ऋच + अः = तृचः

नाककटा = नकटा

टिप्पणी

Part-time = Partime

कभी-कभी ध्वनि या अक्षर पूर्णत: एक ही न होकर उच्चारण में मिलते-जुलते हैं, उस स्थिति में भी एक का लोप हो जाता है–

आदत्त = अत्त

कृष्णनगर = कृष्णगर

**आगम-प्रागुपजन** (Prothesis-Coming)– उच्चारण करते समय कभी-कभी मुख-सुख के लिए कुछ व्यंजनों, विशेषतया संयुक्त व्यंजनों के आदि, मध्य तथा अन्त्य में स्वरों तथा व्यंजनों का आगम हो जाता है। प्रारंभ में आने वाले स्वर को प्रागुपजन कहा गया है। "We find that in some languages certain vowels are developed before certain consonants." अर्थात कुछ भाषाओं में कुछ व्यंजनों से पूर्व कुछ स्वरों का आगम हो जाता है। यह भी आदि, मध्य एवं अन्त्य भेद से तीन प्रकार का होता है।

1. **आदि स्वरागम**

| | | | |
|---|---|---|---|
| स्नान | = इस्नान | स्कूल | = इस्कूल |
| स्त्री | = इस्त्री | स्तुति | = अस्तुति |

2. **मध्य स्वरागम**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्रसाद | = परसाद | कर्म | = करम | ब्रह्मा | = बरहमा |
| पूर्व | = पूरब | मिश्र | = मिसुर | मर्म | = मरम |
| बक | = बगुला | धर्म | = धरम | भ्रम | = भरम |
| प्रकार | = परकार | अर्थ | = अरथ | पृथ्वी | = पृथिवी |
| स्वर्ण | = सुवर्ण | स्टेशन | = सटेशन | | |

3. **अन्त्य स्वरागम**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| स्वप्न | = सपना | चतुरता | = चतुराई | निपुणता | = निपुनाई |
| दवा | = दवाई | गल | = गला | हरीतिमा | = हरियाई |

**व्यंजनागम**

**आदि व्यंजनागम** के उदाहरण बहुत कम संख्या में प्राप्त होते हैं–

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| उल्लास | = हुल्लास | ओष्ठ | = होठ | अस्थि | = हड्डी |

**मध्य व्यंजनागम**– शब्द के मध्य भाग के उच्चारण में अधिक कठिनता का अनुभव होता है, जिसे दूर करने के लिए आगम एवं लोप का आश्रय लिया जाता है; यथा–

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| समुद्र | = समुंदर | तक | = तलक | लाश | = लहास |
| आलसी | = आलकसी | शाप | = श्राप | Panel | = Pannel |
| वानर | = बंदर | सुख | = सुक्ख | Avantage | = Advantage (फ्रेंच में) |

**अन्त्य व्यंजनागम**

| | | | |
|---|---|---|---|
| रंग | = रंगत (अरबी) | Cautio | = Caution (अंग्रेजी) |
| देह | = देहात (फारसी) | | |

परवा = परवाह चील = चील्ह

भौं = भौंह Coc = Cock

**स्वरागम**– अक्षरागम के भी आदि, मध्य व अन्त्य तीन भेद दृष्टिगोचर होते हैं–

टिप्पणी

**आदि अक्षरागम**

स्फोट = विस्फोट, गुंजा = घुंघुची

**मध्य अक्षरागम**

खल = खरल गरीब निवाज = गरीबुलनिवाज

आलस = आलकस

**अन्त्य अक्षरागम**

डफ = डफली मन = मनका

तावे = तावेदार वधू = वधूटि

## स्वरभक्ति अथवा विप्रकर्ष (Anaptyxis or Diaeresis)

संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में होने वाली असुविधा को दूर करने के लिए उनके बीच किसी स्वर या स्वर भाग के आगम को स्वर-भक्ति या विप्रकर्ष कहते हैं। पी.डी. गुणे स्वरभक्ति पर विचार करते हुए कहते हैं– "इस प्रकार की एक अन्य प्रक्रिया है, जिसमें ऐसी ध्वनियों के मध्य में, जिनका उच्चारण करना कठिन होता है, स्वर का आगम हो जाता है।" ("Another similar phenomenon is the insertion of a vowel between combination of sounds, which are difficult to pronounce. This is called स्वरभक्ति or anaptyxis.) कुछ ऋग्वेदीय सूक्तों में इंद्र का उच्चारण इंदर, दर्शन का दरशन किया जाता है। Variety of the same phenomenon is seen in the insertion of a consonant between two consonants belonging to different places of articulation. This new comer helps the tongue in passing from one place to another and is in fact a transitional sound.

अर्थात "इसी प्रक्रिया का एक प्रकार वह है, जिसमें भिन्न उच्चारण स्थानों वाले दो व्यंजनों के मध्य में किसी व्यंजन का आगम हो जाता है। यह नया व्यंजन वस्तुतः एक संक्रमणकालीन ध्वनि होता है, जो जिह्वा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में सहायता देता है।"

वैदिक शब्दों में स्वर के अनंतर तथा व्यंजन के पूर्व आने वाले 'र' के आगे स्वरभक्ति का प्रयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप 'कर्हि' या 'अर्चन्ति' में 'र' के बाद इकार या 'स्मृ' का स्वर के रूप में उच्चारण किया जाता है। वैदिक शब्दों में जैसी स्वर-भक्ति का उच्चारण होता था, वह आधी मात्रा या उससे भी कम मात्रा की होती थी। इसलिए वह लिखी नहीं जाती थी। यहां तक कि उसके बोले जाने पर भी व्यंजनों के संयोग को 'संयोग' ही माना जाता था। अवेस्तन भाषा में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है।

प्राकृत तथा हिंदी में स्वर-भक्ति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं – संस्कृत के भक्ति, युक्ति, पंक्ति, प्रसाद के स्थान पर हिंदी में भगति, जुगति, पंगत, परसाद हो जाते हैं।

चंद्र = चंदर श्री = सिरी इंद्र = इंदर

पृथ्वी = पृथिवी स्वर्ण = सुवर्ण

## अपिनिहित-समस्वरागम (Epenthesis)

टिप्पणी

कुछ भाषा वैज्ञानिक अपिनिहित और स्वरभक्ति को एक ही मानते हैं उनके अनुसार इन दोनों में केवल इतना ही अंतर है कि स्वर-भक्ति मिश्र ध्वनियों से पूर्व आती है और अपिनिहित अमिश्र से पूर्व। इस प्रकार स्वरभक्ति का उदाहरण स्कूल = इस्कूल है तथा अपिनिहित का उदाहरण सवारी = असवारी है। किंतु अन्य विद्वान ऐसा स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार ये दोनों ही उदाहरण स्वरभक्ति के हैं।

मुख-सुख के लिए कुछ शब्दों के मध्य या आरंभ में ऐसे स्वर की आवश्यकता होती है, जो बाद में आया हो, किंतु आने वाला स्वर वही होगा, जिसकी सत्ता पूर्व से ही वहां विद्यमान हो। इसे समस्वरागम कहते हैं–

| संस्कृत | अवेस्ता |
|---|---|
| भवति (Bhavati) | Bavaiti |
| अरुषः (Arusah) | Auruso |
| तरुणः (Taruna) | Tauruna |

उपर्युक्त उदाहरणों में आगत स्वर रेखांकित हैं। इन उदाहरणों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि यहां उन्हीं स्वरों का आगम हुआ है, जो पूर्व से ही उन शब्दों में विद्यमान हैं। अंग्रेजी में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। कभी-कभी वही स्वर न होकर उसी प्रकृति का स्वर आ जाता है। उदाहरणार्थ–

| | | | |
|---|---|---|---|
| स्टेशन | = इस्टेशन | सवारी | = असवारी |
| स्तर | = अस्तर | स्तबल | = अस्तबल |
| स्तंभ | = अस्तंभ | | |

आदि स्वरागम एवं अपिनिहित में भी कुछ अंतर है–

1. आदि स्वरागम में कोई भी स्वर आ सकता है, किंतु अपिनिहित में केवल उसी स्वर का आगम हो जाता है, जो या तो पहले से ही विद्यमान हो या उसी प्रकृति का अग्र या पश्च हो।
2. आदि स्वरागम में जो स्वर आता है, वह शब्द के आदि में ही होगा, किंतु अपिनिहित में इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है।

**अपिनिहित एवं स्वर भक्ति**– इसी प्रकार स्वर भक्ति और अपिनिहित दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। साथ ही, स्वर भक्ति में स्वर का आगम किसी व्यंजन को अक्षर बनाता है, किंतु अपिनिहित में स्वर भक्ति की तरह आधा को पूरा बनाने की प्रवृत्ति नहीं होती है।

**अभिश्रुति (Umlaut of Vowel Mutation)**– स्वर, अर्ध स्वर तथा कभी-कभी व्यंजन से प्रभावित होकर यदि अपिनिहित (Epenthesis) के कारण आया हुआ स्वर परिवर्तित हो जाता है तो उसे अभिश्रुति कहते हैं। अपिनिहित से हमारा अभिप्राय शब्द के मध्य किसी ध्वनि या अक्षर के आगम से है। ग्रिम महोदय ने जर्मनिक भाषाओं के अध्ययन

के अवसर पर स्वर-परिवर्तन की ओर विशेष ध्यान देकर इसका उल्लेख किया था। उदाहरणार्थ–

Mani = Maini = Men

टिप्पणी

इस उदाहरण में Maini में प्रथम I अपिनिहित के फलस्वरूप है, फिर उसका परिवर्तन men में हो गया है।

डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपश्रुति का कारण स्वर को माना है। उनके अनुसार, यह प्रवृत्ति भारोपीय, सेमिटिक एवं हैमिटिक भाषाओं में पाई जाती है। अंग्रेजी में स्वर परिवर्तन के द्वारा अनेक शब्दों के बहुवचन बनाए जाते हैं; जैसे– Man = men, Foot = Feet, Moue = Mice.

भोलानाथ तिवारी बंगला भाषा के करिआ = केरिया, Koria = कोरे = Kora को भी अभिश्रुति का उदाहरण मानते हुए लिखते हैं कि–

"Umlaut नाम ग्रिम महोदय का दिया हुआ है। उनके अनुसार किसी स्वर के अभाव से पहले आए स्वर के परिवर्तन को ही "umlaut" कहते हैं। इसमें प्रभावित करने वाला स्वर बहुधा I होता है।"

## अपश्रुति-अक्षरावस्थान : नियमित स्वर क्रमबद्धता

ध्वनि परिवर्तन के प्रमुख कारण स्वर परिवर्तनजन्य होते हैं। उदात्तानुदात्त स्वरों का आधार लेकर ही इस नियम का निर्माण हुआ है। अपश्रुति में व्यंजनों के ज्यों के त्यों रहने पर भी केवल स्वर परिवर्तन से ही अर्थ में अंतर हो जाता है। इसमें स्वरों का परिवर्तन ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व में होता है। ईरानी भाषा में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। आशय यह है कि स्वर तत्व का परिवर्तन ही अपश्रुति है। यह स्वर परिवर्तन एक ही शब्द के अंग में होता है। स्वर परिवर्तन दो प्रकार का होता है, जिन्हें क्रम से गुणीय परिवर्तन (Qualitative change) तथा परिमाणीय परिवर्तन (Quantitative change) कहते हैं। एक में शब्द का रूप पूर्णत: परिवर्तित हो जाता है, दूसरे में ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व होता है।

1. **गुणीय अपश्रुति**– इसमें गुण की दृष्टि से स्वर मात्र में परिवर्तन हो जाता है। इससे अर्थ में भेद हो जाता है; जैसे– अग्र स्वरों के स्थान पर पश्च स्वर या अन्य स्वर परिवर्तन। यथा– अंग्रेजी में एकवचन से बहुवचन बनाने में स्वर भेद– Man = men, mouse = mice, Foot = Feet, Goose = Geese. धातु रूप में– Sing = Sang = Sung = Song. जर्मन में– Gehen (जाना) = Ging (गया) = Gegangen (गया हुआ)। रूसी भाषा में– दार (दान), दरीत्य् (उपहार में देना), त्येच (बहना), तिचेनिये (प्रवाह, धारा)। अरबी में – कृत्ल (मारना), कातिल (मारने वाला), मकतूल (मरने वाला) कत्ताल (बहुतों को मारने वाला), (युद्ध) कत्ताल। संस्कृत में – सूत = सौति (सूतपुत्र), दशरथ = दाशरथि (दशरथ का पुत्र)।
2. **मात्रिक अपश्रुति**– (परिमाणीय) = मात्रिक अपश्रुति में ह्रस्व-दीर्घ आदि मात्राओं में परिवर्तन होता है। स्वर की प्रकृति वही रहती है, उसमें दीर्घ, गुण या वृद्धि आदि हो जाती है। इसका कारण उदात्त का होना या न होना माना जाता है। धातु आदि पर उदात्त स्वर होने पर गुण या वृद्धि होगी। उदात्त स्वर न होने पर वहां गुण या वृद्धि

टिप्पणी

नहीं होगी, अपितु कुछ स्थानों पर संप्रसारण हो जाता है। इसके आधार पर तीन श्रेणियां मानी जाती हैं–

(क) **निर्बल श्रेणी**– गुण वृद्धि नहीं, प्रत्युत संप्रसारण होगा। संप्रसारण के अंतर्गत य, व, र क्रमशः इ, उ, ऋ में परिवर्तित हो जाएंगे; यथा–

यष्टवे, यज्ञ = इष्ट वष्टि = उष्मसि

वक्तवे = उक्त चत्वारः = चतुरः

ग्रभे = गृभे, गृहीत श्वन् = शुनः

(ख) **सबल श्रेणी**– इसमें गुण होगा। जैसे– भृतः = भरति

(ग) **दीर्घीकृत श्रेणी**– इसमें वृद्धि होने के कारण ए, ओ, अर्, अल् क्रमशः ऐ, औ, आर्, आल् में परिवर्तित हो जाते हैं।

इनके संस्कृत में उदहारण निम्न प्रकार से हैं–

| क्र.सं. | ध्वनि | धातु | निर्बल | सबल | दीर्घीकृत |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | अ | पत् | पित्सति | पतति | पातयति |
| 2. | अय्, ए | नी (नय्) | नीतः | नयति | नायकः |
| 3. | अव्, ओ | (श्रु) (श्रव्) | श्रुतः | श्रोता | श्रावयति |
| 4. | अर् | कृ (कर्) | कृतः | करोति | कारकः |
| 5. | अल् | क्लृप् (कल्प्) | क्लृप्तः | कल्पना | काल्पनिकः |
| 6. | अन् | हन् | हतः | हन्ति | घातकः |
| 7. | अम् | गम् | गतः | गमनम् | जगाम |
| 8. | आ | स्था | स्थितिः | स्थानम् | – |
| 9. | आय्, ऐ | गै (गाय) | गीतम् | गायति | – |
| 10. | आव्, औ | (पू) (पाव्) | पूतः | पावकः | – |

**समीकरण (Assimilation)**

समीप स्थित दो वर्ण जब परस्पर प्रभावित होकर वर्णों में से एक रूप परिवर्तित कर दूसरे का स्वरूप ग्रहण करता है, तो उसे समीकरण कहते हैं। संस्कृत वैयाकरण समीकरण को 'सवर्णीकरण' संज्ञा से अभिहित करते हैं। समीकरण का संस्कृत में उदाहरण है– धर्म से प्राकृत में धम्म। यह प्रवृत्ति मूलतः प्रत्यत्नलाघवजन्य है। इसके दो भेद प्राप्त होते हैं–

(1) पुरोगामी (Progressive)

(2) पश्चगामी (Regressive)

इनके पार्श्ववर्ती Contact तथा दूरवर्ती Incontact दो प्रकार के अन्य भेद भी होते हैं। स्वर एवं व्यंजन के आधार पर इनके उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य हैं–

**व्यंजन**

1. पुरोगामी – दूरवर्ती = विलपना = विलंबना

   पार्श्ववर्ती – वक्र = वक्क, यस्य = जस्स, चक्र = चक्क

2. पश्चगामी–दूरवर्ती – नीला = लीला

   पार्श्ववर्ती – कर्म = कम्म, सर्प = सप्प
   भक्त = भत्त, धर्म = धम्म

टिप्पणी

**स्वर**

1. पुरोगामी – दूरवर्ती = जुल्म = जुलुम, पिपीलिका = पिपिलिका

   पार्श्ववर्ती – आइए = आइइ

2. पश्चगामी – दूरवर्ती = असूया = उसूया

   इक्षु = उकूरवू

समीकरण में यह आवश्यक नहीं कि परस्पर प्रभावित करने वाले वर्ण अव्यवहित रूप में समीप में हो। साथ ही समीकरण में या परवर्ती में पूर्ववर्ती वर्ण का प्रभाव दूसरे पर पड़ेगा। इसका आधार वर्णों के आपेक्षिक बल पर होता है। साधारण नियम यह है कि समान बलवान वर्णों पर परवर्ती का और असमान बल वालों पर अधिक बल वाले का प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से हम व्यंजनों का क्रम इस प्रकार निर्दिष्ट कर सकते हैं–

1. स्पर्श वर्ग पंचम अक्षरों को छोड़कर सबसे अधिक बल वाले हैं।
2. वर्ग के पंचम अनुनासिक उपर्युक्त स्पर्शों से कम बल वाले हैं तथा ल्, स्, व्, य्, र क्रमशः सबसे कम बल वाले हैं।

**डॉ. पी.डी. गुणे** समीकरण की प्रक्रिया तथा उसका रहस्य आदि स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि– "इस तथ्य की व्याख्या में कोई कठिनाई नहीं है। यद्यपि कोई शब्द अथवा वाक्य उच्चारण चेष्टाओं के अनुक्तम से उत्पन्न किया जाता है, तो भी जहां तक बोलने वाले का संबंध है, ज्यों ही शब्द अथवा वाक्य के उच्चारण का आरंभ करता है, उसकी चेतना में समग्र आ जाता है। उसका संबंध ध्वनि एवं उसके अर्थ, दोनों का बोध एक साथ घटित होने वाली क्रिया के रूप में होता है। इसी कारण समीकरण के समय कुछ प्रक्रिया इस प्रकार की होती है। कोई विशिष्ट ध्वनि-विचार, जो किसी अन्य ध्वनि-विचार से कुछ उत्कृष्ट होता है, उसका स्थान ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार उच्चारण संबंध चेष्टा जो पहले वाले के अनुरूप है, उस दूसरे का स्थान ले लेती है।

**विषमीकरण (Dissimilation)**

यह समीकरण के विपरीत होता है। इसमें दो समान समीपस्थ ध्वनियों में से एक अपने स्वरूप का परित्याग कर विषम या असम बन जाती है, इसलिए इसे विषमीकरण कहा जाता है। विषमीकरण के स्वर-व्यंजन के पुरोगामी-पश्चगामी नामक भेद किए जा सकते हैं।

- **पुरोगामी विषमीकरण**– जब प्रथम व्यंजन या स्वर पूर्वस्थिति में रहता है और दूसरा परिवर्तित होकर विषम हो जाता है, तो उसे पुरोगामी विषमीकरण कहते हैं। जैसे–लांगूल = लंगूर, काक = काग, कंकण = कंगन, पुरुष = पुरिष।

  संस्कृत में 'अभ्यासे चर्च' सूत्र से नियमित तिष्ठासति, बुभूषति आदि रूप भी विषमीकरण के उदाहरण हैं।

- **पश्चगामी विषमीकरण**– इसमें प्रथम वर्ण में परिवर्तन होता है। जैसे– नवनीत = नयनू, मुकुट =मउर = मोर, नूपुर = नेउर, मुकुल = मउल, लांगल = नांगल।

टिप्पणी

- **सादृश्य या मिथ्या सादृश्य** (Analogy of False Analogy)– समानता के कारण भी ध्वनियां परिवर्तित हो जाती हैं। जब कुछ शब्दों में दूसरे शब्दों के सादृश्य से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है, तो इसे सादृश्य या मिथ्या सादृश्य कहा जाता है। इसे औपम्य या उपमान भी कहा जाता है, जैसे 'सर्प' शब्द से नरक के सादृश्य से सरप। भोलानाथ तिवारी के शब्दों में संस्कृत में द्वादश के सादृश्य पर एकदश भी एकादश हो गया है।
- **संधि**– संस्कृत भाषा में संधियों का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत के वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट संधि नियम यद्यपि केवल संस्कृत भाषा तक ही सीमित हैं, किंतु विश्व की अन्यन्य भाषाओं में भी संधि की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। संधि का सामान्य अर्थ है– जुड़ना अर्थात दो ध्वनियों का मिलकर एक हो जाना। जैसे – रत्न + आकर = रत्नाकर। किंतु कभी-कभी तो संधियों के माध्यम से इतना परिवर्तन हो जाता है कि संपूर्ण ध्वनियों को समझना ही कठिन हो जाता है, जैसे– तद् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, वाक् + हरिः = वाग्घरिः। हिंदी– नयन = नइन = नैन, सपत्नी = सवत = सौत।
- **अनुनासिकता** (Nasalization)– अनुनासिक (न, म, ञ, ङ, ण) ध्वनियों का अनुनासिक रूप में परिवर्तित होना ही अनुनासिकता है। जैसे– सर्प = सांप, उष्ट्र = ऊंट, सत्य = सांच, कूप = कुंआ, वक्र = बांका इत्यादि।

**ऊष्मीकरण** (Assibilation)

विशिष्ट ध्वनियों का ऊष्म श्, ष्, स् आदि में परिवर्तित हो जाना ऊष्मीकरण कहलाता है। भारोपीय भाषाओं को इसी ऊष्मीकरण प्रवृत्ति के कारण दो वर्गों में विभक्त किया गया है। एक वर्ग उन भाषाओं का है जिनमें ऊष्मीकरण की प्रवृत्ति नहीं मिलती है, दूसरा वर्ग उन भाषाओं का है, जिनमें ऊष्मीकरण की प्रवृत्ति मिलती है। दोनों वर्गों को क्रमशः 'केन्टुम' और 'शतम्' वर्ग कहते हैं।

- **मात्रा भेद**– उच्चारण में कभी दीर्घ का ह्रस्व तथा कभी ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है, जैसे– अक्षत = आखत, हस्त = हाथ, सत्य = सांच।
- **घोषीकरण**– जब अघोष (विवार) ध्वनियां घोष (संवार) ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं, तो उसे घोषीकरण कहा जाता है, जैसे–

  मकर = मगर  सकल = सगल  काक = काग

  प्रकट = प्रगट
- **अघोषीकरण–** इसमें सघोष ध्वनि अघोष के रूप में परिवर्तित हो जाती है, जैसे–

  नगर = नकर  अदद = अदत  मेघ = मेख

  सघोष ध्वनि द, ग् तथा ध् क्रमशः त्, क्, ख् में रूपांतरित हुई हैं।
- **महाप्राणीकरण**– जब अल्पप्राण ध्वनियां महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं, तो उसे 'महाप्राणीकरण' कहा जाता है, जैसे-

  बाष्प = भाप  गृह = घर  हस्त = हाथ

  यहां अल्प प्राण प्, ग्, त् क्रमशः ब्, घ्, एवं थ् में परिवर्तित हुए हैं।

टिप्पणी

- **अल्पप्राणीकरण**– जब महाप्राण ध्वनियां अल्पप्राण में बदल जाती हैं, तो उसे 'अल्पप्राणीकरण' कहा जाता है। जैसे–

  धधामि = दधामि  सिंधू = हिंदू

  भोधामि = बोधामि  धाधामि = दधामि

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ध्वनियों के उच्चारण में शरीरावयवों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके विकृत हो जाने से ध्वनियों का उच्चारण करना संभव नहीं होता है। ध्वनि परिर्वतन की कुछ दिशाओं का उल्लेख यहां किया गया है। केवल यही ध्वनि परिवर्तन की दिशाएं हों, ऐसा नहीं है। इस प्रकार अन्य अनेक ध्वनि परिवर्तन की दिशाएं हो सकती हैं।

## ध्वनि नियम

जहां विशेष परिस्थितियों में पड़कर कोई एक क्रिया समय और स्थान की सीमा का अतिक्रमण कर सर्वथा एक ही रूप में घटित हुआ करती है, तो उसे नियम की संज्ञा दी जाती है। जिस प्रकार प्रकृति के अनेक कार्यों को देखकर कुछ सामान्य एवं कुछ विशेष नियमों का निर्धारण कर लिया जाता है, उसी प्रकार ध्वनियों में विकार को देखकर ध्वनि-नियम निर्धारित कर लिए जाते हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही काल में और एक ही भाषा में विभिन्न कालों में उत्पन्न होने वाले इन ध्वनि-विकारों का यथाविधि तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह निश्चित हो जाता है कि ध्वनियों में ये विकार कुछ निश्चित नियमों के अनुसार होते हैं। यदि वही परिस्थितियां उसी भाषा में वैसे ही अवसर पर पुनः उत्पन्न हों, तो उसका परिणाम पूर्वानुसार ही होगा।

यह प्रश्न सदा ही विवादास्पद रहा है कि प्राकृतिक नियमों की भांति क्या भाषा विज्ञान के नियम भी शाश्वत हैं? विद्वानों ने अपने अध्ययन-मनन का यह निष्कर्ष निकाला है कि ध्वनि-परिवर्तन के नियम नितांत वैज्ञानिक एवं शाश्वत नहीं हो सकते। जेस्पर्सन का कथन है कि "मैं इस तथ्य का संकेत कर देना चाहता हूं कि मैंने इस बात को स्वीकार करने का कभी भी कारण नहीं पाया कि ध्वनि-परिवर्तन सदैव कड़े नियमों के अनुसार होते हैं और उनमें अपवाद नहीं होता।"

I want to point out the fact that nowhere have I found any reason to accept the theory that sound changes always take place according to rigorous or bling laws admitting. No exception….

ब्लूमफील्ड के अनुसार नियम शब्द का यहां कोई यथार्थ अर्थ नहीं है, क्योंकि ध्वनि परिवर्तन किसी भी प्रकार का नियम नहीं है, अपितु वह ऐतिहासिक घटना मात्र है।

## ● प्राकृतिक नियम व ध्वनि-नियमों में अंतर

1. प्राकृतिक नियम किसी काल-विशेष के आग्रह को स्वीकार नहीं करते हैं। वे शाश्वत होते हैं, किंतु ध्वनि-नियमों में ऐसा नहीं है। वे काल के प्रतिबंध को स्वीकार करते हैं। चार और चार जोड़ने से सर्वदा आठ होते हैं। किंतु भारतीय आर्य-भाषाओं के इतिहास में प्राचीन काल से मध्य में तथा मध्यकाल से आधुनिक काल में आने वाली भाषा में समान परिवर्तन घटित नहीं हुए हैं।

टिप्पणी

2. प्राकृतिक नियम अवस्था या स्थान की अपेक्षा नहीं रखते हैं। न्यूटन का नियम सार्वदेशिक है, किंतु विभिन्न भाषाओं के ध्वनि-नियम अपनी सीमाओं में आबद्ध रहते हैं। वे परिस्थितियों के दास हैं।

3. प्राकृतिक नियम अपना अपवाद नहीं छोड़ते हैं। किंतु ध्वनि-नियम सापवाद हैं। 'कर्म का विकसित रूप काम हो गया है, किंतु 'धर्म' का धाम न होकर 'धरम' हुआ है।

### • क्या ध्वनि नियम के अपवाद वास्तविक हैं?

ध्वनि-नियमों के अपवाद सकारण होते हैं–

1. ध्वनि-नियमों के अपवाद का प्रधान तथा महत्वपूर्ण कारण 'सादृश्य' है। सादृश्य के कारण भ्रमवश अर्थ का अनर्थ हो जाता है।
2. दूसरा अपवाद का कारण है, दूसरी भाषाओं से शब्दों को ऋण रूप में ग्रहण करना। आज हिंदी में फारसी, अरबी व अंग्रेजी के अनेक शब्दों के आ जाने के कारण एक ही नियम प्रत्येक शब्द पर घटित नहीं हो सकता।
3. कभी-कभी हम स्वयं अपनी ही भाषा के उस काल के शब्द को ग्रहण कर लेते हैं, जिस काल में निर्दिष्ट नियम कार्य नहीं करता है।
4. कभी-कभी अन्य भाषा का समानाकार शब्द भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है जो कि नियम की कसौटी पर घटित न होने पर अपवाद के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।
5. ध्वनि विकार में रुचि का भी महत्व नहीं होता है। अत: ध्वनि-नियम का विवेचन करते समय हमें इन तथ्यों का विशेष ध्यान रखना चाहिए–

   (क) वह नियम किस काल से संबंध रखता है?

   (ख) वह नियम किन-किन भाषाओं से संबंध रखता है?

   (ग) उस नियम की सीमाएं क्या हैं?

आचार्य टंकर के अनुसार, "किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में किसी विशिष्ट काल और कुछ विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन को उस भाषा का ध्वनि-नियम कहते हैं।"

"A Phonetic law of a language is a statement of the regular practice of that language at a particular time in regard to the treatment of particular sound or group or sounds in a particular setting."

इस परिभाषा के आधार पर ध्वनि-नियमों की विशेषताओं का इस प्रकार निर्देश किया जा सकता है–

1. ध्वनि नियम किसी भाषा विशेष का होता है या किसी एक भाषा परिवार का। एक ध्वनि नियम संसार की समस्त भाषाओं पर लागू नहीं होता है।
2. यह नियम एक भाषा की समस्त ध्वनियों पर लागू न होकर कुछ विशिष्ट ध्वनियों पर लागू होता है।
3. ध्वनि नियम सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नहीं होते हैं। वे निश्चित सीमा में ही सीमित रहते हैं।

4. ध्वनि-नियमों के लिए विशिष्ट अवस्था एवं परिस्थिति की अपेक्षा रहती है।
5. ध्वनि नियम सर्वथा अपवाद रहित नहीं होते हैं।

**ध्वनि-नियमों के अपवादों के कारण–**

टिप्पणी

1. सादृश्य एवं भ्रममूलक शब्द हैं।
2. अन्य भाषाओं से ऋण रूप में गृहीत शब्दों के कारण भी अपवाद मिलते हैं।
3. बोलियों का मिश्रण।
4. शब्दों की नकल।
5. काव्य में अनुप्रास आदि के लिए तोड़-मरोड़ शब्द भी अपवाद के कारण हैं।

निष्कर्ष यह है कि ध्वनि-नियम सापवाद, शिथिल (Flexible) होते हैं। इनके लिए विशिष्ट भाषा, विशिष्ट ध्वनि तथा विशिष्ट दशा का होना अपरिहार्य है।

वस्तुतः किसी भाषा-विशेष में किसी काल-विशेष में कुछ विशेष परिस्थितियों के अंतर्गत हुए विशेष प्रकार के ध्वनि-परिवर्तनों को ध्वनि-नियम कहते हैं।

## • विशिष्ट ध्वनि नियम

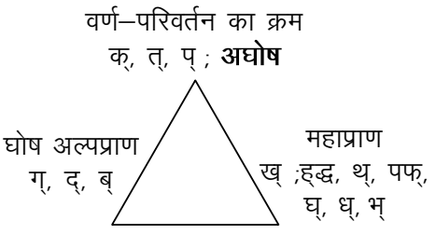
यहां कतिपय विशिष्ट ध्वनि-नियमों का ही वर्णन किया जा रहा है – ग्रिम-नियम, ग्रासमान-नियम, वर्नर-नियम।

**'मूलभाषा-सुसंबद्धाः ग्रिमग्रासमान-वर्नराः।**
**वर्णानां परिवृत्त्यैव, प्रसिद्धिं परमां गताः॥**

1. **ग्रिम नियम**– यह ध्वनि-नियम प्रो. याकोब ग्रिम के नाम से प्रसिद्ध है। इस नियम को 'ध्वनि-परिवर्तन', साउंड ध्वनि भी कहते हैं। जर्मन भाषा के मूर्धन्य पंडित तथा प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक आचार्य ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, उस नियम को 'ग्रिम नियम' के नाम से अभिहित किया जाता है। यद्यपि इस नियम के प्रथम विचारक इहरे तथा रैज्मस रैस्क थे परंतु इसकी सम्यक् विवेचना ग्रिम महोदय ने की। अतएव यह 'ग्रिम नियम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रो. मैक्समूलर ने इसे 'ग्रिम नियम' नाम दिया है। अतः इस नियम को दो भागों में विभक्त किया गया है– ग्रिम नियम का संबंध नौ स्पर्श ध्वनियों से है। 'क' से लेकर 'म' तक समस्त ध्वनि स्पर्श कहलाती हैं (कादयो मावसानाः स्पर्शाः)। इसे जर्मन भाषा का वर्ग परिवर्तन कहते हैं। जर्मन भाषा का यह परिवर्तन दो बार हुआ है। प्रथम वर्ण परिवर्तन ईसा के कई सदी पूर्व में हुआ है तथा द्वितीय वर्ण परिवर्तन लगभग सातवीं शताब्दी में हुआ।

   **प्रथम वर्ण परिवर्तन**– यह वर्ण परिवर्तन ईसा के जन्म से पूर्व हो चुका था। इसका प्रभाव गथिक, निम्न जर्मन और अंग्रेजी, डच आदि भाषाओं पर पड़ा है। भारोपीय मूलभाषा की व्यंजन ध्वनियां संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि में सुरक्षित हैं। अंग्रेजी का उद्भव निम्न जर्मन से हुआ है, अतः इसके द्वारा संस्कृत और अंग्रेजी की तुलना से यह परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है। इस वर्ण-परिवर्तन में एक ओर संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, स्लावोनिक भाषाएं हैं, जिनमें मूल ध्वनि सुरक्षित है, तो दूसरी ओर गाथिक, निम्न जर्मन, अंग्रेजी, डच आदि भाषाएं हैं, इनमें यह परिवर्तन हुआ है।

टिप्पणी




**द्वितीय वर्ण परिवर्तन**– यह वर्ण परिवर्तन केवल जर्मन भाषा के ही दो रूपों उच्च और निम्न में हुआ है। निम्न जर्मन की प्रतिनिधि भाषा अंग्रेजी है। यह परिवर्तन निम्न जर्मन और अंग्रेजी से उच्च जर्मन में हुआ है। निम्न जर्मन की कुछ ध्वनियां उच्च जर्मन में भिन्न हो गई हैं।

**क-तपा ह-थ-फाः संतु, घ-ध-भा-ग-द-बास्तथा।**

**ग-द-बाः क-त-पा संतु, ग्रिमाख्ये नियमे सति॥**

**प्रथम वर्ण परिवर्तन**

| **ध्वनि-परिवर्तन** | **संस्कृत** | **अंग्रेजी** | **अर्थ** |
|---|---|---|---|
| क् > ह् h, wh | कः | who | कौन |
| त् > थ् th | त्रि | three | तीन |
| | तनु | thin | दुबला |
| प् > फ् f | पितर | Father | पिता |
| | पाद | foot | पाद |
| घ् (ह) > ग् g | हंस | goose | हंय |
| | दुहितर | Daughter | पुत्री |
| भ् > ब् b | भ्रातर | Bother | भाई |
| | भू | be | होना |
| | भर (भृ) | Bear | धारण करना |
| ग् > क् k | गो | cow | गाय |
| | युग | yoke | जुआ |
| द् > त् t | दशन् | ten | दस |
| | द्वौ | two | दो |
| | अद् | eat | खाना |

**द्वितीय वर्ण परिवर्तन**

| **ध्वनि-परिवर्तन** | **अंग्रेजी** | **जर्मन** | **अर्थ** |
|---|---|---|---|
| k – ch, ख | Book | Buch, बुख | पुस्तक |
| | Cook | Coch, कोख | रसोइया |
| t- s, ss, स् | Out | ous, आउस | बाहर |
| t-z, त्स | Ten | Zehn, त्सेन | दस |
| P-f, pf प्फ | Up | Auf, आउफ | ऊपर |
| | Apple | Apfel आफेल | सेब |

टिप्पणी

| | | | |
|---|---|---|---|
| | Open | offen ओफ्फेन | खोलना |
| h-g ग् | Hostis | Gast – गास्ट | अतिथि |
| th-d, द् | Three | Drei – द्राई | तीन |
| | Thick | Dick – डिक | मोटा |
| v-fb, ब् | Wife | Weib, वाइब | पत्नी |
| | Give | Geben, गेबेन | देना |
| g-CK क् | Bridge | Brucke, ब्रयूक | पुल |
| d-t त् | God | Gott, गोट्ट | ईश्वर |
| | Do | Tun तुन | करना |
| | Drink | Triken तृकन | पीना |
| b-P, प् | Double | Doppel, डोप्पेल | दुगुना |

2. **ग्रासमान नियम– महाप्राणद्वयी युक्ताः, द्वयक्षरा मूलधातवः।**
**महाप्राणाद्यनाशः स्याद्, ग्रासमानविधौ स्मृते॥**

हेर्मान ग्रासमान भी जर्मन विद्वान हैं। इन्होंने ग्रिम नियम को संशोधित किया है और उसकी त्रुटियों का निराकरण किया है। ग्रासमान को मुख्य रूप से ग्रिम नियम में जो कमी दृष्टिगोचर हुई, वह यह थी कि जर्मनिक व भारोपीय भाषाओं में कुछ ध्वनि परिवर्तन उस प्रकार से नहीं हो रहे थे, जिस प्रकार वे याकोब ग्रिम नियम के अनुसार होने चाहिए थे। उदाहरण के लिए ग्रीक किंग्स्वो, तुप्तोस, पिथास का अंग्रेजी में Go, dumb, body शब्द बनते हैं, किंतु ग्रिम नियम के अनुसार ho, thumb, fody होने चाहिए थे। इसी प्रकार ग्रिम नियमानुसार ब् को प् और द को त होना चाहिए था, किंतु गथिक में भी ब् व द् ही मिलते हैं–

| **संस्कृत** | **गथिक** |
|---|---|
| बोधति | Biudan बिउदान |
| दभ् | Daubs दाउब्स |

ग्रासमान ने इसमें दो संशोधन किए। पहला संशोधन यह था कि 'भारोपीय मूल भाषा में यदि शब्द या धातु के आदि और अंत में दोनों स्थानों पर महाप्राण हो, तो संस्कृत, ग्रीक आदि में एक अल्पप्राण हो जाता है। दूसरा संशोधन यह था कि यदि संस्कृत आदि के कुछ शब्दों का परिवर्तन जर्मनिक में उस प्रकार दृष्टिगोचर नहीं होता, जिस प्रकार से ग्रिम नियम के अनुसार होना चाहिए, तो उसके आधार पर यह अनुमान लगा लेना चाहिए कि भारोपीय से संस्कृत तक आते-आते एक बार ग्रिम नियम के अनुसार परिवर्तन हो चुका है, इसलिए पुनः परिवर्तन होने की संभावना नहीं हो सकती। अतः यदि बोधति- बिउदान, दभ्–दाउब्स में ब्-द् का क्रमशः प् और त् नहीं हुआ है, तो इसका कारण यह है कि मूल भारोपीय भोधति और धर्भ से संस्कृत तक आते-आते बोधति और दर्भ में पहले से ही 'भ्' और 'ध्' वर्णों का परिवर्तन ग्रिम नियम के अनुसार 'ब्' और 'द्' में हो चुका है। इसलिए पुनः इसका नियमानुसार परिवर्तन कैसे हो सकता है।

टिप्पणी

### 3. वर्नर नियम

**पूर्वमुदात्तयोगे तु ग्रिमाख्यो नियमो भवेत्।**

**अन्यथा द्विपदा वृत्तिः, वर्नरे नियमे सति॥**

कार्ल वर्नर भी जर्मन भाषाशास्त्रीय हैं। इन्होंने भी ग्रिम नियम का संशोधन किया है। ग्रिम नियम के जो अपवाद रह गए थे, उनके विषय में वर्नर ने ज्ञात किया है कि ग्रिम नियम का आधार उदात्त स्वर था।

मूल भारोपीय भाषा के शब्दों के क्, त्, प् का जर्मनिक भाषाओं में ह्, थ, फ तभी होता है, जब मूल भाषा में अव्यवहित पूर्व कोई उदात्त स्वर होता है। यदि उदात्त स्वर क्, त्, प् के बाद हो, तो इनके स्थान पर क्रमशः ग्, द्, ब् होते हैं।

| संस्कृत | लैटिन | गथिक | अंग्रेजी | ध्वनि-परिवर्तन |
|---|---|---|---|---|
| युवक् | Juvencus | Juggs | young | क > ग |
| शतम् | Centum | Hund | Hundred | त > द |
| सप्तम् | Septem | Sibun | Seven | प > ब |
| लिम्पामि | Lippus | Bileiba | Belife | |

इनमें क्, त्, प् के बाद उदात्त स्वर हैं, अतः इनके ह्, थ, फ् न होकर ग्, द्, ब् हुए हैं। भ्रातर में 'त्' से पहले उदात्त है, अतः गथिक व अंग्रेजी में Brother में त् को थ् लिखा जाता है। ब्राथर को ब्रदर बोला जाता है। ग्रिम नियम का प्रभाव 'स्' पर नहीं पड़ता, परंतु कुछ उदाहरणों में 'स्' के स्थान पर 'र्' का प्रयोग मिलता है। वर्नर ने इसका समाधान भी बलाघात में खोज निकाला। उनके अनुसार यदि बलाघात 'स्' से पूर्व होगा तो परिवर्तन नहीं होगा, परंतु यदि बलाघात् 'स्' के बाद होगा तो 'स्' का 'र्' हो जाएगा।

- **तालव्यभाव नियम**

तालव्यभाव का नियम कब और कैसे बना, निश्चित रूप से इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय पर विविध विद्वान स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं, जिनमें विल्हेन, थामसन, श्मिट, एशाम, तेंगार, कालिन्ज देशे शोर तथा वर्नर आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस नियम के निर्माण से पूर्व अन्य सगोत्रीय भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत अधिकतर भारोपीय है, यह धारणा थी। मूल भारोपीय भाषा में दन्त्य एवं ओष्ठ्य व्यंजन के अतिरिक्त तीन प्रकार के कंठ्य स्पर्श थे– शुद्ध कंठ्य, मध्य कंठ्य एवं तालव्य। इनका विकास परवर्ती भाषाओं में भिन्न-भिन्न ढंगों से हुआ है। पश्चिमी भारोपीय भाषाओं (ग्रीक, इटाली, जर्मन, कैल्टिक) में मध्यम कंठ्य तथा तालव्य का एक तालव्य वर्ग बन गया एवं कंठ्य स्पर्शों में एक ओष्ठ्य (व) ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पूर्वी भाषाओं आर्मेनियन, बोल्टो, स्लावोनिक आर्य में कंठ्य ध्वनियों में ओष्ठ्य भाव नहीं आया, पर कंठ्य ध्वनियों के साथ मिलकर एक वर्ण बन गया। इन्हीं पूर्वी भाषाओं में मूल तालव्य आकर घर्ष बन गए।

टिप्पणी

जिन संस्कृत शब्दों में 'अ' ग्रीक या लैटिन के ओ (O) की भांति है, उनके पूर्व 'क' या 'ग' ही पाया जाता है। परंतु यदि वही 'अ' ग्रीक या लैटिन के पूर्व ई (E) की भांति है, तो उससे पूर्व कंठ्य 'क' या 'ग' न मिलकर तालव्य च और ज मिलते हैं।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| **संस्कृत** | अस्ति | जनू: | अ | अप: | ददर्श | अस्थि |
| **ग्रीक** | Esti | Genos | इ–O | – | Dedorka | Osteon |
| **लैटिन** | Aste | Genus | ई–Uopus | – | – | Os |

इसी प्रकार पच् धातु से निष्पन्न 'पचति' तथा 'पकस' में यही तथ्य है। अत: यह निष्कर्ष निकला कि संस्कृत 'अ' ध्वनि के स्थान पर इ या ओ ध्वनियां मूल भाषा में थीं। अग्र स्वर ई के पूर्व का तृतीय कंठ वर्ग 'अकुहविसर्जनीयानां कंठ:' मूल भाषा का अन्य भाषाओं में तालव्य 'इचुयशानां तालु' व्यंजन में परिवर्तित हो जाता है। कंठ्य ध्वनियों के तालव्य ध्वनियों में परिवर्तित होने के कारण इसे तालव्य नियम कहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त ध्वनि-नियमों के माध्यम से ध्वनियों में हुए परिवर्तन को सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। वस्तुत: ध्वनि-नियम भाषा विज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

ध्वनियों की सहायता से ही पद या शब्द की रचना होती है अर्थात शब्दों का निर्माण ध्वनियों से होता है। अत: भाषा विज्ञान में ध्वनियों का महत्व स्वयंसिद्ध है। ध्वनि विज्ञान भाषा विज्ञान का नीरस, क्लिष्ट किंतु अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण विषय है। इस विभाग के अंतर्गत ध्वनि परिवर्तन, उसके कारण और दिशा के विश्लेषण के साथ ध्वनि अवयव अर्थात मुखविवर, नासिकाविवर, स्वरतंत्री, ध्वनियंत्र आदि, ध्वनि उत्पन्न होने की क्रिया, ध्वनि लहरों का प्रसरण, ध्वनि का सुना जाना, ध्वनि तरंग आदि का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, सामान्य नियम निर्माणादि का अध्ययन किया जाता है।

**डॉ. गुणे** का कथन है कि वस्तुत: इसमें ध्वनियों का उच्चारण, अक्षर रूप में उनका संयोग, उन अक्षरों का शब्द रूप में संयोग तथा अंतत: शब्दों से वाक्यों का निर्माण आदि भाषा विषयक विभिन्न तत्वों पर विचार करना पड़ता है।

### 5.4.4 रूप विज्ञान

इस विज्ञान को पद विज्ञान या पद रचना शास्त्र भी कहते हैं। इसके अंतर्गत भाषा का रूपात्मक अध्ययन किया जाता है। इसमें उन विषयों का अध्ययन किया जाता है, जिनसे शब्द-रचना होती है। इसमें मुख्य रूप से धातु, उपसर्ग, प्रत्यय, शब्द, विभक्ति आदि का विवेचन किया जाता है। पदविज्ञान का अध्ययन भी वाक्य विज्ञान की भांति ही वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक इन तीन प्रकारों से किया जा सकता है। रूपविज्ञान को पदविज्ञान, पद रचना शास्त्र, रूप विचार आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है।

भाषा-विषयक अध्ययन में रूप-विज्ञान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह अध्ययन पद अर्थात रूप से संबोधित होता है। प्रश्न उठता है कि रूप या पद क्या होता है। सामान्यत: पद या रूप दोनों शब्द के लिए प्रयुक्त होते हैं। पद या शब्द भाषा का एक

टिप्पणी

महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। किसी भी भाषा में भावों की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का एक विशेष व्यवस्था में व्यवहार किया जाता है। हम अपने विचारों-भावों को प्रकट करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उसमें अनेक छोटे-बड़े वक्य समाहित रहते हैं। अधिकतर एक विचार को प्रकट करने के लिए वक्ता एक वाक्य का प्रयोग करता है इसलिए वाक्य भाषा की एक महत्वपूर्ण इकाई माना जाता है।

पद शब्द पर आधारित होते हैं। शब्द बनाने के लिए उनमें उपसर्ग (पूर्व प्रत्यय) और प्रत्यय दोनों ही आवश्यकतानुसार जोड़े जाते हैं। उपसर्ग जोड़ने से शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, जैसे विहार, संहार, परिहार आदि में। प्रत्यय जोड़कर भी अर्थ के 'शब्द' या 'पद' बनाए जाते हैं; जैसे 'कृ' धातु में तृच् प्रत्यय जोड़ने से कर्तृ शब्द बना। वाक्य में प्रयुक्त शब्द में कुछ ऐसा भी होता है, जिसके आधार पर वह अन्य शब्दों से अपना संबंध दिखला सके या अपने को बांध सके। लेकिन 'कोश' में दिए गए 'शब्द' में ऐसा कुछ नहीं होता। यदि वाक्य के शब्द एक-दूसरे से अपना संबंध न दिखा सकें तो वाक्य बन ही नहीं सकता। इसका आशय यह है कि शब्दों के दो रूप हैं। एक तो शुद्ध रूप या मूल रूप है जो कोश में मिलता है और दूसरा वह रूप है जो किसी प्रकार के संबंधतत्व से युक्त होता है। यह दूसरा, वाक्य में प्रयोग के योग्य रूप ही 'पद' या 'रूप' कहलाता है।

## पद की परिभाषा एवं स्वरूप

संस्कृत में 'शब्द' या मूल रूप को 'प्रकृति' या 'प्रतिपाद' कहा गया है और संबंधस्थापन के लिए जोड़े जाने वाले तत्व को 'प्रत्यय'। विभिन्न विद्वानों ने पद को इस प्रकार परिभाषित किया है–

महाभाष्यकार पतंजलि कहते हैं– "नापि केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवल प्रत्ययः।" अर्थात वाक्य में न तो केवल 'प्रकृति' का प्रयोग हो सकता है न केवल 'प्रत्यय' का। दोनों मिलकर प्रयुक्त होते हैं। दोनों के मिलने से जो बनता है वही पद या 'रूप' है।

विद्वान कॉलरिज ने कविता की परिभाषा देते हुए शब्दों को अत्यंत महत्वपूर्ण बताया था। उनके शब्दों में Poetry is best words in best order. अर्थात कविता शब्दों की श्रेष्ठ व्यवस्था है।

वाक्य में प्रयोग किए हुए प्रत्येक शब्द को एक पद कहा जाता है। इस प्रकार एक वाक्य का विश्लेषण करते हुए उसे हम पदों में विश्लेषित करते हैं। इन पदों का अध्ययन ही पदविज्ञान या रूपविज्ञान कहलाता है।

उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द। ध्वनि सार्थक ही हो, यह आवश्यक नहीं है, जैसे- अ, क, च, ट, त, प आदि ध्वनियां तो हैं, किंतु सार्थक नहीं। किंतु अब, कब, चल, पल, आदि शब्द हैं, क्योंकि इनमें सार्थकता है अर्थात अर्थ प्रदान करने की क्षमता है। पदविज्ञान में पदों के रूप-निर्माण का विवेचन, पदविकास एवं उसके कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। सार्थक हो जाने से ही शब्द का प्रयोग भाषा में नहीं होता। उनमें कुछ परिवर्तन करना होता है।

टिप्पणी

उदाहरणार्थ, कोश में पढ़ना शब्द मिलता है और वह सार्थक भी है, किंतु प्रयोग के लिए 'पढ़ना' रूप ही पर्याप्त नहीं है। साथ ही उसका अर्थ भी स्पष्ट नहीं होता। 'पढ़ना' के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे पढ़ता है, पढ़ रहा होगा, पढ़ा, पढ़ता था, पढ़ा है, पढ़ा था, पढ़ा होगा, पढ़ना, पढ़ो, पढ़ें, पढ़कर, पढ़ने को आदि। 'पढ़ना' के ये अनेक रूप जिस प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं, उसी का अध्ययन पदविज्ञान का विषय है। इसी तरह 'मैं' का प्रयोग करना हो, तो उसके भी अनेक रूप हो जाते हैं – मैं, मुझको, मुझमें आदि। अतः संस्कृत वैयाकरणों ने शब्द के दो भेद किए हैं– शब्द एवं पद। शब्द से उनका तात्पर्य विभक्तिहीन शब्द से है, जिसे प्रातिपदिक भी कहते हैं। अर्थात सार्थक ध्वनि समूह को 'शब्द' कहते हैं। संस्कृत में इस सार्थक ध्वनि समूह को ही प्रातिपदिक कहा जाता है– ''अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्''।

इसे मूलरूप समझना चाहिए, क्योंकि कोई भी शब्द जब तक पद नहीं बन जाएगा, उसका प्रयोग नहीं हो सकता है। पद बनाने के लिए शब्द में कुछ विशेष अर्थों के बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। इनके लगाने पर वह शब्द प्रयोग के योग्य होता है। अतः कहा गया है कि 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या। नापि केवलः प्रत्ययः। अपदं न प्रयुञ्जीत'।

अर्थात न केवल प्रकृति (मूलशब्द, धातु) का प्रयोग करना चाहिए और न केवल प्रत्यय का। अपद (शब्द को पद बनाए बिना) का प्रयोग न करें।

वस्तुतः पद शब्द का प्रयोग वैसे शब्द के लिए किया जाता है, जिसमें विभक्ति प्रयुक्त हो। तात्पर्य यह है कि–

शब्द = विभक्ति रहित ध्वनियों का समूह।

पद = विभक्ति सहित ध्वनियों का समूह।

इस प्रकार शब्द तथा पद का भेदक तत्व विभक्ति है। विभक्ति का अर्थ ही है। विभाजन करने वाला या विभक्त करने वाला तत्व। अर्थात जिसकी सहायता से शब्दों का अर्थ विभक्त हो जाए। विभक्ति की सहायता से ही 'मुझको', मुझसे', 'मुझमें' के अर्थ परस्पर भिन्न हो जाते हैं। यह भिन्नता विभक्ति के कारण है अन्यथा मूल रूप से 'मुझे' सर्वत्र एक ही है। यदि विभक्ति नहीं रहे तो समझना कठिन होगा कि वक्ता 'मुझ' को लेकर क्या कहना चाहता है। तात्पर्य यह है कि विभक्तियों के योग से ही शब्दों में प्रयोग-योग्यता आती है अर्थात उनमें परस्पर अन्वय हो सकता है। अन्वय न होने पर सार्थकता अपूर्ण रह जाएगी। जैसे निम्नलिखित शब्द सार्थक हैं–

उच्चारण दृष्टि ध्वनि भाषा लघुतम इकाई अध्ययन आवश्यक होना।

इनमें कोई भी शब्द निरर्थक नहीं है, किंतु फिर भी अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो रहा है। यदि इन्हीं शब्दों में विभक्तियां लग जाएं, तो अर्थ की अस्पष्टता दूर हो जाएगी; जैसे–

उच्चारण की दृष्टि से ध्वनि का, जो भाषा की लघुतम इकाई है, अध्ययन आवश्यक है।

इस वाक्य में या यों कहें कि पदों के अन्वित प्रयोग में संदेह का अवकाश नहीं रह जाता। अतः ऊपर कहा गया है कि प्रयोग-योग्यता पदों में अर्थात विभक्तियुक्त शब्दों

में ही रहती है। पाणिनि ने 'सुप्तिङन्तं पदम्' सूत्र के द्वारा यह बात स्पष्ट की है अर्थात सुप (संज्ञा विभक्ति) एवं तिङ् (क्रिया विभक्ति) के योग से ही पद बनते हैं, बिना पद बने उनका प्रयोग नहीं हो सकता।

टिप्पणी

1. **सुबन्त**- प्रकृति या प्रातिपादिक + सुप् प्रत्यय। जैसे – रामः = राम + सु (स्)। सभी संज्ञा व विशेषण शब्दों में सुप् प्रत्यय लगते हैं। उपसर्ग तथा अव्ययों के बाद भी सुप् लगते हैं, परंतु उनका लोप हो जाता है।
2. **तिङन्त**- धातु से तिङ् प्रत्यय रति, तः, (ति, तः, अन्ति आदि) लगते हैं। धातु + तिङ् प्रत्यय = तिङन्त। जैसे- पठति = पठ् + अ + ति (वह पढ़ता है) धातुओं से तिङ् प्रत्यय लगते हैं। तिङ् प्रत्यय लगने पर ही उनका प्रयोग हो सकता है। संस्कृत में राम गम् (राम जाना) का प्रयोग नहीं हो सकता है, क्योंकि इनमें पद बनाने वाले प्रत्यय सुप् तथा तिङ् नहीं लगे हैं।
3. **सुप् तथा तिङ्**-

   (क) शब्दों के अंत में लगने वाले कारक चिह्नों (Case endings) सु, औ, जस् (:, औ, अः आदि) को सुप् कहते हैं। ये कर्त्ता, कर्म, करण आदि कारकों तथा वचन (एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन) को बताते हैं।

   (ख) धातुओं के अंत में लगने वाले काल (Tense) और वृत्ति (Mood) के बोधक तिः, तः, अन्ति आदि (Terminations) को तिङ् कहते हैं। इनसे काल, वृत्ति, वाच्य (कर्तृ, कर्म, भाववाच्य) और वचन आदि का बोध कराया जाता है।

   हिंदी में सुप् के स्थान पर स्वतंत्र कारक चिह्न (को, ने, से, का पर आदि) लगाए जाते हैं। क्रिया या धातु में कालवाचक चिह्न (ता, ते, है, हूं, गा, गे आदि) लगाए जाते हैं। राम जाना का प्रयोग न होकर प्रयोग होगा- राम जाता है, राम गया आदि।

   (ग) **कृत् एवं तद्धित प्रत्यय**- सुप् तथा तिङ् के साथ ही कृत् तथा तद्धित प्रत्ययों का ज्ञान भी आवश्यक है।

      1. **कृत् प्रत्यय** (Primary Suffixes)- धातु + कृत् प्रत्यय = कृदंत शब्द। ये धातु के अंत में जुड़ते हैं। इनके लगने से संज्ञा शब्द बन जाते हैं और उनमें सुप् प्रत्यय होते हैं। कृ + तृच् = कर्तृ (कर्त्ता = करने वाला) कृ + तव्य = कर्तव्य, कृ + ण्वुल् (अक) = कारक, रम् + घञ् = राम, दिव् + घञ् (अ) = देव। इनमें पहले उपसर्ग भी लग जाते हैं। जैसे- हृ + घञ् (अ) = हार, विहार, संहार, आहार, प्रहार आदि।
      2. **तद्धित प्रत्यय** (Secondary Suffixes)- सभी संज्ञा शब्दों (कृत् प्रत्यय आदि लगा कर बने हुए शब्द) से विभिन्न अर्थों में तद्धित प्रत्यय होते हैं। ये भी संज्ञा शब्द होते हैं। इनसे सुप् प्रत्यय होता है। ये पुत्र उत्पन्न होना, संबद्ध, भाव आदि अर्थों को बताते हैं; जैसे- दशरथ + इ = दाशरथि (दशरथ का पुत्र) देव + इक = दैविक (देव + संबंधी),

टिप्पणी

वाराणसी + एय = वाराणसेय (वाराणसी में होने वाला), मृदु + ता = मृदुता (मृदुत्व आदि)।

कृत व तद्धित प्रत्ययों से बने हुए अधिकांश शब्दों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के तुल्य होता है। यहां यह सर्वदा ध्यातव्य है कि विश्व की अनेक भाषाओं में शब्द तथा पद में अंतर नहीं है। जैसे- एकाक्षर या अयोगात्मक चीनी भाषा में प्रत्येक शब्द स्वतंत्र है। उसमें वचन तथा कारक आदि के चिह्न स्वतंत्र शब्द होते हैं, जैसे- वो (मैं), नि (तू), तथा (वह)।

मेन (बहुवचन चिह्न) ति (संबंध कारक का, की)

वो ति (मेरा)

वो मेन (हम)

वो मेन ति (हमारा)

सेमेटिक (अरबी) भाषाओं में प्रत्यय या संबंध-तत्व शब्द के अंदर लग जाते हैं। क् त् व (पढ़ना) > किताब (पढ़ी जाने वाली पुस्तक)।

वस्तुतः ज्ञात होता है कि वाक्य में प्रयुक्त होने पर शब्द में कुछ परिवर्तन या विकार आ जाता है जिसे 'पद' कहते हैं। अयोगात्मक भाषा में वाक्य बनाने पर वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के रूप में कोई विकार (परिवर्तन) नहीं होता है। अतः वाक्य में प्रयुक्त शब्द 'पद' कहे जा सकते हैं अन्यथा पद तथा शब्द का रूप एक सा ही रहता है। योगात्मक भाषाओं में शब्दों में संबंध-तत्व (प्रत्यय) जोड़कर पद बनाए जाते हैं।

ये शब्द अलग-अलग अर्थ को प्रकट करते हैं तथा इसमें परस्पर कोई संबंध नहीं है। परंतु इनके प्रयोग से वाक्य बनाया जाए, तो इन शब्दों में थोड़ा विकार आ जाएगा; जैसे 'मोहन मेरे घर आया' वाक्य में मोहन कर्त्ता के स्थान पर आया है, घर कर्म के स्थान पर है, 'आना' का भूतकालिक रूप है। इस प्रकार शब्द थोड़े विकृत होकर वाक्य में प्रयुक्त हुए हैं। इन शब्दों को 'पद' के नाम से संबोधित किया जाता है। 'मोहन', 'मेरे', 'घर', 'आया' ये सभी शब्द 'पद' हुए।

प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरणकार पाणिनि ने संस्कृत में पद की परिभाषा इस प्रकार की है– 'सुप्तिङन्तं पदम्' अर्थात सुप् तथा तिङ् जिनके अंत में हों, उन्हें पद कहते हैं। प्रकृति (मूल रूप) तथा प्रत्यय (संबंध-तत्व) के मिलने से 'पद' या 'रूप' बनता है। पतंजलि के अनुसार, 'नापि केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवलः प्रत्ययः' अर्थात अकेले 'प्रकृति' या 'प्रत्यय' का प्रयोग नहीं किया जा सकता अर्थात इन दोनों के योग से बने पद' या 'रूप' का वाक्य में प्रयोग किया जाता है। 'रामः गच्छति' में 'राम' मूल रूप है, शब्द है, किंतु 'रामः' पद है।

संसार की कुछ भाषाओं में जैसे चीनी आदि में वाक्य के मूल रूप में कोई विकार नहीं होता है। अतः वहां 'शब्द' तथा 'पद' का अंतर ज्ञात करना कठिन होता है। शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर पद बन जाता है। आधुनिक भारोपीय भाषाओं में कुछ इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं। 'आम पेड़ से गिरता है', 'मैं आम खाता हूं', इन दो उदाहरणों

टिप्पणी

में 'आम' शब्द पद है। यह पहले वाक्य में कर्त्ता के स्थान पर प्रयोग किया गया है तथा द्वितीय वाक्य में कर्म के स्थान पर आया है। डॉ. बाबूराम सक्सेना ने सामान्य भाषा विज्ञान में पद की परिभाषा इस प्रकार की है– ''पद उस ध्वनिसमूह को कहते हैं, जिनका वाक्य में भाषा के अनुसार संबंध-तत्व, अर्थ-तत्व अथवा इन दोनों के अर्थ का बोध कराने के लिए प्रयोग होता है। यदि ध्वनि समूह है तो एकत्र और कभी-कभी अनेकत्र भी उसके अंशों की स्थिति है।''

'रूप' की परिभाषा करते हुए ऋषि गोपाल ने 'हिंदी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन' नामक पुस्तक में लिखा है– ''शब्दों के साथ जो प्रत्यय जुड़कर उन्हें वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बनाते हैं, उन्हीं को रूप कहा जाता है। इन्हीं रूपों के वैज्ञानिक विश्लेषण को रूप-विज्ञान (Morphology) कहा जाता है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द तथा पद की परिभाषा इस प्रकार है- शब्द- 'अर्थवान् ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं।' भारोपीय भाषाओं में शब्द रचना करते समय उपसर्ग तथा प्रत्यय लगाए जाते हैं। कुछ भाषाओं (प्रश्लिष्ट योगात्मक) में संपूर्ण वाक्य एक शब्द का आकार ग्रहण कर लेता है। एकाक्षर परिवार की भाषाओं में वाक्य बनाते समय शब्द में विकार नहीं आता। शब्द का रूप सदैव एक सा रहता है।

**पद** – शब्द का वाक्य में प्रयोग किया गया रूप पद कहलाता है। वाक्य में प्रयुक्त होने पर शब्द में कुछ परिवर्तन या विकार आ जाता है जिसे 'पद' कहते हैं। अयोगात्मक भाषाओं में वाक्य बनाने पर वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के रूप में कोई विकार (परिवर्तन) नहीं होता है। अत: वाक्य में प्रयुक्त शब्द 'पद' कहे जा सकते हैं अन्यथा पद और शब्द एक-सा ही रहता है। योगात्मक भाषाओं में शब्दों में संबंध-तत्व प्रत्यय जोड़ कर पद बनाए जाते हैं।

## संबंध-तत्व एवं उसके प्रकार

वाक्यों में प्रयुक्त पदों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वह भाग जिससे अर्थ का ज्ञान होता है जो मूलरूप में रहता है अर्थात मूल शब्द। द्वितीय वह भाग, जो मूल रूप से संयुक्त होकर अर्थ प्रकट करता है अर्थात मूल शब्द से जुड़ने वाले संबंध बोधक शब्द, विभक्ति तथा प्रत्यय आदि। इनमें प्रथम भाग 'अर्थ-तत्व' तथा दूसरा भाग 'संबंध-तत्व' कहलाता है। संबंध-तत्व अर्थ-तत्वों के पारस्परिक संबंध का द्योतक है। वाक्य के गठन के लिए संबंध-तत्व की आवश्यकता होती है। अर्थ-तत्वों के आपसी संबंध बताने वाले शब्दों (या रूपों) पर विवेचना करने के कारण इसे रूपविज्ञान (या पदविज्ञान, रूपविचार, पद-रचना आदि) कहा जाता है।

अनेक भाषाओं का अध्ययन करके संबंध-तत्व के कई भेद किए गए हैं जो इस प्रकार हैं–

1. **स्वतंत्र शब्द**– अनेक भाषाओं में संबंध-तत्व के प्रतीत शब्द अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं अर्थात संबंध-तत्व अर्थ-तत्व से संयोजित न होकर स्वतंत्र रहते हैं। अंग्रेजी में ऑन (on), इन (In), टू (To), टिल (Till) आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। कभी-कभी

टिप्पणी

संबंध-तत्व बताने के लिए दो स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे If (इफ)... Then (दैन), आइदर (Either) इसी प्रकार के शब्द हैं। संस्कृत में 'इति', अपि, एवं अथ, आदि, च आदि भी इसी तरह के शब्द हैं। हिंदी भाषा में पर, तक, को, का, में आदि स्वतंत्र शब्द हैं। चीनी भाषा में संबंध तत्व सूचक शब्दों को रिक्त कहते हैं, अन्य शब्द पूर्ण कहलाते हैं। प्रमुख रिक्त शब्द त्सुंग (से), लि (पर), यु (को) तथा त्सि (का) हैं। हिंदी में यदि तो, जैसे- वैसे, ज्यों-त्यों, आदि संबंध-तत्व सूचक दो-दो स्वतंत्र शब्द हैं।

2. **शब्द स्थान (पद क्रम)**– किन्हीं-किन्हीं भाषाओं में वाक्य में शब्द के स्थान से संबंध-तत्व का ज्ञान होता है। चीनी आदि भाषाओं में वाक्य के अंतर्गत शब्द स्थान का अत्यधिक महत्व है; जैसे–

   न्गो

   'ता नी - मैं तुझे मारता हूं।

   नी ता न्गो - तू मुझे मारता है।

   यहां पहले वाक्य में 'न्गो' कर्त्ता है तथा 'नी' कर्म है किंतु दूसरे वाक्य में शब्द का स्थान बदलने से 'नी' कर्त्ता तथा 'न्गो' कर्म हो जाता है। संस्कृत के समासों में शब्द स्थान का अत्यंत महत्व है; यथा–

   राजपुत्र - राजा का पुत्र (राजकुमार)

   पुत्रराज - पुत्रों का राजा (श्रेष्ठपुत्र)

   राजसदन - राजा का घर (राजमहल)

   सदनराज - घरों का राजा (श्रेष्ठ घर या अच्छा घर)

   अंग्रजी में भी शब्दों के स्थान का महत्व निम्न शब्दों में देखा जा सकता है – लाइट हाउस या पावर हाउस।

   यहां शब्द स्थान बदलने पर अर्थ में अंतर आ जाता है। इसी प्रकार Hari beats Ramesh को यदि इस तरह कहा जाए 'Ramesh beats Hari' तो अर्थ बदल जाएगा।

3. **प्रत्यय**– अर्थ तत्व के साथ संबंध-तत्व प्रारंभ, मध्य तथा अंत में आवश्यकतानुसार जोड़े जाते हैं। बांटू भाषा परिवार की भाषाओं (अफ्रीकी परिवार) में संबंध सूचक प्रत्यय अर्थ तत्व के प्रारंभ में जोड़े जाते हैं। इस प्रकार योजित प्रत्यय को पुरः प्रत्यय संयोग (आदिसर्ग, पूर्वसर्ग, पूर्वप्रत्यय, परसर्ग) कहते हैं। अर्थ तत्व के मध्य में जोड़े जाने वाले प्रत्यय को मध्य प्रत्यय संयोग कहते हैं। इस प्रकार के प्रत्यय मुंडा भाषाओं में प्रयोग किए जाते हैं। अर्थ तत्व के अंत में जोड़े जाने वाले परप्रत्यय संयोग (अंतसर्ग, प्रत्यय) कहलाते हैं। इस प्रकार के शब्द द्रविड़ भाषाओं तथा तुर्की भाषा में पाए जाते हैं। संस्कृत हिंदी तथा अंग्रेजी में भी पर प्रत्यय संयोगी शब्द बनाए जाते हैं।

टिप्पणी

(क) **पुरः प्रत्यय** (Perfix)– अर्थ तत्व (मूलशब्द या प्रकृति) के पूर्व कुछ जोड़ कर शब्द बनाए जाते हैं, जिन्हें 'पुरः प्रत्यय' संयोगी कहते हैं। संस्कृत के भूतकाल के रूप बनाते समय पुरः प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। 'पठ्' धातु का भूतकाल में एक रूप 'अपठत्' बनता है। इसमें 'अ' पुरः प्रत्यय के रूप में आया है। बांटू परिवार की काफिर भाषा में 'ति' (हम) होता है इसके आगे प्रत्यय जोड़ कर 'कुति' (हमको)बनाया जाता है। इसी प्रकार 'नी' (उन) से 'कुनि' (उनको) शब्द बना। अंग्रेजी भाषा में रि-सीव (Re-ceive), डि-सीव (De-ceive) रि-टर्न (Re-turn) रि-सर्च (Re-search) आदि पुरः प्रत्यय संयोगी शब्द हैं। पुरः प्रत्यय को पूर्व सर्ग, पूर्वप्रत्यय, परसर्ग या आदिसर्ग भी कहते हैं।

(ख) **मध्य प्रत्यय** (Infix)– अर्थ-तत्व या मूल शब्द में संबंध-तत्व के जुड़ने को 'मध्य प्रत्यय संयोग' कहते हैं। मुंडा भाषाओं में इस प्रकार के प्रयोग अधिक पाए जाते हैं; जैसे- मंझि (मुखिया) से बना मध्य प्रत्यय संयोगी शब्द मपंझि (मुखिया गण) है। यहां शब्द के मध्य में बहुवचन सूचक 'प' प्रत्यय आया है। इसी प्रकार दल (मारना) से बनता है दपल (परस्पर मारना) । हिंदी में 'करना' से 'करवाना', 'मारना' से 'मरवाना', 'देना' से 'दिलवाना', इसी भांति बने शब्द हैं। संस्कृत में करोति (करता है) से 'कारयति' (करवाता है), गम्यते, युध्यते, छिनद्भि जो क्रमशः गम्, युध्, छिद् धातुओं से बने हैं, इसी प्रकार के शब्द हैं।

(ग) **अन्त्य प्रत्यय** (Suffix)– अर्थ-तत्व (मूल शब्द) के अंत में जोड़े गए प्रत्यय को अंत प्रत्यय संयोग (अंतसर्ग, विभक्ति-प्रत्यय) कहते हैं। संस्कृत भाषा में अन्त्य प्रत्यय संयोगी शब्द अधिकता से पाए जाते हैं। संस्कृत शब्दों में लगने वाली विभक्तियां अन्त्य प्रत्यय ही हैं 'बालकस्य' (बालक का) में 'स्य' अन्त्य प्रत्यय है। अंग्रेजी में क्रिया शब्द के बाद ed एवं ing का प्रयोग अन्त्य प्रत्यय की तरह होता है Kill से Killed, Go से Going शब्द 'अंत्य-प्रत्यय संयोगी' शब्द हैं। हंगरी भाषा में जार (बंद करना), से जारत (बंद करवाता है) अंत प्रत्यय संयोगी शब्द हैं।

4. **ध्वनि गुण (मात्रा, सुर, बलाघात)**– ध्वनि गुण अर्थात मात्रा, सुर तथा बलाघात से संबंध-तत्व का बोध होता है। कुछ भाषाओं में इनका अधिक महत्व है।

मात्रा-मात्रा के प्रयोग से अर्थ में अंतर आ जाता है। हिंदी भाषा में ये उदाहरण दृष्टव्य हैं– रखना-रखाना, भरना-भराना, करना-कराना, चलना-चलाना इत्यादि।

**सुर**– कुछ भाषाओं में सुरभेद (उच्चारण में सुर की असमानता) के कारण अर्थ में अंतर आ जाता है। चीनी भाषा में सुर का विशेष महत्व है, जहां चार मुख्य सुर हैं। किसी बोली में छः से आठ सुर होते हैं। अफ्रीकी 'प्यूल' भाषा में 'मिवरत' एक सुर से कहने से अर्थ होता है 'मैं मार डालूंगा' किंतु यदि 'त' पर बल देकर कहें तो अर्थ होगा 'मैं नहीं मारूंगा'। वैदिक, संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं में सुर का विशेष महत्व था।

**बलाघात**– बलाघात एवं स्वराघात का संस्कृत, ग्रीक, स्लैवोनिक, लिथुआनियन आदि भाषाओं में अत्यंत महत्व है। अंग्रेजी का कन्डक्ट (Conduct) 'क' पर बल देकर बोलने से संज्ञा होता है तथा 'ड' पर बल देकर बोलने से क्रिया होता है।

टिप्पणी

5. **अपश्रुति (आंतरिक परिवर्तन)**– अंतर्मुखी विभक्ति-प्रधान भाषाओं में अर्थ तत्व (मूल शब्द) के बीच संबंध-तत्व मिल जाता है। सेमेटिक एवं हैमेटिक भाषाओं में इस प्रकार के शब्द पाए जाते हैं। अरबी भाषा में किताब (पुस्तक) से कुतुब (पुस्तकें) तथा हिमार (गधा) से हमीर (गधे) इस प्रकार के शब्द हैं। संस्कृत में दशरथ से दाशरथि, पुत्र से पौत्र, आदि अंग्रेजी में Foot से Feet, Tooth से Teeth, Sing से Sung इसी प्रकार बने शब्दों के उदाहरण हैं। अपश्रुति को ध्वनि-प्रतिष्ठापन भी कहते हैं।

6. **द्वित्व**– ध्वनियों या शब्दों की कई बार आवृत्ति से संबंध-तत्व का ज्ञान होता है। आवृत्ति अर्थ तत्व के प्रारंभ मध्य एवं अंत में हो सकती है। हिंदी में दिन-दिन (प्रतिदिन) में 'प्रति' के लिए आवृत्ति हुई है। एक अफ्रीकी भाषा में Irik इरिक = चलना से Irik-rik' इरिक-रिक' = वह चलता है होता है। इसी प्रकार श्रीलंका की एक बोली के शब्द Manao 'मानाओ' (चाहना से) 'मानाओ नाओ' Manao-nao (चाहते हैं) बनता है। इसी तरह के उदाहरण अन्य भाषाओं में भी देखे जा सकते हैं।

7. **ध्वनि विनियोजन**– अर्थ-तत्व की ध्वनियों को कम करके अथवा बढ़ा कर संबंध-तत्व बना लिया जाता है। 'फ्रेंच' भाषा में इसके कुछ उदाहरण पाए जाते हैं- स्त्रीलिंग में बोलने का रूप Sul (सुल) होता है तो लिखने का रूप Soule होता है पुंलिंग में बोलने का रूप 'Su' होता है तो लिखने का 'Soul' होता है। इसी प्रकार अन्य शब्द देखे जा सकते हैं।

8. **अभावात्मक (शून्य संबंध-तत्व)**– जब अर्थ-तत्व (मूल-शब्द) में कुछ जोड़ा नहीं जाता तथा शब्द से ही संबंध-तत्व का काम निकाल लिया जाता है, तो उसे अभावात्मक या शून्य संबंध-तत्व कहते हैं। संस्कृत में इस प्रकार के शब्द विद्युत्, मरुत्, सरित्, नदी, जलमुक्, स्त्री, वारि आदि हैं। इनका यही रूप (बिना विकार के) प्रथम एकवचन को प्रकट करता है, अतः इनमें शून्य संबंध-तत्व का बोध होता है। हिंदी में 'जा' (तुम जाओ), 'आ' (तुम आओ) 'खा' (तू खा) आदि इसी तरह के शब्द हैं। अंग्रेजी में 'शीप' (Sheep), 'फिश' (Fish) शब्द बिना परिवर्तन के एकवचन तथा द्विवचन को द्योतित कराते हैं। तमिल भाषा में भी इस प्रकार के शब्द पाए जाते हैं जो अपने मूल रूप के अतिरिक्त संबंध-तत्व को बताते हैं; जैसे- मनिदन के दो अर्थ हैं 'आदमी' तथा 'आदमी का'। इसी प्रकार 'अवन' के भी दो अर्थ होते हैं– वह तथा उसका। मूल शब्दों में किसी तरह का परिवर्तन न होने तथा उसी तरह प्रयोग करने से इनको अभावात्मक या शून्य संबंध-तत्व कहा गया है।

इन संबंध-तत्वों में भाषाएं किसी एक विशेष तत्व को ही प्रयोग में नहीं लाती अपितु कई संबंध-तत्वों का भाषाओं में प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

## संबंध-तत्व तथा अर्थ तत्व का संबंध

संबंध-तत्व तथा अर्थ तत्व में पारस्परिक संबंध सब भाषाओं में समान नहीं पाया जाता है। इन दोनों में संबंध इस प्रकार होते हैं–

1. **पूर्ण संयोग**– जब अर्थ तत्व तथा संबंध-तत्व परस्पर घनिष्ठ भाव से मिल जाते हैं, तो उसे 'पूर्ण संयोग' कहते हैं। एक ही शब्द द्वारा दोनों तत्वों का बोध होता है। सेमेटिक तथा भारोपीय भाषाएं इसी प्रकार की भाषाएं हैं। वस्तुतः शून्य संबंध तत्व के शब्द भी पूर्ण संयोग के अंतर्गत आते हैं। अरबी भाषा में क् त् ल' (मारना) से 'कतल' (उसने मारा), कातिल (मारने वाला), कित्ल (शत्रु), कितल (प्रहार), 'कु तिल' (वह मारा गया), यक्तुलु (वह मारता है), मक्तूल (जो मारा जाए), तक़ातुल (एक दूसरे को मारना), 'कुत्ताल' (कतल करने वाले), मुकातला (परस्पर लड़ना), मक़तल (कतल करने का स्थान) तथा तक्लील (अनेक हत्याएं करना) आदि रूप बनते हैं। इनमें अर्थ तत्व तथा संबंध-तत्व परस्पर घुल मिल गए हैं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा में विभिन्न शब्द रूपों में अर्थ तत्व संबंध-तत्व परस्पर घनिष्ठ भाव से मिल जाते हैं; जैसे रामः (राम ने), रामम् (राम को), रामाय (राम के लिए) आदि रूप हैं। अंग्रेजी में भी इस प्रकार के शब्द पाए जाते हैं; जैसे ब्रिंग (Bring) से ब्राट (Brought)।

2. **अपूर्ण संयोग**– इस प्रकार के संयोग में किसी शब्द में मिलने वाले अर्थ तत्व तथा संबंध-तत्व पूरी तरह से घुलते-मिलते नहीं अपितु दोनों की सत्ता बनी रहती है और उन्हें शब्द में स्पष्टतः पहचाना जा सकता है। इनका संयोग तिलतंडुलवत् होता है, नीरक्षीरवत् नहीं। तुर्की तथा द्रविड़ भाषाओं में इसी प्रकार के शब्द पाए जाते हैं। अंग्रेजी में भूतकालिक किया रूप जिनमें 'ed' लगाया जाता है, इस प्रकार के शब्द हैं, जैसे-Talk से Talked, Ask से Asked, आदि। तमिल में पुत्तहम् (= पुस्तक) से पुत्तहङ्गड् 'पुस्तकें' एवं कन्नड़ भाषा में सेवक से 'सेवक-रु' तथा 'सेवक-रन्नू' तथा तुर्की भाषा में एवं (घर) से एवलेर (= कई घर) तथा एवलेरइम (= मेरे घर) इसी प्रकार के अपूर्ण संयोग वाले शब्द हैं।

3. **दोनों स्वतंत्र**– कुछ भाषाओं में अर्थ तत्व तथा संबंध-तत्व दोनों की सत्ता पूरी तरह से स्वतंत्र होती है इसके दो प्रकार होते हैं–

   (क) चीनी भाषाओं में मिलने वाला रूप-चीनी आदि भाषाओं में दो प्रकार के शब्द पूर्ण शब्द तथा रिक्त शब्द होते हैं। पूर्ण शब्द से अर्थ तत्व जाना जाता है। तथा रिक्त शब्दों का प्रयोग संबंध-तत्व प्रकट करने के लिए किया जाता है। चीनी भाषा स्थान प्रधान भाषा है, अतः शब्दों के स्थान से संबंध-तत्व का ज्ञान कर लिया जाता है परंतु कभी-कभी रिक्त शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है–

   चीनी भाषा में पूर्ण शब्द - वो = मैं, उलत्सु = लड़का, रिक्त शब्द ती = का रिक्त शब्द का प्रयोग करके वाक्य बनेगा-'वो ती उलत्सु' जिसका अर्थ हुआ मेरा लड़का'।

भारोपीय परिवार की भाषाओं में a, au, de, du, फ्रेंच के; to, from अंग्रेजी के; ने, को, से 'हिंदी के' तथा 'इति' संस्कृतभाषा के इसी प्रकार के शब्द हैं। ये शब्द अर्थ तत्व से मिलते नहीं तथा अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखते हैं।

टिप्पणी

(ख) इस प्रकार का रूप अमरीका की चिनूक (Chinook) आदि भाषाओं में पाया जाता है जहां पहले सभी संबंध-तत्व का प्रयोग किया जाता है उसके बाद सभी अर्थ तत्व का प्रयोग होता है। 'चिनूक' भाषा के वाक्य का हिंदी अनुवाद इस प्रकार है– वह-उसने-वह-से। मारना-आदमी-औरत-लाठी = उस आदमी ने औरत को लाठी से मारा।

4. **अर्थ तत्व तथा संबंध-तत्व की समानता**– कुछ भाषाओं में प्रत्येक अर्थ तत्व के साथ एक संबंध-तत्व जोड़ा जाता है। अत: दोनों की संख्या समान होती है। वाक्य में एक संबंध तत्व के स्थान पर कई संबंध-तत्व हो जाते हैं। अत: संबंध-तत्व का आधिक्य हो जाता है। अफ्रीका की 'बांटू परिवार' की भाषा 'सोविया' का निम्नलिखित उदाहरण देखा जा सकता है–

मु = एकवचन सूचक प्रत्यय

न्तु = व्यक्ति

लोटु = सुंदर

इन शब्दों को मिलाकर इस प्रकार वाक्य बनता है–

मुन्तु मु-लोटु = (एक) सुंदर आदमी।

इन भाषाओं में संज्ञा के हर विशेषण में विभक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है। संस्कृत आदि भाषाओं में यही स्थिति थी। किंतु हिंदी आदि भाषाओं में संज्ञा के साथ बहुवचन सूचक चिह्न लगा दिया जाता है। संसार की विभिन्न भाषाओं में अनेक प्रकार के संबंध-तत्व मिलते हैं।

## हिंदी में संबंध-तत्व का प्रयोग

हिंदी भाषा में कई तरह के संबंध-तत्वों का प्रयोग किया जाता है। प्राय: हर भाषा में कई संबंध-तत्व पाए जाते हैं किंतु प्रधानता किसी एक या दो की ही होती है। हिंदी में भी स्थानप्रधान (अर्थात वाक्य में जिनका स्थान नियत रहता है) संबंध-तत्व तथा स्वतंत्र शब्द वाले संबंध-तत्व अधिक प्रयोग में लाए जाते हैं। चीनी भाषा के रिक्त शब्दों की भांति ने, का, से, का, में, पर आदि संबंध सूचक शब्द पाए जाते हैं। अपश्रुति संबंध-तत्व जैसे पुत्र से पौत्र, दशरथ से दाशरथि करता से करती आदि। अपूर्ण संयोग वाले संबंध-तत्व, स्वराघात एवं बलाघात के उदाहरण भी पाए जाते हैं। पूर्ण संयोग वाले शब्द जैसे पढ़ना से पढ़ा, जीना से जिया, करना से किया, जैसे शब्द भी पाए जाते हैं।

संबंध-तत्व से मुख्य रूप से लिंग, पुरुष, वचन, कारक एवं काल आदि की पहचान होती है। यही संबंध-तत्व के प्रमुख कार्य भी कहे जा सकते हैं।

**लिंग**- लिंग दो प्रकार के होते हैं- स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग, परंतु निर्जीव पदार्थों को नपुंसकलिंग में भी रखते हैं। संसार की विभिन्न भाषा साहित्यों में लिंग विभाजन प्रकृत्या

टिप्पणी

नहीं है। संस्कृत में एक ही शब्द या उसके समानार्थी स्त्रीलिंग, पुल्लिग तथा नपुंसक लिंग तीनों में पाए जाते हैं; जैसे स्त्री का बोधक 'दारा' शब्द पुल्लिग है तथा 'कलत्रम्' नपुंसक लिंग है। 'पुस्तकम्' नपुंसक लिंग है लेकिन 'ग्रंथ' पुल्लिग है। कुछ शब्द सदैव पुल्लिग में प्रयोग किए जाते हैं यद्यपि उनमें स्त्रीलिंग जाति (मादा) भी पायी जाई है। इसी प्रकार कुछ जीवों के सूचक शब्द स्त्रीलिंग में होते हैं, यद्यपि उनमें पुरुष (नर) जाति भी पाई जाती है। लिंग दो प्रकार से व्यक्त किए जाते हैं–

1. **प्रत्यय संयुक्त करके**– हाथी से हथिनी, शेर से शेरनी, अंग्रेजी में लायन (शेर) से लायनेस (शेरनी), एक्टर (अभिनेता) से एक्ट्रेस (अभिनेत्री) आदि।
2. **स्वतंत्र शब्द जोड़कर**– अंग्रेजी भाषा में नर के साथ He (ही) तथा मादा के साथ She (शी) का प्रयोग करते हैं; जैसे – ही–गोट (बकरा) तथा शी–गोट (बकरी)। मुंडा भाषा में कूल का अर्थ बाघ है अतः नर बाघ के लिए 'अडिया–कूल' तथा मादा बाघ के लिए 'एंगा–कूल' का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार स्त्री तथा पुरुष सूचक शब्दों का प्रयोग करके लिंग भेद किया जाता है।
3. **विपरीत शब्द प्रयोग करके**– हिंदी तथा अन्य भाषाओं में स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग शब्दों के सूचक विपरीत शब्दों का प्रयोग करके लिंग व्यक्त किए जाते हैं; जैसे – भाई (पुल्लिग) - बहन (स्त्रीलिंग), राजा–रानी, माता–पिता, वर–वधू, बुआ–फूफा। ब्वॉय–गर्ल, फादर–मदर, काऊ–ऑक्स, डॉग–बिच आदि हिंदी तथा अंग्रेजी भाषाओं के इसी तरह के उदाहरण हैं।

कुछ भाषाओं में लिंग के अनुसार संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि रूप बदलते रहते हैं और कुछ भाषाओं में नहीं भी बदलते हैं। कुछ बोलियों में छः लिंग तक पाए जाते हैं (जैसे–'चेचेन' काकेशस परिवार की बोली में)।

**पुरुष**– पुरुष तीन प्रकार के होते हैं- प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष। इनके प्रयोग के आधार पर कुछ भाषाओं में क्रिया रूपों में अंतर हो जाता है किंतु कुछ भाषाओं में नहीं। 'वह जाता है', 'तुम जाते हो,' मैं जाता हूं' इन वाक्यों में 'वह' प्रथम पुरुष के साथ 'जाता है', क्रिया, 'तुम' मध्यम पुरुष के साथ 'जाते हो'। 'जाता' और 'जाते' क्रिया का मूल 'जाना' है जो पुरुषों के अनुरूप परिवर्तित हुआ है। इसी प्रकार संस्कृत में सः गच्छति, त्वं गच्छसि, तथा अहं गच्छामि में क्रिया रूप पुरुष रूपों के अनुसार बदल गए हैं। अंग्रेजी में भी यह परिवर्तन पाया जाता है जैसे- He goes 'ही गोज' तथा 'यू' गो' You go आदि। कभी–कभी 'इज गोइंग', 'आर गोइंग', 'शैल गो', 'विल गो' जैसे क्रिया रूप भी बनते हैं। अरबी, फारसी भाषाओं में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है किंतु चीनी भाषा में पुरुषों के प्रयोग से क्रिया रूपों में अंतर नहीं आता है।

**वचन**– वचन प्रमुख रूप से दो होते हैं – एकवचन तथा बहुवचन। परंतु संस्कृत में द्विवचन तथा अफ्रीकी भाषाओं में त्रिवचन भी पाए जाते हैं। वचन प्रयोग से संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया एवं विशेषण रूपों में अंतर आ जाता है। 'बालक पुस्तक पढ़ता है' में बालक एकवचन है किंतु बहुवचन में प्रयोग करेंगे तो 'बालक (बहुत से) पुस्तकें पढ़ते हैं' वाक्य में संज्ञा तथा क्रिया रूपों में परिवर्तन हो गया है। एकवचन से बहुवचन बनाने

के लिए हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि में प्रत्यय जोड़े जाते हैं। हिंदी में यों, ओं, एं आदि और अंग्रेजी में एस (s) तथा ई-एस (es) आदि का प्रयोग किया जाता है। कुछ भाषाओं में बहुवचन बनाने के लिए स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

**कारक**– कारकों (कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण तथा संबोधन) के प्रयोग द्वारा संबंध-तत्व का ज्ञान होता है। संज्ञा तथा सर्वनाम के साथ कारक रूपों का प्रयोग किया जाता है। संज्ञा शब्दों से क्रियारूप बनाने अथवा क्रिया से संज्ञा रूप बनाने, विशेषण से संज्ञा, संज्ञा से विशेषण, क्रिया विशेषण बनाने अथवा प्रेरणार्थक या नकारात्मक वाक्य बनाने में संबंध-तत्वों की सहायता ली जाती है।

**काल**– काल (समय) को तीन भागों में बांटा जाता है– वर्तमान काल, भूतकाल, भविष्य काल। पुनः इनके उपभेद किए जाते हैं। भिन्न-भिन्न कालों को प्रकट करने के लिए संबंध-तत्वों की सहायता ली जाती है। अंग्रेजी में Shall, Will जैसे स्वतंत्र शब्द भी जोड़े जाते हैं अथवा भूतकाल में ed जोड़कर रूप बनाए जाते हैं। कभी रूप इतना बदल जाता है कि संबंध-तत्व तथा अर्थ तत्व का ज्ञान नहीं होता है; जैसे 'जाना' से भूतकाल में 'गया' और अंग्रेजी में Go से Went रूप बनते हैं। संसार की विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से काल (Tense) के विभाजन किए गए हैं। संस्कृत में अकेले भूतकाल के ही 3 भेद हैं– अनद्यतन, परोक्ष तथा सामान्य।

**वाच्य**– संस्कृत भाषा में तीन वाच्य पाए जाते हैं– (1) कर्तृवाच्य, (2) कर्मवाच्य, (3) भाववाच्य। जब किसी वाक्य में कर्त्ता पर अधिक बल दिया जाता है, तो उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। जब वाक्य में कर्म पर अधिक बल दिया जाता है, तो कर्मवाच्य होता है। जब क्रिया पर अधिक बल दिया जाता है, तो उसे भाववाच्य नाम दिया जाता है। इन तीनों रूपों में कर्तृवाच्य में सकर्मक तथा अकर्मक धातु रूपों का प्रयोग हो सकता है। कर्मवाच्य में सकर्मक का तथा भाववाच्य में अकर्मक धातुओं का प्रयोग किया जाता है। वाच्य के निर्माण में संबंध-तत्व की अपेक्षा होती है।

**पद**- संस्कृत में दो प्रकार की धातुएं पाई जाती हैं– (1) आत्मनेपदी तथा (2) परस्मैपदी। जब क्रिया का फल कर्त्ता के लिए होता है तो उसे 'आत्मनेपद' कहते हैं परंतु जब क्रिया का फल दूसरे को प्राप्त होता है तो उसे 'परस्मैपद' कहते हैं। 'पुस्तकं लभते' यहां लभते रूप आत्मनेपदीय है किंतु 'पुस्तकं पठति' में 'पठति' रूप परस्मैपदीय है। प्रेरणार्थक, इच्छार्थक आदि क्रिया के भेद हैं। अन्य भारतीय भाषाओं में आत्मनेपद, परस्मैपद जैसा विभाजन अब नहीं मिलता है।

## रूप परिवर्तन की दिशाएं

प्रायः शब्दों के विषय में देखा जाता है कि उनके रूप सदा एक प्रकार के नहीं रहते हैं। उनमें विकार या परिवर्तन होते रहते हैं। इसी को पदों या शब्दों का रूप परिवर्तन (रूप विकार) कहते हैं।

ध्वनि परिवर्तन तथा रूप परिवर्तन में अंतर है। ध्वनि का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है जबकि रूप परिवर्तन का क्षेत्र उसकी अपेक्षा कम व्यापक (अर्थात संकुचित) होता है। शब्द के रूप विकार से कुछ शब्द ही प्रभावित होते हैं एवं उनका रूप परिवर्तित हो जाता

टिप्पणी

है, किंतु शब्द के नवीन रूप के साथ प्राचीन रूप का भी प्रचलन बना रहता है। यथा संस्कृत में 'गो' शब्द के रूप परिवर्तित होकर कई शब्द गावो, गोणी, गोता, गोपोतालिका आदि बन गए थे, परंतु दोनों ही प्रकार के शब्द प्रचलित थे। पतञ्जलि के अनुसार, पद या शब्द की किसी ध्वनि में विकार उत्पन्न हो जाने को ध्वनि परिवर्तन कहते हैं। ध्वनि परिवर्तन में पूर्ववर्ती ध्वनि का स्थान अन्य ध्वनि ले लेती है तथा उस प्रकार के सभी शब्दों को प्रभावित कर देती है जिसकी ध्वनि में परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन का क्षेत्र विशाल या व्यापक होता है। ध्वनि विकार होने पर पूर्ववर्ती ध्वनि वाले शब्दों का प्रचलन बंद हो जाता है परंतु रूप परिवर्तन में शब्दों के पूर्ववर्ती तथा नवीन दोनों रूप पाए जाते हैं।

रूप परिवर्तन के अंतर्गत शब्दों के प्राचीन रूपों के विनाश तथा परिवर्तित होकर नये रूप बनने पर विचार किया जाता है। इस प्रकार रूप परिवर्तन की दिशाएं दो हैं–

(क) शब्दों के पुराने रूपों का विनाश तथा

(ख) नये रूपों का विकास या उत्पत्ति।

भाषा के हर व्याकरण के अंगों में प्राचीन काल से वर्तमान समय तक अनेक परिवर्तन हुए हैं। जो शब्द रूप हमारे मस्तिष्क के लिए भार होते हैं एवं अनेक होते हैं, उनके स्थान पर समान नियम वाले समान रूप वाले शब्दों का प्रचलन हो जाता है। अंग्रेजी में दो प्रकार के क्रिया रूप पाए जाते थे– बली क्रियाएं तथा निर्बल क्रियाएं। बली क्रियाओं के अनेक रूपों को याद रखना कठिन था तथा निर्बल क्रिया रूप बनाने में सुगमता थी। अत: बली क्रिया रूप अधिक मात्रा में लुप्त हो गए हैं। यही स्थिति लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत में देखी जाती है। अनेक वैदिक संस्कृत अपवाद लौकिक संस्कृत में नहीं पाए जाते हैं। यही प्रवृत्ति प्राकृत, पालि आदि में थी।

अर्थ स्पष्ट करने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग प्रारंभ हो जाता है। नवीनता के प्रति मानव का झुकाव होता है। अत: नये शब्दों का प्रचलन बढ़ने लगता है। हिंदी भाषा में परसर्गों का प्रयोग इन्हीं कारणों से अधिक हुआ है।

रूप विकार की दोनों दिशाओं को भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के अध्ययन द्वारा बड़ी सुगमता से जाना जा सकता है। संस्कृत व्याकरण में शब्दों को चार भागों में बांटा गया है– नाम (सुबन्त), आख्यात (तिङन्त), उपसर्ग तथा निपात (अथवा अव्यय)। सुबन्त से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण का, तिङ्न्त से क्रिया, उपसर्ग से शब्द के प्रारंभ में जुड़ने वाले प्रत्ययों का एवं निपात से अव्यय का बोध होता है।

**नाम**– संस्कृत व्याकरणकारों ने नाम-शब्दों को दो भागों में बांटा है– अजंत (स्वरांत) तथा हलंत (व्यंजनांत)। इन दोनों प्रकार के शब्दों के रूप तीन वचनों तथा कारकों में चलते हैं। संस्कृत के रूप कुछ विभक्तियों तथा कुछ वचनों में समान चलते हैं; अत: यह अपनी पूर्ववर्ती मूल भारोपीय भाषा की अपेक्षा कुछ सरल हो गई थीं। संस्कृत में लिंगों में कुछ रूप पंचमी तथा षष्ठी के एकवचन तथा तृतीया, चतुर्थी, पंचमी के द्विवचन, और चतुर्थी, पंचमी के बहुवचन में प्राय: समान रूप में पाए जाते हैं। इसी प्रकार नपुंसक लिंग की प्रथमा तथा द्वितीया में तीनों वचनों में लगभग समान रूप पाए जाते हैं।

टिप्पणी

वास्तव में इस प्रकार रूपों की विविधता में कुछ कमी आई थी। यही प्रवृत्ति आगे भाषा विकास के साथ बढ़ती रही तथा पालि में एकवचन तथा बहुवचन इन दो रूपों में शेष रह गए रूपों में एकरूपता अधिक हो गई।

पालि एवं प्राकृतों की सरलता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति अपभ्रंश काल में और अधिक तीव्र हो गई। शब्द रूपों की समानता अधिक हो गई। अनेकता बहुत कम हो गई। पालि तथा प्राकृतों में प्रतिपादिक स्वरांत बन गए थे परंतु अपभ्रंश काल में इनमें भी विविधता कम हो गई। अपभ्रंश के अंतिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाने की प्रवृत्ति बहुत अधिक हो गई। कथा > कहि, निशा > निशि, पूजा > पुज्ज, मालती > मालइ आदि ह्रस्व प्रवृत्ति को बताते हैं। अकारांत, इकारांत, उकारांत प्रतिपादिकों की अधिकता हो गई। सबसे अधिक अकारांत प्रतिपादिकों का प्रयोग होने लगा। संस्कृत के आठ कारक रूपों में से अपभ्रंश काल तक तीन कारक रूप शेष रह गए। इनमें प्रथमा, द्वितीया तथा संबोधन में समान रूप पाए जाते हैं। इसी प्रकार तृतीया तथा सप्तमी और चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी विभक्तियों के रूप समान पाए जाते हैं। 'दो' संख्या को बताने के लिए 'दुई' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा तथा सहुं (करण कारक के लिए), केहिं (संप्रदान) जैसे परसर्गों का प्रयोग किया जाने लगा।

अपभ्रंश के पश्चात वर्तमान हिंदी भाषा में रूपों की अनेकता में बहुत कमी हो गई। स्वरांत प्रतिपदिकों का पुनः व्यंजनांत उच्चारण होने लगा है। हिंदी में अन्त्य स्वर 'अ' का उच्चारण अब सुनाई नहीं देता है। आसमान, रमेश, सांप जैसे शब्द अब आसमान्, रमेश्, सांप के रूप में उच्चरित होते हैं। इसके अतिरिक्त स्वरांत शब्द भी पाए जाते हैं। हिंदी में एकवचन तथा बहुवचन शब्द पाए जाते हैं। अब हिंदी में विकारी तथा अविकारी शब्द रूप मिलते हैं। वाक्य में प्रयोग करते समय कारकों के प्रयोग से जिन शब्दों में कुछ न कुछ विकार आ जाते हैं, उन्हें विकारी शब्द कहते हैं। जिनमें कोई विकार नहीं होता वे अविकारी शब्द हैं। हिंदी में विभक्तियों का अर्थ शब्द के बाद जुड़ने वाले प्रत्ययों (पर-प्रत्ययों) द्वारा जाना जाता है। इनके प्रयोग में भी समानता अधिक पाई जाती है जैसे करण तथा अपादान एवं संप्रदान तथा संबंध में कम भेद दिखाई पड़ता है।

**सर्वनाम**– सर्वनाम शब्दों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के स्थान पर किया जाता है। पुरुषवाचक सर्वनाम (प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष) का प्रयोग संस्कृत काल से ही होता रहा है। पुरुषवाचक सर्वनाम के तीनों पुरुषों (तत्), मध्यम पुरुष (युष्मद्), तथा उत्तम पुरुष (अस्मद्) में चलते हैं। इनके संबोधन रूप नहीं चलते हैं। हिंदी भाषा में सर्वनामों के लिंग में परिवर्तन नहीं होता है। 'वह खाता है।' 'वह खाती है।' वाक्यों में 'वह' सर्वनाम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

**विशेषण**– संस्कृत में विशेष्य के अनुरूप विशेषण भी बदल जाता है। हिंदी भाषा में विशेषणों में लिंग के अनुसार परिवर्तन होता जाता है। परंतु स्त्रीलिंग के विशेषणों में एकवचन ही रहता है, बहुवचन का प्रयोग नहीं होता है; 'लाल घोड़ी' तथा 'लाल घोड़ियां। पुल्लिग शब्दों के विशेषणों में एकवचन तथा बहुवचन के प्रयोगों में अंतर पाया जाता है; जैसे अच्छा लड़का, अच्छे लड़के हिंदी विशेषण का परिवर्तन विशेष्य के अनुसार नहीं होता है।

टिप्पणी

हिंदी में तुलना करने के लिए 'से' या 'से अधिक' का प्रयोग किया जाता है। 'रमा मोहन से बड़ी है' अथवा 'श्यामा राधा से अधिक चतुर है' इन वाक्यों में विशेषणों के किसी रूप का प्रयोग नहीं किया गया है। संस्कृत में तुलना करने के लिए 'तरप्' तथा 'तमप्' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, परंतु आधुनिक आर्य भाषाओं में इन प्रत्ययों का प्रयोग नहीं देखा जाता है। हिंदी में अधिकता के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे- 'सबसे', 'सबमें', 'सबसे अधिक' आदि। 'रमेश सबसे लंबा व्यक्ति है', 'श्याम सबसे अधिक पढ़ता है' आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं।

**लिंग**– संसार की विभिन्न भाषाओं में लिंग विभाजन समान रूप से नहीं पाया जाता है। लिंगों की संख्या में भी अंतर पाया जाता है। संस्कृत में तीन लिंग– पुंल्लिग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसकलिंग पाए जाते हैं। इनका विभाजन भी किसी विशेष नियम से नहीं होता है। संस्कृत में एक ही अर्थ वाले शब्द भिन्न-भिन्न लिंगों में पाए जाते हैं। अपभ्रंश में केवल दो ही लिंग भेद- पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग पाए जाते हैं। कुछ संस्कृत शब्द जैसे आत्मा, अग्नि, वायु, पवन आदि पुंल्लिग हैं किंतु हिंदी में इनका प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है। यही दशा 'देवता' शब्द की है जो संस्कृत में स्त्रीलिंग माना जाता है परंतु हिंदी में इसका प्रयोग पुंल्लिग में किया जाता है।

वर्तमान भारतीय भाषाओं में से हिंदी, राजस्थानी, सिंधी, पंजाबी में दो लिंग पाए जाते हैं जबकि मराठी, गुजराती, सिंहली भाषाओं में तीनों लिंग पाए जाते हैं, परंतु बंगाली, असमिया तथा उड़िया भाषा में तिब्बती-बर्मी भाषाओं के प्रभाव के कारण लिंग भेंद नहीं पाया जाता है। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त संसार की अन्य भाषाओं में लिंग विभाजन में अंतर पाया जाता है। इटैलियन, स्पेनिश एवं फ्रेंच भाषाओं में दो लिंग- स्त्रीलिंग एवं पुल्लिग पाए जाते हैं जबकि ग्रीक, लैटिन, जर्मन, रूसी तथा अंग्रेजी में तीन प्रकार के लिंग पाए जाते हैं। कुछ भाषाओं में, जैसे चीनी तथा जापानी भाषाओं में, लिंग भेद नहीं पाया जाता है। संसार की कुछ बोलियां इस प्रकार की भी हैं, जिनमें छह से बीस प्रकार के लिंग भेद पाए जाते हैं।

**वचन**– वचन के विषय में भिन्न-भिन्न भाषाओं में अंतर पाया जाता है। कहीं तीन वचन हैं तो कहीं दो। आधुनिक आर्य भाषाओं में अधिकांशतः एकवचन और बहुवचन इन दो रूपों का प्रयोग किया जाता है, किंतु मराठी जैसी भाषाओं में तीन वचन पाए जाते हैं। ग्रीक, अरबी, संस्कृत भाषाओं में द्विवचन भी मिलता है। द्विवचन का प्रयोग संभवतः युग्मक (जोड़ों) को बताने में अवश्य होता रहा होगा। इस प्रकार के उदाहरण वैदिक संस्कृत में पाए जाते हैं– इंद्राग्नि (इंद्र तथा अग्नि), द्यावापृथिवी (आकाश एवं पृथ्वी), मित्रावरुणौ (मित्र तथा वरुण) आदि। इसी प्रकार पितरौ 'माता-पिता' कर्णौ (दोनों कान), अक्षिणी (दोनों आंखें), लाभालाभौ, जयाजयौ (जय-पराजय) आदि दो चीजों को बताने में द्विवचन का प्रयोग किया जाता था। द्वंद्व समान के रूप में द्विवचन का प्रयोग होता था। पालि में द्विवचन का अभाव पाया जाता है। यही दशा प्राकृत अपभ्रंश तथा हिंदी आदि भाषाओं में है। इनमें द्विवचन सूचक शब्द 'दुई' या दो का प्रयोग किया जाने लगा है। यूरोपीय भाषाओं में भी दो वचन (एकवचन तथा बहुवचन) का प्रयोग होता है। कुछ

अफ्रीकी भाषाओं में त्रिवचन तथा कुछ मलेनेशियन भाषाओं में त्रिवचन के अतिरिक्त चतुर्वचन भी पाए जाते हैं।

टिप्पणी

हिंदी में बहुवचन के लिए प्रत्ययों (यां, ओं, ए, ऑ आदि) एवं समूहवाचक शब्दों (जैसे लोग, समूह, गण वृंद) का प्रयोग करते हैं, जैसे लतासमूह, मनुष्यगण, बदमाश लोग, छात्र वृंद आदि। कभी-कभी बहुवचन बोधक प्रत्यय न जोड़कर संख्यावाची शब्द का प्रयोग करके बहुवचन बना लेते हैं; जैसे – सौ मनुष्य तथा पांच अमरूद में मनुष्य तथा अमरूद शब्द बहुवचन हैं।

**कारक**– संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में समान रूप से कारक नहीं पाए जाते हैं। प्राचीन भाषाओं में विभक्तियां अधिक थीं। बाद में इनकी संख्या कम होती गई है। मूल भाारोपीय भाषा में आठ विभक्तियां मानी गई हैं। इस प्रकार संस्कृत भाषा में आठ विभक्तियां हैं, जिनके एक वचन, द्विवचन एवं बहुवचन में रूप चलते हैं। बाद की भारतीय भाषाओं में इनकी संख्या क्रमशः कम होती गई। पालि, प्राकृत में एक विभक्ति से एक से अधिक कारकों का प्रयोग किया जाने लगा तथा कुछ पांच-छह रूप शेष बचे थे। अपभ्रंश में कारकों के मात्र तीन वर्ग रह गए तथा एक विभक्ति से कई कारकों का काम लिया जाने लगा। वर्तमान हिंदी में अपभ्रंश के अवशेष कारक चिह्न रह गए हैं।

संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में विभक्तियों की संख्या कम पाई जाती है। ग्रीक, लिथुआनी तथा रूसी भाषाओं में सात विभक्तियां, पुरानी चर्च स्लाव भाषा में छह विभक्तियां, लैटिन तथा ट्यटानी में पांच, अल्बानी में चार, आर्मीनी तथा पुरानी अंग्रेजी में तीन विभक्ति रूपों के अवशेष दो प्रकार के पाए जाते हैं, जिन्हें विकारी तथा अविकारी कहते हैं। इन भाषाओं की तुलना में 'जार्जियन' भाषा में विभक्ति रूपों की अधिकता है जिसमें कुल तेइस विभक्ति रूप मिलते हैं।

**आख्यात–** आख्यात (क्रियाओं) के अंतर्गत काल (Tense), गण, वाच्य, पुरुष वचन एवं वृत्ति (Mood) आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। क्रियाओं से काम का होना, न होना ही ज्ञात नहीं होता अपितु उनके द्वारा आज्ञा, इच्छा संभावना, संदेह, निश्चय आदि वृत्तियों (Moods) का भी ज्ञान होता है। इसी दृष्टि से संस्कृत भाषा में लकारों का प्रयोग मिलता है। कुल लकार इस प्रकार हैं– लट् लकार (वर्तमान काल), लिट् लकार (परोक्ष भूत), लङ् (सामान्य भूत), लुट् (अनद्यतन भविष्यत्), लृट् (सामान्य भविष्यत्), लुङ्, (सामान्य भूत), लोट् (आज्ञा), आशीर्लिङ् (आशी), विधिलिङ् (विधि) लृङ् (क्रियातिपत्ति)। इन धातुओं का विभाजन दस गणों में किया गया है। ये गण हैं– भ्वादि, अदादि जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्रयादि, चुरादि। इन गणों की धातुओं को तीन पदों में बांटा गया है– आत्मनेपद, परस्मैपद एवं उभयपद। वाच्य तीन होते हैं– कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य। हर धातु के रूप तीन पुरुषों– उत्तम, मध्यम तथा अन्य में एवं तीन वचनों (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) में पाए जाते हैं। इस प्रकार इन धातु रूपों के अतिरिक्त कृदंतीय रूपों का भी प्रयोग होता था।

पहले संस्कृत भाषा के रूपों की अधिकता थी, जो बाद में विकसित होने वाली भाषाओं में क्रमशः कम होती गई। पालि में भ्वादि, दिवादि, स्वादि, रुधादि, तनादि, क्रयादि

टिप्पणी

एवं चुरादि से सात गण शेष रह गए। कुछ लकार रूपों का भी प्रचलन समाप्त हो गया। आशीर्लिङ् लुट् लकार लुप्त हो गए। लुङ् लकार (सामान्य भूत) का प्रयोग भूतकाल के लिए होने लगा। आत्मनेपद तथा द्विवचन का भी प्रयोग समाप्त हो गया। इस प्रकार संस्कृत के कई रूप पालि में आकर समाप्त हो गए तथा रूपों की संख्या में कमी हो गई।

'प्राकृत' काल में रूपों की संख्या और कम हो गई। वाच्य कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य ही रह गए। एकवचन तथा बहुवचन शेष रहे और द्विवचन का लोप हो गया। काल (Tense) में वर्तमान, भविष्य, आज्ञा तथा विधि ही शेष रह गए। भ्वादि गण के आधार पर रूप बनने लगे, अन्य गणों का अभाव हो गया। अपभ्रंश काल में धातु रूप बहुत कम हो गए। रूपों में वर्तमान एवं भविष्य काल के रूपों का ही प्रयोग शेष रह गया। संस्कृत की व्यंजनांत धातुएं स्वरांत हो गईं। धातु रूप भ्वादि गण की भांति चलने लगे तथा परस्मैपद शेष रहा। दोनों पदों का भेद भी समाप्त हो गया। तिङन्त रूपों के प्रयोग में कमी आ गई तथा कृदंत रूपों का प्रचलन अधिक हो गया। कृदंत रूपों के साथ वर्तमान तथा भविष्यत् काल के विभिन्न भागों को बताने के लिए सहायक क्रियाओं का प्रयोग किया जाने लगा। इसी समय धातुओं के रूप संश्लिष्ट रूपों से वियोगात्मक होने लगे। क्रिया रूप को स्पष्ट करने के लिए संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अधिक होने लगा, जैसे– 'मैं देखता हूं', 'तू देखता है', एवं 'वह देखता है' इन वाक्यों में 'देखता' कृदंतीय रूप है जो तीनों पुरुषों में समान रूप से प्रयुक्त हुआ है। पुरुषों की पहचान 'हूं' 'है' के प्रयोग से सहजता से हो जाती है। हिंदी में विधि, आशी: तथा आज्ञा क्रियातिपत्ति भावों को एक समान क्रिया रूपों द्वारा प्रकट किया जाने लगा। हिंदी में क्रिया में कृदंतीय रूपों की अधिकता के कारण क्रिया पुल्लिग या स्त्रीलिंग के अनुरूप परिवर्तित हो जाती है जबकि बंगाली भाषा में तिङन्त रूप की अधिकता के कारण क्रिया लिंग के अनुसार नहीं बदलती है। पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग में क्रिया समान रूप से प्रयुक्त की जाती है; जैसे– मोहन जाच्चे (मोहन जाता है) तथा राधा जाच्चे (राधा जाती है)। इसी प्रकार संस्कृत में 'मोहन: गच्छति' एवं 'राधा गच्छति' वाक्यों में क्रिया में लिंग भेद के कारण परिवर्तन नहीं हुआ है। हिंदी क्रिया रूपों से एकवचन व बहुवचन का ज्ञान हो जाता है, परंतु बंगाली भाषा में क्रिया रूप से वचन भेद का ज्ञान नहीं होता है; जैसे–

| **संस्कृत** | **हिंदी** | **बंगाली** |
|---|---|---|
| बालक: खादति | बालक खाता है | छेले खाच्चे |
| बालका: खादन्ति | बालक खाते हैं | छेलेरा खाच्चे |

हिंदी में कुल 600 धातुएं पाई जाती हैं, जिनमें 393 मूल तथा 189 यौगिक धातुएं हैं। यौगिक धातुएं आवश्यकतानुसार बाद में निर्मित की गई हैं। यह धातु संख्या संस्कृत भाषा की तुलना में बहुत कम है। संस्कृत में 2000 धातुएं थीं, जिनमें 8000 प्राचीन साहित्य में तथा 200 धातुएं वैदिक साहित्य में प्रयोग की गई हैं।

**उपसर्ग**– हिंदी में उपसर्गों का प्रयोग तत्सम शब्दों के साथ पाया जाता है। तद्भव शब्दों के साथ संस्कृत के उपसर्गों का प्रयोग नहीं पाया जाता है। हिंदी में संपूर्ण क्रियाएं तद्भव हैं। हिंदी में 'उ', 'नि', जैसे उपसर्ग हैं, जिनके प्रयोग से उजड़ना, निठल्ला,

निखट्टू, जैसे शब्द बनते हैं। उपासना, पराजय, संहार, उपसंहार जैसे उपसर्ग युक्त शब्द हिंदी में संस्कृत के तत्सम शब्दों से बनते हैं।

टिप्पणी

**निपात**– शब्दों से जुड़ने वाले उपसर्ग निपात कहलाते हैं तथा इनमें अव्यय शब्दों की भी गणना होती है। उपसर्गों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। किंतु अव्ययों का स्वतंत्र प्रयोग किया जाता है। यही इन दोनों में भेद पाया जाता है। संस्कृत में अव्यय शब्दों के रूप नहीं चलते। अतः इनका रूप परिवर्तन नहीं होता है। यत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, प्रायः, सदा, उच्चैः (ऊपर), नीचैः, (नीचे), आदि संस्कृत अव्यय शब्द हैं। हिंदी में यहां, वहां, इधर, उधर, ही, आह, ओह, हाय, जब, तब, और, भी, पर, ए, ओ, अरे, आदि अव्यय शब्द हैं। क्रिया विशेषण तथा पूर्वकालिक क्रियाएं भी अव्यय के अंतर्गत आती हैं।

इस प्रकार नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात आदि शब्द रूपों के द्वारा रूप परिवर्तन की दोनों दिशाओं (अर्थात प्राचीन रूपों का नाश तथा नवीन रूपों का निर्माण) का ज्ञान हो जाता है। एक भाषा से जब नवीन भाषा का विकास होता है, तो शब्दों का रूप परिवर्तन देखा जाता है।

## रूप परिवर्तन के कारण

भाषा शब्दों के रूप परिवर्तन के कई कारण होते हैं। रूप परिवर्तन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं-

1. **सरल बनाने की प्रवृत्ति**– मनुष्य सरलता की ओर शीघ्र आकर्षित हो जाता है। भाषा के अनेक शब्द रूपों को स्मरण रखना मस्तिष्क के लिए बोझ स्वरूप होता है। अतः मनुष्य उन शब्द रूपों को सरलता से ग्रहण कर लेता है, जो समान नियमों पर बने होते हैं। शब्द रूपों की विविधता को अपनाना मनुष्य के लिए कठिन होता है। धीरे-धीरे शब्दों के समान रूपों का प्रचलन अधिक हो जाता है एवं उनमें एकरूपता आ जाती है। संस्कृत के अनेक शब्द रूप प्राकृत, अपभ्रंश में आकर कम हो गए। उनकी अनेकरूपता समाप्त हो गई। समान नियम वाले समान शब्द रूपों की व्यवहार में अधिकता हो गई। हिंदी में यह प्रवृत्ति और अधिक पाई जाती है। हिंदी में दो लिंग (स्त्री-पुरुष), दो वचन (एक वचन तथा बहुवचन) तथा दो विभक्ति रूप (विकारी-अविकारी) शेष रह गए जबकि इनकी संख्या संस्कृत में अधिक थी।

   इसी प्रकार की दशा विश्व की अन्य भाषाओं में भी पाई जाती है। अंग्रेजी भाषा में बहुवचन बनाने के लिए कई प्रत्यय शब्दों में जोड़े जाते थे, जैसे एस (s), ई-एस (es), एन (en) आदि किंतु बाद में एस (s) प्रत्यय का ही प्रचलन अधिक हो गया तथा अन्य प्रत्यय लुप्त हो गए। अंग्रेजी में Cow (काऊ) का बहुवचन Kine (काइन) था, आई (eye) का बहुवचन आइन (Eine या eyne) था, परंतु एस (s) के अधिक प्रयोग से अब काऊ का 'काउज' (Cows) तथा आई से आइज़ (eyes) रूप पाए जाते हैं। इस प्रकार एस (s) के प्रयोग से बहुवचन बनाने से एकरूपता आई है। संस्कृत में भी अकारांत शब्द सबसे अधिक पाए जाते हैं। उनके प्रभाव से प्राकृत में

टिप्पणी

भी उन्हीं के समान शब्द रूप बनाए जाने लगे। पुत्रस्य, सर्वस्व जैसे संस्कृत शब्दों की समानता पर प्राकृत में पुत्तस्य, सब्बस शब्द बने हैं। इसी प्रकार आग्गेस्स, वाउस्स शब्दों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार मनुष्य के सरलता की ओर झुकने के कारण शब्दों के सरल रूप बना लिए जाते हैं।

2. **सादृश्य**– मानव का भाषा के जिन शब्दों से अधिक परिचय रहता है, उसी आकार में हम अन्य शब्दों को भी परिवर्तित कर लेते हैं अर्थात ज्ञात शब्दों के सादृश्य पर नये शब्द निर्मित कर (ढाल) लिए जाते हैं। संस्कृत के क्त्वा (त्वा) तथा ल्यप् (य) प्रत्ययों के जोड़ने से पूर्वकालिक क्रिया बनती थी, किंतु 'क्त्वा' के प्रयोगाधिक्य के कारण पालि में केवल 'क्त्वा' प्रत्यय ही प्रयोग किया जाने लगा। पालि में 'गन्त्वा' से पूर्वकालिक रूप 'आगन्त्वा' बनता है, जबकि संस्कृत में यही रूप गत्वा से आगत्य या आगम्य (ल्यप्) बनेगा। इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा में 'शैल' (Shall) से 'शुड' Should तथा Will विल से वुड Would के आधार पर उसी के समान Can कैन से कुड Could बना लिया गया है।

   इसी प्रकार अंग्रेजी क्रियारूपों में भूतकाल के रूपों में (ed) का प्रयोग अधिक होने लगा है। हिंदी में संबंध कारक 'मेरे' का अधिक प्रयोग होने से इसी आधार पर अन्य कारकों में रूप बना लिए गए हैं। 'मुझको', 'मुझसे' तथा 'तुमको', 'तुम से' के स्थान पर 'मेरे को', 'मेरे से' तथा 'तेरे को', 'तेरे से' जैसे-प्रयोग भी किए जाने लगे हैं। संस्कृत में हस्तिना (तृतीया एकवचन) की समानता पर मुनिना, भानुना जैसे रूप भी बनाए जाते हैं। हिंदी में 'पाश्चात्य' शब्द के सादृश्य पर पूर्वीय के स्थान पर 'पौर्वात्य' शब्द निर्मित कर लिया गया है। ध्वनि परिवर्तन में प्रयत्न-लाघव का जो महत्व है, वही महत्व रूप-परिवर्तन में सरलता एवं सादृश्य का है।

3. **विचारधारा में परिवर्तन**– समाज पर अन्य धर्मों, समाजों अथवा महापुरुषों के प्रभाव पड़ने से व्यक्तियों की विचारधारा में परिवर्तन आ जाता है। इसका प्रभाव यह होता है कि पहले से व्यवहृत कार्यों की शब्दावली के प्रयोग में कमी आ जाती है तथा बाद वाली विचारधारा से संबंधित शब्द अधिकता से प्रयोग किए जाने लगते हैं। वैदिक काल में यज्ञ कार्यों में प्रयुक्त शब्द, बौद्ध काल में यज्ञों की उपेक्षा के कारण अप्रचलित हो गए तथा बौद्धों के कर्मकांडों से संबंध रखने वाले शब्द प्रयोग किए जाने लगे। वस्त्र भूषा, भोजन, धर्म आदि में परिवर्तन होने पर शब्द प्रयोग भी बदल जाते हैं। अनेक हिंदू लोग मुस्लिम प्रभाव से मुसलमान बन गए तो नये शब्दों का अधिक प्रयोग करने लगे तथा मुसलमान हिंदू धर्म संबंधी शब्दों का प्रयोग करने लगे। धीरे-धीरे उनके द्वारा बोले जाने वाले शब्द रूपों में भी अंतर आ गया। इस प्रकार किसी एक विचारधारा की प्रमुखता होने पर उसके शब्दों का अधिक प्रयोग होने लगता है।

4. **अज्ञान**– अज्ञान के कारण कभी-कभी नवीन शब्दों की उत्पत्ति हो जाती है। रखा, मरा, धरा के समान ही 'करा' रूप बनना चाहिए किंतु दिया, लिया आदि के समान 'किया' रूप प्रचलित हो गया है। 'श्रेष्ठ' शब्द सबसे अधिक 'उत्कृष्ट' के लिए

आता था किंतु अज्ञानवश श्रेष्ठतर एवं श्रेष्ठतम शब्द बनते हैं। चतुर से चतुराई के आधार पर सुंदर से सुंदरताई जैसे शब्द भी बना लिए गए हैं। सुंदरताई, कुटिलताई, मित्रताई, सुधरताई ऐसे ही शब्द हैं। इसी प्रकार सौंदर्यता, लावण्यता जैसे शब्द भी अज्ञानवश बना लिए गए हैं।

टिप्पणी

5. **नवीनता**– भाषा के पुराने शब्दों को छोड़कर नये शब्दों का प्रयोग लोग नवीनता के प्रति स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होकर करते हैं। अत: शब्दों में परिवर्तन करके उनका प्रयोग किया जाने लगता है अथवा शब्दों पर नये अर्थ आरोपित कर लिए जाते हैं। 'रीति' के स्थान पर 'शैली', शैली-शिल्प, रचना-विधान, कल्पना से परिकल्पना, प्रयोग से संयोग, मृदुता से मार्दव, प्रखरता से प्राखर्य्य, उज्ज्वल से औज्ज्वल्य, प्रचुरता से प्राचुर्य, वस्तु के लिए विषय-वस्तु जैसे नवीन शब्द प्रयोग पूर्व-प्रचलित शब्दों के अर्थ में किए जाने लगे हैं। 'मैं' के स्थान पर 'हम' के प्रयोग की अधिकता हो गई है। इस प्रकार नवीनता के कारण शब्दों के रूप में परिवर्तन आ जाता है।

6. **स्पष्टता**– शब्दों का स्पष्ट अर्थ प्रकट करने के लिए शब्दों के रूप में परिवर्तन हो जाता है। 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग बढ़ने से बहुवचन के अर्थ को बताने के लिए 'हम लोग' प्रयोग किया जाने लगा है। इसी प्रकार तुम से 'तुम लोग' बहुवचन के लिए प्रयोग किया जाता है। संस्कृत के अनेक शब्दों के रूप पालि, प्राकृत में कई विभक्तियों में एक समान बनते थे। इससे अर्थ स्पष्ट होना कठिन होता था; अत: बाद में अर्थस्पष्टता के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। बाद में यही शब्द हिंदी में घिस कर कारक चिह्नों या परसर्गों के रूप में प्रयुक्त होने लगे। उदाहरण के रूप में संस्कृत 'रात्रि' के रूप बाद की विकसित भाषाओं में इस प्रकार बनने लगे–

तृतीया रत्तिया

चतुर्थी रत्तिया

पंचमी रत्तिया

| **तृतीय** | **एकवचन (रत्ति)** | **एकवचन (वधू)** |
|---|---|---|
| चतुर्थी | रत्तिया | वधुया |
| पंचमी | रत्तिया | वधुया |
| षष्ठी | रत्तिया | वधुया |
| सप्तमी | रत्तिया | वधुया |

इन रूपों को देखकर कहा जा सकता है कि कई विभक्तियों में इनके समान रूप से अर्थस्पष्टता में बाधा आने लगी होगी। अत: अर्थ स्पष्ट करने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग होने लगा।

7. **बल प्रयोग**– शब्द पर बल देने के लिए लोग नये ढंग से शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। इस तरह 'अनेक' से 'अनेकों', 'मैं' से 'हम' जैसे शब्द बल देने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य विभिन्न कारणों से भाषा के प्रचलित शब्द रूपों में परिवर्तन करता रहता है। इसीलिए नये शब्द रूपों से शब्दों के रूप में परिवर्तन होता रहता है। इन्हीं सबका रूप परिवर्तन के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है।

टिप्पणी

ध्वनि-विज्ञान भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। इसका संबंध भाषा के भौतिक आधार ध्वनि से है। ध्वनि-विज्ञान में मानव मुख से निस्सृत ध्वनियों का सर्वांगीण विवेचन किया जाता है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत जितना इस क्षेत्र में कार्य हुआ है, उतना किसी अन्य क्षेत्र में नहीं। ध्वनि शब्द संस्कृत का शब्द है। संस्कृत में 'ध्वनि शब्द' एक धातु है, उसी धातु से ध्वनि शब्द निर्मित हुआ है। सामान्यतः कर्णगोचर कोई भी शब्द ध्वनि संज्ञा से अभिहित किया जाता है, किंतु भाषा विज्ञान में इस प्रकार की किसी ध्वनि की अपेक्षा नहीं है, जिसका संबंध भाषा से न हो, जो सार्थक न हो। इस प्रकार सीमित अर्थ में भी ध्वनि के दो भेद होते हैं– (1) भाषा-ध्वनि (Speech Sound), (2) ध्वनिग्राम (Phoneme)।

### 5.4.5 अर्थ विज्ञान

शब्दों का अर्थ ही विचार-विनिमय के साथ ग्राह्य होता है। अर्थ ही भाषा की आत्मा है। भाषा विज्ञान में भाषा अध्ययन का विषय है, अतः भाषा की आत्मा अर्थ पर आवश्यक रूप से विचार किया जाता है। अर्थ विज्ञान में शब्दों का अर्थ से संबंध, अर्थ परिवर्तन, अर्थ-परिवर्तन के कारण, अर्थ-ध्वनि-संबंध, पर्याय, विलोम आदि बातों पर विचार किया जाता है। अर्थ-विचार वर्णनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक रूप से किया जा सकता है। इसमें किस प्रकार शब्द अपने अर्थ को छोड़कर दूसरा अर्थ ग्रहण कर लेता है, कैसे अर्थ का संकुचन एवं विस्तारण होता है, आदि का विचार किया जाता है। 'अश्व' का अर्थ घोड़ा ही क्यों हुआ, 'उपाध्याय' किस प्रकार 'ओझा' अथवा 'झा' हो गए – इनका अध्ययन अर्थ विज्ञान के आश्रय से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसे 'अर्थ विचार' या 'अर्थ उद्‌बोधन शास्त्र' भी कहते हैं।

विचारों के आदान-प्रदान, भावों के संप्रेषण के लिए मानव समूह भाषा का प्रयोग करता है। भाषा की आत्मा अर्थ है। अर्थविज्ञान के अंतर्गत भाषा के इसी अर्थपक्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। अर्थविज्ञान में भाषा की आत्मा अर्थात 'अर्थ' के ज्ञान, संकेत, बिंब निर्माण और अर्थबोध का विवेचन विश्लेषण किया जाता है।

हमारे यहां अर्थ का महत्व अति प्राचीन काल से माना जाता रहा है, जैसा कि यास्क के निरुक्त से अनेकत्र प्रमाणित होता है। यास्क ने कहा है कि जिस प्रकार बिना अग्नि के शुष्क ईंधन प्रज्वलित नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना अर्थ समझे जो शब्द दुहराया जाता है, वह कभी अभीप्सित विषय को प्रकाशित नहीं कर सकता–

**यदगृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।**
**अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित्॥** **(निरुक्त-1.18)**

इसी प्रसंग में उन्होंने फिर कहा है–

**स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।**
**योऽर्थज्ञ इत सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥ (निरुक्त-1.18)**

टिप्पणी

जो बिना अर्थ जाने वेदों का अध्ययन करता है, वह भार ढोता है। अर्थ को जानने वाला ही समस्त कल्याणों का भागी होता है और ज्ञान की ज्योति से समस्त दोषों को दूर कर ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। कहने का तात्पर्य यह कि अर्थ के अभाव में भाषा का कोई महत्व नहीं है। शब्द तो अर्थ की अभिव्यक्ति का ही माध्यम है। अर्थात शब्द अमूर्त अर्थ का मूर्त रूप है, या शब्द शरीर है तो अर्थ आत्मा। जिस तरह शरीर की सहायता से ही आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है, उसी प्रकार शब्दों की सहायता से ही अर्थ का बोध होता है।

## अर्थ की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने अर्थ को विभिन्न तरीके से परिभाषित किया है।

भर्तृहरि ने भी अर्थ को वाक्य की आत्मा कहा है– 'यन्नेत्रः प्रतिभात्माऽयं भेदरूपः प्रतीयते।' अर्थ के स्वरूप पर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। महाभाष्य में अर्थ का संबंध बुद्धि से माना गया है–

**बुद्धौ कृत्वा सर्वा चेष्टाः कर्त्ता धीरस्तत्वन्नीतिः।**

**शब्देनार्थान्वाच्यान्दृष्ट्वा बुद्धौ कुर्यात्पौर्वापर्यम्॥**

अर्थात अर्थ का विषय बाहर रहता है, किंतु अर्थ रहता है भीतर, अर्थ का संबंध भीतर बुद्धि से है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में कहा है–

"अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" अर्थात केवल अर्थवान् या सार्थक शब्द ही प्रातिपदिक अर्थात मूल संज्ञा शब्द या प्रकृति होते हैं।

यास्क ने निरुक्त में कहा है– 'अर्थनित्यः परीक्षेत' अर्थात अर्थज्ञान के बिना निर्वचन असंभव है। भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीयम्' में अर्थ का लक्षण करते हुए कहा है– "जिस शब्द के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है। अर्थ का अन्य कोई लक्षण नहीं।"

**यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।**

**तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्॥ (वाक्यपदीयम्-2.330)**

अतः स्पष्ट है कि अर्थ का लक्षण प्रतीति है और प्रतीति का संबंध मनुष्य के मानसिक पक्ष से है। यह सर्वविदित है कि भाषा की उत्पत्ति मन से होती है और उसकी परिणति भी मन में ही होती है अर्थात वक्ता एवं श्रोता, दोनों के मन को प्रतीति की दृष्टि से एक सूत्र में अनुस्यूत करना भाषा का उद्देश्य है। स्वभावतः अर्थ के किसी पक्ष पर विचार करते समय मानसिक पक्ष की अवहेलना करना संभव नहीं है।

जब उच्चारण समकाल होने वाली प्रतीति ही अर्थ है, तब उसके लक्ष्य-व्यंग्यादि विविध भेद माने ही नहीं जा सकते, क्योंकि शब्द (अभिधान) और अर्थ (अभिधेय) के बीच एक ही प्रकार का संबंध हो सकता है– अभिधा का। अर्थ को भर्तृहरि ने अखंडनीय अभिव्यक्ति माना है। न तो उसके भाग किए जा सकते हैं और न उनके जुड़ने से किसी समग्र वाक्यार्थ की सृष्टि संभव मानी जा सकती है। यहां तक कि 'नाम', आख्यात, उपसर्ग, निपात आदि की दृष्टि से भी अर्थ का विभाजन नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी

● **नामकरण**

भाषा विज्ञान में पाश्चात्य विद्वानों ने अर्थ के संबंध में किए हुए कार्य को अनेक नामों से अभिहित किया है। प्रोफेसर पोस्ट गेट ने अर्थ विचार संबंधी कार्य को रिहमटालॉजी (Rhematalogy) कहा है। दूसरी ओर ब्रील महोदय (Michel Breal) ने सिमैंटिक्स (Semantique) नाम दिया है। एक अन्य विद्वान ने सेमसोलॉजी (Semasialogy) नाम भी दिया है। इन सभी शब्दों का अर्थ 'माने तत्व' या 'माने विचार' है। किंतु ये दोनों ही शब्द विद्वानों को रुचिकर प्रतीत नहीं हुए हैं। परिणामत: इसके शब्दार्थ-विज्ञान, अर्थ-विचार आदि भी नामकरण हुए हैं। इन नामों में अर्थ विज्ञान एवं अर्थ विचार नाम अधिक लोकप्रिय एवं तर्कसंगत है।

## अर्थ विज्ञान का विषय

भाषा के साथ अर्थ का निकटतम संबंध है। अत: भारतवर्ष में भाषा अध्ययन के साथ ही अर्थ के संबंध में पर्याप्त कार्य हुआ है। गोपथ ब्राह्मण (1.1.26) में शब्दों की अपेक्षा अर्थ को अधिक महत्व प्रदान किया गया है– 'रूपसामान्यादर्थसामान्यं नेदीय:'। शतपथ ब्राह्मण में मन (भाव-अर्थ) से वाणी को लघु माना गया है– "वाग्वै मनसोहसीयसी"। यास्क के निरुक्त (1.20) में भी शब्द निवर्चन प्रसंग में अर्थ-विचार किया गया है–

**"अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्य:।**

**परीक्षेत केनचिद् वृत्तिसामान्येन॥**

इन ग्रंथों के अतिरिक्त व्याकरण शास्त्र, न्यायमीमांसा, साहित्य के लक्षण ग्रंथों में भी शब्दार्थ के संबंध में सूक्ष्म विचार किया गया है। किंतु आधुनिक तुलनात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो कार्य किया जाता है, वह दृष्टि इन ग्रंथों में उपलब्ध नहीं है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रील (Michel Breal) महोदय ने ही सर्वप्रथम इस विषय पर महत्वपूर्ण कार्य किया। अर्थविज्ञान पर कार्य करने वाले अन्य विद्वानों में टंकर, रिसर्च बालपॉल, हेमंतकुमार सरकार, डॉ. हरदेव बाहरी, विजन बाहरी, भट्टाचार्य, कपिलदेव द्विवेदी आदि महत्वपूर्ण पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान हैं।

शब्द व अर्थ का अभेद संबंध है। इस अभेद संबंध के कारण ही अनेक समस्याएं पाठकों के सम्मुख उपस्थित होती हैं। प्रथम शंका यह है कि क्या शब्द तथा अर्थ का संबंध नित्य है? विभिन्न भाषाओं में भाव तथा विचार अभिव्यक्ति के क्या साधन हैं? उनकी सीमाएं क्या हैं? प्रत्येक भाषा में अनेक शब्द अनेकार्थक क्यों हैं? उन अर्थों में क्या कोई परस्पर संबंध है? उदाहरण के लिए 'पाद' शब्द के पैर, चौथा भाग, किसी पद्य का एक चरण, भाग आदि अनेक अर्थ हैं। इसी प्रकार 'गो' शब्द के गाय, पृथ्वी, किरणें, इन्द्रिय, वाणी आदि अनेक अर्थ हैं। इन अनेकार्थक शब्दों के संबंध में यह प्रश्न भी संभव है कि विभिन्न शब्दों के ये अनेकार्थ क्या पूर्णत: स्वतंत्र हैं? अथवा प्रत्येक अर्थ मौलिक है। इसी प्रकार काव्य-शास्त्र के ग्रंथों में शब्द की अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना नामक तीन शक्तियां मानी गई हैं। उनके आधार पर शब्द का अर्थ क्रमश: वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य भेद से तीन प्रकार का है। सभी दृष्टियों से अर्थ पर विचार किया जाना अपेक्षित है। डॉ. मंगलदेव के कथनानुसार–

टिप्पणी

"यथार्थत: देखा जाए तो अर्थ-विज्ञान में सभी संभव दृष्टियों से अर्थ या शब्दार्थ के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। ऐसा होने पर भी, सामान्यत: अर्थ विज्ञान (अर्थ विचार) का विषय यही समझा जाता है कि शब्दों के सर्वसम्मत प्रचलित या प्रसिद्ध अर्थों को लेकर उनके विकास या ऐतिहासिक परंपरा को दिखाया जाए। अर्थात किसी शब्द के अर्थ में देशांतर या कालांतर में होने वाले परिवर्तन का विचार ही सामान्यत: अर्थ विज्ञान का विषय समझा जाता है।

## अर्थबोध की प्रक्रिया

शब्द से अर्थ का बोध किस प्रकार होता है? एक वाक्य से अर्थबोध कैसे होते हैं? जब हम एक वाक्य को बोलते अथवा लिखते हैं, तो सुनने वाला कैसे उसके अर्थ को समझ लेता है? अर्थबोध की प्रक्रिया में इन सब प्रश्नों पर विचार किया जाता है। प्राचीन तथा आधुनिक भाषावैज्ञानिकों ने अर्थबोध की प्रक्रिया पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

आकांक्षा, योग्यता एवं सन्निधि के कारण शब्दार्थ अन्वित होते हैं। तब उन (अर्थों) से एक विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, जो शब्दार्थों से भिन्न होकर वाक्यार्थ होता है। अभिहितान्वयवादी विचारकों का यही मत है। इससे भिन्न मत अन्विताभिधानवादी विचारकों का है, जिनके अनुसार वाच्यार्थ ही वाक्यार्थ होता है। इस मत के अनुसार शब्दों के अर्थों के साथ ही उन (शब्दों) का पारस्परिक अन्वय भी अभिव्यक्त होता है।

अर्थबोध की प्रक्रिया पर कुछ भाषावैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी विचार किया है। उनके अनुसार शब्दों का पौर्वापर्य बुद्धि का विषय है। बुद्धि ही स्थिर करती है कि कौन सा शब्द आगे रहे और कौन सा पीछे।

बुद्धिविषयमेव शब्दानां पौर्वापर्यम्। इह य एष मनुष्य:।

प्रेक्षापूर्वकारो भवति स पश्यति अस्मिन्नर्थेऽयं शब्द प्रयोक्तव्य: अस्मिंस्तावच्छब्दे तावद्वर्ण: ततो यं ततोऽमिति।

अर्थात पंडित अंत:करण में कंठ तालु आदि अभिघात व्यापारजन्य शब्द को प्रतिबिंबित करके वाच्य अर्थों का बुद्धिदेश में ही पौर्वापर्य व्यवहार करे।

पश्चिमी विचारकों ने भी अर्थबोध की प्रक्रिया पर विचार करते हुए कहा है कि हमारे हृदय के भावों तथा विचारों की संपूर्ण अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से नहीं हो पाती। भाव तथा विचार वाणी में आकर बहुत कुछ टूट-फूट जाते हैं। अत: रचनाकार के संपूर्ण भावों तथा विचारों का प्रेषण श्रोता, पाठक, दर्शक तक नहीं हो पाता। जर्मन भाषा वैज्ञानिक हर्मन पाउल ने Principles of the history of language में कहा है कि, "विचारों का एक व्यक्ति से दूसरे तक प्रेषण अथवा संक्रमण कठिन है। इस प्रक्रिया में होता यह है कि हमारे मन में किसी विचार का जो और जैसा बोध होता है, उसी के आधार पर दूसरे के विचारबोध का अनुमान हम कर लेते हैं। किंतु श्रोता में हमारे जैसा विचारबोध नहीं भी हो सकता।" सी.के. ओग्डेन तथा आई.ए. रिचर्ड्स ने भी अपने ग्रंथ "The meaning of meaning" में शब्द की इस अपूर्ण प्रेषणीयता, अभिव्यक्ति तथा द्योतकता पर

टिप्पणी

विचार किया है। अर्थबोध की प्रक्रिया में वक्ता तथा श्रोता के बीच व्यवधान की बात अधिकांश विचारकों ने मानी है। फिर भी, अर्थबोध की प्रक्रिया पूरी तरह से एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके दो साधन होते हैं– (1) आत्म प्रत्यक्ष या स्वानुभूत अर्थबोध और (2) पर प्रत्यक्ष या परानुभव।

1. **आत्म प्रत्यक्ष**– स्वयं किसी वस्तु को अपनी आंखों से देखना या अनुभव करना, आत्म प्रत्यक्ष या स्वानुभूत अर्थबोध की प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। किसी भौतिक वस्तु को अपनी आंखों से देखकर स्वयं ज्ञान प्राप्त करने को स्वानुभूत ज्ञान कहते हैं। किसी फल या फूल को चखकर या सूंघकर उसके रस एवं सुगंध को स्वयं अनुभव करना अर्थबोध का प्रमुख साधन है। यह सर्वाधिक प्रामाणिक और स्पष्ट होता है। आत्मप्रत्यक्ष अर्थबोध दो प्रकार से किया जाता है– (क) बाह्य इंद्रियजन्य (ख) अंतरिंद्रियजन्य।

   बाह्य इंद्रिय द्वारा अर्थबोध का अर्थ है, आंख, नाक, कान, त्वचा व कर्ण, इन पंचेंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान और अनुभव, इनका ज्ञान तथा प्रामाणिकता इंद्रियों ने स्वयं प्रत्यक्ष की है।

   अंतरिंद्रिय ज्ञान द्वारा अर्थबोध का अर्थ है, मन द्वारा सूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान। पंचेंद्रियों के व्यापार के अतिरिक्त कुछ ऐसी चीजें होती हैं, जिनका ज्ञान बाह्य इंद्रियां नहीं कर पातीं, उनका ज्ञान मन करता है; जैसे सुख या दु:ख का अनुभव, भूख-प्यास, शोक, हर्ष, क्षोभ का अनुभव व्यक्ति अपने मन से करता है। यह अंतरिंद्रियजन्य आत्मप्रत्यक्ष है। अंतरिंद्रिय से होने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान व्यक्ति के लिए निजी तथा प्रामाणिक होता है– कई बार यह ज्ञान शब्दों के बंधन से भी परे होता है।

2. **पर प्रत्यक्ष**– दूसरों से प्राप्त ज्ञान को पर प्रत्यक्ष की श्रेणी में रखा जाता है। जिन क्षेत्रों में हमारी पहुंच नहीं होती, उस क्षेत्र से संबद्ध शब्दादि के अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों के अनुभव से ज्ञान मिलता है। दूसरे, जिन्होंने स्वयं उसे देखा है। पर प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर ही हम दूसरे देशों, नगरों, समुद्रों, दर्शनीय स्थलों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। पर प्रत्यक्ष में ही आप्तवाक्य, आप्तवचन या प्रामाणिक व्यक्तियों के कथन भी आते हैं।

## अर्थबोध के साधन

कुछ भाषावैज्ञानिकों ने अर्थबोध को संकेत ग्रहण माना है। संकेत ग्रहण की प्रक्रिया परंपरागत और यादृच्छिक होती है। संकेत ग्रहण या अर्थबोध के साधनों को इस प्रकार देखा जा सकता है–

1. **व्यवहार**– बच्चा अपनी माता एवं आसपास के परिवेश में उपयोग या व्यवहार में आने वाली वस्तुओं के कार्य-कारण संबंध को परस्पर स्थापित कर अर्थग्रहण करता है।

2. **उपमान**– उपमान से तात्पर्य है– 'सादृश्य'। सदृश वस्तु बताकर किसी वस्तु का अर्थ बताना। जैसे– 'भेड़िया' कुत्ते जैसा होता है' कहने से जिसने भेड़िया पशु नहीं

देखा है वह उसकी कल्पना कर सकता है और साक्षात् भेड़िया देखने पर उसे पहचान सकता है।

टिप्पणी

3. **आप्तवाक्य**– आप्त का अर्थ 'यथार्थ वक्ता' है। माता-पिता, गुरु, वेदशास्त्र आदि आप्त में गिने जाते हैं। मनुष्य बचपन से माता-पिता, गुरु आदि को आप्त मानकर भाषा सीखता है। ईश्वर, जीव, पाप-पुण्य, मोक्ष आदि का ज्ञान वेद आदि आप्तग्रंथ कराते हैं।

4. **व्याकरण**– व्याकरण शब्दों के अर्थ के ज्ञान में अत्यंत सहायक होता है। शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञान व्याकरण द्वारा ही होता है। अध्ययन-अध्यापन में व्याकरण का ज्ञान महत्वपूर्ण होता है। धातु, प्रत्यय, उपसर्ग, शब्दों के रूप, समास, लिंग आदि का बोध व्याकरण द्वारा ही होता है।

5. **कोश**– अर्थग्रहण के महत्वपूर्ण साधन के रूप में कोशों को देखा जा सकता है। किसी भी शब्द का अर्थ ज्ञात न होने पर शब्दकोश कार्य में आ जाते हैं। आजकल साहित्य कोश, मुहावरा कोश, लोकोक्ति कोश, पारिभाषिक कोश आदि अनेक प्रकार के कोश अस्तित्व में आ गए हैं, जो अर्थग्रहण में सहायता करते हैं। अन्य भाषा के शब्दों का अर्थ जानने में कोशों का महत्व असंदिग्ध है।

6. **वाक्यशेष**– किसी प्रकरण में प्रयुक्त किसी विशेष शब्द का अर्थ अज्ञात होने पर भी उस वाक्य के संदर्भ में अर्थ समझा जा सकता है। प्रकरण या प्रसंग नानार्थक शब्दों के अर्थग्रहण में सहायक होता है। जैसे जल में रहकर मगर से वैर वाक्य में 'मगर' का अर्थ 'लेकिन' न होकर मगरमच्छ है, मगर अर्थ न जानने वाला श्रोता या पाठक भी प्रकरण या प्रसंगवत् सही अर्थग्रहण कर लेता है।

7. **विवृत्ति**– विवृत्ति या विवरण से अनेक शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। पारिभाषिक, तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली को बिना व्याख्या के नहीं समझा जा सकता। जैसे– इड़ा-पिंगला, छायावाद, अस्तित्ववाद, तंत्र साधना आदि शब्द अर्थग्रहण के लिए विवृत्ति की अपेक्षा रखते हैं।

8. **ज्ञात (प्रसिद्ध पद का सान्निध्य)**– कई बार प्रसिद्ध या ज्ञात पदों की समीपता से अज्ञात शब्द का अर्थ ज्ञात हो जाता है।

9. **शब्द शक्तियां**– संकेत ग्रहण से किसी शब्द का जो अर्थ हमें ज्ञात होता है, सामान्य व्यवहार में हम उसी का व्यवहार करते हैं। लेकिन कई बार कुछ शब्द अपने प्रयोगों से मुख्य अर्थ से हटकर भिन्न अर्थ की प्रतीति कराने लगते हैं। शब्द की विभिन्न शक्तियों का प्रयोग अर्थबोध के विभिन्न साधनों के रूप में होता है। शब्द शक्तियां तीन होती हैं, जिन्हें भारतीय विद्वानों ने अभिधा, लक्षणा, व्यंजना के रूप में ग्रहण किया है।

   (क) **अभिधा**– अभिधा का अर्थ है 'कहना', पारिभाषिक अर्थों में जो शक्ति साक्षात् संकेतित अर्थ को बताती है, उसे अभिधा कहते हैं। उदाहरणार्थ 'वह घर जाता है।' अभिधा से अर्थबोध कराने वाले शब्द को 'वाचक' और उससे गृहीत को अर्थ वाच्यार्थ कहते हैं।

टिप्पणी

(ख) **लक्षणा**– मुख्य अर्थ में बाधा होने पर रूढ़ि या प्रयोजन से जिस शक्ति से संबंधित अर्थ की प्रतीति होती है, उस शब्दशक्ति को लक्षणा कहते हैं। लक्षणा के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है– (1) वाच्यार्थ की अस्वीकृति (2) संबद्ध अर्थ का ग्रहण (3) लक्ष्यार्थ को ग्रहण करने की रूढ़ि या कोई निश्चित प्रयोजन।

उदाहरणार्थ 'गङ्गायां घोष:' का लक्षणा अर्थ है, गंगा के समीप घर है, न कि गंगा में अर्थात जल के अंदर नहीं। ऐसा कहने के पीछे पवित्रता, शीतलता आदि कोई विशिष्ट कारण होता है। लक्षणा से अर्थबोध कराने वाले शब्द को 'लाक्षणिक शब्द' एवं उससे गम्य अर्थ को 'लक्ष्यार्थ' कहते हैं।

(ग) **व्यंजना**– जहां अभिधा या लक्षणा से अर्थबोध होने के बाद एक चमत्कारपूर्ण अर्थ की व्यंजना होती है, वहां व्यंजनाशक्ति कार्य करती है। व्यंजना से अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द को 'व्यंजक' और उससे गम्य अर्थ को व्यंग्यार्थ' कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी अर्थग्रहण के साधनों पर पर्याप्त विचार किया है। इन्होंने अर्थबोध के तीन साधनों को स्वीकार किया है– (1) व्यवहार (2) विवरण (2) अनुवाद।

1. **व्यवहार**– जब किसी एक वस्तु का नित्यप्रति या अक्सर व्यवहार करते-करते उसका अर्थबोध हो जाता है; जैसे दैनिक कार्यों में आते-आते मेज, कुर्सी, कुत्ता, कलम जैसे शब्दों की ओर इंगित करते-करते श्रोता को उसका अर्थबोध हो जाता है।
2. **विवरण**– जब किसी वस्तु का विवरण देकर उसका अर्थबोध कराया जाता है; जैसे सभी ने समुद्र नहीं देखा। अपार जलनिधि के वर्णन से जब अर्थबोध कराया जाता है, तो उसे विवरण कहते हैं।
3. **अनुवाद**– जब एक ही भाषा के कठिन शब्दों या अन्य भाषा के शब्दों को अनुवाद के द्वारा समझाया जाता है। जैसे– Room कमरा, शतक्रतु = इंद्र।

इस प्रकार अर्थबोध के साधनों पर भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों दृष्टियों से विचार किया गया है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तावित प्रथम दो साधन भारतीय विद्वानों द्वारा दिए गए क्रमश: व्यवहार एवं निवृत्ति ही हैं। इनमें कोई नूतनता नहीं है। वर्तमान में अनेक भाषाओं के प्रचार, प्रसार, संचार साधनों के विस्तार तथा पर्यटन की व्यापकता के कारण 'अनुवाद' संकेत ग्रहण या अर्थग्रहण के सशक्त साधन के रूप में सामने आया है।

## शब्द तथा अर्थ का संबंध

डॉ. रसेल ने अर्थ के विषय में कहा है कि "संबंध विशेष ही अर्थ है, क्योंकि किसी शब्द में केवल अर्थ ही नहीं होता, बल्कि वह अपने अर्थ से संपृक्त होता है। यह संबंध विशेष ही अर्थ निर्मित करता है।" अर्थ निर्माण हेतु शब्द एवं अर्थ के मध्य एक विशिष्ट संबंध की आवश्यकता होती है। मनुष्य अपनी इन्द्रियों द्वारा तथा अन्य विविध साधनों द्वारा अर्थग्रहण या संकेत ग्रहण करता है। किसी वस्तु का नाम उच्चरित करने पर ध्वनि संयोग

टिप्पणी

के साथ वस्तु का संबंध स्थापित करने का कार्य कोई अप्रत्यक्ष तत्व करता है। यही संकेत ग्रहण है। हम जानते हैं कि भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है अर्थात् भाषा के शब्द प्रतीक होते हैं। प्रतीक वह वस्तु है जो किसी (व्याख्याता) के लिए किसी अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होती है। भाषा वैज्ञानिक सी.एस. पीयर्स के शब्दों में "A sign is something that stands to somebody for something else in some respect or capacity."

जब हम घोड़ा शब्द का उच्चारण करते हैं तो उसको भी प्रतीकवत् प्रयुक्त करते हैं। उच्चरित या लिखित रूप में शब्द 'घोड़ा' स्वयं 'घोड़ा' नहीं होता। वह तो घोड़ा वस्तु के लिए प्रयुक्त प्रतीकजन्य वह भाषिक वस्तु है, जिसे उसके प्रयोगकर्त्ता (व्याख्याता) वास्तविक घोड़े के स्थान पर व्यवहार में लाते हैं।

शब्द विशिष्ट अर्थों के प्रतीक या संकेत होते हैं। इसीलिए उन शब्दों के प्रयोग से श्रोता उन्हीं अर्थों को ग्रहण करता है। उदाहरणार्थ एक विशिष्ट भाषिक समूह ने 'बादल' शब्द को अथवा ब् + आ + द् + अ + ल् + अ ध्वनियों के समूह को आकाश से वर्षा करने वाले मेघों के लिए संकेत या प्रतीक मान रखा है, इसलिए 'बादल' कहने से उसी का बोध होता है, किसी और वस्तु का नहीं। क्योंकि डॉ. मूर के अनुसार– "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अर्थ वस्तुतः संदर्भ या प्रकरण होता है" अर्थात प्रत्येक अनुभव में अथवा उत्तेजना, कल्पना के समूह में, संबद्ध प्रतिरूप एक संदर्भ या प्रकरण का सा रूप धारण कर लेते हैं। वही संदर्भ या प्रकरण समस्त उत्तेजनाओं तथा कल्पनाओं को संश्लिष्ट बनाकर एक निश्चित अर्थ को उत्पन्न करता है। यही उत्तेजना भौतिक प्रतीकों को उत्पन्न करती है। प्रारंभ में कोई व्यक्ति किसी विशेष अर्थ में किसी शब्द का प्रयोग करता है। बाद में वह शब्द, उस भाषा या समाज में लोकप्रिय हो जाता है। वही उस शब्द का संकेतित अर्थ माना जाता है। एक ही शब्द (ध्वनि समूह) विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ बताता है – अंग्रेजी know (जानना) संस्कृत तथा हिंदी में निषेधार्थक 'नो' माना जाएगा। Knee (घुटना) संस्कृत में 'नी' (ले जाना) होगा। अतः यह माना जाएगा कि किसी एक ध्वनि का कोई एक अर्थ नहीं है। किसी शब्द से किसी अर्थ का संबंध स्थापित करना 'संकेत ग्रहण' है। यह संकेत ग्रहण लोक-व्यवहार एवं अनुशासन से होता है।

## अर्थपरिवर्तन की दिशाएं

संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। भाषा भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। इस अर्थ-परिवर्तन को विकास सिद्धांत की दृष्टि से 'अर्थविकास' भी कहा जाता है। यह अर्थ-परिवर्तन तीन प्रकार का होता है– (1) कहीं पर अर्थ का विस्तार होता है। (2) कहीं पर अर्थ में संकोच होता है। (3) कहीं पर पुराने अर्थ के स्थान पर नया अर्थ आ जाता है।

इन तीनों के जो उदाहरण मिलते हैं, उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ स्थानों पर अर्थ अपने मूल अर्थ से उत्कृष्ट हो गया है और कहीं अपने मूल अर्थ से निकृष्ट, अपकृष्ट। इस दृष्टि से भी इनको दो भागों में रखा जाता है। ये उपर्युक्त तीनों भेदों में आते हैं, परंतु सुविधा के लिए इन पर पृथक् से भी विचार किया जाता है। ये भेद हैं– अर्थोत्कर्ष एवं अर्थापकर्ष।

टिप्पणी

कुछ शब्द मूल रूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया। जैसे–

**कुशल**– कुशल शब्द का अर्थ था– 'कुशान् लाति'। कुश का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है, उससे हाथ में छेद होने या कटने का भय रहता था। अतः कुश लाना चतुरता का सूचक था। किंतु यह शब्द धीरे-धीरे 'कुश लाना' अर्थ को छोड़कर 'चतुरता' और निपुणता का अर्थ देने लगा। वह संगीत में कुशल है, वह शास्त्रों में कुशल है, वह खेलने में कुशल है आदि।

**प्रवीण**– प्रवीण का अर्थ था– 'प्रकृष्टो वीणायाम्'। यह शब्द वीणा-वादन की निपुणता को छोड़कर केवल 'निपुण' या 'दक्ष' अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। जैसे– वह कृषिकर्म में प्रवीण है, वह साहित्य या दर्शन में प्रवीण है, वह कला में प्रवीण है आदि।

**तैल**– सबसे पहले 'तिल' का तेल (द्रव) निकला था, उसके आधार पर 'तैल' नाम द्रवमात्र के लिए प्रयुक्त होने लगा। जैसे– सरसों का तेल, मूंगफली का तेल, बादाम का तेल आदि।

**महाराज**– यह पहले राजा के लिए प्रयुक्त होता था, परंतु बाद में इसका इतना अर्थविस्तार हुआ कि आज किसी भी भद्र पुरुष को 'महाराज' कह सकते हैं।

**गवेषणा**– प्रारंभ में 'गाय चाहना' अर्थ में या फिर 'गाय ढूंढ़ना' अर्थ में आया। अब इसमें से गाय अर्थ हटकर केवल ढूंढना, खोज करना, अर्थ रह गया है।

## अर्थ संकोच

अर्थविस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों में संकोच हुआ है। उनका विस्तृत अर्थ संकुचित या सीमित हो गया है। इसके सैकड़ों उदाहरण हैं। सभी वस्तु नाम अर्थसंकोच के उदाहरण हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर उनका व्यापक अर्थ है, परंतु वस्तु-नाम होने पर वे उस अर्थ में रूढ़ हो गए हैं; जैसे–

**जगत्, संसार संसृष्टि**– इनके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हैं गतिशील, संसरणशील, परंतु ये शब्द 'संसार' अर्थ में रूढ़ हो गए हैं।

**वारिज, अंबुज, सरसिज, सरोज, नीरज, पंकज**– इनका शाब्दिक अर्थ है– जल या तालाब में होने वाला। परंतु ये शब्द 'कमल' अर्थ में रूढ़ हो गए हैं।

**जलद, तोयद, अम्बुद, वारिवाह (बादल)**– का अर्थ है– जल देने वाला, जल धारण करने वाला। ये 'बादल' अर्थ में रूढ़ हो गए हैं।

**मंदिर**– का अर्थ 'भवन' था, किंतु अब यह 'देवमंदिर' अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है।

**मृग**– पशुमात्र के लिए था। अब केवल 'हिरन' अर्थ रह गया है।

**सभ्य**– 'सभा में बैठने वाला' – अब सुसंस्कृत, शिष्ट के लिए है।

**श्राद्ध**– श्रद्धायुक्त कर्म। अब मृतक श्राद्ध में ही प्रचलित है।

**वेदना**– सुख और दुःख दोनों के अनुभव के लिए था। अब केवल 'दुःख' अर्थ रह गया है।

**घृणा**– दया और घृणा दोनों अर्थों में था, अब केवल 'घृणा' अर्थ रह गया है।

## अर्थादेश

'अर्थादेश' का अर्थ है, एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। अर्थादेश में शब्द का प्राचीन अर्थ लुप्त हो जाता है और नया अर्थ आ जाता है। जैसे–

टिप्पणी

**असुर**– मूल अर्थ असु + र। प्राणशक्तिसंपन्न। पहले 'देवता' था, बाद में देवता के विपरीत 'राक्षस' अर्थ प्रचलित हो गया।

**वर**– मूल अर्थ 'श्रेष्ठ' था, अब केवल 'दूल्हा' अर्थ रह गया है।

**सह**– वेद में सह् धातु का अर्थ जीतना था, अब मात्र 'सहन' करना अर्थ रह गया है।

**मौन**– मूल अर्थ मुनि-कर्म या मुनियों का आचरण था अब 'चुप रहना' रह गया है।

**देवानां प्रियः**– 'देवों का प्रिय'। अशोक की उपाधि थी। बौद्धों से द्वेष के कारण ब्राह्मणों ने 'देवानां प्रियः' का अर्थ 'मूर्ख' कर दिया।

**पाखंड**– अशोक के समय एक संप्रदाय था। इन्हें दान दिया जाता था। इसके रूपांतर 'पाखंड' का अर्थ ढोंग, दिखावा रह गया है।

**बौद्ध-बुद्धू**– बौद्ध धर्मावलंबी को बौद्ध कहते थे। इसके अपभ्रंश रूप 'बुद्धू' का अर्थ 'मूर्ख' हो गया।

**आकाशवाणी**– देवताओं की वाणी के लिए था। अब All India Radio के लिए प्रयुक्त होता है।

**साहस**– साहस का प्राचीन अर्थ चोरी, डकैती आदि था। अब इसका 'उत्साहपूर्ण कार्य' अर्थ में प्रयोग होता है।

**मुग्ध**– मूल अर्थ था 'मूर्ख'। इसका अर्थ अब हो गया है– मोहित होना।

**कर्पट**– कर्पट का प्राचीन अर्थ था फटा वस्त्र। इसका विकसित रूप कपड़ा है। यह अच्छे कपड़े के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है।

## अर्थोत्कर्ष

अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अर्थविकास की जो तीन दिशाएं बताई गई हैं, उनमें कुछ शब्दों में अर्थपरिवर्तन से अर्थ में उत्कर्ष आया है और कुछ में अर्थ में अपकर्ष। जिन शब्दों में अर्थोत्कर्ष हुआ है, उनके कुछ उदाहरण निम्न हैं–

**साहस-साहसी**– इसका अर्थ डाका डालना, चोरी करना, व्यभिचार आदि था, अब 'उत्साहयुक्त कार्य एवं साहसी-उत्साही अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है।

**फिरंगी**– पुर्तगाली डाकू के लिए था, अब 'यूरोपियन' के लिए है।

**गोष्ठ-गोष्ठी**– गोष्ठ गोशाला के लिए था, उससे बना 'गोष्ठी' सभ्य समाज की सभा के लिए है।

**गवेषणा**– गाय ढूंढना अर्थ था, अब 'अनुसंधान' अर्थ हो गया है।

**सभ्य**– सभा में बैठने वाले के लिए था, अब 'सुसंस्कृत' के लिए है।

**कर्पट**– कर्पट जीण-क्षीण कपड़े के लिए था, अब कपड़ा अच्छे वस्त्र के अर्थ में आता है।

टिप्पणी

## अर्थापकर्ष

इसी प्रकार अर्थपरिवर्तन से कतिपय शब्दों के अर्थों में अपकर्ष (हीनता निकृष्टता) आया है। जैसे–

**जुगुप्सा**– पालन करना, छिपाना अर्थ था, अब 'घृणा' अर्थ रह गया।

**शौच**– पवित्र कार्य के लिए था, अब मल-त्याग अर्थ हो गया।

**लिंग**– 'लिंग' अर्थ था, अब इंद्रिय-विशेष के लिए हो गया है।

**असुर**– ऋग्वेद में देववाचक था, संस्कृत में राक्षस हो गया।

**हरिजन-शिल्पकार**– हरिजन भक्त के अर्थ में था, शिल्पकार-शिल्पी के अर्थ में था, अब दोनों शब्द शूद्र या अछूत के अर्थ में हैं।

**उद्धार-उधार**– उद्धार 'उद्धार करना', उधार अर्थ में सीमित होकर हीनता को द्योतित करता है।

**चतुर्वेदी-चौबे**– चतुर्वेदी 'चारों वेदों के ज्ञाता' के लिए था, उसका विकसित रूप 'चौबे' केवल 'अधिक खाने वाला' अर्थ में रह गया।

**महाराज**– बड़े राजा के लिए था, अब 'रसोइया' रह गया है।

## अर्थ परिवर्तन के कारण

अर्थ या शब्दार्थ यद्यपि काल्पनिक या सांकेतिक है, परंतु अर्थबोध का साक्षात् संबंध मन से है। मानव मन गतिशील, चंचल, भावुक, संवेदनशील एवं नवीनता का प्रेमी है। अत: विभिन्न परिस्थितियों में मानव मन की स्थिति एक-सी नहीं होती है। यही कारण है कि राग-द्वेष, क्रोध, घृणा, आवेश आदि में उच्चरित शब्दों के अर्थों में अंतर होता है। यह अर्थ परिवर्तन प्रारंभ में व्यक्तिगत होता है, परंतु बाद में समाज के द्वारा स्वीकृत होने पर भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है और भाषा का अंग बन जाता है। इसके अतिरिक्त भी अर्थ परिवर्तन के अनेक कारण माने जाते हैं, जो इस प्रकार हैं–

**भौगोलिक परिवेश भेद**– वेद में 'उष्ट्र' का अर्थ 'भैंसा' है। बाद में इसका प्रयोग 'ऊंट' के अर्थ में होने लगा। इसक कारण आर्यों का भौगोलिक स्थान परिवर्तन ज्ञात होता है। Corn शब्द के विभिन्न स्थानों पर भिन्न अर्थ हैं– इंग्लैंड में गेहूं, स्कॉटलैंड में बाजरा, अमेरिका में मक्का। इसी प्रकार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 'लाला' का अर्थ 'वैश्य' है, पूर्वी उत्तर प्रदेश में 'कायस्थ'। उत्तर प्रदेश में 'ठाकुर' का अर्थ क्षत्रिय है जबकि बिहार में 'नाई' और पश्चिम बंगाल में 'रसोइया'।

**सामाजिक परिवेश भेद**– समाज के परिवेश भेद से अर्थ में भेद हो जाता है। अंग्रेजी के Mother, Sister, Father, Brother आदि शब्द विभिन्न सामाजिक वातावरण में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। परिवार में ये माता, बहन, पिता, भाई अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अस्पताल में 'मदर' मैट्रन के लिए और सिस्टर नर्स के लिए, रोमन केथोलिक चर्च में 'फादर' पादरी के लिए, ब्रदर सहयोगी पादरी के लिए। हिंदी में इसी प्रकार भाई शब्द

साथी, मित्र हितैषी, दुकानदार, नौकर आदि का बोधक है। बहन शब्द बहन की आयु की कन्याएं, सखी आदि का बोधक है।

टिप्पणी

**धार्मिक परिवेश भेद**– प्राचीन परंपरा के अनुसार दो वेदों को जानने वाले को द्विवेदी, तीन वेदों को जानने वाले को त्रिवेदी या त्रिपाठी, चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त करने वाले को चतुर्वेदी, शुक्ल-यजुर्वेद-ज्ञ को शुक्ल, कृष्ण-यजुर्वेद-ज्ञ को मिश्र आदि कहते थे, परंतु ये शब्द अब ब्राह्मणों की जाति-विशेष के वाचक रह गए हैं। 'यजमान' यज्ञ करने वाला न होकर कोई भी 'जजमान' हो सकता है। 'दक्षिणा' दक्षिण दिशा में बैठकर यजमान द्वारा दिया गया धन या दान होता था, अब यह केवल दान-दक्षिणा (कुछ भी धनादि-दान) रह गया है।

**राजनीतिक परिवेश भेद**– राजनीतिक परिस्थितियों में अंतर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थों में बहुत परिवर्तन हो जाता है। उनमें मूल भावना नष्ट हो जाती है और व्यापक अर्थ में उन शब्दों का प्रयोग होने लगता है; जैसे– पारिवारिक गृह कलह के लिए भी महाभारत, दुराग्रह-पूर्ण कार्य के लिए भी 'सत्याग्रह', हठयुक्त आंदोलन के लिए भी 'क्रांति', झगड़े में मरने वाले को भी 'शहीद', दुष्टहृदय को भी 'महाशय' आदि। इसी प्रकार स्वार्थी को भी देशभक्त, राष्ट्र को पीछे ले जाने वाले को भी 'नेता' कहा जाता है।

**व्यंग्य प्रयोग**– इसे काव्यशास्त्र के अनुसार 'विपरीत लक्षणा' कहते हैं। किसी पर आक्षेप करने या व्यंग्य करने में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो उससे सर्वथा विपरीत अर्थ प्रकट करते हैं। जैसे- मूर्ख को बृहस्पति, झूठे को युधिष्ठिर, कृपण को कर्ण, डरपोक को सिंह, आचारहीन को धर्मात्मा, लंपट को ब्रह्मचारी, कुलक्षणा को सती, दुर्जन को कृपानिधान आदि व्यंग्यमूलक हैं। अपकारी का उपकारी के रूप में वर्णन करते हुए संस्कृत का प्रसिद्ध श्लोक है–

**उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते, सुजनता प्रथिता भवता परम्।**

**विदधदीदृशमेव सदा सखे, सुखितमास्व ततः शरदां शतम्॥**

अर्थ सर्वथा भिन्न है– तुमने मेरा अपकार किया है, अतः तुम शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होओ।

**शिष्टाचार एवं विनम्रता**– शिष्टाचार मनुष्य की कुलीनता का सूचक है। इसमें अहंभाव का परित्याग होता है। अतएव अपने इष्टदेव, पूज्य, राजा, गुरु आदि का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है और अपने को अत्यंत तुच्छ-निकृष्ट बताया जाता है। जैसे ईश्वर की स्तुति करते हुए भक्त कहता है–

**कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः, कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।**

**कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धो सदाऽहं, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥**

**वैयक्तिक ज्ञानभेद**– प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान का स्तर भिन्न होता है। शिक्षित, अशिक्षित, दार्शनिक, वैज्ञानिक, भाषाशास्त्री आदि विशेषज्ञ अपने-अपने ज्ञान के अनुसार शब्दों के अर्थों का ग्रहण करता है; जैसे– आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, जीव, प्रकृति, माया, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य, हिंसा, अहिंसा, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, ध्वनिविज्ञान, ध्वनियंत्र आदि

टिप्पणी

शब्दों का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार समझता है। अतः शब्दों के अर्थों में अंतर उत्पन्न हो जाता है।

**प्रयोगाधिक्य**– कुछ शब्द बहुत अधिक प्रयोग के कारण अपना मूल महत्व सूचक अर्थ खो देते हैं। जैसे– श्रीमान् (श्रीयुक्त), श्रीयुत (श्री संपन्न), महाजन (महान् व्यक्ति), महोदय (उन्नत व्यक्ति), महाशय (विशाल हृदय वाले), महात्मा (महान् आत्मा), चौधरी (ठाकुर), बाबू (भद्र पुरुष) आदि शब्द अत्यंत व्यवहार के कारण अपना महत्व खो चुके हैं। इनका प्रयोग सर्वसाधारण के लिए होने लगा है। इसी प्रकार बहुत, अधिक, अतिशय, अत्यंत, उत्तम आदि शब्द भी घिसकर खोटे हो गए हैं।

**जातीय मनोभाव**– जातीय या राष्ट्रीय दुर्भावना के कारण अच्छे शब्दों का बुरे अर्थों में प्रयोग होने लगता है। फारसी में 'हिंदू' का अर्थ नीच, गुलाम, अपवित्र, काफिर है। बुद्ध का अर्थ मूर्ख, लुंचितकेश का 'लुच्चा' (अधम) अर्थ है।

**साहचर्य**– साहचर्य के कारण शब्दों के अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं। सिंधु नदी के साहचर्य से 'सिंधु' (प्रांत का नाम) स् के फारसी में 'ह' होने से सिंधु का ही 'हिंदु' बना है। यह जातिवाचक हो गया। साहचर्य के कारण ही अंग, बंग, कलिंग, महाराष्ट्र, कंबोज, पंचाल, द्रविड़ आदि शब्द देश के साथ ही देशज व्यक्ति के भी बोधक हैं।

1. **बल का अपसरण**– शब्द का उच्चारण करने में यदि किसी एक ही अर्थ पर अधिक बल दिया जाता है या उसी अर्थ के लिए वह बार-बार उच्चरित होता है, तो शेष अर्थ बलहीन होकर लुप्त हो जाते हैं तथा जिस पर बल दिया जाता है वही अर्थ शेष रहता है। जैसे' 'अरि' शब्द के वैदिक साहित्य में शत्रु, ईश्वर आदि अर्थ स्वीकार किए गए थे परंतु संप्रति वह केवल 'शत्रु के लिए प्रयोग किया जाता है।
2. **पीढ़ी परिवर्तन**– इसके मूल में अनुकरण की अपूर्णता है। मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है, वह अपने पूर्वपुरुषों का अनुकरण करता है। अनुकरण करते समय उससे कुछ न कुछ गलती अवश्य हो जाती है, जिससे पीढ़ी परिवर्तन के साथ अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है; जैसे- प्राचीन युग में पत्तों पर लिखा जाता था, परंतु आधुनिक काल में कागज आदि पर लिखने से भी प्राचीन काल के पत्र के सदृश उस कागज, चिट्ठी आदि को भी पत्र के नाम से पुकारा जाता है।
3. **अन्य भाषा से शब्दों का उधार लेना**– कभी-कभी संसर्ग या आवश्यकतावश एक भाषा को दूसरी भाषा से शब्द लेना पड़ता है। परंतु ऐसी दशा में शब्दों का आदान-प्रदान तो आसानी से हो जाता है, लेकिन उनके अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। जिस तरह संस्कृत का 'भक्त' (भात) शब्द अरबी में 'बहत' का रूप धारण करता है, परंतु यहां पर उसका अर्थ 'खीर' हो जाता है। इसी तरह फारसी में 'मुर्ग' सामान्य पक्षी का बोधक है, लेकिन हिंदी में आकर वही 'मुर्ग' शब्द एक पक्षी विशेष 'मुर्गी' के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा है।
4. **एक भाषाभाषी लोगों का प्रवास**– जब एक भाषा-भाषियों का समूह कई वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है, तो उन विभिन्न वर्गों के लोग एक ही भाषा के शब्दों का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग करने लगते हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत का 'वाटिका' शब्द जो बगीचा का वाचक है, बांगला में 'घर' के अर्थ में प्रयोग किया

टिप्पणी

जाने लगा है। इसी तरह संस्कृत के 'युग' अंग्रेजी के (Yoke) एवं संस्कृत का मृग (जानवर) और फारसी का मुर्ग (पक्षी) मूलतः एक ही शब्द है।... अर्थों में भी परिवर्तन आ जाता है; जैसे- घर के सगे भाई से सभा में कहे गए 'भाइयो' और 'बहनो' में 'भाई' शब्द दूसरे अर्थ का बोधक है। इसी तरह जब पत्नी सोते हुए 'पति' को 'अरे भाई उठो न' कह कर बुलाती है तो उस 'भाई' शब्द का अर्थ दूसरा हो जाता है।

5. **नामकरण**– जब नई-नई वस्तुएं दिखाई देती हैं, तो उनके नामकरण की समस्या सामने आती है। कभी-कभी तो उसकी सामग्री के आधार पर नामकरण कर दिया जाता है; जैसे– 'शीशे' को अंग्रेजी में (Glass) कहते हैं। 'गिलास' पहले भारतवर्ष में बनाए गए थे अतः यहां उससे बनी वस्तु को भी 'ग्लास' कहा जाने लगा।

6. **आत्मश्लाघा की भावना**– जब मनुष्य अपने वैदुष्य का प्रदर्शन करना चाहता है, तो वह कभी-कभी क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग भी करता है, जिससे शब्द सुनने में मधुर प्रतीत होते हैं परंतु उनका अर्थ बदला हुआ रहता है; जैसे महापंडित (मूर्ख), वैयाकरणखमूचि (प्रतिभारहित) आदि।

7. **अधिक वर्णों के स्थान पर कम वर्णों का प्रयोग**– मनुष्य कम से कम परिश्रम से अधिक फल की इच्छा करता है। बोलचाल की भाषा में भी इसी प्रक्रिया को अपनाता है। उदाहरणार्थ 'रेल' पर चलने के कारण ट्रेन को 'रेलगाड़ी' कहा जाता है लेकिन अब पटरी वाचक 'रेल' शब्द ही लोग 'रेलगाड़ी' के लिए प्रयोग करते हैं। इसी तरह मोटरकार के लिए 'मोटर' या 'कार', साइकिल-रिक्शा के लिए केवल रिक्शा शब्द प्रयुक्त होते हैं।

8. **सादृश–** सादृश्य के कारण भी कभी-कभी अर्थ परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ– 'प्रथम' का अर्थ विनय, शिष्टता, नम्रता है। आश्रय शब्द इसी के सादृश है। अतः इनका प्रयोग भी 'आश्रय' या 'सहारा' इत्यादि के अर्थ में किया जाने लगा है।

   उदाहरणार्थ 'अचल' शब्द पर्वत का वाचक है। किंतु 'विंध्याचल पर्वत' 'मलयगिरि' पर्वत इत्यादि शब्दों से उन्हीं विंध्य आदि पर्वतों का आशय लिया जाता है। इसी तरह कुछ लोग 'फूलों का गुलदस्ता' आदि का प्रयोग भी करते हैं। इसी प्रकार 'डबलरोटी' को 'पावरोटी' कहकर लोग 'पाव' का अर्थ 'डबल' लगाने लगे हैं, जबकि पाव का अर्थ 'रोटी' है।

9. **एक शब्द का दो रूपों में प्रचलन**– जब किसी एक शब्द का दो रूपों में प्रचलन किया जाता है तो उन दोनों रूपों में से किसी एक में कुछ भेद कर लिया जाता है; जैसे 'स्तन' और 'थन' ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं, परंतु इन दोनों में भेद करने के लिए 'स्तन' स्त्री जाति के लिए तथा 'थन' पशु जाति के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

10. **अज्ञानता**– अज्ञानता के कारण भी अर्थ में परिवर्तन हो जाता है; जैसे ज्ञान अर्थ में ही अभिज्ञान (स्मृति का प्रयोग)।

11. **एक वर्ग के एक शब्द में अर्थ परिवर्तन**– जब एक वर्ग के किसी एक शब्द के अर्थ में परिवर्तन कर दिया जाता है, तो वह उस वर्ग के दूसरे शब्दों पर भी

टिप्पणी

अपना प्रभाव डालता है। जैसे– जब 'वर' दुर्लभ हो गया तो वह 'दूल्हा' कहलाने लगा। फिर वधू भी दुलही या दुलहिन के नाम से पुकारी जाने लगी।

12. **अलंकार**– लोग भावों को अत्यधिक स्पष्ट करने के लिए अलंकारों तथा मुहावरों का प्रयोग करते हैं। जैसे छिपे रुस्तम, कालनाग, शैतान की खाला आदि शब्द अपने अंदर मार्मिक अर्थों को आत्मसात् किए रहते हैं। आचार्य ब्रील का मत है कि इन कारणों की अपेक्षा अलंकारों से अर्थ पूर्णतया बदल जाता है।

साहित्यशास्त्रियों ने शब्दों के द्वारा विशेष अर्थ व्यंजना के निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किए हैं– (1) संयोग, (2) वियोग, (3) साहचर्य, (4) विरोध, (5) अर्थ, (6) प्रकरण, (7) लिंग, (8) सन्निधि, (9) सामर्थ्य, (10) औचित्य, (11) देश, (12) काल, (13) व्यक्ति, और (14) स्वर।

**संयोग**– इसके द्वारा शब्द का अर्थ नियमित हो जाता है। जैसे– 'शंखचक्रयुत हरि लखै'। यहां पर शंख तथा चक्र के संयोग में अनेकार्थ बोधक हरिशब्द विष्णु का वाचक बन जाता है।

उपर्युक्त कारणों के विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि अर्थ परिवर्तन के बहुत से कारण होते हैं। वक्ता अपनी रुचि, आवश्यकता प्रसंगादि के अनुसार यथास्थान उनमें परिवर्तन करता है। अत: इन कारणों को निश्चित सीमा में नहीं बांधा जा सकता है।

### 5.4.6 वाक्य विज्ञान

भाषा मनुष्य के विचार विनिमय का साधन है। वाक्य विचारों द्वारा प्रकट किए जाते हैं। किन्हीं दो भाषाओं के वाक्यों की तुलना को वाक्यविचार या वाक्य-विज्ञान कहते हैं। इसके अंतर्गत वाक्य रचना पर विचार किया जाता है। वाक्यविचार के अध्ययन को तीन उपविभागों में विभक्त किया जा सकता है– वर्णनात्मक वाक्यविचार (Descriptive syntax), ऐतिहासिक वाक्यविचार (Historical syntax) तथा तुलनात्मक वाक्यविचार (Comparative syntax)। इनमें वर्णनात्मक वाक्यविचार में वाक्य का अध्ययन साधारण रूप से किया जाता है। ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान में वाक्यरचना का इतिहास तथा तुलनात्मक वाक्य विज्ञान में दो भाषाओं के वाक्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार वाक्य विज्ञान में वाक्य का अध्ययन पदक्रम, अन्वय, परिवर्तन आदि की दृष्टि से किया जाता है। वाक्य-विज्ञान को 'वाक्यविचार' अथवा 'वाक्य रचना शास्त्र' के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

वाक्य प्राय: सार्थक शब्दों का समूह है, जो भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण है। भाषा का मुख्य कार्य भावाभिव्यक्ति है, जिसका माध्यम वाक्य है। भाषा विज्ञान की एक शाखा वाक्य विज्ञान है, जिसके अंतर्गत वाक्य के स्वरूप, प्रकार, गठन, अवयव, संरचनात्मक स्तर आदि का वस्तुपरक अध्ययन होता है। व्याकरण एवं भाषा विज्ञान के क्षेत्र में वाक्य के रूप में एकाधिक पदों की ऐसी सार्थक समष्टि को भाषा की महत्तम इकाई माना जाता है, जिसके द्वारा प्रयोक्ता किसी विषय विशेष का कथन करता है।

टिप्पणी

वस्तुतः ध्वनियों से शब्द एवं पदों की रचना होती है। पद वाक्य-निर्माण के आधार तत्व हैं। पदों से निर्मित वाक्य का भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण वाक्य विज्ञान (Syntax) कहलाता है। वाक्य विज्ञान में पदों के सामूहिक रूप का महत्व है और इसी सामूहिक दृष्टि से उनका विवेचन किया जाता है।

भाषा का चरम अवयव वाक्य है अथवा शब्द, यह प्रश्न अत्यंत विवादास्पद रहा है, किंतु आज यह सुनिश्चित हो गया है कि वाक्य ही भाषा के चरम अवयव है। यदि हम राम, घर, अपना, भोजन आदि शब्दों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करें, तो इन शब्दों का कोई विशेष महत्व नहीं है, किंतु यदि हम इन्हें वाक्यांतर्गत प्रयोग में लाएं, तो ये अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करते हैं और इनसे हमारा अभिप्राय – राम अपने घर में भोजन खाता है, व्यक्त होता है। आशय यह है कि शब्दों एवं पदों के अपने-अपने स्वतंत्र अर्थ होने पर भी उनका यथार्थ आशय विशिष्ट वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही स्पष्ट होता है।

## वाक्य की परिभाषा एवं स्वरूप

संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने 'भाषा की न्यूनतम पूर्ण व सार्थक इकाई' वाक्य को ही माना है। भर्तृहरि का कथन है कि "जिस प्रकार वर्णों में अवयव नहीं होते, उसी प्रकार पदों में वर्ण या वाक्य में पद नहीं होते।"

**पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।**
**वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन॥**

**वाक्यपदीयम्-ब्रह्मकाण्डम्-73**

निष्कर्ष यह है कि वाक्य की सत्ता ही वास्तविक है।

प्रारंभ में भाषा का चरम अवयव वाक्य ही था। बच्चे के कार्यों, उसके बोलने के ढंग को देखकर हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुंचते हैं कि बालक की भाषा वाक्यात्मक है। जैस्पर्सन ने बच्चों की भाषा का विश्लेषण करते हुए कहा था कि बच्चे की भाषा के शब्द एक वाक्य का भाव ही व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए 'जब एक बच्चा 'पा' या पानी कहता है, तो उसका आशय यह होता है कि मुझे प्यास लगी है, पानी की आवश्यकता है। 'मां' शब्द के उच्चारण में भी भूख, प्यास आदि के भावों का बोध होता है। किंतु जैस्पर्सन भाषा को वाक्यात्मक मानते हुए भी बच्चे के इन शब्दों को वाक्य स्वीकार नहीं करते हैं। उनका कथन है कि वाक्य में व्याकरण के आधार पर रूप-रचना आवश्यक है। वह व्याकरणात्मक रचना बच्चे की भाषा में नहीं होती है।

किंतु बच्चे द्वारा प्रयुक्त एक शब्द भी वाक्य के भाव का सूचक है। इसी प्रकार जी, हां, नहीं आदि शब्द भी वाक्य के भाव को ही स्पष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए एक अध्यापक ने कक्षा में एक व्याख्यान देने के पश्चात छात्रों से पूछा– इस बात को तुम समझ गए? छात्रों ने उत्तर दिया– 'जी' अथवा 'नहीं'। इन दोनों ही शब्दों से क्रमशः यह आशय निकलता है कि व्याख्यान समझ में आ गया अथवा नहीं आया। इसलिए हमारा तात्पर्य यह है कि वाक्य के लिए शब्दों की संख्या का प्रश्न नहीं। एक वाक्य एक शब्द का भी हो सकता है और अनेक शब्दों का भी। किंतु भाव व अर्थ की दृष्टि से वाक्य का ही भाषा में महत्व है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए डॉ. गौतम ने लिखा है– "आदिम युग में भी मनुष्य की भाषा अभिप्राय अथवा अर्थ की दृष्टि से वाक्यमूलक ही रही होगी, शब्दमूलक

टिप्पणी

नहीं। उस समय के वाक्य निश्चित रूप से ही संपूर्ण विचारों के वाचक रहे होंगे, आकार तथा रूप की दृष्टि से चाहे लघु, अविभाज्य तथा अविभक्त ही रहे हों। शब्दों का वाक्य के अवयवों के रूप में विभाजन तो कृत्रिम है, वस्तुतः वाक्य अपने संपूर्ण रूप में अविभाज्य ही हैं। भारतवर्ष के व्याकरणकारों ने वाक्य स्फोट को अखंड माना है। व्याकरणकार भूषण का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारतीय व्याकरण दर्शन सच्चा अर्थ स्फोट (अव्यक्त शब्द) में मानता है, उनके कथनानुसार वर्णों में व्यक्त ध्वनि बाद में सामने आती है। इन व्यक्त ध्वनियों का स्वरूप शब्दों तथा पद्यों में दिखाई पड़ता है और अंत में पूरे वाक्य में ही सच्चे अर्थ की कल्पना होती है। इस प्रकार व्यवहार की दृष्टि से केवल वाक्य सार्थक होता है, वर्ण अथवा शब्द नहीं। इसी से वाक्य-स्फोट ही प्रधान माना जाता है।

ग्रीक विद्वान व्याकरण का निर्माण करना अथवा विद्यार्थियों को व्याकरण सिखाना अस्वाभाविक मानते थे। उनका मत था कि शब्दों का ग्रहण तो विद्यार्थी शनैः शनैः करता है, उससे भी आवश्यक यह है कि विद्यार्थी अपने तात्पर्य का प्रकाशन वाक्यों द्वारा करना सीख जाए।

उच्चारण की दृष्टि से वाक्य एक संपूर्ण एवं सार्थक ध्वनियों का समूह है, जो किसी एक भाव को व्यक्त करता है। छोटे-छोटे वाक्य खंड महावाक्य की रचना करते हैं। साहित्यदर्पणकार ने लिखा है–

**स्वार्थ-बोधे समाप्तानामङ्गाङ्गित्वव्यपेक्षया।**
**वाक्यानामेकवाक्यत्वं पुनः संहृत्य जायते।।** **(साहित्यदर्पण-2.2 वृत्ति)**

अर्थात अपने अभीष्ट अर्थ को व्यक्त कर समाप्त हुए वाक्य, उसे परस्पर अंग तथा अंगीभाव से पूर्ण करते हैं। इस प्रकार परंपरा से वाक्यों के पुनः परस्पर मिलने से महावाक्य की रचना होती है। अतः कहा भी गया है– "वाक्योच्चयो महावाक्यम्" अर्थात वाक्यों के समूह को महावाक्य कहते हैं।

सामान्य रूप से किसी भी भाषा के वाक्यों के दो भेद होते हैं। उन्हें अनेक नामों से अभिहित किया जाता है–

अग्र– सत्व - उद्देश्य - कर्त्ता

पश्च– आख्यात - विधेय - क्रिया

जो कुछ कहा जाता है, उसे आख्यात विधेय तथा जिसके प्रति कहा जाता है उसे सत्त्व उद्देश्य कहा जाता है। इन्हीं को दूसरे शब्दों में कर्त्ता क्रिया कहा जाता है। वाक्यों में कर्त्ता, क्रिया, सर्वनाम तथा विशेषतः कर्म, विशेषण, क्रिया-विशेषण, संयोजक तथा विस्मयवाचक शब्द (अवयव) रहते हैं। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि इन आठों की सत्ता प्रत्येक वाक्य में अनिवार्यतः होनी ही चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हम किसी व्यक्ति के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहते हैं, तो हम 'मैं आपकी कृपा के लिए धन्यवाद करता हूं।' इस भाव को अभिव्यक्त करने के लिए केवल 'धन्यवाद' ही कह देते हैं और हमारा तात्पर्य प्रकट हो जाता है। यद्यपि भारोपीय परिवार की भाषाओं में वाक्यों के उद्देश्य-विधेय नामक अंग मिल जाते हैं, किंतु अन्य भाषाओं में इनकी यथावत् स्थिति हो, यह आवश्यक नहीं है। चीनी आदि भाषाओं में उद्देश्य-विधेय की चर्चा ही नहीं, संज्ञा, क्रिया और सर्वनाम आदि का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

टिप्पणी

प्रत्येक भाषा में पदों की स्थापना के लिए अपने विशिष्ट नियम होते हैं। उदाहरणार्थ यहां हिंदी, संस्कृत तथा अंग्रेजी का एक वाक्य प्रस्तुत है–

हिंदी – राम पुस्तक पढ़ता है।

संस्कृत – रामः पुस्तकं पठति अथवा पुस्तकं पठति रामः अथवा पठति रामः पुस्तकम्।

अंग्रेजी – Ram reads a book.

हिंदी में पहले कर्त्ता, फिर कर्म तथा अंत में क्रिया का प्रयोग होता है, किंतु संस्कृत में इस प्रकार का कोई विशिष्ट नियम नहीं है। कर्त्ता, कर्म तथा क्रिया को कहीं भी प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके विपरीत अंग्रेजी में पहले कर्त्ता फिर क्रिया तथा क्रिया के पश्चात कर्म आता है। हिंदी से विकसित भाषाओं – पूर्वी-पश्चिमी हिंदी, गुजराती, अवधी आदि में हिंदी का ही क्रम स्वीकार किया जाता है। उदाहरण के लिए लता, 'हरे-कृष्णा-हरे कृष्णा' जपती है। इस वाक्य में लता, भगवान कृष्ण का जप करती है, यह तात्पर्य है। यदि इसी वाक्य को हम 'कृष्णा लता जपती है' तो अर्थांतर हो जाएगा। इसी प्रकार पाश्चात्यदेशीय भाषाओं में भी क्रमपरिवर्तन से अर्थ के अनर्थ होने की संभावना रहती है। किंतु वैदिक संस्कृत या संस्कृत भाषा में प्रत्येक पद के संबंध सूचक विभक्ति के साथ संश्लिष्ट होने के कारण उसका स्थान-परिवर्तन करने पर भी उन वाक्यों में अर्थांतर नहीं होता है। आशय यह है कि संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया आदि के विभाजन तथा क्रमनिर्धारण आवश्यक नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी पृथक् मान्यताएं हैं और तदनुरूप उनके वाक्य भी भिन्न-भिन्न रूप में मिलते हैं।

## वाक्य के आवश्यक तत्व

किसी भी भाषा के वाक्यों में फिर भी एक-दो आवश्यक तत्व होते ही हैं। तत्व के अभाव में भावाभिव्यक्ति स्पष्ट नहीं हो सकती है–

1. **आकांक्षा**– आकांक्षा का अर्थ है– इच्छा। वाक्य में जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें एक दूसरे की इच्छा या अपेक्षा रहती है। अपेक्षा को 'जिज्ञासा' भी कह सकते हैं। इस अपेक्षा या जिज्ञासा की पूर्ति होने पर ही वाक्य बनता है। आकांक्षा की पूर्ति के बिना वाक्य पूर्ण नहीं होता। इसी आकांक्षा की पूर्ति के लिए ही वाक्य में पद परस्पर संबद्ध होते हैं। जैसे– 'जाता है' कहने से वाक्य पूर्ण नहीं होता। हमारे मन में बराबर यह इच्छा बनी रहती है कि 'कौन जाता है?' अर्थात जाना क्रिया का कर्त्ता कौन है? यदि कर्त्ता का उल्लेख कर दिया जाए (यह आकांक्षा या इच्छा है) तो वाक्य पूरा हो जाएगा। आकांक्षा द्वारा ही श्रोता की जिज्ञासा की पूर्ति होती है, साकांक्ष पद ही वाक्य होते हैं। आकांक्षा रहित शब्द जैसे राम, गाय, जाता आदि वाक्य नहीं होते, ये शब्द कहलाते हैं।
2. **योग्यता**– पदों की पारस्परिक संगति ही योग्यता है। पदों के द्वारा जो अर्थ कहा जा रहा है, उसको क्रियात्मक रूप देने की योग्यता या क्षमता होनी चाहिए। आकाश उड़ता है वाक्य में शब्द तो सार्थक हैं, लेकिन आकाश उड़ नहीं सकता। अतः शब्दों में परस्पर योग्यता का अभाव है, इसलिए यह सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं है। वस्तुतः पदों के अन्वय में किसी भी प्रकार की बाधा अयोग्यता है। पदों के अन्वय में दो प्रकार से बाधा होती है– (क) अर्थमूलक बाधा, (ख) व्याकरणमूलक बाधा।

टिप्पणी

(क) **अर्थमूलक बाधा**– यदि कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो, लेकिन अर्थ की दृष्टि से अयोग्य, तो उसमें अर्थमूलक बाधा आने के कारण वह वाक्य नहीं होगा; जैसे 'किताब से पानी भरता है' या 'पर्वत उड़ते हैं'; इन वाक्यों में प्रतीतिमूलक बाधा है, कारण यह है कि किताब से पानी भरना संभव नहीं है और पर्वतों का उड़ना भी असंभव है। व्याकरण की दृष्टि से इन दोनों वाक्यों में कोई असंगति नहीं है, पदों का अन्वय व्याकरणसम्मत ढंग से हुआ है और दोनों वाक्य व्याकरण से शुद्ध तथा संगत हैं, परंतु प्रतीति या अर्थसंबंधी बाधा स्पष्ट है। वाक्य में पदों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वे पृथक्-पृथक् ही सार्थक न हों प्रत्युत मिलने पर भी सार्थक रहें। उपर्युक्त दोनों वाक्यों में प्रयुक्त पद पृथक्-पृथक् तो सार्थक हैं किंतु मिलने पर निरर्थक हो जाते हैं, क्योंकि उनमें कोई संगत अर्थ नहीं निकलता।

(ख) **व्याकरणमूलक बाधा**– यदि कोई वाक्य अर्थ की दृष्टि से ठीक हो, लेकिन व्याकरण की दृष्टि से अयोग्य या अशुद्ध हो, तो उसे वाक्य नहीं कहा जाएगा। लिंग, वचन, विभक्ति, विशेषण आदि में व्याकरणिक अन्विति या एकरूपता होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित वाक्यों में व्याकरण संबंधी योग्यता का अभाव है–

| | |
|---|---|
| लड़का खेलती थी | (लिंग विषयक अयोग्यता) |
| लड़के खेलता था। | (वचन विषयक अयोग्यता) |
| हम जाता है। | (पुरुष विषयक अयोग्यता) |
| राम ने पढ़ता है। | (विभक्ति विषयक अयोग्यता) |
| मेरे को दूर जाना है। | (विशेषण विषयक अयोग्यता) |

इन वाक्यों में सार्थकता का अभाव नहीं है। अतः पदों की अन्विति में लिंग, वचन, पुरुष, विभक्ति आदि का ध्यान अपेक्षित होता है। उन्हीं पदों का परस्पर अन्वय (संबंध) संभव है, जो समान कोटिक हों।

3. **आसत्ति**– आसत्ति या सन्निधि का अर्थ है– समीपता। वाक्य के शब्द परस्पर समीप होने चाहिए। वाक्य में जितने भी पदों का प्रयोग हो, उनका उच्चारण निरंतर तथा क्रमबद्ध रूप में हो। यदि उनमें उचित समय से अधिक समय या अंतराल दिया जाए, तो सन्निधि का क्रम टूट जाएगा। वाक्य के विभिन्न पदों की आपसी दूरी समाप्त हो जाए या आवश्यकता से अधिक हो जाए, तो वाक्य अनर्गल हो जाएगा अर्थात वाक्य की सत्ता संदिग्ध हो जाएगी। उदाहरणार्थ, 'मुझे घर जाना है' वाक्य के प्रारंभिक दो पद 'मुझे घर' पहले दिन बोले गए तथा 'जाना' अगले दिन या कुछ घंटे बाद तथा 'है', उसके भी कुछ देर बाद कहा जाए, तो वाक्य नहीं बनेगा और न इनसे कोई अर्थ निकलेगा। समय का व्यवधान अधिक होने से वाक्य नहीं बनेगा और न इससे कोई अर्थ निकलेगा।

वस्तुतः वाक्य में निरर्थक पदों का सन्निवेश संपूर्ण वाक्य को नष्ट कर देता है। केवल सार्थक पद ही अर्थ की प्रतीति कराते हैं। वाक्य में पदविन्यास की विशेषताएं आकांक्षा, योग्यता तथा आसत्ति की व्याख्या के संदर्भ में जो कहा गया है, उसका

प्रकारांतर से स्पष्टीकरण इस प्रकार है– वाक्य में प्रयोग करते समय पद संबंधी तीन विशेषताएं पाई जाती हैं– (क) चयन, (ख) क्रम और (ग) अपरिवर्तन।

टिप्पणी

(क) **चयन**– वाक्य निष्पत्ति के लिए सबसे पहले पदों का चयन करना होता है। अर्थ और रूप दोनों ही दृष्टियों से चयन अपेक्षित है। एक ही अर्थ के वाचक अनेक पद होते हैं। उनमें किसका प्रयोग किया जाए? वाक्य का संबंध मनोविज्ञान से है और मनोविज्ञान का अर्थ से अर्थात वक्ता क्या कहना चाहता है। अनेक पर्याय हैं– नारी, महिला, अबला, वामा, रमणी आदि किंतु पर्याय होने में नर (मनुष्य) की संगिनी का भाव है किंतु 'अबला' में बलहीनता का। 'वामा' में वक्रता की व्यंजना होती है तो 'रमणी' में रमण की। प्रयोग के समय इस विशेषता पर ध्यान रखना आवश्यक है, अन्यथा वक्तव्य में जो सूक्ष्मता लानी अभीष्ट होती है, उसमें बाधा पड़ती है। चयन का एक पक्ष अर्थ का है, तो दूसरा रूप का। उपर्युक्त स्त्रीवाची प्रत्येक शब्द के कारक, वचन आदि के अनुसार अनेक रूप हो जाते हैं। सभी रूप सर्वत्र प्रयुक्त नहीं हो सकते, जैसे 'नारी का पढ़ती है' में 'नारी का' का प्रयोग गलत है क्योंकि 'पढ़ती है' क्रिया से उसकी अन्विति नहीं हो सकती। 'नारी' पद के विभिन्न कारकों के प्रायः दो दर्जन रूपों में यह देखना पड़ेगा कि वांछित प्रसंग में किसका प्रयोग सार्थक होगा।

अर्थ की दृष्टि से चयन का आधार मनोविज्ञान एवं भाव की सूक्ष्मता है, किंतु रूप की दृष्टि से चयन का आधार योग्यता है, जिसका विचार पहले हो चुका है। कहां किस पद का प्रयोग उचित होगा, इसका निर्णय योग्यता की कसौटी पर ही होता है। उदाहरणार्थ, 'न' निषेधात्मक पद है किंतु 'मैंने न देखा'; यहां 'न' का प्रयोग नहीं हो सकता। यहां 'मैने नहीं देखा' यही कह सकते हैं। किंतु 'मैंने न देखा, न सुना' इसमें 'न' बिल्कुल संगत है। यहां 'मैंने नहीं देखा, नहीं सुना' यही वाक्य असंगत लगेगा।

(ख) **क्रम**– वाक्य में पदक्रम का महत्व बहुत बड़ा है। पदक्रम का अर्थ यह है कि किस पद के बाद कौन पद रहे। किसी पद को जहां कहीं नहीं रख सकते। पदक्रम की कोई एक और निश्चित पद्धति नहीं है। सभी भाषाओं का पदक्रम एक नहीं होता।

सामान्य धारणा है कि कुछ भाषाओं, जैसे हिंदी, अंग्रेजी आदि का पदक्रम निश्चित होता है और कुछ– संस्कृत, रूसी आदि– का स्वतंत्र। कुछ दूर तक यह धारणा ठीक है, किंतु सर्वथा मान्य नहीं है। किसी भाषा का पदक्रम न तो बिल्कुल निश्चित होता है और न पूर्णतः स्वतंत्र। पदक्रम का निर्धारक केवल व्याकरण नहीं, मनोविज्ञान भी हुआ करता है और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर पदक्रम में परिवर्तन करना पड़ जाता है। वस्तुतः व्याकरण के नियम भी मूलतः मनोविज्ञान से ही निर्मित होते हैं।

पदक्रम में यों तो सभी पदों का ध्यान रखना होता है, किंतु प्रधानता कर्ता, कर्म और क्रिया की होती है, कारकों में भी शेष गौण रहते हैं। हिंदी के पदक्रम में पहले कर्ता, फिर कर्म, और अंत में क्रिया का स्थान होता है; जैसे–

टिप्पणी

यह पुस्तक पढ़ता है।

राम पानी पीता है।

इन दोनों वाक्यों में क्रमशः कर्ता, कर्म और क्रिया का प्रयोग है। इसके प्रतिकूल अंग्रेजी में कर्ता के बाद क्रिया आ जाती है और उसके बाद कर्म; जैसे–

He reads the book.

Ram drinks water.

अंग्रेजी में हिंदी के अनुसार He the book reads या Ram water drinks नहीं कह सकते। संस्कृत में क्रम का कोई कठोर बंधन नहीं है; जैसे–

| | |
|---|---|
| स पुस्तकं पठति। | पुस्तकं स पठति। |
| पठित स पुस्तकम्। | पठति पुस्तकं सः। |

आदि अनेक रूप पाए जाते हैं। कारण इसका यह है कि हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाएं एक प्रकार से अयोगात्मक हो गई हैं। शब्दों के साथ विभक्तियों का प्रयोग नहीं होने से यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि वहां किस विभक्ति का रूप अभिमत है। ऐसी स्थिति में यदि क्रम निश्चित नहीं रहे, तो कुछ-का-कुछ अर्थ हो जा सकता है। 'सांप मेढ़क खाता है' और 'मेढ़क सांप खाता है' में कर्तृत्व का निर्णय पदक्रम में ही होता है। क्रम उलट जाने पर कर्ता कर्म हो जाता है और कर्म कर्ता। अंग्रेजी के वाक्य में भी यही स्थिति होती है। इसलिए ऐसी भाषाओं में पदक्रम का व्याकरणिक महत्व हो जाता है। संस्कृत, रूसी, जैसी श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में विभक्तियां शब्दों के साथ लगी रहती हैं, इसलिए वाक्य में कहीं भी आने पर उनका अर्थ और व्यापार सुनिश्चित रहता है। यही कारण है कि पदक्रम बदल देने पर भी अर्थ नहीं बदलता।

फिर भी जिन भाषाओं में पदक्रम की प्रधानता है, उनमें कोई परिवर्तन हो ही नहीं सकता, ऐसी बात नहीं। पदक्रम के दो प्रमुख अपवाद हैं– 1. बल और 2. छंद। बल देने की इच्छा से पदक्रम में परिवर्तन हो जाता है और बल का अर्थ है कि वक्ता वाक्य में किस अंश को प्रधानता देना चाहता है; जैसे– स्वाभाविक पदक्रम के अनुसार वाक्य होगा 'मैंने रोटी खाई है' किंतु यदि 'रोटी' पर बल देना है, तो यह वाक्य 'रोटी मैंने खाई है' इस रूप में प्रयुक्त होगा। इसी तरह अंग्रेजी में I must go के go पर बल देने के समय Go I must बोलते हैं। ऐसे ही He is dignified no doubt में dignified पर बल देने के लिए क्रम उलट दिया जाता है Dignified he is, no doubt. इस तरह का क्रम-परिवर्तन बल देने की भावना से प्रेरित होता है। पदक्रम के परिवर्तन का दूसरा आधार है छंद, जिसका निर्देश पहले हो चुका है। छंद में मात्रा, लय और तुक की मांग पूरी करनी होती है और वह पदों के स्वाभाविक क्रम में सदा संभव नहीं होती। इसलिए सभी भाषाओं के पद्य में पदक्रम की उपेक्षा पाई जाती है।

टिप्पणी

संस्कृत, रूसी जैसी भाषाओं में विभक्ति की श्लिष्टता के कारण पदक्रम में अपेक्षाकृत स्वतंत्रता रहती है, क्योंकि पदक्रम भेद से अर्थ-भेद की संभावना कम होती है। पर इस स्वतंत्रता की भी एक सीमा है। उन भाषाओं में भी पदक्रम का बिलकुल महत्व नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पदक्रम के स्वतंत्र रहने पर भी यदि किसी पद पर बल देना है, तो उसका प्रयोग आरंभ में होता है। 'बालकः मोदकं खादति' यही कहेंगे। दूसरी बात यह कि एवं, अपि आदि अव्यय संबद्ध पद के साथ ही प्रयुक्त होते हैं। उनके स्थान में हेर-फेर हो जाने से अर्थ में आकाश-पाताल का अंतर हो जाता है; उदाहरणार्थ, 'बालकः एव मोदकं खादति' और 'बालकः मोदकम् एव खादति' में स्पष्ट अंतर है। इसी तरह 'लक्ष्मणोऽपि वनं गतः' और 'लक्ष्मणः वनमपि गतः' (लक्ष्मण भी वन गए तथा लक्ष्मण वन भी गए) में अर्थ का अंतर स्पष्ट है और यह अंतर 'अपि' के स्थान भेद से हुआ है। इसलिए पदक्रम की निश्चितता और स्वतंत्रता सापेक्ष धर्म है, उन्हें बिलकुल अपरिवर्तनीय नहीं मानना चाहिए।

(ग) **अपरिवर्तन**– पदों की पृथक (असंबद्ध) स्थिति तथा परस्पर संबद्ध स्थिति में दो दृष्टियों से भेद हो जाता है और वे हैं ध्वन्यात्मक तथा स्वरात्मक। ध्वन्यात्म्क अपरिवर्तन को ही हमारे यहां संधि शब्द कहा गया है। संधि का अर्थ है मेल। दो ध्वनियां जब एक-दूसरे के निकट जाती हैं, तो परस्पर प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती हैं। इस परिवर्तन को ही संधि कहते हैं। संधि का संबंध ध्वनि से है; जैसे, 'कब तक आओगे'? इस वाक्य के पद वाक्य के प्रवाह में 'कब्तकाओगे' के रूप में सुनाई पड़ते हैं। इसी तरह 'रखकर जाइए', 'राकर जाइए' या 'रख दीजिए', 'रघ्दीजिए' बन जाता है। 'जगदीश आज आया है' 'जगदीशाजाया है' बन जाता है।

पद संबंधी इस परिवर्तन की उपमा मनुष्य के आचार-व्यवहार से दे सकते हैं। कमरे में अकेले रहने पर हमारा जैसा आचरण होता है, वही किसी सभा समिति में नहीं। वहां हमारा आचार-व्यवहार दूसरों के आचार-व्यवहार से नियंत्रित और संयमित हो जाता है। वही स्थिति पदों की भी है। पद अकेले जिस रूप में रहते हैं, वैसे ही दूसरों के संपर्क में आने पर नहीं।

आपरिवर्तन का संबंध ध्वनि के अतिरिक्त स्वर से भी है। वाक्य में स्वर के आरोह, अवरोह या तान की सहायता लिए बिना काम नहीं चलता। आरोह, अवरोह, तान आदि हमारी मनोवृत्ति के व्यंजक तत्व हैं और वे भाषा को हमारी मनोवृत्ति के अनुकूल रूप देकर सजीव बनाते हैं। उनकी कुछ चर्चा ध्वनि और पद के प्रसंग में हो चुकी है, पर वाक्यों में भी उनका कम उपयोग नहीं होता। उदाहरणार्थ, 'न' का अर्थ निषेध है किंतु 'मैंने आपको कहा था न?' में वह विधिवाचक हो गया है। यह अर्थ-भेद वाक्य में उसके स्थान और स्वर के कारण ही है।

भारत-यूरोपीय परिवार की भाषाओं में वाक्य के दो मुख्य अवयव पाए जाते हैं– 1. उद्देश्य और 2. विधेय।

टिप्पणी

1. **उद्देश्य**– जिस वस्तु के विषय में जो कुछ कहा जाए, उसके बोधक शब्द को उद्देश्य कहते हैं; जैसे, 'लड़का पढ़ता है'; 'घोड़ा दौड़ता है'; में 'लड़का' और 'घोड़ा' दोनों उद्देश्य हैं।

2. **विधेय**– उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाए, उसके बोधक शब्द को विधेय कहते हैं; जैसे, उपर्युक्त वाक्यों में 'पढ़ता है' और 'दौड़ता है' दोनों विधेय हैं।

उद्देश्य-विधेय की व्यवस्था सभी भाषाओं के लिए सही नहीं है; उदाहरणार्थ, चीनी या एस्किमो में उद्देश्य-विधेय का अवकाश नहीं है।

उद्देश्य और विधेय के वाचक शब्द पृथक-पृथक ही रहें, यह आवश्यक नहीं। दोनों का काम एक पद से भी बन सकता है; जैसे–

1. पठामि। पढ़ता हूं। 2. गच्छसि? जाते हो?

इन वाक्यों में केवल क्रियापद ही है, किंतु उसी में उद्देश्य और विधेय दोनों वर्तमान हैं। 'पठामि' या 'पढ़ता हूं' का अर्थ निश्चित रूप से 'मैं पढ़ता हूं' होता है। 'मैं' का अर्थ क्रिया में ही वर्तमान है। इसका प्रयोग मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे के लिए नहीं हो सकता। 'पठामि' या 'पढ़ता हूं' का अर्थ कभी 'तुम पढ़ते हो' या 'वह पढ़ता है' नहीं होता। इसी तरह 'गच्छसि' या 'जाते हो' के साथ 'तुम' का अर्थ अनिवार्य रूप से लगा हुआ है। उससे 'मैं' या 'वह' का बोध नहीं हो सकता। इसीलिए ऊपर कहा गया कि उद्देश्य और विधेय की पृथक् स्थिति अनिवार्य नहीं है।

वाक्य के भेदों में सरल वाक्य का लक्षण यह बताया जाता है कि उसमें कम-से-कम एक उद्देश्य और एक विधेय अर्थात एक कर्त्ता और एक क्रिया होनी चाहिए, किंतु उपर्युक्त वाक्यों में केवल क्रिया से ही वाक्य निष्पन्न हो गया है। क्रिया और संज्ञा में क्रिया अकेले भी वाक्य बना सकती है, किंतु संज्ञा नहीं, कारण कि क्रिया में करने वाले का कुछ न कुछ अंश व्यक्त रहता है। यही कारण है कि संज्ञा की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्वपूर्ण बताया गया है। बाघ/सांप सावधान आदि वाक्यों में केवल संज्ञा का प्रयोग देखकर यह संदेह नहीं होना चाहिए। कुछ वाक्य संज्ञा मूलक भी होते हैं। वस्तुतः वहां भावातिरेक (भय, घबराहट आदि) के कारण क्रिया का केवल उच्चारण नहीं हो पाया है अन्यथा वहां भी वह है। इसलिए वैसे वाक्यों में क्रिया का लोप मानना चाहिए, अभाव नहीं।

## वाक्य के लक्षण और भेद

वाक्य की परिभाषा अत्यंत विवादास्पद है। भारत के प्राचीन वैयाकरणों, दार्शनिकों और साहित्यकारों ने वाक्य की परिभाषा भिन्न-भिन्न उपस्थापित की है। महाभाष्य में भगवत्पतञ्जलि ने वाक्य के पांच लक्षण प्रस्तुत किए हैं–

(1) एक क्रिया-पद वाक्य है। (2) अव्यय, कारक और विशेषण से युक्त क्रिया पद वाक्य है। (3) क्रिया-विशेषण युक्त क्रियापद वाक्य है। (4) विशेषणयुक्त क्रियापद वाक्य है। (5) क्रियापद रहित संज्ञापद भी वाक्य होता है। जैसे– तर्पणम्, पिण्डीम् आदि।

टिप्पणी

एकतिङ् वाक्यम्। आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। सक्रियाविशेषणं च। आख्यातं सविशेषणम्। (महा. -2.1.1)

मीमांसकों, नैयायिकों और साहित्यशास्त्रियों ने साकांक्ष पद-समूह को 'वाक्य' माना है।

अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकांक्षं चेद् विभागो स्यात्। (मीमांसा. - 2.1.46)

पदसमूहो वाक्यम् अर्थसमाप्तौ। (वात्स्यायन, मंजूषा, पृ. 1)

मिथः साकांक्षशब्दस्य व्यूहो वाक्यम्। (शब्दशक्तिप्रकाशिका-श्लोक-13)

आचार्य विश्वनाथ ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पदसमूह को वाक्य माना है– 'वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः'। (साहित्यदर्पण-2.1)

आचार्य भर्तृहरि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों और दार्शनिकों के मतों का संग्रह करते हुए 'वाक्यपदीय' में वाक्य की निम्नलिखित परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं–

क्रियापद को वाक्य कहते हैं।

क्रिया-युक्त कारकादि के समूह को वाक्य कहते हैं।

क्रिया एवं कारकादि-समूह में रहने वाली 'जाति' वाक्य है।

क्रियादि-समूह गत एक अखंड शब्द (स्फोट) वाक्य है।

क्रियादि पदों के क्रम-विशेष को वाक्य कहते हैं।

क्रियादि के बुद्धिगत समन्वय को वाक्य कहते हैं।

साकांक्ष प्रथम पद को वाक्य कहते हैं।

साकांक्ष पृथक्-पृथक् सभी पदों को वाक्य कहते हैं।

**'आख्यातशब्दः संघातो जातिः संघातवर्तिनी।**
**एकोऽनवयवः शब्दः क्रमो बुद्ध्यनुसंहतिः॥**
**पदमाद्यं पृथक् सर्वपदं साकांक्षमित्यपि।**
**वाक्यं प्रति मतिर्भिन्ना बहुधा न्यायवादिनाम्॥ (वाक्यपदीय-2.1.2)**

प्राचीन वैयाकरण पतञ्जलि एवं यूनानी दार्शनिक डायोनिशस थ्रैक्स ने वाक्य की परिभाषा देते हुए आश्चर्यजनक समानता का परिचय दिया है– इन दोनों ही विद्वानों के अनुसार "पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं"। इस परिभाषा की शब्दावली पर विचार करने से हमारा ध्यान दो तथ्यों पर विशेष रूप से जाता है–

(1) वाक्य शब्दों का समूह है, (2) वाक्य पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराता है।

अरस्तू के अनुसार, "A sentence is a composite significant sound of which certain parts of themselves signify themselves, for every sentence is compared from nouns and verbs but there may be sentence without verb."

अर्थात वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है, जिससे किसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक वाक्य संज्ञा तथा क्रिया से बनता है, किंतु क्रिया के बिना भी वाक्य की रचना हो सकती है।

टिप्पणी

ब्लूमफील्ड के अनुसार, "वाक्य वह स्वतंत्र भाषिक इकाई है, जो व्याकरिणक दृष्टि से किसी बड़ी इकाई का अंग न हो।"

इस प्रकार वाक्य की निर्विवाद शास्त्रीय परिभाषा देना संभव नहीं है। किंतु व्यावहारिक दृष्टि से वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं–

**'सार्थं लघिष्ठं पूर्णार्थं वाक्यं स्याद् भाषणाङ्गकम्'।**

अर्थात भाषा की लघुतम पूर्ण सार्थक इकाई को 'वाक्य' कहते हैं।

**वाक्य के भेद**– विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने पर भाषा में प्रयुक्त वाक्यों के अनेक प्रकार हो सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं– (1) आकृतिमूलक भेद, (2) रचनामूलक भेद, (3) अर्थमूलक भेद, (4) क्रियामूलक भेद, (5) शैलीमूलक भेद।

1. **आकृतिमूलक भेद**– विश्व की भाषाओं का आकृतिमूलक भेद किया जाता है। अर्थ तत्व और संबंध-तत्व या प्रकृति और प्रत्यय किस प्रकार मिलते हैं, इसके आधार पर वाक्य भी चार प्रकार के मिलते हैं– अयोगात्मक वाक्य, श्लिष्ट योगात्मक वाक्य, अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य तथा प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य।

   (क) **अयोगात्मक वाक्य**– अयोगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय पृथक्-पृथक् रहते हैं। इनमें कारक चिह्न आदि स्वतंत्र शब्द होते हैं। चीनी भाषा अयोगात्मक भाषा है। इसमें पद क्रम निश्चित है– कर्त्ता, क्रिया कर्म। विशेषण कर्त्ता के पूर्व आता है। जैसे–

| | | |
|---|---|---|
| ता ज़ेन | (बड़ा आदमी) | (ता-बड़ा, ज़ेन-आदमी) |
| ज़ेन ता | (आदमी बड़ा है) | (इसमें 'ता' विधेय हो गया है) |
| वो ता नी | (मैं तुझे मारता हूं) | (वो-मैं, ता-मारना, नी-तुम) |
| नी ता वो | (तू मुझे मारता है) | (नी-तू, ता-मारना, वो-मैं) |

   (ख) **श्लिष्ट योगात्मक वाक्य**– ऐसे वाक्यों में प्रकृति (शब्द, धातु) और प्रत्यय को अलग-अलग करना कठिन होता है। (भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाएं संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता आदि इसी वर्ग के अंतर्गत आती हैं। जैसे संस्कृत में-

   **अहं गुरुं द्रष्टुम् अगच्छम् (मैं गुरु को देखने गई)**

   यहां अस्मद् शब्द प्रथम एकवचन + गुरु शब्द द्वितीया वि. एकवचन + दृश् धातु तुमुन् प्रत्यय + गम् लङ् लकार है, उत्तम पु. एकवचन है।

   **वृक्षात् पत्रम् अपतत् (पेड़ से पत्ता गिरा)**

   यहां वृक्ष शब्द पंचमी वि. एकवचन + पत्र शब्द प्रथमा वि. एकवचन + लङ् ल., प्र.पु. एकवचन है।)

   इन उपर्युक्त वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय को पृथक् करना कठिन है।

   (ग) **अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य**– ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय जुड़े होने पर भी तिलतंडुलवत् अलग-अलग देखे जा सकते हैं। तुर्की भाषा में इसके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं–

**एल्-इम्-डे-कि ( मेरे हाथ में है, एल्-हाथ, इम्-मेरा, डे-में, कि-होना )**

(घ) **प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य**– ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय इतने अधिक घनिष्ठ रूप में मिल जाते हैं कि पदों को पृथक् करना कठिन होता है। पूरा वाक्य एक शब्द सा प्रतीत होता है। ऐसे उदाहरण दक्षिण अमेरिका की चेरोकी भाषा, पेरीनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली बास्क भाषा आदि में मिलते हैं।

टिप्पणी

**चेरोकी- नाधोलिनन ( हमारे पास नाव लाओ )**

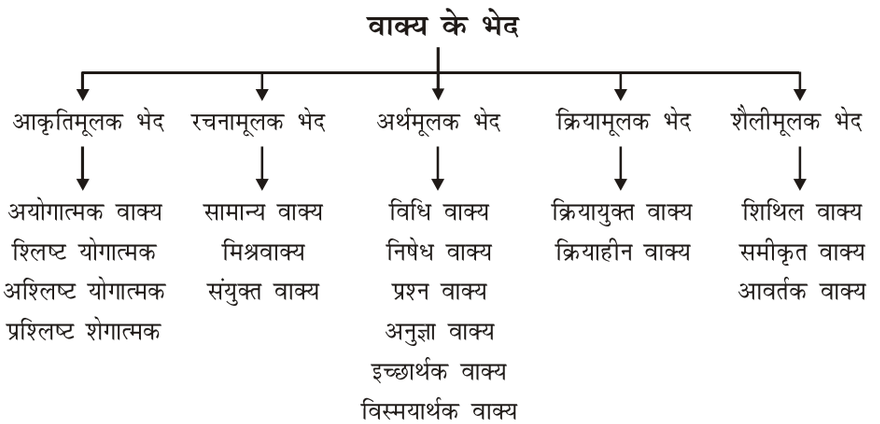
**बास्क में - हकारत ( मैं तुझे ले जाता हूं )**

2. **रचनामूलक भेद**– वाक्य की रचना या गठन के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं–

(क) **सामान्य वाक्य**– इसमें एक उद्देश्य होता है और एक विधेय अर्थात एक संज्ञा और एक क्रिया; जैसे– सः पठति।

(ख) **मिश्र वाक्य**– इसमें एक मुख्य उपवाक्य होता है और उसके आश्रित एक या अनेक उपवाक्य होते हैं; जैसे– यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः। यस्यार्थाः तस्य मित्राणि।

(ग) **संयुक्त वाक्य**– इसमें एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं। इनके साथ आश्रित उपवाक्य एक या अनेक होते हैं अथवा नहीं भी होते हैं। जैसे– यदाऽहं गुरुगृहं प्रापम्, तदा स स्नानार्थं नदीं गत आसीत्।




3. **अर्थमूलक भेद**– अर्थ या भाव की दृष्टि से वाक्य के प्रमुख आठ भेद किए जाते हैं–

| | | |
|---|---|---|
| विधिवाक्य | – | रामः खादति। |
| निषेधवाक्य | – | अहं अनृतं न वदिष्यामि। |
| प्रश्नवाक्य | – | भवतः नाम किं अस्ति? |
| अनुज्ञा वाक्य | – | इदं कार्यं करोतु, भवान्? |
| संदेहवाक्य | – | किमयं स्थाणुः वा पुरुषो वा। |

टिप्पणी

इच्छार्थक वाक्य – अहं विद्यालयं गन्तुम् इच्छामि।

संकेतार्थक वाक्य – चेत् त्वं तत्र गमिष्यसि तर्हि त्वं श्रेष्ठो भविष्यसि।

विस्मयार्थक वाक्य – कथम् सः वृक्षात् अपतत्।

4. **क्रियामूलक भेद**– वाक्य में क्रिया के आधार पर दो भेद होते हैं–

(क) क्रियायुक्त वाक्य (ख) क्रियाहीन वाक्य

(क) **क्रियायुक्त वाक्य**– वाक्य के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं–

1. **कर्तृवाच्य में** कर्त्ता मुख्य होता है व कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे– रामः पठति।
2. **कर्मवाच्य में** कर्त्ता गौण व कर्म मुख्य होता है, अतः कर्म में प्रथमा एवं कर्त्ता में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त होती है। जैसे- मया पुस्तकं पठ्यते।
3. **भाववाच्य में** क्रिया मुख्य होती है, कर्म नहीं होता। कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है और क्रिया में सदा प्रथम पुरुष एकवचन होता है। जैसे- मया हस्यते।

(ख) **क्रियाहीन वाक्य**– प्रचलन के आधार पर कई भाषाओं में क्रियाहीन वाक्यों का भी प्रयोग होता है, वहां क्रियापद गुप्त रहता है।

**प्रचलनमूलक**– प्रचलन के आधार पर संस्कृत, रूसी, बांग्ला आदि में सहायक क्रिया के बिना भी वाक्यों का प्रयोग होता है। जैसे–

| | | |
|---|---|---|
| संस्कृत | इदं मम गृहम् | (यह मेरा घर है) |
| रूसी | एता मोय दोम। | (यह मेरा घर है) |
| बांग्ला | एइ आमार बाड़ी। | (यह मेरा घर है) |

**प्रश्नमूलक वाक्य**– प्रश्नमूलक वाक्यों में प्रश्न और उत्तर दोनों स्थलों पर या केवल उत्तर वाक्य में क्रिया नहीं होती। जैसे–

प्रश्न- कस्मात् त्वम्?

उत्तर- प्रयागात्।

**मुहावरों में**– लोकोक्तियों या मुहावरों में क्रियाहीन वाक्यों का प्रयोग होता है। जैसे– यथा राजा तथा प्रजा, गुणाः पूजास्थानम्, प्रज्ञाहीनः अन्ध एव, सत्यं शिवं सुंदरम्, आम के आम गुठलियों के दाम।

**विज्ञापनों-समाचार पत्रादि के शीर्षकों में**– 'बूढ़े से जवान, चोरों से सावधान, देश में दुर्भिक्ष, युवती पर हमला, इस्लाम खतरे में आदि।

5. **शैलीमूलक भेद**– शैली के आधार पर वाक्यों के तीन भेद किए जाते हैं– शिथिल, समीकृत तथा आवर्तक वाक्य।

टिप्पणी

(क) **शिथिल वाक्य**– इसमें अलंकृत या मुहावरेदार वाक्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। वक्ता या लेखक स्वेच्छानुसार अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। जैसे– 'एक थे राजा दशरथ, उनके चार पुत्र थे, एक का नाम राम, एक का लक्ष्मण, एक का नाम कुछ और और एक का नाम भूल गया'। यह कथावाचकों आदि की शैली होती है।

(ख) **समीकृत वाक्य**– इसमें संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जैसे– यस्यार्थाः तस्य मित्राणि, यतो धर्मस्ततो जयः, इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः, यथा राजा तथा प्रजा आदि।

(ग) **आवर्तक वाक्य**– इसमें कथनीय वस्तु अंत में दी जाती है। श्रोता की जिज्ञासा अंतिम वाक्य सुनने पर ही पूर्ण होती है। यदि, अगर आदि शब्द लगाकर वाक्यों को बड़ा कर दिया जाता है; जैसे– यदि धन चाहिए, सुख चाहिए, यदि यश चाहिए, यदि शांति चाहिए, यदि मित्र चाहिए तो विद्याध्ययन में मन लगाओ।

पद और वाक्य के अपेक्षिक महत्व के संबंध में दो सिद्धांत हैं, जिन्हें अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद कहते हैं। ये दोनों सिद्धांत मीमांसकों के हैं। अभिहितान्यवाद पद की सत्ता मानता है और अन्विताभिधानवाद वाक्य की। एक का कथन है कि पदों के योग से वाक्य बनता है और दूसरे के अनुसार वाक्य का विच्छेद करने से पद बनते हैं। इस प्रकार अभिहितान्वयवाद को पदवाद तथा अन्विताभिधानवाद को वाक्यवाद भी कह सकते हैं। अन्विताभिधानवाद के अनुसार पद की पृथक् सत्ता ही नहीं है। आधुनिक भाषा विज्ञान इसी सिद्धांत का समर्थक है, क्योंकि भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य ही है।

## अभिहितान्वयवाद

आचार्य मम्मट शब्द और अर्थ को काव्य का स्वरूप बताते हुए कहते हैं– **'स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा'।** इस प्रकार उन्होंने वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तीन प्रकार के शब्द माने हैं। **'वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः'** कहकर वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्य तीन प्रकार के अर्थ भी स्वीकार किए हैं, किंतु मीमांसक कुमारिलभट्ट तथा पार्थसारथिमिश्र आदि आचार्य **'तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्'** कहकर तीन प्रकार के वाच्यादि अर्थों के अतिरिक्त चौथे प्रकार की तात्पर्यार्थ वृत्ति का उल्लेख करते हैं।

इनके अनुसार पहले अभिधा शक्ति के द्वारा पद से पदार्थ का ज्ञान होता है। उसके पश्चात वक्ता के तात्पर्य के अनुसार उन पदार्थों का परस्पर अन्वय होता है, जिससे वाक्यार्थ की प्रतीति होती है। इससे पहले पदार्थ अभिहित अर्थात अभिधा शक्ति के द्वारा बोधित होते हैं, बाद में उनका परस्पर अन्वय होता है, अतः उसे 'अभिहितान्वयवाद' कहते हैं। इस मत में पदार्थों का परस्पर संबंध पदों से नहीं, अपितु वक्ता के तात्पर्य के अनुसार होता है, इसलिए उसको 'तात्पर्यार्थ' कहते हैं, वही वाक्यार्थ कहलाता है और उसकी बोधक शक्ति को 'तात्पर्याख्या शक्ति' भी कहा जाता है।

**'आकाङ्क्षा योग्यता सन्निधिवशाद् वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पर्यार्थो विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीति अभिहितान्वयवादिनां मतम्।'**

टिप्पणी

इस मत को स्पष्ट रूप से समझने के लिए अभिहितान्वय शब्द का अर्थ समझना नितांत अपरिहार्य है।' अभिहितान्वय का अर्थ है– शब्दों के द्वारा कहे गऐ अर्थों का परस्पर अन्वय– **'अभिहितानां पदार्थानाम् अन्वयः' अथवा अभिहितानां स्व-स्व-वृत्त्या (अभिधया, लक्षणया, व्यंजनया) पदरूपस्थितनामर्थानामन्वय इति वादिनां भट्टमीमांसकानां मतम्'।** अर्थात आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि विभिन्न वृत्तियों की सहायता से पद उपस्थित होते हैं, इन पदों का अपना विशिष्ट अर्थ प्रकट होता है। जैसे 'घटं करोति' वाक्य में घट् अम् करोति क्रमशः संज्ञावाचक, कर्मवाचक तथा क्रियावाचक शब्द हैं, जब तीनों को एक रूप 'घटं करोति' लिखते या बोलते हैं, तब समुदाय रूप एक विशिष्टार्थ बोध होता है। इस परिप्रेक्ष्य में आकांक्षा, योग्यता व सन्निधि पदों से निम्नलिखित तात्पर्य हैं–

**आकांक्षा– "येन पदेन विना यस्य पदस्यान्वयानुभावकत्वं तेन पदेन सह तस्याकांक्षा।"** एक पद को सुनने के पश्चात वाक्य के अन्य पद को सुने बिना संपूर्ण अर्थ का ज्ञान नहीं होता है। वाक्य के अगले पद को सुनने की इच्छा ही आकांक्षा है। जैसे– 'आनय' पद को सुनने के अनंतर 'किम् आनय' ऐसी आकांक्षा होती है, जिसकी पूर्ति गाम्, घटम् आदि पदों से होती है।

**योग्यता– 'पदार्थानां परस्परसंबंधे बाधाभावे योग्यता।'**

शब्दों के पारस्परिक संबंध में बाधा का अभाव ही योग्यता है; जैसे– 'जलेन सिञ्चति' योग्यता का उदाहरण है।

**सन्निधि– पदानामविलंबेनोच्चारणं सन्निधिः।**

एक ही पुरुष द्वारा अविलंब से पदों का उच्चारण सन्निधि है।

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि उपर्युक्त तीनों हेतुओं के द्वारा जब कतिपय शब्द परस्पर अन्वित होकर विशिष्टार्थ को अभिव्यक्त करते हैं, तो ऐसे शब्द समूह को वाक्य कहते हैं। उस वाक्य के पदार्थ एवं वाक्यार्थ दो प्रकार के अर्थ होते हैं। पदार्थ की प्रतीति अभिधावृत्ति से तथा वाक्यार्थ की प्रतीति तात्पर्यावृत्ति से होती है।

आचार्य मम्मट ने अभिहितान्वयवादिनां बहुवचनांत आदरवाची शब्द का प्रयोग किया है, जो इस बात का प्रमाण है कि मीमांसक आदि के अतिरिक्त 'मम्मट' को भी 'अभिहितान्वयवाद' स्वीकार्य है।

## 'अन्विताभिधानवाद'

**'तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्'** के संदर्भ में आचार्य मम्मट ने चौथी वृत्ति तात्पर्यार्थ को न मानने वाले मीमांसक प्रभाकर गुरु तथा शालिकनाथ मिश्र के सिद्धांत को 'अन्विताभिधान' के रूप में उपस्थापित किया है। यह सिद्धांत इस प्रकार है–

अभिधा शक्ति से केवल पदार्थों की उपस्थिति ही नहीं होती, अपितु अन्वित पदार्थों की उपस्थिति भी होती है अर्थात सर्वप्रथम पद अन्वित होते हैं और बाद में विशिष्ट अर्थ वाक्यार्थ को व्यक्त करते हैं। अतः इस वाद का नाम 'अन्विताभिधानवाद' है। इस मत में वाक्य ही वाच्यार्थ है– **'वाच्य एव वाक्यार्थ इति अन्विताभिधानवादिनः'।**

टिप्पणी

इस प्रकार अन्विताभिधानवादियों के अनुसार– पदों से अन्वित पदार्थों की जो उपस्थिति होती है, वह संकेत ग्रह के द्वारा होती है तथा संकेत का ग्रहण व्यवहार से होता है। जैसे– कोई उत्तम वृद्ध अन्य व्यक्ति से कहता है 'गामानय', तो पार्श्वस्थ बालक भी इस वाक्य को सुनता है तथा सास्नादि विशिष्ट गाय को लाते हुए देखता है तो पृथक्-पृथक् 'गाम् + आनय' पदार्थ ज्ञान न होने पर भी वह 'गामानय' इस अखंड वाक्य से 'सास्नादि विशिष्ट गाय का आनयन' रूप वाक्यार्थ का ग्रहण करता है। तदनंतर 'गां नय', 'अश्वमानय' इत्यादि वाक्यों को सुनता है तथा व्यवहारतः देखता है तो प्रवृत्ति-निवृत्ति के द्वारा प्रवर्तन व निवर्त्तन रूप क्रिया को देखकर 'नय' का अर्थ ले जाना तथा आनय का अर्थ 'लाना' ऐसा समझने लगता है। यही संकेत ग्रह की प्रक्रिया है। यह संकेत ग्रह अन्वित पदार्थों में होता है– **विशिष्टा एव पदार्थः वाक्यार्थः, न तु पदार्थानां वैशिष्ट्यम्।**

इस प्रकार ज्ञात होता है कि अन्वय विशिष्ट पदार्थ को वाक्यार्थ मानने के इस सिद्धांत को 'अन्विताभिधान' कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने अभिहितान्वयवाद के पक्ष में अपनी स्वीकृति प्रस्तुत करते हुए अन्विताभिधानवाद को उपेक्षात्मक दृष्टि से देखा है। उनका कथन है कि अन्विताभिधानवाद को स्वीकार करने पर भी अभिधा शक्ति से अन्वयमात्र का ज्ञान भले ही हो जाए, किंतु संबंध विशेष की प्रतीति नहीं हो सकती। अतः उसके लिए तात्पर्यावृत्ति को मानना आवश्यक है।

इन प्रधान विभागों के अतिरिक्त डॉ. भोलानाथ तिवारी ने एक अन्य विभाग 'शब्द विज्ञान' भी स्वीकार किया है। 'शब्द विज्ञान' के अंतर्गत शब्दों का वर्गीकरण, शब्दसमूह में परिवर्तन के कारण, शब्दों का तुलनात्मक विवेचन, शब्दों की व्युत्पत्ति आदि का अध्ययन किया जाता है।

### (ख) गौण विभाग

1. **भाषा की उत्पत्ति**– भाषा विज्ञान का सबसे अधिक स्वाभाविक तथा आवश्यक अध्ययन 'भाषा की उत्पत्ति' का है। भाषा की उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से मंतव्य व्यक्त किए हैं, किंतु कुछ विद्वान भाषा की उत्पत्ति पर चिंतन करना भाषा विज्ञान के अंतर्गत स्वीकार नहीं करते, किंतु यह असमीचीन है। यद्यपि भाषा की उत्पत्ति का प्रतिपादन करना एक दुष्कर कार्य है, किंतु इसकी उत्पत्ति सिद्धांत की चर्चा करना भी अपरिहार्य है। अतः भाषा विज्ञान में भाषा की उत्पत्ति, उसके विकास आदि के प्रश्नों का समाधान किया जाता है।

   इस संदर्भ में डॉ. गुणे का कथन है कि, "इसमें भाषा की उत्पत्ति तथा विकास एवं परिवर्तन के कारण आदि अन्य प्रश्न भी समाविष्ट होते हैं। इस प्रकार, इसकी समस्या गत्यात्मक है। यह केवल भाषा की चिर परिवर्तनशीलता का ही अध्ययन नहीं करता, अपितु उस परिवर्तन के कारणों का भी पता लगाने का प्रयास करता है।"

टिप्पणी

2. **भाषाओं का वर्गीकरण**– इस विभाग में भाषाओं का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन करके भाषा का वर्गीकरण किया जाता है तथा यह निश्चित किया जाता है कि भाषा किस कुल की है। भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन वाक्यविज्ञान, रूप विज्ञान, ध्वनि विज्ञान तथा अर्थ विज्ञान आदि तथ्यों पर विचार करके किया जाता है। भाषाओं को आकृतिमूलक तथा पारिवारिक वर्गीकरण में विभक्त करना भाषा विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है।

   इस विषय में डॉ. गुणे का कथन है कि भाषाओं के किसी वर्ग विशेष की पारस्परिक समानताओं का अन्वेषण और उनकी व्याख्या करना, तुलनात्मक भाषा विज्ञान का उद्देश्य है– इस प्रसंग में ह्विटनी का उद्धरण द्रष्टव्य है– "भाषा को मानव अभिव्यक्ति (पशु अभिव्यक्ति से भिन्न) के साधन के रूप में, उसकी एकरूपता तथा सामग्री एवं संरचना की दृष्टि से आंतरिक अनेकता को ठीक से समझने के लिए भाषाओं की समानता और अंतर के कारण का पता लगाना पड़ता है एवं समानता तथा अंतर की स्पष्ट सीमा रेखा निर्धारित करके उन्हें वर्गीकृत करना पड़ता है।"

3. **व्युत्पत्तिशास्त्र**– भाषा विज्ञान का प्रारंभ व्युत्पत्तिशास्त्र से ही हुआ है। इसके अंतर्गत शब्द के संपूर्ण जीवन का इतिहास तथा उसमें होने वाले बाह्य एवं आंतरिक परिवर्तनों पर विचार किया जाता है। इसमें ध्वनि, अर्थ, रूप आदि पर भी विचार किया जाता है। यह भाषा विज्ञान का स्वतंत्र विषय नहीं अपितु ध्वनि, अर्थ और रूपविचार का सम्मिलित रूप है।

4. **शब्द समूह**– इस विभाग के अंतर्गत किसी भाषा के नवीन शब्दों का सृजन एवं विदेशी शब्दों की स्वीकृति आदि बातों पर विचार होता है। शब्द समूह के अध्ययन से उसके प्रयोगकर्त्ताओं की विचारधारा पर प्रकाश पड़ता है।

5. **लिपि**– भाषा के लिखित रूप के लिए किसी न किसी लिपि की आवश्यकता होती है। लिपि के बिना भाषा साहित्य का सुरक्षित रहना अत्यंत कठिन है। अत: भाषा का लिपि से घनिष्ठ संबंध है। इसी से भाषा विज्ञान में लिपि की उत्पत्ति, विकास, लिपि का वर्तमान तथा भविष्य, लिपि की उपादेयता, ध्वनि-विज्ञान की सहायता से लिपि सुधार आदि का अध्ययन किया जाता है।

6. **प्रागैतिहासिक खोज**– यह भाषा विज्ञान का नवीनतम विभाग है। इसमें भाषा के आधार पर प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति एवं सभ्यता पर प्रकाश डाला जाता है। इस क्षेत्र में भाषा विज्ञान ने एक नवीन आशा की किरण दी है। अभी इस विषय का विस्तृत अध्ययन यद्यपि नहीं हुआ है, तथापि इस दिशा में जो कुछ कार्य हुआ है, वह प्रशंसनीय एवं आशाजनक है।

7. **भाषा विज्ञान का इतिहास**– यह भी भाषा विज्ञान के अंतर्गत विश्लेषण का विषय है। जिस विषय के विभिन्न पहलुओं पर हम सूक्ष्म रूप से विचार कर रहे हैं, उसकी आत्मकथा-ज्ञान विषयक भावना का अंतर्गोपन कहां तक उचित है? भाषा

टिप्पणी

विज्ञान का किन परिस्थितियों में विकास हुआ, किस-किस देश में किन-किन भाषाओं पर कार्य किया गया आदि को समझना आवश्यक है। भारत में इस पर किए गए कार्यों को दो भागों में विभक्त किया गया है– भारतीय विद्वानों द्वारा भाषा विज्ञान पर किए गए कार्य और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किए गए कार्य।

8. **कोशविज्ञान**– कोश-निर्माण की क्या प्रक्रिया है? शब्द की व्युत्पत्ति क्या है? शब्द के अर्थों का निर्धारण कैसे होता है? शब्दों को कोश में किस क्रम से रखना चाहिए? ये बातें भाषा विज्ञान से संबद्ध हैं। इसलिए कोशविज्ञान भाषा विज्ञान का ही क्षेत्र माना जाता है। व्युत्पत्ति का विचार अलग से भी हो सकता है जिसके लिए हमारे यहां निरुक्त शब्द का प्रयोग होता था और अंग्रेज़ी में 'एटिमॉलॉजी' का। आज निरुक्त भी कोश विज्ञान के अंतर्गत स्वीकार किया जाता है।

9. **भाषिक भूगोल**– भाषिक भूगोल भाषा विज्ञान के क्षेत्र विस्तार की एक नवीन दिशा है, जिसमें भाषा संबंधी सीमाओं का विचार और निर्धारण किया जाता है। कोई भाषा कहां तक बोली जाती है, उसके वैभाषिक रूप क्या हैं एवं कहां प्रयुक्त होते हैं, एक भाषा से दूसरी भाषा की सीमाएं जब मिलती हैं तो वे कैसे एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं, सीमा प्रदेश की भाषा को किस भाषा के अंतर्गत माना जाए? आदि प्रश्न भाषिक भूगोल के द्वारा निर्णित होते हैं।

ऊपर वर्णित प्रधान एवं गौण विभागों के अतिरिक्त भाषा विज्ञान के अंतर्गत निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया जाता है–

1. भाषा, भाषा की प्रकृति, विकास तथा उसके अनेक रूप जैसे बोली, उपभाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा आदि।
2. भाषा के विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले कारण तथा भाषिक पुनर्निर्माण आदि।
3. किसी वर्तमान भाषा के अध्ययन तथा अध्ययन सामग्री एकत्र करने की प्रणाली का विवेचन।
4. सुरविज्ञान, नाम विज्ञान, शैली शास्त्र, बोली विज्ञान, जाति भाषा विज्ञान आदि।
5. इसी प्रकार भाषा विज्ञान के गौण अंग भौगोलिक अध्ययन में भाषा का भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।
6. विश्व के विभिन्न भागों में प्रयुक्त भाषाएं, उनकी बोलियां तथा बोली भूगोल (Dialact Geography) भाषा विज्ञान के इसी अंग के अंतर्गत आती हैं।
7. शैली विज्ञान, जिसका संबंध साहित्य में भाषा के प्रयोग से है, का अध्ययन भाषा का ही अंग है, जिसमें यह देखा जाता है कि साहित्य या वार्तालाप में प्रभाव की दृष्टि से किस प्रकार के स्वरों (ध्वनियों), रूपों, वाक्यों या अर्थों को छोड़ा जाए और किन्हें संयुक्त किया जाए। इस विज्ञान द्वारा लेखक, कवि और वक्ता का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

टिप्पणी

8. भू-भाषा विज्ञान में विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रभावों का संग्रह किया जाता है। बोली विज्ञान और भू-भाषा विज्ञान एक दूसरे से संबद्ध हैं। विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन, भाषा और समाज का पारस्परिक संबंध, भाषा का मानस पटल पर प्रभाव, भाषा और अनुभूति आदि के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन समाज भाषा विज्ञान (Socio-Linguistics) के अंतर्गत किया जाता है।
9. मनोवैज्ञानिक भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा और मनोविज्ञान का पारस्परिक संबंध, भाषा का व्यक्तिगत और सामूहिक मानसिकता पर प्रभाव, भाषा और अनुभूति आदि मनोवैज्ञानिक पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

5. भाषा विज्ञान की कितनी शाखाएं होती हैं?

   (क) पांच (ख) चार

   (ग) तीन (घ) छह

6. ''भाषा तत्वों का अध्ययन भाषा विज्ञान है।''- यह परिभाषा किस विद्वान की है?

   (क) डॉ. श्याम सुंदर (ख) आर. एच. रोबिन्स

   (ग) जॉन लायंस (घ) डॉ. बाबूराम सक्सेना

## 5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (घ)
5. (ग)
6. (घ)

## 5.6 सारांश

मनुष्य के जीवन में भाषा का स्थान अहम है। यह विचारों की अभिव्यक्ति की, संवाद के संप्रेषण का एक माध्यम है। समय के साथ-साथ इसके विकास में असंख्य परिवर्तन हुए और हो रहे हैं। विद्वान जन इस पर अनेकानेक शोध कर चुके हैं, किंतु जहां तक इसकी उत्पत्ति का प्रश्न है, यह अब तक एक अबूझ पहेली ही है कि इसकी उत्पत्ति कब हुई। फिर भी विद्वानों का प्रयास निरंतर जारी है और उन्होंने अपने-अपने तर्क के साथ इसकी उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।

कुछ विद्वान भाषा को दिव्य स्रोत से उत्पन्न मानते हैं। हिंदू लोग संस्कृत को देववाणी मानते हैं तो ईसाई हिब्रू को। किंतु इस सिद्धांत में तार्किकता और वैज्ञानिकता का अभाव है इसलिए यह मान्य नहीं है। इस सिद्धांत को दैवी उत्पत्तिवाद कहते हैं।

टिप्पणी

कुछ विद्वानों का मानना है कि आदिमानव अपने आसपास सुनाई देने वाली ध्वनियों की नकल करते थे, जिससे अनुकरणात्मक शब्दों की उत्पत्ति और कालक्रम से भाषा का जन्म हुआ। इसे अनुकरणमूलकतावाद की संज्ञा दी गई। इसे भों-भों सिद्धांत (Bow-Wow Theory), शब्दानुकरणमूलकतावाद आदि कुछ अन्य नाम भी दिए गए। कुछ विद्वान विभिन्न शारीरिक संकेतों को भाषा की उत्पत्ति का आधार मानते हैं। उनके अनुसार आदिकाल में लोग अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए शरीर के विभिन्न अंगों के संकेतों का उपयोग करते थे। उनके हाथों, पैरों, मुंह, होठ, जीभ आदि के उपयोग के फलस्वरूप भाषा की उत्पत्ति हुई। इस सिद्धांत को सांकेतिक उत्पत्तिवाद की संज्ञा दी गई। वहीं एक मत के अनुसार भारी और श्रमसाध्य कार्य करते समय मनुष्य के मुंह से निकलने वाली विभिन्न ध्वनियों के विकास के फलस्वरूप भाषा की उत्पत्ति हुई। इस मत को श्रमपरिहरणमूलकतावाद कहा गया। प्लेटो द्वारा प्रवर्तित तथा प्रसिद्ध भाषाविद मैक्समूलर द्वारा पल्लवित अनुरणन सिद्धांत के अनुसार भाषा की उत्पत्ति विभिन्न वस्तुओं से निकलने वाली ध्वनियों से हुई है।

भारोपीय शब्द भारतीय और यूरोपीय का संक्षिप्त और संयुक्त रूप है। यह परिवार विश्व के अन्य सभी भाषा परिवारों से बड़ा और समृद्ध है। यूरोप से भारत तक फैले इस परिवार में संसार का प्राचीनतम साहित्य पाया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने इसे अलग-अलग नामों से अभिहित किया है किंतु इसका सर्वाधिक प्रचलित नाम भारोपीय भाषा परिवार ही है।

क्षेत्र विस्तार, साहित्यिक समृद्धि तथा जनसंख्या की दृष्टि से यह परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारत से यूरोप तक, अमेरिका के दोनों महाद्वीपों, ऑस्ट्रेलिया और कुछ अफ्रीकी क्षेत्रों में इसी परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं। इस तरह संसार के अधिकांश लोग इसी परिवार की भाषाएं बोलते हैं।

इस परिवार की ध्वनियों के दो भेद हैं– स्वर और व्यंजन। पुनः स्वर के भी वर्ग हैं– मूल स्वर ह्रस्व, मूल स्वर दीर्घ, मिश्र ह्रस्व, स्वर मिश्र दीर्घ और अंतःस्थ स्वर। इसी प्रकार व्यंजन के भी वर्ग हैं– कवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, ऊष्म और अंतःस्थ व्यंजन। भाषाओं के दो और वर्ग हैं– केंतुम और शतम। केंतुम की भाषाओं की पांच शाखाएं हैं– कैल्टिक, ट्यूटानिक, लैटिन (इटैलियन), हेलेनिक या ग्रीक और हिट्टाइट (हित्ती) शतम वर्ग की भाषाओं की भी पांच शाखाएं हैं– अल्बानी या इलीरियन, बाल्टिक, स्लैवोनिक, आर्मीनी और आर्य।

अर्थ को भाषा की आत्मा कहा गया है। अर्थ के अभाव में भाषा का कोई महत्व नहीं होता। अर्थ विज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें भाषा की आत्मा अर्थ और उसके परिवर्तनों तथा वाक्य या शब्द और उसके अर्थों के संबंधों को अनुशासित करने वाले सिद्धांतों पर विचार किया जाता है। भर्तृहरि का मानना है कि जिस शब्द के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है। अर्थ का अन्य कोई लक्षण नहीं है। इस तरह अर्थ का लक्ष्य प्रतीति है और प्रतीति मनुष्य के मानसिक पक्ष से जुड़ी होती है।

टिप्पणी

अर्थबोध की एक प्रक्रिया होती है। दूसरों की बात के अर्थ को हम कैसे समझ लेते हैं, हमारी बात के अर्थ को सुनने वाला कैसे समझ लेता है इन सब बातों पर अर्थबोध की प्रक्रिया के अंतर्गत ही विचार किया जाता है। अर्थबोध की इस प्रक्रिया पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। यह एक मानसिक प्रक्रिया है। आत्मप्रत्यक्ष और पर प्रत्यक्ष इसके दो मुख्य माध्यम हैं। व्यवहार, उपमान, आप्तवाक्य, व्याकरण, कोश, वाक्यशेष, विवृति, शब्दशक्तियां आदि इसके अन्य माध्यम हैं। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार शब्दशक्तियां तीन हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। पाश्चात्य विद्वानों ने भी अर्थबोध के तीन माध्यम बताए हैं - व्यवहार, विवरण और अनुवाद। ध्वनि और पद की तरह ही अर्थ भी परिवर्तनशील है। इसके परिवर्तन की भी अपनी दिशाएं होती हैं। कहीं अर्थ का विस्तार होता है, कहीं संकोच तो कहीं अन्यत्र पुराने अर्थ के स्थान पर नए अर्थ का समावेश हो जाता है। अर्थ परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं जिनमें भौगोलिक परिवेश, सामाजिक परिवेश, धार्मिक परिवेश, व्यंग्य प्रयोग, शिष्टाचार, साहचर्य, सादृश, संयोग, अज्ञानता आदि प्रमुख हैं।

भाषाविज्ञान का एक और सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग ध्वनि विज्ञान है। इसमें ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने ध्वनि की अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं। प्रो. डेनियल जोंस इसे नियत स्थान पर निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रवणेंद्रिय द्वारा ग्रहीत शब्द लहरी बताते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी मानते हैं कि भाषा ध्वनि मनुष्य के मुंह से नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित ध्वनि है जिसे श्रोता उसी अर्थ में ग्रहण करता है। ध्वनि के मुख्यत: दो भेद होते हैं – भाषा-ध्वनि और ध्वनिग्राम।

ध्वनि विज्ञान में ध्वनियों के उच्चारण, रचना और अर्थ का अध्ययन किया जाता है। इस दृष्टि से इस विज्ञान को दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है– ध्वनि शिक्षा और ध्वन्यालोचन। ध्वनियों को स्वर और व्यंजन दो रूपों में विभक्त किया गया है। पुन: स्वरों और व्यंजनों का वर्गीकरण भी किया गया है। स्वर के वर्गीकरण के आधार हैं– जिह्वा की स्थिति, ओष्ठों की स्थिति और मात्रा। व्यंजन के वर्गीकरण के आधार स्थान तथा प्रयत्न हैं। स्थान मुख्यत: आठ हैं– काकल, कंठ, तालु, मूर्धा, वर्त्स, दंत, ओष्ठ तथा जिह्वामूल। प्रयत्न दो प्रकार का होता है– आभ्यंतर और बाह्य।

ध्वनि उच्चारण के कुछ आवश्यक अवयव होते हैं जिन्हें ध्वनि-यंत्र कहा जाता है। ये यंत्र हैं– वाग्यंत्र, नासिका विवर, कंठमार्ग, स्वरयंत्र, स्वरतंत्री, अलिजिह्व, तालु, जिह्वा और ओष्ठ। ध्वनियों के उच्चारण में सहायता पहुंचाने वाली इंद्रियों को करण कहते हैं। अधरोष्ठ, जिह्वा, कोमल तालु तथा स्वरतंत्री करण हैं। ध्वनियों में परिवर्तन होते रहते हैं। इस परिवर्तन के दो कारण हैं- बाह्य और आभ्यंतर। इस परिवर्तन की अपनी दिशाएं होती हैं। ध्वनियों के उच्चारण में कई विशेषताएं होती हैं जिन्हें ध्वनि गुण कहते हैं। ये मुख्यत: तीन हैं- मात्रा या परिमाण, सुर तथा बलाघात। वैयाकरणों ने ध्वनि नियम का प्रतिपादन किया है। ध्वनियों में विकार के कार्यों के अनुरूप ध्वनि नियम निर्धारित कर लिए जाते

हैं। ये नियम सापवाद होते हैं जिनमें लचीलापन होता है। ग्रिम नियम, ग्रासमान नियम, वर्नर नियम आदि विशिष्ट ध्वनि नियम हैं।

टिप्पणी

पदविज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमें किसी भाषा की विभक्ति, व्युत्पत्ति तथा समास समेत शब्द रचना का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है। शब्द तथा पद में कुछ अंतर है। शब्द में विभक्ति नहीं होती जबकि पद विभक्ति सहित ध्वनियों का समूह है। संज्ञा और क्रिया विभक्तियों के मेल से पद बनते हैं। भाषाविद ऋषि गोपाल के शब्दों में, ''शब्दों के साथ जुड़कर जो प्रत्यय उन्हें वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बनाते हैं, उन्हें ही रूप कहते हैं। इन रूपों के वैज्ञानिक विश्लेषण को रूपविज्ञान या पदविज्ञान कहते हैं।''

अर्थ तत्व और संबंध तत्व में आपस में कुछ संबंध होता है जिन्हें पूर्ण संयोग और अपूर्ण संयोग के रूप में विभाजित किया जा सकता है। पूर्ण संयोग में दोनों के बीच घनिष्ठ संबंध होता है जबकि अपूर्ण संयोग में ऐसा नहीं होता। संबंध तत्व के मुख्यत: आठ प्रकार हैं- स्वतंत्र शब्द, शब्द स्थान या पद क्रम, प्रत्यय, ध्वनि गुण, अपश्रुति, द्वित्व, ध्वनि विनियोजन और अभावात्मक या शून्य। इनमें मात्रा, सुर और बलाघात ध्वनि गुण के अंतर्गत आते हैं।

ध्वनि परिवर्तन की तरह ही शब्दों के रूपों में परिवर्तन होते रहते हैं। रूप परिवर्तन की दो दिशाएं हैं - शब्दों के प्रचलित रूप का विनाश तथा नए रूप का विकास। सरल बनाने की प्रवृत्ति, सादृश्य, विचार में परिवर्तन, आज्ञान, नवीनता, स्पष्टता और बल प्रयोग रूप परिवर्तन के कारण हैं। संस्कृत व्याकरण में शब्दों को चार भागों में विभाजित किया गया है - नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात। इन्हीं पर आधारित हिंदी में नाम, सर्वनाम, विशेषण, लिंग, वचन, कारक, आख्यात, परसर्ग, उपसर्ग, आदि का प्रतिपादन किया गया है।

भाषाविज्ञान की अन्य शाखाओं की भांति ही वाक्य विज्ञान भी उसकी एक महत्वपूर्ण शाखा या अंग है। इसके अंतर्गत वाक्य के स्वरूप, गठन, प्रकार, अवयव, संरचनात्मक स्तर आदि का वस्तुपरक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। वाक्य के मुख्यत: दो भेद होते हैं - अग्र और पश्च। अग्र में सत्व, उद्देश्य और कर्ता आते हैं जबकि पश्च में आख्यात, विधेय और क्रिया। वाक्य में कर्ता, क्रिया, सर्वनाम, कर्म, विशेषण, क्रिया-विशेषण, संयोजक तथा विस्मयादिबोधक शब्द होते हैं। किंतु वाक्यों की रचना ऐसी भी होती है जिनमें इन आठों का आत्यंतिक रूप से समावेश अनिवार्य नहीं है। अर्थात यह आवश्यक नहीं कि हर वाक्य में ये आठों तत्व हों ही। भारोपीय भाषाओं में उद्देश्य और विधेय का भी समावेश होता है, जो अन्य भाषाओं में हो भी सकते हैं और नहीं भी। हर भाषा में पदों की स्थापना के उसके अपने नियम होते हैं। हिंदी में पहले कर्ता आता है, फिर कर्म और अंत में क्रिया। संस्कृत में ऐसा कोई नियम नहीं है।

वाक्य में कुछ तत्व होते हैं जिनके अभाव में भाव की अभिव्यक्ति स्पष्ट नहीं हो सकती। ये तत्व मुख्यत: तीन हैं- आकांक्षा, योग्यता तथा आसत्ति। ये तत्व भाव की स्पष्टता के लिए आवश्यक हैं। वाक्य के अपने लक्षण और भेद होते हैं। विभिन्न

टिप्पणी

विद्वानों ने वाक्य की अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं। पतंजलि पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाल शब्द समूह को वाक्य कहते हैं। उनके अनुसार इसके पांच लक्षण हैं - (1) एक क्रिया-पद वाक्य है। (2) अव्यय, कारक और विशेषण से युक्त क्रिया पद वाक्य है। (3) क्रिया-विशेषण युक्त क्रिया पद वाक्य है। (4) विशेषणयुक्त क्रिया पद वाक्य है। (5) क्रिया पद से इतर संज्ञा पद भी वाक्य है। आचार्य विश्वनाथ ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पद समूह को वाक्य माना है। इस तरह, वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है जिससे सार्थक भाव की अभिव्यक्ति होती है। वाक्यों के पांच प्रमुख भेद हैं - आकृतिमूलक, रचनामूलक, अर्थमूलक, क्रियामूलक और शैलीमूलक। पद और वाक्य के आपेक्षिक महत्व के संबंध में दो सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है - अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद। अभिहितान्वयवाद में पद की और अन्विताभिधानवाद में वाक्य की सत्ता मानी गई है।

इस प्रकार, वाक्य विज्ञान भाषाविज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसमें वाक्य के स्वरूप, गठन, प्रकार, अवयव, संरचनात्मक स्तर आदि पर विचार किया जाता है।

## 5.7 मुख्य शब्दावली

- **अतर्क्य–** तर्क न करने योग्य, जिसका अनुमान न किया जा सके
- **सन्निविष्ट–** समाहित होना, मिलना, सम्मिलित होना
- **नीरस–** रसहीन, आनंदरहित
- **अपरिहार्य–** जरूरी, आवश्यक समझा जाने वाला कार्य
- **दुष्कर–** कठिन, संभव न हो
- **परिमार्जन–** साफ करना, त्रुटियां या दोष दूर करना, सुधारना
- **संयोजक–** जोड़ने, मिलानेवाला, शब्दों या वाक्यों को जोड़ने वाला
- **निनाद–** शब्द, गुंजार/रथ के पहियों की आवाज
- **ईश्वर प्रदत्त–** ईश्वर द्वारा दिया हुआ
- **फेनिल–** फेनयुक्त, झागदार
- **विलास–** चमकना, प्रणय-क्रीड़ा, किसी चीज का सुंदर ढंग से हिलना-डुलना
- **नैसर्गिक–** स्वाभाविक, प्राकृतिक
- **निधि–** किसी वस्तु का आधार या आश्रयस्थान, खजाना, किसी विशेष कार्य या उद्देश्य से अलग रखो या संचित किया हुआ धन
- **वियोगावस्था–** अलगाव की स्थिति, किसी से विरह, छुटकारा
- **अनुशीलन–** नियमित अध्ययन, चिंतन तथा गंभीर अभ्यास
- **संप्रदाय**– किसी मत के अनुयायियों का समूह, विशेष धार्मिक मत

टिप्पणी

- **अभीप्सित–** अभिलाषा, इच्छित
- **अखंडनीय–** जिसके टुकड़े नहीं किए जा सकते
- **आत्मप्रत्यक्ष–** स्वयं अपनी आंखों से किसी वस्तु को देखना, उसका अनुभव करना आत्मप्रत्यक्ष कहलाता है
- **उपमान–** वह वस्तु जिससे किसी की तुलना की जाए
- **समीचीन–** किसी के समान
- **जनेऊ–** यज्ञोपवीत
- **उत्क्षिप्त–** ऊपर फेंका हुआ/झटके से अलग होना
- **घुंघली–** भनभनाहट/कल ध्वनि
- **विषमीकरण–** किसी के विपरीत
- **प्रातिपदिक–** वह अर्थवान शब्द जो धातु और प्रत्यय से भिन्न हो और जिसमें प्रत्यय न लगा हो
- **सोविया–** बांटू परिवार की एक भाषा
- **परस्मैपदीय–** एक पद का दूसरे पद के साथ संबंध
- **द्यावापृथिवी–** आकाश एवं पृथ्वी
- **संश्लिष्ट–** मिला हुआ, विभिन्न तत्वों या घटकों आदि के मेल से बना हुआ
- **परिशीलन–** लगाव, किसी विषय पर पूरी तरह विचार करते हुए उसे पढ़ना
- **परिवर्तित–** बदलते रहना
- **समन्वय–** किसी एक वस्तु (पदार्थ, शब्द) का दूसरे से मिलना समन्वय कहलाता है।

## 5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अयोगात्मक भाषा को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
2. वैदिक संस्कृत की विशेषताएं संक्षेप में लिखिए।

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा विज्ञान में ध्वनि विज्ञान की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
2. भाषा विज्ञान के विविध रूपों पर प्रकाश डालते हुए उपभाषा का परिचय लिखिए।
3. वाक्य विज्ञान का विस्तृत विवेचना कीजिए।

टिप्पणी

## 5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *भाषा विज्ञान* – लेखक– डॉ. भोलानाथ तिवारी, प्रकाशक किताब महल।
2. *भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र* – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।